कक्षा 12

भूगोल

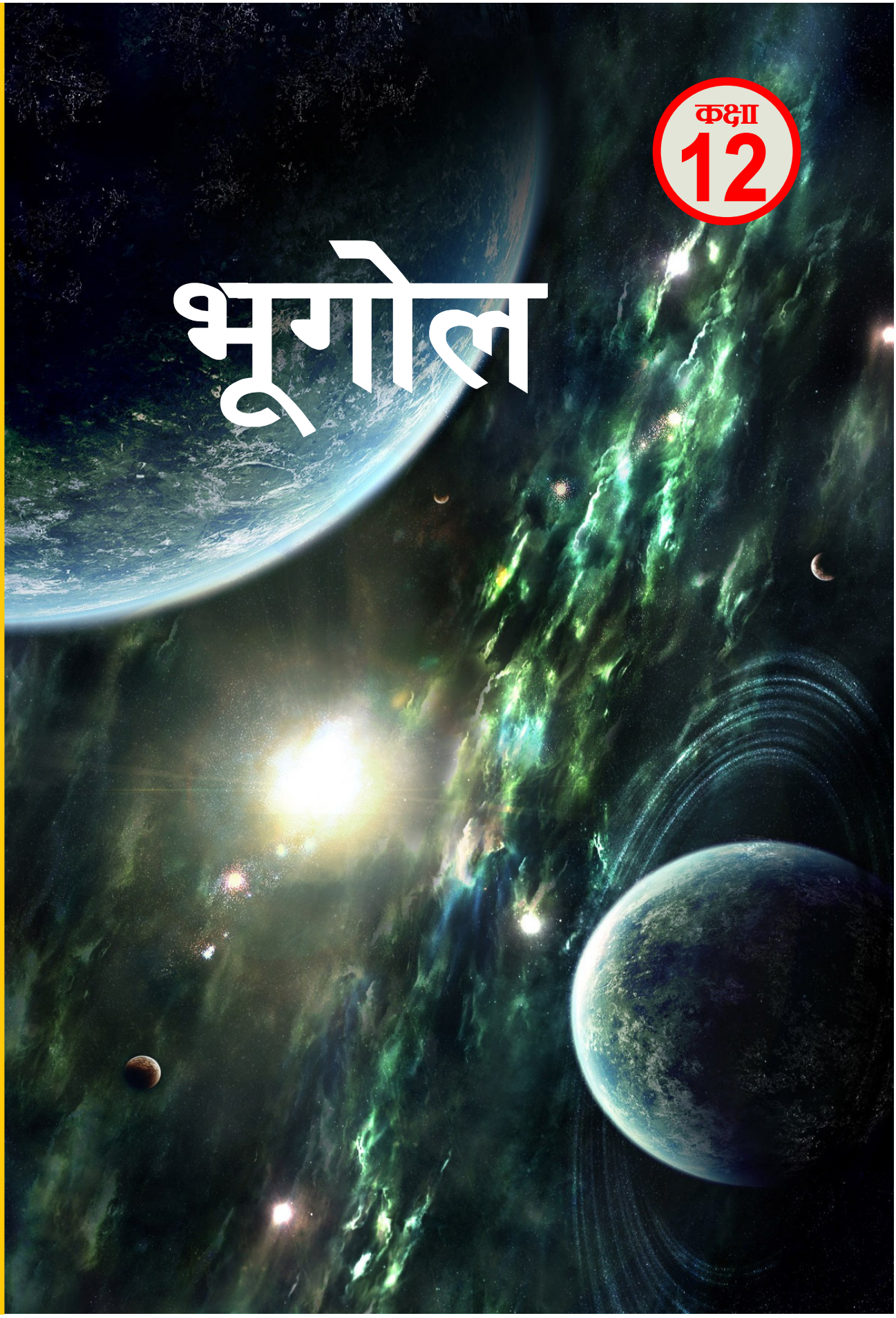

भूगोल

कक्षा–12

माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान, अजमेर

पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति

पुस्तक : भूगोल

कक्षा – 12

संयोजक :–

डॉ. सतीश आचार्य, व्याख्याता भूगोल
राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर

लेखकगण :–

1. डॉ० कन्हैयालाल गुर्जर, प्राध्यापक भूगोल
राजकीय महाविद्यालय, टोंक

2. डॉ. सावन कुमार जांगीड़, प्राध्यापक भूगोल
मा.ला. वर्मा राजकीय महाविद्यालय, भीलवाड़ा

3. श्री ओमप्रकाश शर्मा, प्रधानाचार्य
राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय, शिवपुरा, कोटा

4. श्री दिलीप कुमार चौहान, प्राध्यापक भूगोल
राजकीय उच्च अध्ययन शिक्षण संस्थान, अजमेर

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

पुस्तक : भूगोल

कक्षा – 12

संयोजक :– डॉ. ओ.पी. देवासी, व्याख्याता
राजकीय महाविद्यालय, जोधपुर

सदस्य :–

1. डॉ. नरपत सिंह राठौड़, प्राचार्य
गुरुनानक कन्या महाविद्यालय, उदयपुर

2. डॉ. मिलन यादव, व्याख्याता
सम्राट पृथ्वीराज चौहान राजकीय महाविद्यालय, अजमेर

3. डॉ. प्रमोद शर्मा, एसोसिएट प्रोफेसर
ज. रा. रा. संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर

4. डॉ. पंकज दीक्षित, प्रधानाचार्य
राजकीय उ. मा. विद्यालय, मानसर खेड़ी, जयपुर

5. श्री ओमप्रकाश शर्मा, प्रधानाचार्य
राजकीय उ. मा. विद्यालय, लबानिया सांगोद, कोटा

6. श्री पन्नालाल शर्मा, व्याख्याता
आदर्श राजकीय उ. मा. विद्यालय, लबानिया सांगोद, कोटा

प्रस्तावना

अध्ययन की दृष्टि से भूगोल एक लोकप्रिय एवं प्राचीन विषय है। आज इस विषय का अध्ययन विद्यालय, विश्वविद्यालय स्तर पर सम्पूर्ण विश्व में किया जाता है।

पृथ्वी तल पर पायी जाने वाली समानताओं, विभिन्नताओं का अध्ययन भूगोल की विषयवस्तु है। मानव भूगोल, भूगोल की प्रमुख शाखा है। पृथ्वी मानव का आवास है। मानव भूगोल में मानव वातावरण के सम्बन्धों का अध्ययन महत्वपूर्ण है। देश एवं काल के सन्दर्भ में पर्यावरणीय सम्बन्धों में भी परिवर्तन आया है।

उच्च माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों को मानव भूगोल के विभिन्न पहलुओं की स्पष्ट जानकारी मिले, इसलिए इस पुस्तक को दो खण्डों में विभाजित किया गया है। प्रथम खण्ड–अ का नाम 'मानव भूगोल के मूल तत्व' है। इसमें मानव भूगोल के इतिहास, जनजातियों, विश्व जनसंख्या, मानव प्रवास, अधिवास, व्यवसाय परिवहन व व्यापार के साथ–साथ पर्यावरणीय समस्याओं से सम्बन्धित पहलूओं की जानकारी हेतु 6 इकाईयों के 12 अध्याय है। इस खण्ड में मानवीय पक्षों का वर्णन वैश्विक सन्दर्भ में किया गया है।

खण्ड–ब का नाम 'भारत जनसंख्या एवं अर्थव्यवस्था' रखा गया है। इस खण्ड की 4 इकाईयों के 10 अध्यायों में भौगोलिक पक्षों की जानकारी भारतीय सन्दर्भ में प्रदान की गई है। अंतिम इकाई के 3 अध्याय राजस्थान राज्य की भौगोलिक सन्दर्भ की जानकारियों पर वर्णित है।

उच्च माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों में मानव भूगोल सम्बंधी विषयवस्तु की स्पष्टता हेतु लेखको ने विभिन्न उदाहरणों, मानचित्रों, रेखाचित्रों, चित्रों एवं सांख्यिकीय तथ्यों का सहारा लिया है।

पुस्तक की भाषा शैली सरल एवं बोधगम्य रखी गयी है ताकि छात्र भूगोल के मूल भावों को समझ सकें। मैं अपनी ओर से इस पुस्तक के सभी लेखकों को हार्दिक धन्यवाद और कृतज्ञता प्रकट करता हूं, जिनके अथक प्रयासों से यह ज्ञान यज्ञ पूर्णता को प्राप्त कर पाया। इस कार्य में प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष सहयोग, सुझाव देने वाले समस्त महानुभावों को भी धन्यवाद ज्ञापित करता हूं। उत्कृष्टता एवं भूगोल को पुष्ट करने वाले सभी सकारात्मक सुझावों को स्वागत रहेगा।

संयोजक

पाठ्यक्रम

खण्ड (अ) मानव भूगोल के मूल तत्व कुल अंक = 28

1. मानव भूगोल का परिचय – 04

(क) मानव भूगोल – परिभाषा, प्रकृति, विषय क्षेत्र एवं महत्व।

(ख) विश्व की प्रमुख जनजातियाँ –एस्किमी, बुशमैन गौड़, भील जनजातियों का वितरण, आर्थिक एवं सांस्कृतिक विशेषताएं।

2. विश्व की जनसंख्या– 06

(अ) जनसंख्या – वितरण, धनत्व को प्रभावित करने वाले कारक।

(ब) जनसंख्या वृद्धि – कारण, समस्या, एवं समाधान, जनसंख्या – संक्रमण सिद्धान्त।

(स) जनसंख्या संरचना – आयुवर्ग, लिगांनुपात, ग्रामीण– नगरीय।

(द) प्रवास– संकल्पना, प्रकार, पक्ष एवं समस्याएँ।

(य) मानव विकास संकल्पना।

(3.) विश्व में मानव अधिवास 04

(अ) अधिवास – ग्रामीण एवं नगरीय अधिषासों के प्रकार एवं प्रतिरूप एवं समस्याऐं।

(ब) नगरीय कच्ची बस्ती की समस्याऐं एवं समाधान

(स) मुम्बई की धारावी कच्ची बस्ती की केस स्टेड़ी।

(4) विश्व में मानव व्यवसाय – 06

(क) प्राथमिक व्यवसाय – परिचय, कृषि, खनन, आखेट, पशुपालन, संग्रहण, मत्स्य, आदिम संग्रहण।

(ख) द्वितीयक व्यवसाय – संकल्पना, उद्योगों के प्रकार, औधोगिक अवस्थिति के कारक, कृषि आधारित उद्योग, विनिर्माण।

(ग) तृतीयक व्यवसाय – चतुर्थक व्यवसाय एवं पंचम व्यावसाय की संकल्पना।

(5.) विश्व में परिवहन, संचार, एवं व्यापार 04

(क) भूतल परिवहन – प्रमुख अन्तर्राष्ट्रीय सड़क एवं रेलमार्ग।

(ख) जल परिवहन – प्रमुख आन्तरिक एवं महासागरीय जलमार्ग, बन्दरगाह, स्वेज एवं पनामा नहर जलमार्ग।

(ग) वायु परिवहन – विश्व के प्रमुख वायुमार्ग एवं हवाई अडड्े महत्व।

(ध) पाइप लाईन परिवहन –विश्व की प्रमुख तेल व गैस पाइप लाइन्स।

(ड) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं भारत की भूमिका।

(र) आधुनिक जनसंचार के उपकरण –उपग्रह, इन्टरनेट, मोबाइल आदि।

(6.) पर्यावरण 02

(अ) पर्यावरणीय समस्याऐं – प्रदूषण, अम्ल वर्षा, हरित गृह प्रभाव, ओजोन परत में क्षरण।

(ब) वैश्विक पर्यावरणीय सम्मेलन।

(7.) मानचित्र कार्य – विश्व का मानचित्र। 02

खण्ड (ब) भारत जनसंख्या एवं अर्थव्यवस्था अंक–28

(8.) भारत जनसंख्या 05

(क) वितरण, धनत्व, जनसंख्या वृद्धि एवं पहलू।

(ख) जनसंख्या संरचना – ग्रामीण व नगरीय, लिगांनुपात आयुवर्ग व साक्षरता।

(ग) प्रजातिय तत्व, भाषायी वर्ग, धार्मिक संरचना, भारतीय संस्कृति पर विदेशी प्रभाव।

(9.) संसाधन 05

(क) संसाधन – वर्गीकरण, संरक्षण, व पोषणीय विकास।

(ख) अजैविक संसाधन – भू संसाधन जल, खनिज (लोहा) तांबा, एल्यूमिनियम, अभ्रक)

(ग) जैविक संसाधन – पशुधन, वन, व मतस्य।

(ध) ऊर्जा संसाधन – परम्परागत – कोयला, पेट्रोलियम, जल विद्युत, आणविक ऊर्जा गैर परम्सागत – जैविक ऊर्जा, पवन ऊर्जा, सौर ऊर्जा।

(10) कृषि विनिर्माण उद्योग एवं परिवहन 05

(क) कृषि प्रकार :– निर्वहन व व्यापारिक कृषि, आर्द्र व शुष्क कृषि, गहन व विस्तीर्ण कृषि, जैविक कृषि। उद्यानिकी।

(ख) मुख्य फसलें :– गेंहूँ, चावल, कपास, गन्ना, चाय, वितरण एवं उत्पादन।

(ग) उद्योग – भारत में औद्योगिक विकास, प्रमुख उद्योग – लोहा, इस्पात एवं एल्यूमिनियम,सीमेंट, सूती वस्त्र व चीनी उद्योग। इन्जीनियरिंग उद्योग।

(घ) परिवहन तन्त्र – स्थल, जल, वायु, एवं तेल व गैस पाइप लाइन्स।

(11) विकास व नियोजन 04

(क) विकास व नियोजन – प्रमुख योजनायें एवं कार्यक्रम क्रियान्वयन।

(ख) क्षेत्रीय नियोजन – प्रादेशिक असन्तुलन–मरू विकास कार्यक्रम। जनजातीय विकास कार्यक्रम, पर्वतीय विकास कार्यक्रम।

(ग) विकास व नियोजन – गरीबी उन्मूलन व रोजगार कार्यक्रम। मनरेगा की भूमिका व प्रभाव।

(ध) सतत् विकास – परम्परागत एवं आधुनिक दृष्टिकोण।

(12) राजस्थान – जनसंख्या एवं अर्थव्यवस्था 05

(क) प्रमुख सिंचाई परियोजनायें :– चम्बल, इन्दिरा गांधी व माही परियोजना।

(ख) राजस्थान में पेयजल की समस्या एवं योजना जनसंख्या वितरण धनत्व एवं लिङ्गानुपात जनजातियाँ।

(ग) ग्रामीण विकास – डेयरी, गौ पालन, व कुटीर उद्योग।

(घ) प्रमुख उद्योग – सूती वस्त्र, सीमेन्ट।

(च) खनिज – तांबा, जस्ता, चांदी, मार्बल, टंगस्टन एवं जिप्सम, एवं पैट्रोलियम।

13. मानचित्र कार्य– भारत 02

14. मानचित्र कार्य– राजस्थान 02

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	अध्याय का नाम	पृष्ठ संख्या
खण्ड 'अ' मानव भूगोल के मूल तत्व		**1**
1	मानव भूगोल : प्रकृति व विषय क्षेत्र	2–6
2	विश्व की प्रमुख जनजातियाँ	7–17
3	जनसंख्या : वितरण, घनत्व एवं वृद्धि	18–29
4	विश्व जनसंख्या संरचना	30–35
5	जनसंख्या : प्रवास एवं मानव विकास	36–42
6	विश्व : मानव अधिवास	43–53
7	मानव व्यवसाय : प्रमुख प्रकार	54–60
8	प्राथमिक व्यवसाय	61–71
9	द्वितीय व्यवसाय	72–82
10	विश्व : परिवहन एवं संचार	83–101
11	विश्व : अंतर्राष्ट्रीय व्यापार	102–108
12	पर्यावरणीय समस्याएँ एवं समाधान	109–121
खण्ड 'ब' भारत जनसंख्या एवं अर्थ व्यवस्था		**122**
13	भारत : जनसंख्या वितरण, घनत्व एवं वृद्धि	123–131
14	भारत : जनसंख्या संरचना	132–142
15	संसाधनों का वर्गीकरण, संरक्षण एवं पोषणीय विकास	143–149
16	जैविक एवं अजैविक संसाधन	150–172
17	ऊर्जा संसाधन	173–187
18	कृषि	188–207
19	उद्योग	208–225
20	परिवहन	226–239
21	भारत में नियोजन	240–251
22	नियोजन एवं सतत् विकास	252–260
23	राजस्थान : सिंचाई एवं पेयजल	261–269
24	राजस्थान : खनिज व उद्योग	270–281
25	राजस्थान : जनसंख्या व जनजातियाँ	282–292
26.	परिशिष्ट	293–301

खण्ड ''अ'' :

मानव भूगोल के मूल तत्त्व

पाठ 01
मानव भूगोल : प्रकृति व विषय क्षेत्र
(Human Geography : Nature and Scope)

मानव–भूगोल : अर्थ एवं परिभाषा

मानव–भूगोल को भूगोल की आधारभूत शाखा माना गया है। भूगोल क्षेत्र वर्णनी विज्ञान है, जिस में क्षेत्रीय परिप्रेक्ष्य मे तथ्यो का अध्ययन किया जाता है। भूगोल एक अध्ययन क्षेत्र के रूप में समाकलनात्मक आनुभाविक, एवं व्यावहारिक है, जिसमें किसी घटना का स्थान एवं समय के सन्दर्भ में भौगोलिक ढंग से अध्ययन किया जाता है। भूगोल पृथ्वी को मानव का घर समझते हुये उन सभी तथ्यों का अध्ययन करता है जिन्होनें मानव को पोषित किया है। इसमें प्रकृति एवं मानव के अध्ययन पर जोर दिया गया है। ये दोनों अविभाज्य तत्त्व है और इन्हें समग्रता में देखा जाना चाहिये। इन दोनों आधारभूत घटकों से सम्बन्धित भूगोल की क्रमशः दो अलग–अलग शाखाएँ विकसित हुई है। भौतिक भूगोल एवं मानव भूगोल। भौतिक भूगोल भौतिक पर्यावरण का अध्ययन करता है। मानव भूगोल भौतिक पर्यावरण एवं सांस्कृतिक पर्यावरण के बीच सम्बन्ध, मानवीय परिघटनाओं के स्थानिक वितरण एवं संसार के विभिन्न भागों में सामाजिक और आर्थिक विभिन्नताओं का अध्ययन करता है। दूसरे शब्दों में मानव भूगोल मानव वर्गों और उनके वातावरण की शक्तियों, प्रभावों तथा प्रतिक्रियाओं के पारस्परिक कार्यात्मक सम्बन्धों का प्रादेशिक आधार पर किया जाने वाला अध्ययन है। कविता की इन पंक्तियों के माध्यम से मानव भूगोल को निम्न प्रकार से समझ सकते है–

''मानव भूगोल मे मानवीय तथ्यों का अध्ययन आता है।
यह मानव पर्यावरण के मध्य अन्तर्सम्बन्धों को बताता है।।
कृषि, पशुपालन, उद्योग, व्यवसाय किए जो जाते है।
परिवहन, संचार और व्यापार इसके अंदर आते है।।''

मानव भूगोल का प्रादुर्भाव और विकास मुख्यतः 18वीं शताब्दी से माना जाता है। समय के साथ मानव–वातावरण सम्बन्धों में आये बदलाव को ध्यान में रखते हुए कई विद्वानों ने अपने–अपने दृष्टिकोण से मानव भूगोल की परिभाषा दी है। कुछ महत्त्वपूर्ण परिभाषाएँ अग्रलिखित है :

आधुनिक मानव भूगोल के जन्मदाता जर्मन भूगोलवेत्ता **फ्रेडरिक रेटजेल,** के अनुसार ''मानव भूगोल मानव समाजों और धरातल के बीच सम्बन्धों का संश्लेषित अध्ययन है।'' रेटजेल ने यह परिभाषा अपनी पुस्तक एन्थ्रोपो–ज्योग्राफी मे दी। उन्होने पार्थिव एकता पर जोर देते हुए मनुष्य के क्रियाकलापो पर वातावरण के प्रभाव का वर्णन किया।

रेटजेल की शिष्या व प्रसिद्ध अमेरिकन भूगोलवेत्ता एलन सैम्पल के अनुसार ''मानव भूगोल चंचल मानव और अस्थायी पृथ्वी के पारस्परिक परिवर्तनशील सम्बन्धो का अध्ययन है।''

एलन सैम्पल नियतिवाद की कट्टर समर्थक थी तथापि उनकी परिभाषा अन्य नियतिवादियों की अपेक्षा अधिक विस्तृत है। मानव अपने विकास की प्राथमिक अवस्था प्रारम्भ से ही सक्रिय रहा है, उसके समस्त क्रिया–कलापो का प्रभाव वातावरण पर पड़ता है।

विडाल डी ला ब्लाश, एक प्रसिद्ध फ्रांसीसी मानव भूगोलवेत्ता थे। जिन्होनें संभववाद की नींव रखी। उनके अनुसार, ''मानव भूगोल पृथ्वी और मानव के पारस्परिक सम्बन्धो को एक

नया विचार देता है। जिसमें पृथ्वी को नियंत्रित करने वाले भौतिक नियमों तथा पृथ्वी पर निवास करने वाले जीवों के पारस्परिक सम्बन्धो का अधिक संश्लिष्ट ज्ञान शामिल है।''

डिकेन और पिट्स ने मानव भूगोल मे '' मानव और उसके कार्यो को समाविष्ट किया है।''

सारांश परिभाषा– मानव भूगोल वह विज्ञान है जिसमें पृथ्वी के विभिन्न क्षेत्रों मे मानव समूहों के प्राकृतिक व सांस्कृतिक वातावरण की शक्तियों, प्रभावों व प्रतिक्रियाओं के पारस्परिक सम्बन्धों और स्थानिक संगठन का अध्ययन, मानवीय प्रगति के उद्देश्यों से प्रादेशिक आधार पर किया जाता है।

मानव भूगोल की प्रकृति

प्रसिद्ध भूगोलवेत्ता **जीन ब्रून्श** के अनुसार ''जिस प्रकार अर्थशास्त्र का सम्बन्ध कीमतों से, भू–गर्भशास्त्र का सम्बन्ध चट्टानों से, वनस्पतिशास्त्र का सम्बन्ध पौधों से, मानवाचार–विज्ञान का सम्बन्ध जातियों से तथा इतिहास का सम्बन्ध समय से है, उसी प्रकार भूगोल का केन्द्र बिन्दु स्थान है। जिसमे 'कहाँ' व 'क्यो' जैसे महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तर देने का प्रयास किया जाता है।''

पृथ्वी पर जो भी मानव निर्मित दृश्य दिखाई देते हैं उन सबका अध्ययन मानव भूगोल के अन्तर्गत आता है। अतः विषय की प्रकृति में मानवीय क्रिया कलाप केन्द्रीय बिन्दु है। मानवीय क्रियाकलापों का विकास कहाँ, कब व कैसे हुआ आदि प्रश्नों को भौगोलिक दृष्टिकोण से प्रस्तुत करना ही मानव भूगोल की प्रकृति को प्रकट करता है।

मानव भूगोल विभिन्न प्रदेशों के पारिस्थितिक –समायोजन और क्षेत्र संगठन के अध्ययन पर विशेषतः केन्द्रित रहता है। मानव भूगोल में यह विश्लेषण किया जाता है कि पृथ्वी के किसी क्षेत्र में रहने वाला मानव समूह अपने जैविक, आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक विकास के लिए वातावरण का उपयोग किस प्रकार करता है और वातावरण में क्या–क्या बदलाव लाता है। मानव भूगोल जनसंख्या, प्रदेशों और संसाधनों की व्यूह रचना करता है। मानव अपने पर्यावरण के अनुसार क्रियाकलापों व रहन–सहन में अनुकूलन रूपान्तरण व समायोजन करता है। इस प्रकार हम देखते है कि मानव भूगोल क्षेत्र विशेष में समय के साथ मानव व वातावरण के सभी जटिल तथ्यों के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन मानव को केन्द्रीय भूमिका मे मानकर करता है।

मानव –भूगोल का विषय क्षेत्र

मानव भूगोल में भिन्न–भिन्न प्रदेशों की (i) जनसंख्या (ii) वहाँ के प्राकृतिक संसाधनों (iii) सांस्कृतिक भूदृश्यों व जीवन की मान्यताओं (iv) पारस्परिक सम्बन्धो का अध्ययन मानव की उन्नति के उद्धेश्य से होता है। **हंटिंगटन** ने मानव भूगोल के अध्ययन क्षेत्र को दो वर्गो मे बाँटा है– (i) भौतिक दशाएँ और (ii) मानवीय अनुक्रिया।

मानव भूगोल का विषय क्षेत्र व्यापक है।

मानव भूगोल के विषय क्षेत्र के विभिन्न पहलूओं को आरेख 1.1 के माध्यम से दर्शाया गया है।

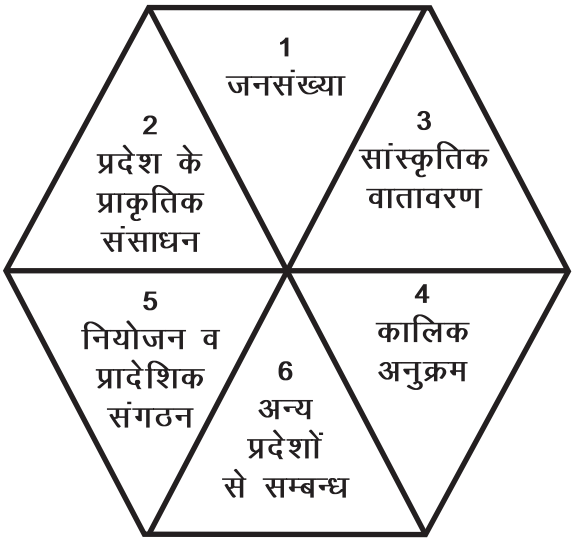

आरेख 1.1 : मानव भूगोल का अध्ययन क्षेत्र

मानव भूगोल के विषय–क्षेत्र के मुख्य पहलूओं का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

1. जनसंख्या

मानव भूगोल जनसंख्या के वितरण प्रारूप, जनसमूहों, प्रवास, अधिवास तथा उसकी प्रजातिगत सामाजिक संरचना का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य मे विवेचन करता है।

2. प्रदेश के प्राकृतिक संसाधन

प्राकृतिक वातावरण के विभिन्न तत्त्वों का अध्ययन तथा मानव क्रियाकलापों पर इन तत्त्वों के प्रभाव का अध्ययन किया जाता है। इसमें प्राकृतिक संसाधन, भूमि जल, वन, खनिज का अध्ययन सम्मिलित होता है।

3. सांस्कृतिक वातावरण

पृथ्वी पर जो भी दृश्य मनुष्य की क्रियाओं द्वारा बने हुये दिखाई पड़ते है, वे सब मानव भूगोल के अध्ययन में शामिल है। सांस्कृतिक तत्त्व मानव व पर्यावरण के अन्तर्सम्बन्ध को प्रकट करते है। सांस्कृतिक तत्वों के अन्तर्गत जीव जन्तुओं एवं मानव का वातावरण के साथ अनुकूलन, जीविका के साधन, परिवहन, भवन

निर्माण सामग्री, अधिवास आदि सम्मिलित हैं।

4. कालिक अनुक्रम

मानव समाज और उसके भौगोलिक सम्बन्ध स्थिर नहीं है। यह सभी सम्बन्ध क्रियात्मक है। मानव के साँस्कृतिक विकास के साथ–साथ उत्तरोतर अधिक गत्यात्मक व लोचपूर्ण होते जाते हैं।

5. नियोजन व प्रादेशिक संगठन

भूगोलवेत्ता को केवल इतना ही नहीं मालूम करना होता है कि पृथ्वी तल पर मानवीय दशाएँ किस प्रकार वितरित है, वरन् यह भी जानना आवश्यक है कि उनका वितरण उस विशेष ढंग से क्यों है। उपर्युक्त विभिन्नताएँ या तो प्राकृतिक वातावरण के कारण होती है या मानवीय क्रियाओ के कारण होती है। मनुष्य ने पृथ्वी पर अपनी छाप अपनी क्रियाओं द्वारा कैसे लगायी है?का अध्ययन भी मानव भूगोल में किया जाता है। संसाधनों का समाज के विभिन्न वर्गो मे वितरण, उनका उपयोग तथा संरक्षण भी मानव भूगोल का महत्त्वपूर्ण विषय क्षेत्र है। मानव भूगोल के अध्ययन का दूसरा पक्ष भविष्य के परिप्रेक्ष्य में मानव वातावरण तंत्र का अध्ययन करना है। असन्तुलित विकास के कारण प्रकृति असंतुलित होती जा रही है। आज वातावरण अवनयन व प्रदूषण की समस्याएँ बढ़ती जा रही है। अतः वातावरण नियोजन भी मानव भूगोल के अध्ययन क्षेत्र का अभिन्न अंग हो गया है।

6. अन्य प्रदेशों से सम्बन्ध

पृथ्वी पर मानव एकाकी नहीं है, उसके पृथ्वीतल पर फैले विभिन्न क्षेत्रों से आर्थिक सामाजिक, सांस्कृतिक व राजनैतिक सम्बन्ध भी होते हैं। उसके इन सम्बन्धों का अध्ययन भी मानव भूगोल में होता है।

मानव भूगोल का विकास

पृथ्वी की सतह पर पर्यावरण के साथ अनुकूलन व समायोजन की प्रक्रिया तथा इसका रूपान्तरण मानव के अभ्युदय के साथ ही आरम्भ हो गया था। यदि हम मानव व वातावरण की पारस्परिक क्रियाओं से मानव भूगोल के प्रारम्भ की कल्पना करें तो इसकी जड़ें इतिहास के संदर्भ में अत्यन्त गहरी है। अतः मानव भूगोल के विषयों में एक दीर्घ कालिक सांतत्य पाया जाता है। समय के साथ विषय को स्पष्ट करने वाले उपागमों में परिवर्तन आया है। यह विषय की परिवर्तनशील प्रकृति को दर्शाता है। अध्ययन की दृष्टि से मानव भूगोल के विकास को तीन युगों में विभक्त किया जाता है।

1. प्राचीन काल

प्राचीन काल मे विभिन्न समाजों के बीच अन्योन्य क्रिया न्यून थी। एक दूसरे के बारे मे ज्ञान सीमित था। तकनीकी विकास का स्तर निम्न था तथा चारों तरफ प्राकृतिक वातावरण की छाप थी। भारत, चीन, मिश्र, यूनान व रोम की प्राचीन सभ्यताओं के लोग प्राकृतिक शक्तियों के प्रभाव को मानते थे। वेदों में सूर्य, वायु, अग्नि, जल, वर्षा आदि प्राकृतिक तत्त्वों को देवता मानकर पूजा अर्चना की जाती थी। यूनानी दार्शनिक **थेल्स** व **एनैक्सीमेंडर** ने जलवायु वनस्पति व मानव समाजों का वर्णन किया। अरस्तु ने वातावरण के प्रभाव की वजह से ठण्डे प्रदेशों के मानव को बहादुर परन्तु चिंतन में कमजोर बताया जबकि एशिया के लोगों को सुस्त पर चिंतनशील बताया। इतिहासकार **हैराडोट्स** ने घुमक्कड़ जातियों तथा स्थायी कृषक जातियों के जीवन पर वातावरण के प्रभाव का उल्लेख किया। **हिकेटियस** ने विश्व के बारे में उपलब्ध भौगोलिक ज्ञान को व्यवस्थित रूप में रखने के कारण उन्हें भूगोल का जनक कहा जाता है। **स्ट्रेबो** व उसके समकालीन रोमन भूगोलवेत्ताओं ने मानव व उसकी प्रगति के स्तर पर भू– पारिस्थितिकीय स्वरूपों के प्रभाव को स्पष्ट किया।

2. मध्यकाल

इस काल में नौ चालन सम्बन्धी कुशलताओं व अन्वेषणों तथा तकनीकी ज्ञान व दक्षता के कारण देशों तथा लोगों के विषय में मिथक व रहस्य खुलने लगे। उपनिवेशीकरण और व्यापारिक रूचियों ने नये क्षेत्रों में खोजों व अन्वेषणों का विश्व ज्ञानकोषिय विवरण प्रकाश में आया। इस काल में अन्वेषण, विवरण व प्रादेशिक विश्लेषण पर विशेष जोर रहा। प्रादेशिक विश्लेषण में प्रदेश के सभी पक्षों का विस्तृत वर्णन किया गया। मत यह था कि सभी प्रदेश पूर्ण इकाई व पृथ्वी के भाग है। इस प्रदेशों की समझ पृथ्वी को पूर्ण रूप में समझने में सहायता करेगी।

3. आधुनिक काल

इस काल की शुरूआत **जर्मन** भूगोलवेत्ताओं हम्बोल्ट, रिटर, फ्रोबेल, पैशेल, रिचथोफेन व रेटजेल ने की। **फ्रांस** में मानव भूगोल का सबसे अधिक विकास हुआ। रेटजेल, विडाल–डी–ला–ब्लांश, ब्रूंस, दी मार्तोन, डिमांजियाँ व फ्रेब्रे नें मानव भूगोल पर कई ग्रंथ लिखे। अमेरिका व ग्रेट ब्रिटेन में भी मानव भूगोल का तेजी से विकास हुआ। **अमेरिका** में एलन सैम्पल, हटिंगटन, बौमेन,कार्ल सॉवर, ग्रिफिथ टेलर एवं **ब्रिटेन** में हरबर्टसन, मैकिण्डर, रॉक्सबी तथा फ्लुअर ने मानव भूगोल के विकास में विशेष योगदान दिया। 20वीं सदी में मानव भूगोल का विकास सभी देशों में हुआ।

फ्रेडरिक रेटजेल जिन्हें आधुनिक **मानव भूगोल का संस्थापक** कहा जाता है ने मानव समाजों एवं पृथ्वी के धरातल के

पारस्परिक सम्बधों के संश्लेशणात्मक अध्ययन पर जोर दिया। इस काल के प्रारम्भिक दौर में मानव वातावरण सम्बन्धों का नियतिवादी, संभववादी व नवनियतिवादी विचारधाराओं के अनुसार अध्ययन किया गया। **नियतिवाद** मे प्रकृति व **संभववाद** में मानव को अधिक प्रभावी माना। 21वीं सदी के आरम्भ में **नव नियतिवाद** के अनुसार दोनों के पारस्परिक सम्बन्धों में सामंजस्य पर जोर दिया गया। यह विचार धारा **'रूको व जाओ'** के नाम से भी जानी जाती है। नवनियतिवाद के प्रर्वतक **ग्रिफिक्थ टेलर** थे।

1930 के दशक में मानव भूगोल का विभाजन 'सांस्कृतिक भूगोल' एवं आर्थिक भूगोल के रूप में हुआ । विशेषीकरण की बढ़ती प्रवृति के कारण मानव भूगोल की अनेक उप–शाखाओं जैसे राजनैतिक भूगोल, सामाजिक भूगोल, चिकित्सा भूगोल का उद्भव हुआ।

द्वितीय विश्वयुद्ध (1945) के बाद के दो दशको में मानव भूगोल की विषय वस्तु में स्थानिक संगठन उपागम द्वारा विभिन्न मानवीय क्रियाओं के प्रतिरूपों की पहचान करना रहा था।

1970 के बाद मानव भूगोल में अनेक दार्शनिक विचारधाराओं का प्रभुत्व रहा। मानव कल्याण परक विचारधारा का सम्बन्ध लोगों के सामाजिक कल्याण के विभिन्न पक्षों से हैं। इसमें स्वास्थ्य, शिक्षा, आवास जैसे पक्ष शामिल है। आचरणपरक विचारधारा के अनुसार मनुष्य आर्थिक क्रियाएँ करते समय हमेशा आर्थिक लाभ पर ही विचार नहीं करता बल्कि उसके अधिकाँश निर्णय यथार्थ पर्यावरण की अपेक्षा मानसिक मानचित्र (आचरण पर्यावरण) पर आधारित होते है। विचारों में बदलाव आंशिक रूप से विश्लेषण के मापदण्डो में परिवर्तन के कारण आते है। मानव भूगोल में अब अपने आप में प्रत्येक स्थानीय संदर्भ की समझ के महत्त्व पर जोर दिया जा रहा है। इस प्रकार मानव भूगोल निरन्तर विकास के साथ गतिशील है। समय के साथ इसका महत्त्व, अध्ययन क्षेत्र की व्यापकता व अन्य विषयों के साथ सम्बन्ध बढ़ रहे हैं। आज भूगोल की इस शाखा का अध्ययन सम्पूर्ण विश्व में किया जा रहा है।

महत्वपूर्ण बिन्दू

1. भूगोल क्षेत्र वर्णनी विज्ञान है, जिसमें क्षेत्रीय परिप्रेक्ष्य मे तथ्यो का अध्ययन किया जाता है।
2. भूगोल की दो मुख्य शाखाएँ है– भौतिक भूगोल व मानव भूगोल हैं।
3. मानव भूगोल वह विज्ञान है जिसमें पृथ्वी के विभिन्न क्षेत्रों में मानव समूहों के प्राकृतिक व सांस्कृतिक वातावरण की शक्तियों का, प्रभावों का, प्रतिक्रियाओं के पारस्परिक संबंधों और स्थानिक संगठनों का अध्ययन किया जाता है।
4. मानव भूगोल क्षेत्र विशेष में समय के साथ मानव–वातावरण के सभी जटिल तथ्यों के पारस्परिक संबंधों का अध्ययन मानव को केन्द्रिय भूमिका में मानकर करता है।
5. हंटिगटन ने मानव भूगोल के अध्ययन क्षेत्र को दो वर्गों भौतिक दशाएँ व मानवीय अनुक्रिया में बाँटा है।
6. समय के साथ मानव भूगोल विषय के स्पष्ट करने वाले उपागमों में परिवर्तन आया है।
7. मानव भूगोल के विकास को अध्ययन की सुविधा के लिए तीन युगों में बॉटा गया है।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक

1. आधुनिक मानव भूगोल के जन्मदाता कौन थे?
   (अ) हम्बोल्ट (ब) रिटर
   (स) रेटजेल (द) हंटिंगटन
2. ''मानव भूगोल चंचल मानव और अस्थायी पृथ्वी के पारस्परिक परिवर्तनशील सम्बन्धो का अध्ययन है।'' परिभाषा किसने दी?
   (अ) रेटजेल (ब) ऐलन सैम्पल
   (स) ब्लाशॅ (द) कार्ल सावर
3. नवनियतिवाद के प्रर्वतक कौन हैं?
   (अ) ग्रिफिथ टेलर (ब) ब्लाशॅ
   (स) मैकिण्डर (द) हरर्बटसन
4. निम्न में से कौन फ्रॉसिसी भूगोलवेत्ता नहीं है?
   (अ) ब्लाशॅ (ब) ब्रूशॅ
   (स) डिमांजियॉ (द) रिटर

अतिलघूत्तरात्मक

5. मानव भूगोल के त्रि–संतुलन के घटकों के नाम बताइए।
6. रेटजेल की पुस्तक का नाम बताइए।
7. संभववाद विचारधारा किसने दी?
8 प्राचीन सभ्यताओं के प्रमुख केन्द्रों के नाम बताइए।

लघूत्तरात्मक

9. मानव भूगोल के पॉच उप–क्षेत्रों के नाम बताइए।
10. मानव भूगोल की प्रकृति को समझाइए।

11. मध्यकाल में मानव भूगोल के विकास को समझाइए।

निबन्धात्मक

12. मानव भूगोल के विषय क्षेत्र का वर्णन कीजिये।
13. आधुनिक काल में मानव भूगोल के विकास को समझाइए।

पाठ 02
विश्व की प्रमुख जनजातियाँ
(Major Tribes of The World)

पृथ्वी पर मानव को रहते हुए लाखों वर्ष बीत चुके है। इस लम्बे काल में मानव ने प्राकृतिक वातावरण के साथ समायोजन करना सीखा है। मानव ने तकनीकी विकास के साथ–साथ वातावरण समायोजन में तीव्र गति से परिवर्तन किया है। विश्व मे आज भी कुछ ऐसे क्षेत्र है जिनमें कई जनजातियाँ आदिम ढंग से अपना जीवन यापन कर रही है। उनकी जीवन शैली में विशेष बदलाव नहीं आया है। इस प्रकार की जनजातियाँ शीत प्रदेशों, घने जंगलों, उष्ण एवं शुष्क मरूस्थलों, घास के मैदानों एवं दुर्गम पहाड़ी क्षेत्रों में निवास करती है। इनकी अपनी विशिष्ट संस्कृति, सामाजिक ढाँचा, परम्पराएँ, रीति–रिवाज एवं मान्यताएँ है। इस जनजातियों की अर्थव्यवस्था का आधार खाद्य संग्रहण, आखेट, घुमक्कड़, पशुचारण व आदिम ढंग की निर्वाहन कृषि है। ये विभिन्न प्राकृतिक दशाओं में प्राचीन काल के मानव व वातावरण के सम्बन्ध की सूचक है। आधुनिक विकसित सभ्यताओं से इनका सम्पर्क लगभग नगण्य है।

जनजातियाँ वास्तव में जैविक समूह का नहीं वरन् सामाजिक व सांस्कृतिक समूह का प्रतिनिधित्व करतीं है। जनजाति लोगों का वह समूह है, जो सामाजिक रीति– रिवाजों एवं सांस्कृतिक परम्पराओं द्वारा एक दूसरे से घनिष्ट रूप से सम्बन्धित है। विश्व की प्रमुख जनजातियाँ निम्न हैं :–

1. ध्रुवीय व ठण्डे प्रदेशों की।
   – एस्किमों, सैमोयड्स, याकूत जनजाति।
2. विषुवत् रेखीय सघन वनों की।
   – पिग्मी, सेमांग, सकाई जनजाति।
3. उष्ण व शुष्क कालाहारी मरूस्थल की।
   – बुशमैन जनजाति।
4. उष्ण कटिबंधीय घास क्षेत्रों की।
   – मसाई व बद्दू जनजाति।
5. सम शीतोष्ण कटिबन्धीय घास क्षेत्रों की।
   – खिरगीज जनजाति।
6. दुर्गम पहाड़ी व पठारी क्षेत्रों की।
   – भील, गौंड, संथाल, मीणा, नागा एवं अन्य जनजातियाँ।

इस अध्याय में हम विश्व की एस्किमों, बुशमैन तथा भारत की भील एवं गौंड़ जनजातियों का विस्तार से अध्ययन करेगें।

एस्किमो (Eskimos)

आर्कटिक प्रदेश में मानव आज भी विकास की प्रारंभिक अवस्था में है। आखेट, मछली पकड़ना व संग्रहण एस्किमों की आजीविका का मुख्य आधार है। एस्किमों का शाब्दिक अर्थ **'कच्चा माँस खाने वाला'** तथा बर्फीले प्रदेश के निवासी के रूप में होता है।



चित्र 2.1 : एस्किमो जनजाति की महिला

एस्किमों जनजाति मंगोल प्रजाति से सम्बन्धित है। एस्किमों का चेहरा सपाट एवं चौड़ा, त्वचा का रंग–पीलापन लिए भूरा, बाल–भद्दे एवं काले, कद–मझला, नाक–चपटी, आँखे–गहरी, कत्थई एवं तिरछी होती है। इनका जबड़ा भारी, मुँह–चौड़ा तथा दाँत सफेद एवं मजबूत होते है। शरीर हष्ट –पुष्ट व पुट्ठे माँसल होते हैं।

ये घोर संकट काल में भी अपनी स्थिरता, गम्भीरता व विवेक को अडिग बनाये रखते है। ये स्वभाव से सरल व हँसमुख प्रकृति के लोग है।

(i) निवास क्षेत्र

एस्किमों जनजाति प्रारम्भ से ही आर्कटिक व टुण्ड्रा प्रदेशों तक ही सीमित है। इस क्षेत्र में अलास्का से लेकर बेरिंग जल डमरूमध्य तक इनका विस्तार है। ये अलास्का, कनाडा, ग्रीनलैण्ड एवं उत्तरी साइबेरिया क्षेत्रों में रहते है। विस्तृत टूण्ड्रा प्रदेश में निवास करने वाले लोगों को उत्तरी कनाड़ा एवं ग्रीनलैण्ड मे एस्किमों, स्कैण्डिनेविया मे लैप्स तथा उत्तरी साइबेरिया मे सैमोयड्स याकूत, चकची व तुंग नाम से जाना जाता है। मानचित्र 2.1 में इस जनजाति के निवास क्षेत्रों को दर्शाया गया है।

निम्न तापमान, बर्फीली आँधियाँ एवं कम रोशनी युक्त तथा कठोर जलवायु में लगभग 10 लाख एस्किमों विगत दस हजार वर्षों से रह रहे हैं। इस प्रदेश में जाड़े की ऋतु बहुत लम्बी एवं ग्रीष्म ऋतु बहुत छोटी होती है। वार्षिक औसत तापमान 0° सैल्शियस से भी नीचे रहता है। पेड़ो के अभाव में यहाँ बर्फ की आंधियाँ चलती है। वर्षा हिम के रूप मे होती है। कठोर जलवायु के कारण वनस्पति



मानचित्र 2.1 : एस्किमों जनजाति का निवास क्षेत्र

का अभाव रहता है। केवल ग्रीष्म काल की अल्प अवधि में शैवाल, काई, लाइकेन आदि रंग–बिरंगे फूलों की वनस्पति उग आती है। ध्रुवीय भालू, लैमिंग, खरगोश, कस्तूरी–मृग, कैरीबाऊ (रेण्डियर), लोमड़ी, भेड़िये, कुत्ते आदि इस क्षेत्र के प्रमुख प्राणिजात है। समुद्र में सील, ह्वेल, वालरस (सी लॉयन) जैसी विशालकाय मछलियाँ पाई जाती है।

(ii) आर्थिक क्रिया–कलाप

(अ) आखेट : शिकार करना एस्किमो के जीविकोपार्जन का एक मात्र साधन है। ये शीत काल व ग्रीष्म काल में विभिन्न विधियों से शिकार करते हैं।

शीतकालीन आखेट – इस ऋतु में एस्किमों समुद्री तट के किनारे सील मछली का शिकार करते है। जब मछली बर्फ में बने छिद्रों मे श्वास लेने आती है तब एस्किमों द्वारा रखी हड्डी की छड़ हिल जाती है। एस्किमो अपने हथियार हारफून से सील मछली का शिकार करते है। इसे **माउपाक** कहते है। माउपाक जिसका शाब्दिक अर्थ ''प्रतीक्षा करना'' होता है। शिकार की दूसरी विधि **इतुरपाक** है जिसके अन्तर्गत शिकारियों द्वारा दो छिद्र बनाये जाते है। एक छिद्र में एक व्यक्ति सील को चारा डालकर बुलाता है तथा दूसरे छिद्र में दूसरा व्यक्ति संकेत मिलते ही हारफून से शिकार कर लेता है। सील मछली न केवल भोजन प्रदान करती है वरन् जलाने के लिए ईंधन भी देती है। सील की चर्बी अन्य जीवों की चर्बी की तुलना में तुरन्त व अधिक देर तक जलती है और ताप भी अधिक देती है। चित्र 2.1 में महिला द्वारा माउपाक विधि से तथा चित्र 2.2 में हारफून से खुले समुद्र में बसन्तकालीन आखेट को समझ सकते हैं।

बसन्तकालीन आखेट – मार्च में सील मछलियाँ श्वास लेने हेतु बाहर आकर धूप सेकनें लगती है, उनका शिकार किया जाता है। बंसतकालीन आखेट को **उतोक** कहते है। ये शिकारी



चित्र 2.2 : कयाक और हारफून से एस्किमों द्वारा मछली का शिकार

कुत्तों की मदद से सील मछलियों का शिकार करते है। इस ऋतु मे चमड़े से बनी नाव को परिवहन के लिए काम मे लेते है। जिसे कयाक कहते है। ग्रीष्मकाल में एस्किमो लोग कैरिबो (बाहरसिंगो) का धनुष– बाण से शिकार करते है। खरगोश, बतख व चिड़ियों का शिकार हल्के भाले से फैंक कर करते है। रेण्डियर–सम्पत्ति व सामाजिक स्तर का मापदण्ड भी है। एस्किमों लोगों के जीवन में सील मछली का अत्यधिक महत्त्व है। सील से खाने के लिए माँस, कपड़े बनाने के लिए खाल, तम्बू बनाने के लिए खाल, ईधन के लिए चर्बी, स्लेज गाड़ी बनाने के लिए हड्डियाँ तथा धागे के रूप मे तॉत प्राप्त होती है।

(ब) भोजन – कच्चा माँस इनका प्रमुख भोजन है। भोजन का स्रोत सील, ह्वेल, सी लॉयन है। छोटी मछलियो व स्थलीय जीव–जन्तुओं से भी भोजन प्राप्त होता है।

(स) वस्त्र – एस्किमों के वस्त्र मुख्यतः कैरिबो की खाल से बने होते है। यह सील मछली की खाल की अपेक्षा अधिक गर्म एवं हल्के होते है। ध्रुवीय भालू के समूर से भी वस्त्र बनाये जाते है। वस्त्र बनाने का कार्य स्त्रियाँ करती है। स्त्री व पुरूष दोनों के वस्त्र एक समान ही होते है। एस्किमों जर्सीनुमा बॉहदार वस्त्र जिसे **तिमियाक** कहते है, पहनते है। तिमियाक के ऊपर पहने जाने वाले कपड़े को **अनोहाक** कहते है। सील की खाल से बने जूतों को **कार्मिक** या **मुक्लूक्स** कहते है।

(द) निवास गृह – इनके मकान बर्फ, पत्थर, हड्डियों तथा खालों से बने होते हैं। शीतकाल में बर्फ के मकान को **'इग्लू'** कहते हैं (चित्र 2.3)। 5–6 फिट भूमिगत एवं 2–3 फीट ऊपर उठे लकड़ी एवं हवेल की हड्डियों के ढाँचे से बने मकान को **कर्मक**

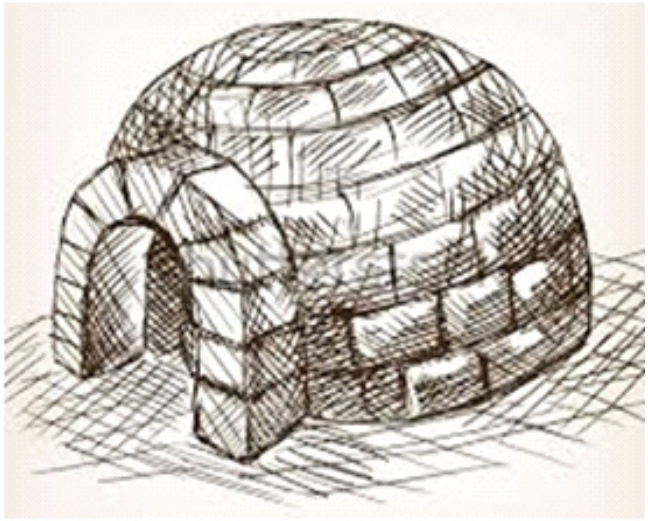

चित्र 2.3 : इग्लू : एस्किमों का बर्फ का घर



चित्र 2.4 : एस्किमों जनजाति के अस्थाई आवास

(Karmak) कहते है। इसका प्रवेश द्वारा एक भूमिगत सुरंग से जुड़ा होता है। ग्रीष्म काल में शिकार के दौरान ये लोग अस्थायी तम्बू में रहते है (चित्र 2.4)।

(य) **यंत्र एवं उपकरण** –

कयाक – चमड़े से बनी एक प्रकार की नाव जो 5 मीटर लम्बी तथा 1.5 मीटर चौड़ी होती है।

ऊमियाक – बड़ी नाव जो ह्वेल मछली के शिकार के दौरान काम में ली जाती है।

हारफून– सील मछलियों के शिकार के लिए प्रयुक्त 1.2 से 1.5 मीटर लम्बा भालानुमा हथियार जो रस्सी से बंधा होता है।

स्लेज – बर्फ पर चलने वाली पहिये विहीन गाड़ी जिसे कुत्ते व रेण्डियर खींचते है। (चित्र 2.5) यह स्लेज गाड़ी वालरस की हड्डियों से बनी होती है।

(iii) समाज एवं संस्कृति

ये लोग छोट–छोटे समूहों में रहते हैं। इनका जीवन घुमक्कड़ है। आदिम ढंग से जीवन यापन करते है। पितृवंशीय समाज है। इनमें बहुपत्नी प्रथा प्रचलित है। ग्रीष्मकाल में कई



चित्र 2.5 : एस्किमों की स्लेज गाड़ी को खींचते रेण्डियर

उत्सव व समारोह मनाएँ जाते है। एस्किमों लोग जादू टोनों में भी विश्वास रखते है। ये **एस्किमो–एल्यूट** भाषा बोलते है। कठोर शीत ऋतु में भोजन की कमी होने पर बूढ़ें व अशक्त व्यक्ति आत्महत्या करते हैं।

(iv) वातावरण समायोजन

एस्किमों जनजाति में वातावरण समायोजन की दक्षता अपने आप में एक अनूठा उदाहरण है। एस्किमों हिम का ही प्रयोग कर हिम निवास (इग्लू) बनाते है। स्लेज गाड़ी बनाने के लिए वालरस की हड्डियों को काम में लेते है। हिम झंझाओं तथा हिम पर सूर्य की किरणों के पड़ने से होने वाली चमक से आँखो को बचाने के लिए आँख कवच का उपयोग करते हैं।

(v) आधुनिक संस्कृति से सम्पर्क

एकाकी ध्रुवीय प्रदेशों में निवास करने वाली इस जनजाति का 1960 के पश्चात् यूरोपियन एवं अमेरिकी लोगों से सम्पर्क बढ़ा है। अब ये लोग आग्नेय अस्त्रों, बन्दूक आदि का प्रयोग करने लगे है। कयाक के स्थान पर मोटर चालित नाव व स्लेज के स्थान पर स्नो स्कूटर का प्रयोग बढ़ा है। पारम्परिक वातावरण का रूपान्तरण तीव्र गति से होने लगा है। फर, समूर आदि के व्यापार से मुद्रा मिलने से उनके पहनावे व रहन–सहन की विधियों मे भी बदलाव आया है।

अमेरिकी सरकार द्वारा प्रदत्त स्वास्थ्य सुविधाओं के बढ़ने एवं भरण–पोषण सरल होने से एस्किमों लोगों की जनसंख्या कनाड़ा एवं अलास्का में निरन्तर बढ़ रही है। इनकी संख्या वृद्धि से टुण्ड्रा के तटीय क्षेत्रों के पर्यावरण पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। संभव है कि 21 वीं शताब्दी में एस्किमों का जनजातीय परिवेश मात्र ऐतिहासिक रह जाये।

बुशमैन (Bushman)

लगभग 20 हजार वर्षों से अफ्रीका के कालाहारी मरूस्थल के निवासी बुशमैन कोसॉन, रव्वी, व बसारवा के नाम से भी जाना जाता है। ये संख्या मे लगभग 10 हजार रह गये है। परम्परागत रूप से ये 20 अथवा उससे कम के समूह मे विचरण करते है। ये मुख्यतः आखेटक व खाद्य–संग्रहक है।

ये लोग नाटे कद के होते हैं तथा निग्रीटो प्रजाति के समरूप है। इनके जबड़े तथा मोटे होठ बाहर निकले हुये नहीं होते है। इनकी आँखें चौड़ी नहीं होती है। इनके नितम्ब बहुत भारी होते है।

(i) निवास क्षेत्र

बुशमैन लोगों का निवास क्षेत्र अफ्रीका महाद्वीप में 18^{0} दक्षिणी अक्षांश से 24^{0} दक्षिणी अक्षांश के मध्य बेचुआनालैण्ड में स्थित है। पशु जनित भोजन की आपूर्ति में यह प्रदेश अधिक घनी है। आज बुशमैन मुख्यतः कालाहारी मरूस्थल और दक्षिणी पश्चिमी अफ्रीका के उपोष्ण घास के मैदानी भागों में फैले है। ये दक्षिणी अफ्रीका, बोत्सवाना, नामिबिया व अंगोला देशों में निवास करते है। मानचित्र 2.2 में बुशमैन जनजाति के निवास क्षेत्र को दर्शाया गया है।



मानचित्र 2.2 : बुशमेन जनजाति का निवास सीन

कालाहारी मरूस्थल का धरातल उबड़–खाबड़ है। यहाँ की जलवायु अर्द्ध उष्ण कटिबंधीय है। यहाँ वर्षा का औसत 25 सेमी से भी कम है। तापमान वर्ष भर ऊँचा रहता है परन्तु रातें अपेक्षाकृत ठण्डी रहती है। यहाँ ग्रीष्म काल लम्बा तथा शीतकाल बहुत छोटी अवधि का होता है।

बुशमैन निवास क्षेत्र में घास के मैदान व कंटीली झाँड़ियाँ पायी जाती है। शुष्क क्षेत्रों में एक प्रकार का तरबूज **(त्यामा)** होता है, जिसे जल पूर्ति के लिए मानव व पशु सभी चाहते है। यहाँ अनेक प्रकार के शाकाहारी व माँसाहारी प्राणिजात पाये जाते है। कई तरह के हिरण, बड़े कोदू, स्टेन बॉक, ग्नू खरगोश, जिराफ, शुतुरमुर्ग, जेबरा, जंगली बिल्ली, वन बिलाव, लकड़बग्घा और सियार आदि पाये जाते है। प्रसिद्ध एटोशा राष्ट्रीय उद्यान भी इसी प्रदेश में अवस्थित है।

(ii) आर्थिक क्रिया–कलाप

(अ) आखेट – बुशमैन मूल रूप से आखेटक है। ये तीर–कमान व भाले से शिकार करते है। बड़े शिकार को जाल में फँसाने के लिए विभिन्न तरीके काम में लेते है। ये शिकार को कीचड़ मे घँसाकर, फंदो में फँसाकर, गड्डों में गिराकर व विषाक्त जल पिलाकर मारते है। प्रत्येक परिवार स्वयं अपना भोजन प्राप्त करता है। ये लोग जन्तुओं की बोली की नकल करने मे निपुण होते



चित्र 2.6 : बुशमैन द्वारा आखेट

है।

(ब) भोजन – बुशमैन सर्वभक्षी होते है। वे खाते भी ज्यादा है। एक बुशमैन आधी भेड़ तक एक बार में खा जाता है। शिकार मछली, पौधो की जड़े, बैरी तथा शहद इनके भोजन के मुख्य अंग है। दीमक, चीटियाँ और उनके अण्डे इनके प्रिय भोज्य पदार्थ हैं। ये लोग इस बात की परवाह नहीं करते कि इनका भोजन ताजा है या बासी। उष्ण जलवायु के कारण भविष्य के लिए भोजन को संचित करने पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता है।

(स) वस्त्र – बुशमैन के वस्त्र बहुत कम होते है। पुरूष एक तिकोनी लंगोट पहनता है। जिसकी नोक टांगो के बीच होकर पीछे की और जाती है। स्त्रियाँ सामने व पीछे की और कमर से बाँधकर चमड़े की चौकोर एप्रन लटका कर पहनती है। स्त्रियों के वस्त्रों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण वस्त्र चोंगा होता है। जिसे स्थानीय भाषा मे **क्रोस** कहा जाता हैं। यह वस्त्र व बिस्तर बंद दोनों ही होता है। इसी क्रास में वे अपने शिशु एवं संग्रहित वस्तुओं को लपेट कर लाती है। बुशमैन चमड़े की टोपी एवं जूतों कों भी काम में लेते हैं।



चित्र 2.7 : बुशमैन जनजाति के आवास

(द) निवास गृह – ये चट्टानी गुफाओं में शरण लेते है। खुले मे कड़ी टहनियों, घास व जानवरों की खालों से गुम्बदाकार झोपड़ी बनाते है। बुशमैन लोगो के अल्पकालीन गाँव **वेर्फ** में लगभग 8 से 10 झोपड़ियाँ होती है।

(य) औजार एवं बर्तन – तीर–कमान, नुकीला डंडा, भाला, बर्छा, अग्निदण्ड इनके प्रमुख औजार हैं। ये बिष बुझे तीरों का प्रयोग करते है। शुतुरमुर्ग और जिराफ के पैर की हड्डियों को घिसकर नुकीला बनाकर तीर के अग्र भाग पर लगाते है। तीर–कमान से लगभग 60 मीटर की दूरी पर स्थित शिकार को भी मार सकते है। पेड़ों के छालों से रस्से बनाते है। चित्र 2.8 में बुशमैन द्वारा प्रयुक्त विभिन्न औजार प्रदर्शित हैं।

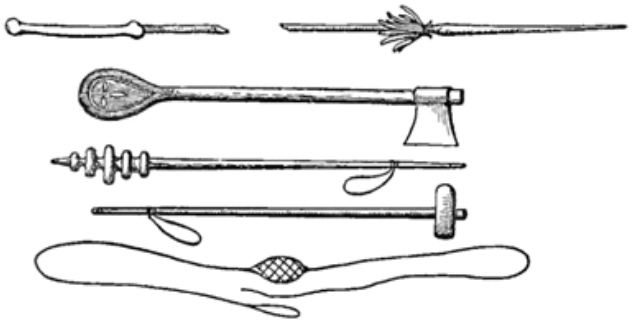

चित्र 2.8 : बुशमैन जनजाति के शिकार के औजार

इनके पास बर्तन बहुत कम होते हैं। शुतुरमुर्ग के अण्डों का उपयोग जल रखने व आभूषण बनाने में करते है। हिरण की खाल की थैली व लकड़ी के प्याले अन्य बर्तन है।

(iii) समाज व संस्कृति

सामाजिक समुदाय के अन्तर्गत बुशमैन लोगो का एक छोटा सा दल होता है। बुशमैन की धार्मिक परम्पराओं, संस्कारों व कलाओ में प्राणियों व प्रकृति का केन्द्रीय स्थान होता है। ये लोग जादू–टोना तथा भूत–प्रेतों में विश्वास करते है। बुशमैन दो भगवानों में विश्वास करते है। एक जो पूर्व में रहता है तथा दूसरा जो पश्चिम में रहता है। ओझा इन्हें बीमारियों व प्रेतात्माओं से बचाता है। इनकी चट्टानों पर की गयी पैंटिंग सर्व प्रसिद्ध है। वर्तमान में अण्डों की खोल के आभूषण, तीर–कमान, स्कर्ट आदि इनकी प्रमुख क्रॉफ्ट वस्तुएँ हैं।

(iv) वातावरण समायोजन

इनमें जीवित रहने की शक्तिशाली चेतना पायी जाती है। थोड़ा सामान, कम बच्चे तथा अपने सामान के बँटवारे के कारण ये लोग घूमते रहने की अबाधित स्वतंत्रता का उपयोग करते हैं। अकाल के समय बुशमैन स्त्रियाँ गर्भधारण करना बंद कर देती है। शिकार करते समय शिकार किये जाने वाले पशुओं की जातियों

की मादा एवं अल्प वयस्कों को हानि न पहुँचाने का ध्यान रखते है। ये लोग अग्नि जलाने के लिए कम से कम ईंधन का उपयोग करते है। शिकार किये गए पशु के प्रत्येक भाग को काम मे लेते है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि बुशमैन लोगों ने अपने प्राकृतिक वातावरण से समायोजन कर रखा है।

(v) आधुनिक संस्कृति से सम्पर्क

वर्तमान मे बुशमैन जनजाति के लोगों की जीवन शैली पर बाह्य संस्कृति का प्रभाव पड़ रहा है। आजकल ये आखेट के साथ–साथ जल स्रोतों के निकट आदिम निर्वाह कृषि करने लगे है। ये लोग स्थानीय व्यापारियों के साथ वस्तुओं का विनिमय भी करते है। इनके पहनावे में भी भारी बदलाव आया है। बाँटू, हॉटेन्टॉट एवं यूरोपीय लोगों के आक्रमणों से बुशमैन लोगों की संख्या निरन्तर घटती जा रही है तथा आवास क्षेत्र संकुचित होते जा रहे हैं।

भील (Bhil)

राजस्थान की आदिवासी जनसंख्या की दृष्टि से भीलों का द्वितीय स्थान है। ऊँची पहाड़ियों पर रहने वाले भीलों को पालवी तथा मैदानों में रहने वाले भीलों को वागड़ी कहते हैं।

भील, संथाल व गौंड जनजातियों के बाद भारत में तीसरा सबसे बड़ा जनजाति समूह है। भील शब्द की उत्पत्ति द्राविड़ियन भाषा के 'बीलू' से हुयी है। जिसका अर्थ है तीरंदाज। कुछ लोग भाषायी दृष्टि से इस शब्द की उत्पत्ति संस्कृत में क्रिया के मूल जिसका अर्थ भेदना, वध करना तथा मारना होता है, तीरन्दाजी में इनकी निपुणता के कारण माना जाता है। इनके सम्बन्ध में पुराणों में अनेक संदर्भ उपलब्ध है। भीलों की उत्पत्ति महादेव के पुत्र निषाद से हुयी है। निषाद ने पिता महादेव के बैल नंदी को मार दिया था जिसे दण्ड स्वरूप पर्वतीय क्षेत्रों में निर्वासित कर दिया था। महाभारत महाकाव्य में इनका सम्बन्ध एकलव्य से है। रामायण काल में श्रीराम को शबरी ने सीता की खोज के दौरान दण्डकारण्य वन में बैर खिलाये थे। कर्नल टॉड के अनुसार ये तात्कालीन मेवाड़ राज्य की अरावली पर्वत श्रेणियों में रहने वाले लोग है जिन्होने महाराणा प्रताप की अकबर के विरूद्ध युद्ध में मदद की थी। ऐतिहासिक दृष्टि से इस जनजाति ने डगारिया (डूँगरपुर), बासिया (बाँसवाड़ा), कोटिया (कोटा) तथा देआवा (उदयपुर) पर शासन किया था।

ये लोग नाटे होते है। इनका रंग गहरा काला तथा नाक चौड़ी होती है। आँखे लाल, बाल रूखे, जबड़ा कुछ बाहर निकला होता है। इनका शरीर सुगठित व सुडौल होता है।ये लोग परिश्रमी और ईमानदार होते है। चोरी करने को धार्मिक पाप मानते है। ये आजादी प्रेमी होते है।



चित्र 2.9 : भील जनजाति की महिला

(I) निवास क्षेत्र

भील दुर्गम एवं निर्जन पर्वतीय क्षेत्रों में निवास करते है। ये लोग अरावली, विन्ध्याचल व सतपुड़ा की पहाड़ियों और वन क्षेत्रों में रहते है। भारत में भील चार राज्यों राजस्थान, मध्य प्रदेश, गुजरात तथा महाराष्ट्र में है। भीलों का मुख्य केन्द्रीकरण राजस्थान के बाँसवाड़ा, डूँगरपुर, उदयपुर एवं चित्तौड़गढ़, मध्यप्रदेश के धार, झाबुआ व रतंलाम, गुजरात के पंचमहल एवं बड़ोदरा में तथा महाराष्ट्र के औरंगाबाद, अहमदनगर, जंलगाँव, नासिक एवं धुले जिलों में है। मानचित्र 2.3 में भील जनजाति के निवास क्षेत्र प्रदर्शित है।

इनके निवास क्षेत्रों की जलवायु मानसूनी है। इनके निवास्य क्षेत्रों में लगभग 33 प्रतिशत भू–भाग पर वन पाये जाते है। अनाच्छादित पहाड़ियाँ, अपरदित मिट्टी व वनों की कटाई ने भीलों की बढ़ती जनसंख्या के सामने अनेक समस्याएँ खड़ी कर दी है।

(ii) आर्थिक क्रिया–कलाप

भील वनों एवं पहाड़ी प्रदेशों के एकांत प्रदेशों में निवास करने के कारण इनकी आजीविका का मुख्य आधार खाद्य संग्रहण, आखेट, आदिम कृषि एवं पशुपालन है। ये लोग वनों से (विशेषकर स्त्रियाँ) कंद–मूल, फूल–फल एवं पत्तियाँ एकत्रित करती हैं। जंगली पशुओं एवं पक्षियों का शिकार करते है। कृषि में खाद्यान्न, साग सब्जियाँ एवं चारे की फसलें पैदा करते हैं। भेड़–बकरी, गाय–भैंस व कुक्कड़ पालन करते हैं।

(अ) आखेट – जंगलों मे तीर कमान से ये लोग जंगली पशुओ का शिकार करते है। पुरूष तालाबों से मछली पकड़नें का कार्य भी करते है। पूर्व में ये महान शिकारी थे लेकिन अब ये लोग कृषि भी करने लगे है। लगभग 80 प्रतिशत भील कृषि कार्य करने

लगे है। पहाड़ी क्षेत्रों की झूमिंग कृषि को 'चिमाता' तथा मैदानी भाग में की जाने वाली कृषि को 'दजिया' कहते हैं।

(ब) भोजन – वर्षपर्यन्त भीलों का मुख्य भोजन मक्का है। उत्सवों व प्रतिभोज के अवसरों पर चावल (चोखा) व लापसी बनती है। छाछ व आटे को उबाल कर लगभग हर घर में राबड़ी बनाई जाती है। गेहूँ, चना, उड़द, मूँग, व सब्जियाँ भी अब इनके भोजन में शामिल हो गये है। रीति–रीवाजों व परम्पराओं के अनुसार भील माँसाहारी होते है। भील लोग महुआ से निर्मित मंदिरा के अधिक व्यसनी हैं।

(स) वस्त्र – देश की आजादी से पूर्व भीलो के वस्त्र बहुत कम होते थे। पुरूष छाल से बनाकर नेकर तथा स्त्रियाँ पेटीकोट पहनती थी। वर्तमान मे पुरूष कमीज, धौती, साफा या पैंट–शर्ट पहनने लगे है। स्त्रियाँ घाघरा, काँचली व लूगड़ी पहनती है। लड़के लंगोट पहनते है तथा लड़कियॉ घाघरी व ओढ़नी पहनती है। भील चाँदी पीतल, जस्ता एवं निकिल से बने आभूषण पहनते है। भील स्त्रियाँ अपने–आप को लाख एवं काँच की चूड़ियों से सजाती एवं संवारती है।

(द) निवास गृह – इनके घर प्रकीर्ण प्रकार के होते है। झौपड़ियॉ खेत के छोटे टुकड़े के मध्य टीलों पर बनाई जाती है। प्रत्येक झोपड़ी अपने आप में पूर्ण होती है। जिसमें आवास के साथ अन्न भण्डारण व पशुओं को रखने की भी व्यवस्था होती है। घर की दीवारें मिट्टी–पत्थर व बांस से तथा छत खपरैल से बनी होती है। झौपड़ियों की सामने की दीवार को गोबर, खड़िया व लाल गैरू से लीप–पोत कर सजायी जाती है। वर्तमान में पक्के मकानों का चलन भी बढ़ा है। अब कुछ भील सघन बस्तियों में भी रहने लगे है। छोटे गाँवों के समूह का फला व बड़े गाँव को पाल कहते हैं। चित्र 2. 10 में भील परिवार का आवास प्रदर्शित है।

(य) औजार एवं बर्तन – धनुष–बाण, तलवार एवं खंजर इनके प्रमुख अस्त्र –शस्त्र हैं। बाण दो प्रकार के होते है–एक हरियो व दूसरा रोबदो। पक्षियों को पकड़ने के लिए एक प्रकार का फंदा जिसे फटकिया कहा जाता है, काम में लिया जाता है। सम्पन्न भील बदूकों का भी उपयोग करने लगे हैं। भीलो के घरों में मिट्टी से बने बर्तन, मक्का पीसने की चक्की तथा बाँस से बना पालना जरूर पाया जाता है।



चित्र 2.10 : भील जनजाति का आवास

(iii) समाज व संस्कृति

भील अनेक पितृसत्तात्मक समूहों व कुलों में संगठित है। प्रत्येक कुल के लोग अलग–अलग गाँवों में रहते है। प्रत्येक कुल का अपना–अपना गण चिह्न होता है। भील युवा हो या वृद्वउसकी पत्नी जरूर होती है। चाहे वह सामान्य विवाह से या भगा कर लायी गयी हो। इनमें बहु–पत्नी प्रथा भी पायी जाती है। सामान्यतयाः विवाह का प्रस्ताव वर पक्ष की ओर से आता है। इनमें कन्या का मूल्य देना पड़ता है, जिसे दापा कहा जाता है। जो लड़के के पिता को देना होता हैं । गोल गाधेड़ों प्रथा के द्वारा कोई भी युवक शूरवीरता व साहस का कार्य दिखलाते हुए शादी हेतु युवती को चुनने का अधिकार पाता है।

ये प्रकृति पूजक है। ये कृषि यंत्रों व उपकरणों की भी पूजा करते है क्योंकि अधिकाँश भील कृषक है। भीलों में बहुत से देवी–देवताओं की पूजा की जाती है। कुछ लोग नागदेव को पूजतें है। ये अंधविश्वासी होते हैं तथा भूत–प्रेतों में विश्वास करतें है। ये मृतकों का दाह–संस्कार करते है।

होली व दीपावली महत्त्वपूर्ण पर्व है। लम्बे समय तक होली माता के गीत गाते हैं। घूमर एवं गैर भीलों के प्रमुख नृत्य है। राजस्थान में सोम, जाखम एवं माही से बनी त्रिवेणी पर भीलों का प्रमुख बेणेश्वर मेला जनवरी–फरवरी माह में लगता है। ये मेला शिव की आराधना हेतु लगता है। ये आग के चारों ओर नृत्य करते है एव गीत गाते हैं। रात्रि में लक्ष्मी नारायण मंदिर में रास लीला का आनंद लेते है।

इस जनजाति में ढोल बजाकर आपातकालीन समय में सभी को एकत्रित कर लिया जाता है। फाइरे–फाइरे भीलों का रणघोष है। समस्त पाल का मुखिया 'गमेती' कहलाता है जो एक प्रकार से इनका शासक है। मार्गदर्शक को बोलावा कहते है।

सामाजिक जीवन : भीलों के कई पितृवंशीय गौत्र होते हैं जिन्हें 'अटक' कहा जाता है। भीलों में विवाह सम्बन्ध स्वयं की गोत्र से अन्य गौत्र में होते हैं। भीलों में विवाह के कई प्रकार जैसे– मोर बान्दिया विवाह, अपहरण विवाह, देवर विवाह, विनिमय विवाह, सेवा विवाह एवं क्रय विवाह के तरीके प्रचलित है।

भीलो में गांव के मुखिया को गामेती, झाड फूँक करने वाले को भोपा तथा धार्मिक संस्कारों को सम्पन्न कराने वाले व्यक्ति को भगत कहते हैं। इनके छोटे गांव को फला और बडे गांव को पाल कहते हैं।

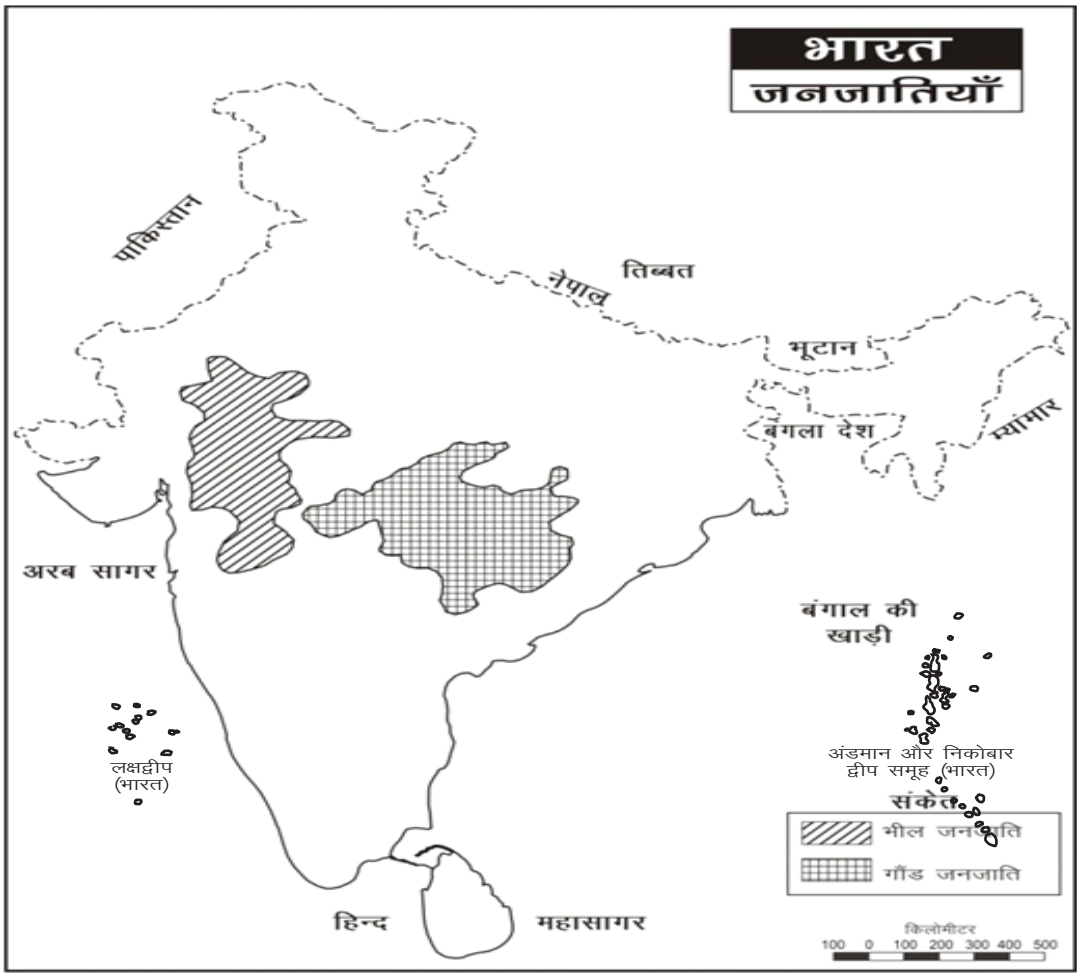

मानचित्र 2.3 : भील एवं गौंड़ जनजाति के निवास क्षेत्र

गवरी एवं घूमर भीलों के प्रमुख नृत्य है। श्रावण मास में पार्वती के पूजन का ''गवरी'' पर्व इनका विशिष्ट उत्सव है।

भील हिन्दुओं के सभी देवी–देवताओं के साथ साथ स्थानीय लोक देवताओं (धराल, बीरसा मुण्डा, कालाजी गोराजी, माताजी, गोविन्द गुरू, लसोड़िया महाराज आदि की पूजा करते हैं।

(iv) आधुनिक संस्कृति से सम्पर्क

वर्तमान में भीलों का सम्पर्क शहरी क्षेत्रों से होने के कारण ये चतुर व चालाक हो गये हैं। अब भील, बाजार आधारित अर्थव्यवस्था की ओर अग्रसर हो रहे है। युवा वर्ग मेहनत मजदूरी करने लगे है। बाह्य संस्कृति के सम्पर्क में आने से इनके पहनावे, बोलचाल व रहन–सहन में तेजी से बदलाव आ रहा है।

सरकारें आदिवासी क्षेत्रों के प्रादेशिक विकास हेतु विद्यालय, चिकित्सालय तथा परिवहन, संचार, बैंकिग की सुविधाएँ उपलब्ध करवा रही हैं। सरकार कुटीर उद्योगों तथा वन व कृषि आधारित उद्योगों को बढ़ावा दे रही है। आधुनिक संस्कृति से बढ़ते सम्पर्क के साथ इनकी जीवन शैली में आमूल–चूल परिवर्तन आ रहा है।

गौंड (Gond)

गौंड विश्व का सबसे बड़ा जनजातिय समूह है। भारतीय प्रायद्वीप पर निवास करने वाली जनजाति को गौंड कहा जाता है। गौंड शब्द की उत्पत्ति खोण्डा से हुई है जिसका अर्थ है 'पहाड़ी' । गौंड अपने आप को कोइटुर या कोल भी कहते है। सोलहवीं से मध्य



चित्र 2.11 : गौंड जनजाति के युवा

अठारहवीं सदी तक मध्य भारत में गौंडो से शासित चार साम्राज्य गढ़ माण्डला, देवगढ़, चॉदा व खेड़ला पनपे। मुगलों व 1940 में मराठों के प्रभुत्व के बाद ये हाशिये पर चले गये। वर्तमान में इनका निवास दुर्गम व पहाड़ी क्षेत्रों तक सीमित हो गया।

(i) निवास क्षेत्र

गौंड जनजाति के कई वर्ग मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड़, तेलंगााना, महाराष्ट्, उड़ीसा व आसाम में रहते हैं। गौंड सतपुड़ा पहाड़ियों, मैकाल श्रेणी, सोन–देवगढ़ उच्च भूमि, बस्तर पठार व गढ़जत पहाड़ियों में रहते हैं। मानचित्र 2.3 में गौंड जनजाति के निवास क्षेत्रों को प्रदर्शित किया गया है। इन पहाड़ियों की ऊँचाई 600 से 900 मीटर के बीच है। इन क्षेत्रों से देश की प्रमुख नदियॉ जैसे नर्मदा, ताप्ती, सोन, महानदी व गोदावरी का उद्गम हुआ है। इन क्षेत्रों में सघन वन पाये जाते हैं। ग्रीष्म काल में तापमान 40° सैल्शियस तक हो जाता है। इन क्षेत्रों में वर्षा का औसत 120 सेमी से 160 सेमी के बीच रहता है।

(i) आर्थिक क्रिया–कलाप

ये लोग आत्म निर्भर होते है। इनके जीवन की आवश्यकताएँ बहुत ही साधारण होती है। इन लोगों का मुख्य व्यवसाय झूमिंग कृषि व आखेट है। कुछ वनोत्पाद संग्रह, पशुपालन व मछली पकड़ने का कार्य भी करते हैं। दीप्पा कृषि, झूमिंग कृषि का एक प्रकार है जिसमें भूमि पर दो–तीन वर्ष खेती करने के बाद उसे पड़त छोड़ दिया जाता है। इस प्रकार की कृषि में पेड़ों व झाड़ियों को जलाकर व भूमि को साफ कर खेत तैयार करते हैं। उसमें फावड़े या हल से कुरेदकर बीजों को छिटककर बोया जाता है। बीज बोने के बाद देवी माता को और जंगल के अन्य देवताओं को पशु बलि दी जाती है। पैंड़ा कृषि मध्य प्रदेश के बस्तर में तीव्र पहाड़ी ढालों पर सीढ़ीदार खेतों पर की जाती है। खेतों में मिट्टी की आर्द्रता को बनाये रखने के लिए निचले भागों में लकड़ी के लट्ठे रख दिये जाते हैं जिनसे मिट्टी का कटाव भी नहीं होता है। कुरूख, केवट और धीवर वर्ग के गौंड मछुआ–कर्म द्वारा जीवनयापन करते हैं। पशुपालन भी किया जाता है। इनमें रावत वर्ग का मुख्य पेशा पशुचारण करना व दूध बेचना है।

(अ) आखेट – ये जानवरों का शिकार करतें है। भारत में आखेट करना अब राजकीय नियमों से निषेध है फिर भी ये लोग कुछ मात्रा में वन्य जीवों का शिकार कर लेते हैं। धीरे–धीरे शिकार का स्थान कृषि ने ले लिया है। अधिकाँश गौंड लोग अब कृषक बन गये हैं।

(ब) भोजन – कोदू व कुटकी जैसे स्थानीय अनाज गौंडों के मुख्य खाद्यान है। सब्जियाँ घरों में उगाकर या जंगलों से प्राप्त



चित्र 2.12 : गौंड जनजाति द्वारा शिकार

करते है । उत्सवों व त्यौंहारों पर चावल बनते है। शिकार से प्राप्त व बलि दिये जानवरों का मॉस भी खाते है। गौंड धूम्रपान करते है तथा महुआ से बनी शराब का सेवन भी करते हैं।

(स) वस्त्र व आभूषण – गौंड प्रायः सूती वस्त्र पहनते हैं। पुरूष धोती तथा स्त्रियॉ साड़ी व चोली पहनती है। पुरूष व स्त्रियॉ दोनों चॉदी व एल्युमिनियम के गहने पहनते है। स्त्रियाँ कॉच की रंग बिरंगी चूड़ियाँ व गले में काले मनकों व कोड़ियों से बना हार पहनती हैं। स्त्रियॉ अक्सर शरीर पर गोदना गुदवाती है। चित्र 2.13 में गौंड महिला द्वारा शरीर पर गुदवाया गोदना देख सकते हैं। लड़कियाँ अपने बालों के जूड़े में सफेद बाँस से बने आधे दर्जन तक कंघे रखती है।

(द) निवास गृह – गौंड नंगले अर्थात पल्ली और छोटे–छोटे गॉवों में रहते हैं। जिस स्थान पर आवास बनाना होता है उसका शगुन निकलवा कर उस स्थान पर उत्सव मनाते हैं।



चित्र 2.13 : गौड़ जनजाति द्वारा गोदना



चित्र 2.13 : गौंड आवास का प्रवेश उत्सव

वहाँ बतख या मुर्गे की बलि दी जाती है। इनके मकान घास–फूस व मिट्टी के बने होते हैं जिसमें रहने का कमरा, रसोई, बरामदा व पूजाघर जरूर होता है। चित्र 2.14 में गौंड आवास प्रवेश का उत्सव का दृश्य हैं।

(य) औजार व बर्तन – गौंड लोगों के औजार बहुत साधारण होते है जो स्थानीय कारीगरों द्वारा बनाये जाते हैं। स्थानीय लुहार फॉलियॉ, खुरपी, फावड़ा, दराती, कुल्हाड़ी व तीरों की नोक आदि बनाते हैं। लकड़ी का सामान ये लोग स्वयं ही बना लेतै हैं। गौंड के घरों में कुछ चारपाइयाँ तथा लकड़ी के स्टूल होते हैं। दरियाँ बैठने व सोने के लिए काम में ली जाती हैं।

(iii) समाज व संस्कृति

गौंड पितृसत्तात्मक समाज की रचना में रहते हैं। पिता की मृत्यु के उपरान्त उसकी सम्पूर्ण अचल सम्पत्ति उसके पुत्रों में बॉट दी जाती है। सबसे बुजुर्ग पुरूष परिवार का मुखिया होता है। गौंड लोगों में सेवा विवाह, विनिमय विवाह, हरण विवाह तथा विधवा विवाह का प्रचलन है। इन लोगों में विवाह समारोह किसी प्राकृतिक स्थान जैसे जल स्रोत के निकट अथवा आम के वृक्ष के नीचे किया जाता है। इस अवसर पर अनिष्ट से बचने के लिए रामधुनी का आयोजन किया जाता है। गॉव के मुखिया को पटेल अथवा मुखादम तथा गाँव के चौकीदार को कोतवार के नाम से जाना जाता है। आपसी विवादों का निपटारा गाँव की पंचायत करती है। गाँव के पुजारी व पुरोहित को देबारी कहा जाता है।

गौंडी बोली द्राविड़ियन भाषा परिवार से संबंधित है जिसका सम्बन्ध तमिल व कन्नड़ से है। कई गौंड हिन्दी, मराठी व तेलगु भी बोलते है। साक्षरता का स्तर देश के औसत से बहुत नीचे है। महिला साक्षरता नगण्य है।

गौंड जनजाति के लोग नृत्य व गीतों के साथ पर्व व उत्सव मनाते है। गौंड पूर्णिमा को चाँदनी रात में इकट्ठे होकर गाने व नाचने का पूरा आनंद लेते है। स्त्री व पुरूष दोनों साथ नाचते हैं। धूलियाँ गौंडो की प्रमुख गायक जाति है। प्रधान गौंडो की मान्यताओं व इतिहास को गाकर लोगों को सुनाते हैं। प्रधान की कथानुसार जब गौंड के भगवानों ने जन्म लिया तो उनकी माँ ने उन्हें बेसहारा छोड़ दिया। देवी पार्वती ने उनको सहारा दिया। लेकिन शंभू महादेव ने उनको एक गुफा में कैद कर दिया। गौंडो के नायक पाहेन्डी कपार लिंगम ने देवी जंगू बाई की मदद से उन्हें गुफा से आजाद करवाया। वे चार समूह में गुफा से बाहर आये। तभी से गौंड चार मुख्य वर्गों में बँटे हुए है जिसे गौंडी भाषा में सगा कहते हैं।

गौंड भूतकाल में मुर्गों को आपस में लड़ा कर अपना मनोरंजन करते थे। बड़ा देव, श्री शंभू महादेव व परशा पेन इनके प्रमुख देवता हैं। शीतला माता व छोटी माता देवी की भी पूजा करतें है। ये लोग देवी–देवताओं का प्रसन्न करने के लिए भेड़–बकरियों की बलि देते है। इनमें अनके प्रकार के जादू–टोनों का प्रचलन है। रात्रि जागरण करते है। अधिकांश गौंड हिन्दू है। पर कुछ लोग प्रकृति पूजक है। प्रकृति पूजकों का विश्वास है कि भगवान वनों में निवास करता है।गौंड लोग काली, दंतेश्वरी व बड़ा देव को नर बलि भी देते थे जिसे 19 वीं सदी में अंग्रजों ने प्रतिबंधित कर दिया था। गौंड जनजाति के लोग मृत शरीर को जलाते व दफनातें है। इनका विश्वास है कि आत्मा अजर–अमर है।

(iv) आधुनिक संस्कृति से सम्पर्क

गौंड लोगों के आवास्य क्षेत्रों में औद्योगिक विकास के कारण विगत 30 वर्षों में श्रमिक–कर्म की प्रवृत्ति बढ़ी है। बड़ी संख्या में लोग खदानों व विनिर्माण उद्योगों में श्रमिकों के रूप में कार्य करने लगे है। खनन व निर्माण केन्द्रों के समीप इनकी नई व स्थाई बस्तियाँ बस गई है। इन बस्तियों में अस्पतालों, विद्यालयों, बाजारों, बैंको व पंचायतों की स्थापना हुई है। सड़क व रेल मार्गों के जाल से इनका सम्पर्क शहरों से बढ़ा है। जीवन–शैली में तेजी से बदलाव आ रहा है। पुराने रीति–रिवाज व परम्पराओं की पकड़ ढ़ीली हुयी है। सरकार ने दासता की प्रतीक कबाड़ी प्रथा को पूर्ण रूप से प्रतिबंधित कर दिया है। इस प्रथा के अनुसार छोटे से कर्ज को चुकाने के लिए ऋणी की कई पीढ़ियों को साहूकारों के गुलामों की भाँति कार्य करना पड़ता था।

शिक्षा का स्तर बढ़नें लगा है। जीवन अधिक सुविधाजनक हो गया है। गौंड़ जनजाति अनुसूचित जनजाति में श्शामिल होने के कारण इन्हें सरकार से कई सुविधाओं का लाभ प्राप्त हो रहा है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दू

1. जनजातियॉ सामाजिक व साँस्कृतिक समूह का प्रतिनिधित्त्व करती है।
2. जनजातियों की अपनी विशष्ट संस्कृति, सामाजिक ढ़ाँचा, परम्पराएँ, रीति रिवाज व मान्यताएँ होती है।
3. एस्किमों ध्रुवीय व ठण्ड़े प्रदेशों में निवास करने वाली जनजाति है।

4. बुशमैन अफ्रीका के कालाहारी मरूस्थल में निवास करती है।
5. एस्किमों का चेहरा सपाट व चौड़ा, बाल रूखे व काले, कद मझला, नाक चपटी, ऑखे कत्थई, तिरछी व गहरी होती है।
6. एस्किमों हारफून से सील मछली का शिकार करते है।
7. एस्किमों के बर्फ से बने घरों को इग्लू कहते है।
8. बुशमैन सर्वभक्षी व पेटू होते है।
9. बुशमैन मुख्यरूप से आखेटक होते है व कई विधियों से शिकार करते है।
10. भील दुर्गम व निर्जन पर्वतीय क्षेत्रों में निवास करते है।
11. गौंड जनजाति मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड़, तेलंगाना, महाराष्ट्, उड़ीसा व आसाम में निवास करते है।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक

1. टुण्ड्रा प्रदेशों में निवास करने वाली कौनसी जनजाति है?
   (अ) भील (ब) बुशमैन
   (स) एस्किमों (द) गौंड
2. दुर्गम पहाड़ी व पठारी क्षेत्रों में निवास करने वाली जनजाति कौनसी है?
   (अ) भील (ब) बुशमैन
   (स) पिग्मी (द) बद्दू
3 'कयाक' निम्नलिखित में से क्या है?
   (अ) मछली (ब) एस्किमों की नाव
   (स) बुशमैन का घर (द) भीलों का हथियार
4 एस्किमों का क्या अर्थ होता है?
   (अ) वन में रहने वाला आदमी
   (ब) कच्चा माँस खाने वाला आदमी
   (स) नग्न रहने वाला आदमी
   (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं
5 शुतुरमुर्ग के अण्ड़ों के खोल को बर्तन व आभूषण के लिए कौनसी जनजाति प्रयोग करती है?
   (अ) एस्किमों (ब) बुशमैन
   (स) पिग्मी (द) भील
6 बुशमैन जनजाति का सम्बन्ध कौनसी प्रजाति से है?
   (अ) निग्रीटो (ब) मंगोलायड्स
   (स) काकेशस (द) आस्ट्रेलाइड़स
7 'गोल गाधेड़ों' प्रथा किस जनजाति में पाई जाती है?
   (अ) गौंड (ब) भील
   (स) सैमांग (द) सकाई
8 कोदू व कुटकी किस जनजाति के मुख्य खाद्यान्न है?
   (अ) गौंड (ब) भील
   (स) पिग्मी (द) बुशमैन
9 गौंडो से शासित साम्राज्य नहीं है –
   (अ) देवगढ़ (ब) माण्डला
   (स) चॉदा (द) राजगढ़
10 दिप्पा तथा पैण्डा कृषि निम्न में से किस जनजाति द्वारा की जाती है ?
   (अ) भील (ब) संथाल
   (स) गौंड़ (द) बुशमैन

अतिलघूत्तरात्मक

11. स्लेज क्या है ?
12. एस्किमों द्वारा बोली जाने वाली भाषा का नाम बताइए?
13. बेचुआनालैंड कहाँ स्थित है?
14. क्रोस क्या है?
15. शबरी का संबंध किस जनजाति से है ?
16. भीलों द्वारा पहाड़ी क्षेत्रों में की जाने वाली झूमिंग कृषि को क्या कहते है ?
17. गौंड जनजाति में पुजारी को किस नाम से जाना जाता है ?

लघूत्तरात्मक

18. एस्किमों के निवास क्षेत्र कौनसे हैं?
19. बुशमैन जनजाति की सामाजिक–सांस्कृतिक विशेषताएँ बताइए?
20. भीलों के आवास का वर्णन कीजिए?
21. गौंड जनजाति की आर्थिक क्रियाकलापों पर टिप्पणी लिखिए।

निबन्धात्मक

22. एस्किमों जनजाति पर एक भौगोलिक लेख लिखिए।
23. भील जनजाति के निवास क्षेत्र, अर्थव्यवस्था व सामाजिक रीति–रिवाजों का वर्णन कीजिए?

आंकिक

24. विश्व के मानचित्र में एस्किमों व बुशमेन जनजाति के निवास क्षेत्र को दर्शाइए।
25. भारत के मानचित्र में भील व गौंड जनजाति के निवास क्षेत्र को दर्शाइए।

पाठ 03
जनसंख्या : वितरण, घनत्व एवं वृद्धि
(Population : Distribution, Density and Growth)

पृथ्वी पर मानव सभ्यता के विकास के साथ उसमें आयी जटिलताओं के कारण जनसंख्या का सर्वत्र समान वितरण नहीं मिलता है। प्रारम्भ से ही जनसंख्या वितरण क्षेत्रीय विस्तार लिए हुए है तथा राजनैतिक एवं प्रशासनिक इकाइयों की बढ़ती संख्या के कारण जनसंख्या के वितरण एवं घनत्व का अध्ययन एक कठिन कार्य हो गया। मानव भूगोल में जनसंख्या वितरण एवं घनत्व का विश्लेषण करना महत्त्वपूर्ण विषय बन गया है। पिछले कुछ दशकों में मानव भूगोल के अन्तर्गत जनसंख्या अध्ययन का भी महत्त्व बढ़ा है।

जनसंख्या वितरण और उसके घनत्व के प्रतिरूपों का विश्लेषण किसी क्षेत्र की जनांकिकीय विशेषताओं का आधार होता है। जनसंख्या वितरण का तात्पर्य है धरातल पर मनुष्य के फैलाव का स्वरूप कैसा है? जनसंख्या के विश्लेषणात्मक अध्ययन के लिए जनसंख्या वितरण प्राथमिक महत्व रखता है।

मानव : एक संसाधन के रूप में

मानव भूगोल के अध्ययन में मानव का केन्द्रीय स्थान है, क्योंकि मानव ही अपने प्राकृतिक और सांस्कृतिक वातावरणों का उपयोग करता है, उनसे प्रभावित होता है और उनमें परिवर्तन करता है। भूमि, जल, मिट्टी, खनिज पदार्थ, वनस्पति और जन्तुओं का उपयोग मनुष्य ही करता है। मानव ही उत्पादन, कृषि, पशुपालन, निर्माण–उद्योग, व्यापार और परिवहन आदि आर्थिक क्रियाएँ करता है तथा सामाजिक संगठन, राजनीतिक प्रबन्ध और सांस्कृतिक विकास करता है। वह प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करके संस्कृति का निर्माण करता है, इसलिये भूगोलवेत्ता के लिए पृथ्वी पर मानव का अध्ययन सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है।

जनसंख्या का वितरण और घनत्व

जनसंख्या वितरण एवं घनत्व को सामान्यतः एक ही अर्थ में समझा जाता है जबकि दोनों ही भिन्न संकल्पनाएँ हैं। जनसंख्या के वितरण में स्थानिक वितरण पर अधिक बल दिया जाता है अर्थात् पृथ्वी पर जनसंख्या के स्थितिगम पक्ष पर बल दिया जाता है। जिससे क्षेत्रीय प्रतिरूप को स्पष्ट किया जाता है। दूसरी ओर जनसंख्या घनत्व में जनसंख्या आकार एवं क्षेत्र के आनुपातिक सम्बन्धों पर बल दिया जाता है।

जनसंख्या वितरण से आशय जनसमूह के स्थानिक वितरण से है। इस पक्ष में मनुष्य के धरातल पर स्थिति जन्य प्रारूप का बोध होता है।

जनसंख्या घनत्व का तात्पर्य जनसंख्या एवं धरातल के एक अनुपात से है। यह जनसंख्या जमाव की मात्रा का मापन है। जिसे प्रति इकाई क्षेत्र व्यक्तियों की संख्या के रूप में व्यक्त किया जाता है।

पृथ्वी पर जनसंख्या का वितरण अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय है। समस्त भू–सतह पर जनसंख्या का वितरण समान रूप में नहीं पाया जाता है। विश्व की 80 प्रतिशत जनसंख्या केवल 20 प्रतिशत भू–भाग पर ही केन्द्रित है। शेष 20 प्रतिशत जनसंख्या

विषम परिस्थितियों वाले 80 प्रतिशत धरातल पर वितरित है। विश्व की जनसंख्या सन् 2001 में 6137 मिलियन अर्थात् 613.71 करोड़ थी। सन् 2013 में विश्व जनसंख्या 714 करोड़ हो गयी। यह जनसंख्या पृथ्वी के 13.6 करोड़ वर्ग किमी. स्थल क्षेत्र पर अत्यन्त असमान रूप से वितरित है।

विश्व जनसंख्या के असमान वितरण का प्रतिरूप

(1) पृथ्वी की दो तिहाई जनसंख्या उसके लगभग 14 प्रतिशत भाग पर निवास करती है। एक अन्य अनुमान के अनुसार विश्व की लगभग 57 प्रतिशत जनसंख्या इसके स्थलीय क्षेत्र के 5 प्रतिशत भाग पर निवास करती है।

(2) विश्व का दो–तिहाई भाग निर्जन प्रायः है। 90 प्रतिशत भू–भाग पर मात्र 10 प्रतिशत जनसंख्या रहती है। 10 प्रतिशत स्थलीय भाग पर कुल जनसंख्या का 90 प्रतिशत संकेन्द्रित है।

(3) विश्व की 85 प्रतिशत जनसंख्या उत्तरी गोलार्द्ध में तथा 15 प्रतिशत जनसंख्या दक्षिणी गोलार्द्ध में पाई जाती है।

(4) विश्व की लगभग तीन चौथाई जनसंख्या एशिया एवं यूरोप महाद्वीपों में रहती है। केवल एशिया महाद्वीप में ही विश्व की 60 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या निवास करती है। ओशेनिया में विश्व जनसंख्या का मात्र आधा प्रतिशत ही पाया जाता है।

(5) विश्व की लगभग 80 प्रतिशत जनसंख्या 20° से 60° उत्तरी अंक्षाशों के मध्य रहती है। 60° अक्षांश के उत्तर में विश्व की 1 प्रतिशत से भी कम जनसंख्या निवास करती है।

(6) विश्व की जनसंख्या का लगभग 75 प्रतिशत भाग महाद्वीपों के किनारों की ओर बसा है। महाद्वीपों के आन्तरिक भागों की ओर जनसंख्या का संकेन्द्रण घटता जाता है।

(7) विश्व की लगभग 80 प्रतिशत जनसंख्या सागर तल में 500 मीटर की ऊँचाई तक के क्षेत्र में निवास करती है।

उक्त उल्लेखित तथ्यों से स्पष्ट है कि विश्व के कई अति विशाल क्षेत्र विरल आबाद है और कुछ अपेक्षाकृत रूप से छोटे क्षेत्र अत्यधिक सघन आबाद है।

विश्व जनसंख्या का वितरण

वर्तमान में विश्व की जनसंख्या सन् 2001 में 613.71 करोड़ थी। जिसका 75 प्रतिशत से अधिक भाग विकासशील देशों में तथा शेष भाग विकसित राष्ट्रों में निवास करता है। जनसंख्या सन्दर्भ ब्यूरों, वांशिगटन द्वारा सन् 2001 में प्रकाशित आंकड़ों के अनुसार एशिया की जनसंख्या 372 करोड़, अफ्रिका की 81.8 करोड़, यूरोप की रूस सहित 72.7 करोड़, दक्षिणी अमेरिका की 35.0 करोड़, उत्तरी अमेरिका की 49.4 करोड़ तथा ओसेनिया की 3.1 करोड़ थी।

संयुक्त राष्ट्र संघ की रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2013 में विश्व की कुल जनसंख्या 714 करोड़ है, एशिया विश्व का सर्वाधिक जनसंख्या वाला महाद्वीप है जिसके अन्तर्गत विश्व की 60.27 प्रतिशत जनसख्या पाई जाती है। अफ्रीका एवं यूरोप में क्रमशः 15.41 और 10.37 प्रतिशत जनसंख्या का निवास है। इसके बाद उत्तरी अमेरिका (7.80%), दक्षिणी अमेरिका (5.62%) और ओसेनिया (0.53%) का स्थान है। विश्व में महाद्वीपों के अनुसार जनसंख्या का वितरण सारणी 3.1 एवं आरेख 3.1 में प्रदर्शित किया गया है।

सारणी 3.1 : महाद्वीपों के अनुसार जनसंख्या वितरण (2013)

क्र.सं.	महाद्वीप	जनसंख्या (मिलियन)	विश्व ज.सं. का प्रतिशत
1	एशिया	4302	60.27
2	अफ्रोका	1100	15.41
3	यूरोप	740	10.37
4	उ. अमेरिका	557	7.80
5	द. अमेरिका	401	5.62
6	ओसेनिया	38	0.53
	कुल	7138	100.0

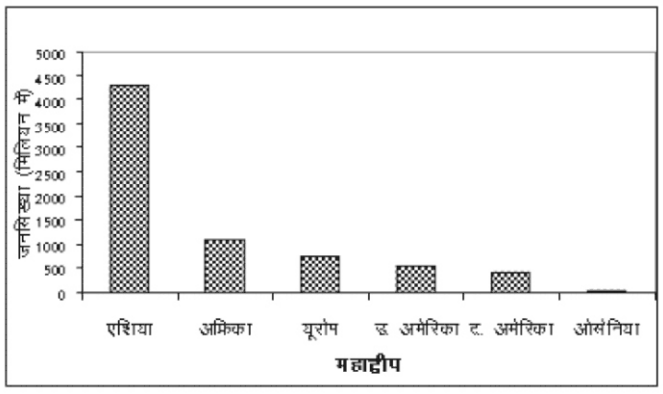

आरेख 3.1 : विश्व जनसंख्या (2013)

यदि जनसंख्या के वितरण को विभिन्न देशों के अनुसार देखें तो भी उनके क्षेत्रफल और जनसंख्या के वितरण में पर्याप्त विषमताएँ है। विश्व के कुछ बड़े राष्ट्र कम जनसंख्या वाले है तथा क्षेत्रफल की दृष्टि से कुछ छोटे देशों में जनसंख्या का जमाव

अधिक दिखाई देता है। जनसंख्या की दृष्टि से विश्व के कुछ बड़े देशों को सारणी संख्या 3.2 में प्रदर्शित किया गया है–

क्र.सं.	देश	जनसंख्या	
		2001	2013
1	चीन	1273	1357
2	भारत	1027	1276
3	संयुक्त राज्य अमेरिका	285	316
4	इण्डोनेशिया	206	248
5	ब्राजील	172	196
6	पाकिस्तान	145	191
7	रूस	140	144
8	बांग्लादेश	134	157
9	जापान	125	127
10	नाइजिरीया	127	174

सारणी 3.2 : प्रमुख देशों की जनसंख्या

सारणी 3.2 को देखने से स्पष्ट होता है कि विश्व की सर्वाधिक जनसंख्या वाला देश चीन है जिसकी जनसंख्या सन् 2013 के अनुसार 1357 मिलियन है, जनसंख्या आकार की दृष्टि से भारत (1276 मिलियन) दूसरे स्थान पर तथा 316 मिलियन जनसंख्या के साथ संयुक्त राज्य अमेरिका तीसरे स्थान पर आता है। इसके बाद इण्डोनेशिया (248 मिलियन) और ब्राजील (196 मिलीयन) का स्थान आता है।

विश्व जनसंख्या में सर्वाधिक वृद्धि विकासशील एवं कम विकसित राष्ट्रों में रही है। जनसंख्या वितरण के स्थानिक दृष्टिकोण के अनुसार विश्व की 90 प्रतिशत जनसंख्या उत्तरी गोलार्द्ध में पायी जाती है।

विश्व को जनसंख्या के वितरण की दृष्टि से निम्न भागों में विभक्त किया जा सकता है। जिसे मानचित्र 3.1 में विश्व जनसंख्या के वितरण को दर्शाया गया है।

(1) सघन जनसंख्या के प्रदेश : विश्व के पाँच प्रदेश ऐसे हैं जहाँ सघन जनसंख्या निवास करती है। यहाँ जनसंख्या घनत्व भी अधिक है। इन प्रदेशों में पूर्वी एशिया के चीन, जापान, दक्षिणी कोरिया, ताइवान व हाँगकाँग, दक्षिणी एशिया के भारत, पाकिस्तान, श्रीलंका, बाँग्लादेश व नेपाल एवं सम्पूर्ण दक्षिणी पूर्वी एशिया, उत्तरी–पश्चिमी यूरोप के ग्रेट ब्रिटेन, जर्मनी, हालैण्ड, बेल्जियम, फ्रांस, आयरलैण्ड, डेनमार्क, स्पेन व इटली तथा पूर्वी व उत्तरी अमेरिका के उत्तरी–पूर्वी संयुक्त राज्य अमेरिका, दक्षिण–पूर्वी कनाड़ा आदि देश प्रमुख है। उत्तरी अमेरिका में सन् 1779 की औद्योगिक क्रान्ति के उपरान्त जनसंख्या तीव्रता से बढ़ी है।

(2) सामान्य जनसंख्या के प्रदेश : ऐसे भौगोलिक प्रदेशों में पारिस्थितिकी जनसंख्या निवास के लिए सामान्य दशाएँ प्रदान करती है। यहाँ मानव ने अनेक स्थानों पर प्रकृति के साथ अनुकूलन भी किया जाता है। एण्डीज पर्वत पर प्रतिकूल भौतिक दशाओं के होते हुए भी ताम्बे की उपलब्धता के कारण चिली की चुकार्ड, कामरा, कनाडा के यूरेनियम शहर में यूरेनियम के कारण तथा पश्चिमी आस्ट्रेलिया में स्वर्ण के खनन के कारण सघन जनसंख्या पायी जाती है।

(3) विरल जनसंख्या के प्रदेश : ये प्रदेश विश्व के 70 प्रतिशत भू–भाग पर स्थित है। यहाँ विश्व की मात्र 5 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है। इन क्षेत्रों में स्थिति, उच्चावच एवं जलवायु की विषम परिस्थितियों के कारण जनसंख्या विरल पायी जाती है।

(4) अतिन्यून जनसंख्या क्षेत्र : विश्व के विशाल स्थल भाग पर बिना आबादी वाले या लगभग निर्जन प्रदेशों का मुख्य कारण जलवायु और धरातल की कठोरता है ऐसे क्षेत्रों में अतिशीतल, उष्ण मरूस्थल, उच्च धरातलीय, विषुवत रेखीय आर्द्रवन तथा मध्य अक्षांशीय मरूस्थलीय प्रदेश आते हैं। जहाँ अल्प संख्या में जनजातियाँ निवास करती है।

जनसंख्या वितरण को प्रभावित करने वाले कारक

पृथ्वी पर जनसंख्या के वितरण में समय–समय पर परिवर्तन होता रहा है। वर्तमान वितरण की मुख्य विशेषता यह है कि पृथ्वी के स्थल–मण्डल पर मानव का निवास अति विषम है। जनसंख्या वितरण में अधिक विषमता के कई कारण है, परन्तु स्थल पर इसके वितरण को प्रभावित करने वाले कारकों को रेखाचित्र 3.1 में प्रदर्शित किया गया है।

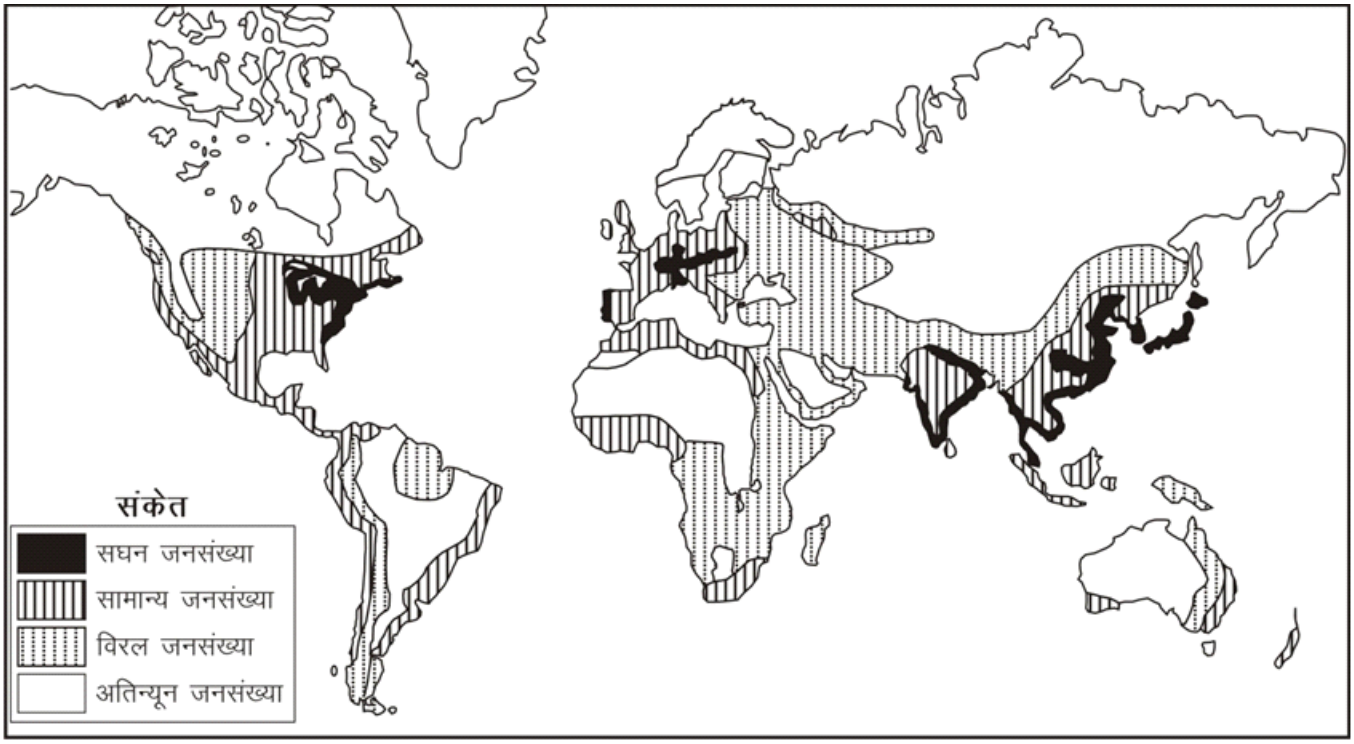

मानचित्र 3.1 : विश्व जनसंख्या विवरण

रेखाचित्र 3.1 : जनसंख्या वितरण को प्रभावित करने वाले कारक

- **विश्वव्यापी कारक**
  - अवस्थिति
  - जलवायु दशा
  - धरातल
  - समुद्र तल से ऊँचाई
- **प्रादेशिक कारक**
  - भूमि की बनावट
  - जल आपूर्ति
  - मिट्टियाँ
  - वनस्पति
  - खनिज
  - शक्ति संसाधन
- **साँस्कृतिक कारक**
  - आर्थिक अवस्था
  - उन्नति का स्तर
  - राजनैतिक स्थिति
  - मनोवैज्ञानिक
  - परिवहन
  - व्यापार
- **सामायिक कारक**
  - वातावरण के अनुकूलन
  - पारस्परिक निर्भरता
  - धर्म
  - सामाजिक मान्यताएँ
  - सामाजिक संरचना

जनसंख्या घनत्व को प्रभावित करने वाले कारक

विश्व जनसंख्या के वितरण एवं घनत्व को समझने के पश्चात् यह ध्यान में आता है कि कुछ ऐसे कारक है जो मानव के बसाव को नियन्त्रित करते हैं। जनसंख्या की उपलब्धता और उसके जमाव को प्रभावित करने वाले महत्त्वपूर्ण कारकों का विवरण इस प्रकार है–

(अ) भौतिक कारक

(i) स्थिति : जनसंख्या वितरण पर विश्व के विभिन्न क्षेत्र की स्थिति का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। विश्व की अधिकाँश जनसंख्या शीतोष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों में निवास करती है। लोग समतल मैदानों और मंद ढालों पर बसने को वरीयता देते हैं। पर्वतीय और पहाड़ी क्षेत्र परिवहन के विकास में बाधक होते हैं इसलिए प्रारम्भ से कृषि और औद्योगिक विकास के लिए अनुकूल नहीं होते हैं। अतः इन क्षेत्रों में कम जनसंख्या पायी जाती है।

(ii) जल की उपलब्धता : लोग उन क्षेत्रों में बसना चाहते है, जहाँ जल आसानी से उपलब्ध होता है, यहीं कारण है कि विश्व की महान नदी–घाटियाँ विश्व के सबसे सघन बसे हुए क्षेत्र है।

(iii) जलवायु : अति ऊष्ण अथवा ठण्डे मरूस्थलों की विषम जलवायु मानव बसाव के लिए असुविधाजनक होती है। अधिक वर्षा अथवा विषम जलवायु क्षेत्रों में कम जनसंख्या पाई जाती है। भूमध्य सागरीय प्रदेश सुखद जलवायु के कारण ही प्रारम्भिक काल से बसे हुए क्षेत्र हैं।

(iv) मृदाएँ : उपजाऊ मृदाएँ कृषि तथा इससे सम्बन्धित क्रियाओं के लिए महत्वपूर्ण है। इसलिए उपजाऊ दोमट मिट्टी वाले प्रदेशों में अधिक लोग निवास करते है क्योंकि ये मृदाएँ गहन कृषि का आधार बनती है।

(ब) आर्थिक कारक

(i) खनिज : खनिज निक्षेपों से युक्त क्षेत्र उद्योगों को आकृष्ट करते हैं। खनन और औद्योगिक गतिविधियाँ रोजगार उत्पन्न करती है। अतः अकुशल तथा कुशल कर्मी इन क्षेत्रों में पहुँचते हैं और जनसंख्या को सघन बना देते हैं। अफ्रिका की कटंगा, ताम्बा पेटी इसका एक अच्छा उदाहरण है।

(ii) नगरीकरण : नगर रोजगार के बेहतर अवसर, शैक्षणिक व चिकित्सा सुविधाएँ तथा परिवहन और संचार के बेहतर साधन प्रस्तुत करते हैं। अच्छी नगरीय सुविधाएँ तथा नगरीय जीवन का आकर्षण लोगों को नगरों की ओर खींचते हैं।

(iii) औद्योगीकरण : औद्योगीकरण, बड़ी संख्या में लोगों को आकर्षित करता है। इनमें केवल कारखानों के श्रमिक ही नहीं होते बल्कि परिवहक परिचालक, दुकानदार, बैंककर्मी, डॉक्टर, अध्यापक तथा अन्य सेवाएं उपलब्ध कराने वाले भी होते हैं। जापान का कोबे–ओसाका प्रदेश अनेक उद्योगों की उपस्थिति के कारण सघन बसा हुआ है।

(iv) सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारक : कुछ स्थान धार्मिक अथवा सांस्कृतिक महत्व के कारण अधिक लोगों को आकर्षित करते हैं। ठीक इसी प्रकार लोग उन क्षेत्रों को छोड़कर चले जाते हैं जहाँ सामाजिक और राजनैतिक अशान्ति होती है। कई बार सरकारें लोगों को विरल जनसंख्या वाले क्षेत्र में बसने अथवा भीड़–भाड़ वाले स्थानों में चले जाने के लिए प्रोत्साहन देती है।

जनसंख्या महासमूह

विश्व में जनसंख्या वितरण के भौगोलिक विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि कुल जनसंख्या का लगभग 80 प्रतिशत भाग 20° उत्तरी अक्षांशों के मध्य मिलता है। पृथ्वी का 50 प्रतिशत भू–भाग मानव निवास के अनुकूल नहीं होने के कारण लगभग निर्जन है। इस प्रकार जनसंख्या का बड़ा भाग विश्व के चार विशाल क्षेत्रों में निवास करता है जो भौगोलिक दृष्टि से महाद्वीपों के कुछ विशेष उपयुक्त भाग है। इन विस्तृत बसे क्षेत्रों को प्रमुख जनसंख्या समूह कहते हैं। ये जनसंख्या महासमूह (1) एशियाई जनसमूह (2) यूरोपीय जनसमूह, (3) अमेरिकी जनसमूह (4) अफ्रीकी जनसमूह।

(1) एशियाई जनसमूह

विश्व की सर्वाधिक जनसंख्या एशियाई जनसमूह में निवास करती है। इसका विस्तार पश्चिम में पाकिस्तान से लेकर भारत, म्याँनमार, थाईलेण्ड, इण्डोनेशिया, वियतनाम होते हुए चीन, जापान ओर कोरिया तक है। इस पूरे प्रदेश में मानसूनी जलवायु पायी जाती है। इसलिए इसे मानसून एशिया भी कहा जाता है। एशियाई जनसमूह को भी अध्ययन की दृष्टि से तीन उप प्रदेशों में (i) पूर्वी एशिया– चीन, जापान, कोरिया (ii) द.पूर्वी एशिया– थाईलेण्ड, म्याँनमार, इण्डोनेशिया, फिलीपीन्स, वियतनाम, (iii) दक्षिणी एशिया, भारत, पाकिस्तान, बाँग्लादेश, नेपाल, भूटान, श्रीलंका आदि में विभक्त किया जाता है।

एशियाई जनसमूह मुख्यतः 10° से 40° उत्तरी अक्षांशों के मध्य स्थित है। यहाँ पर नदियों द्वारा निर्मित ऊपजाऊ मिट्टी वाले अनेक मैदान स्थित है। जो उत्तम कृषि प्रदेश है। जापान को छोड़कर एशियाई जनसमूह के सभी देश कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था वाले है।

एशियाई जनसमूह के देशों की प्रमुख समस्या जनसंख्या वृद्धि की तीव्र दर है जो 2 प्रतिशत प्रति वर्ष से अधिक है। जनसंख्या की तीव्र वृद्धि दर ने रोजगार, आवास, भोजन, निर्धनता, चिकित्सा एवं शिक्षा आदि समस्याओं को बढ़ावा दिया है।

(2) यूरोपीय जनसमूह

विश्व में एशिया के पश्चात् दूसरा बड़ा जनसमूह यूरोप महाद्वीप में है। सम्पूर्ण यूरोप में रूस सहित 74.0 करोड़ जनसंख्या केन्द्रित है जिसका 75 प्रतिशत भाग यूरोपीय जनसमूह के रूप में निवास करता है। इसमें सर्वाधिक जनसंख्या वाला देश रूस के बाद जर्मनी हैं, जहाँ 8.20 करोड़ लोग रहते हैं। यूरोपीय जनसमूह 40° उत्तरी अक्षांशों से 60° उत्तरी अक्षांशों के मध्य पाया जाता है। इसकी सर्वाधिक सघनता 45° उत्तर में 55° उत्तर अक्षांशों के मध्य स्थित कोयला पेटी के सहारे हैं। यहाँ आधुनिक उद्योगों व नगरों का सर्वाधिक विकास हुआ है। 19वीं शताब्दी के उतरार्द्ध में औद्योगिक क्रान्ति के बाद जनसंख्या का संक्रेन्द्रण नगरों के समीप हो सका है। इससे पहले यूरोप में जीवनयापन का मुख्य आधार कृषि थी। यूरोपीय जनसमूह के देशों में जन्म–दर और मृत्यु–दर दोनों ही कम है अतः जनसंख्या वृद्धि स्थिर अवस्था में है। जनसंख्या का उच्च

घनत्व होते हुए भी जनसंख्या की अधिकता की समस्या नहीं है, अपितु कुछ देशों में तो जनसंख्या वृद्धि पर बल दिया जा रहा है।

यूरोपीय जनसमूह का 70 प्रतिशत से भी अधिक भाग नगरों में निवास करता है और विनिर्माण उद्योग, व्यापार, यातायात व अन्य सेवा कार्यों में संलग्न है। इन देशों की प्रति व्यक्ति आय अधिक और जीवन स्तर उच्च है। इस जनसमूह के सभी देश विकसित देशों की श्रेणी में आते हैं।

(3) अमेरिकी जनसमूह

अमेरिकी जनसमूह का मुख्य विस्तार उत्तरी अमेरिका के उत्तरी–पूर्वी भाग में है। यह विश्व का तीसरा बड़ा जनसमूह है, जिसमें संयुक्त राज्य अमेरिका का उत्तरी–पूर्वी भाग तथा कनाड़ा के पूर्वी तटीय क्षेत्र सम्मिलित है। यह विश्व का सबसे नवीन एवं विकसित जनसमूह है। जिसका विकास यूरोपीय जनसंख्या के प्रवास के उपरान्त हुआ है। इस जनसमूह की 80 प्रतिशत जनसंख्या 100° पश्चिमी देशान्तर के पूर्व में 30° उत्तर से 45° उत्तर अक्षांशों के मध्य निवास करती है। अमेरिकी जनसमूह की कुल जनसंख्या का 90 प्रतिशत यूरोप से आये लोग हैं। यह क्षेत्र आवागमन की सुविधा के साथ खनिज संसाधनों से सम्पन्न रहा था। यूरोपीय जनसंख्या प्रवास के साथ ही यूरोप में विकसित तकनीकी ज्ञान भी स्थानान्तरित हुआ जिसका प्रभाव यहाँ के विकास पर पड़ा। अमेरीकी जनसमूह की अधिकाँश जनसंख्या नगरीय है। लगभग 75 प्रतिशत लोग नगरों में रहते हैं। यह जनसमूह यूरोपीय जनसमूह से अधिक विकसित एवं सम्पन्न है।

अमेरिका जनसमूह में जनसंख्या वृद्धि नियन्त्रित है क्योंकि यहाँ जन्म दर एवं मृत्युदर दोनों पूर्णतः नियन्त्रित है तथा साथ ही बाहरी देशों से अप्रवास पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया है।

(4) अफ्रीकी जनसमूह

अफ्रीका महाद्वीप की जनसंख्या 2001 में 81.8 करोड़ थी। वर्ष 2013 के अनुसार अफ्रीका की कुल जनसंख्या 110 करोड़ है जो विश्व की 15.4 प्रतिशत है। आकार की दृष्टि से एशिया के बाद अफ्रीका का स्थान आता है। लेकिन इसका 70 प्रतिशत भाग मरूस्थलीय दशाओं व सघन वनों में आर्द्रता होने के कारण निर्जन प्रायः है। अफ्रीका के केवल 30 प्रतिशत भू–भाग पर ही जनसंख्या बसाव क्षेत्र है। इसका बड़ा संक्रेन्द्रण तीन क्षेत्रों में मिलता है। प्रथम नील नदी घाटी क्षेत्र, दूसरा क्षेत्र जाम्बिया एवं नाइजर नदी घाटियों के मध्य स्थित गिनी तट एवं तीसरा क्षेत्र दक्षिणी अफ्रीका का दक्षिणी तथा पूर्वी तटीय भाग है। सारणी 3.6 में अफ्रीकी जनसमूह के प्रमुख देशों की जनसंख्या प्रदर्शित की गई है।

जनसंख्या घनत्व (Population Density)

किसी प्रदेश में निवास करने वाले मनुष्यों की संख्या और प्रदेश के क्षेत्रफल के पारस्परिक अनुपात से जनसंख्या का घनत्व मालूम होता है। यह घनत्व इस प्रदेश की उन्नति और भावी विकास के अनुमान लगाने में मुख्य आधार होता है। प्रत्येक प्रदेश के प्राकृतिक संसाधनों जैसे कि क्षेत्रफल, मिट्टियाँ, खनिज पदार्थ जलीय संसाधन, वन–सम्पदा, आदि की मात्रा सीमित होती है। उन संसाधनों को कितने मुनष्य प्रयोग करते हैं? अर्थात् कितनी जनसंख्या अपने जीवन–निर्वाह के लिये उन संसाधनों पर आधारित है। यह तथ्य उस जनसंख्या के रहन–सहन के स्तर को तथा उनके आर्थिक और सांस्कृतिक विकास की सीमा को निर्धारित करता है। इसलिए प्रत्येक देश की आर्थिक उन्नति तथा सामाजिक और सांस्कृतिक उन्नति की योजना बनाने के लिए उस प्रदेश की जनसंख्या की सघनता की भावना बहुत जरूरी है।

जनसंख्या घनत्व के प्रकार

जनसंख्या के विभिन्न पहलूओं का अध्ययन करने के लिए घनत्व को मुख्य आधार माना जाता है। जनसंख्या घनत्व भी कई प्रकार के हो सकते हैं। प्रत्येक पहलू अपनी तरह से जनसंख्या के विश्लेषण में सहयोगी होता है अतः उनकी संक्षिप्त जानकारी इस प्रकार है –

(1) गणितीय घनत्व : जिसमें मानव–स्थल–अनुपात का विचार किया जाता है। इसे निम्न सूत्र से ज्ञात किया जाता है।

जनसंख्या ÷ कुल क्षेत्रफल

(2) आर्थिक घनत्व : जिसमें उस प्रदेश के संसाधनों की उत्पादन क्षमता और उस प्रदेश में निवास करने वाले मनुष्यों की संख्या का विचार किया जाता है, इसे ज्ञात करने का सूत्र इस प्रकार है

जनसंख्या ÷ संसाधन

(3) कार्यिक घनत्व : कार्यिक घनत्व या कृषि क्षेत्रीय घनत्व, जिसमें उस प्रदेश की खेती की जाने वाली भूमि और निवास करने वाले मनुष्यों की समस्त जनसंख्या का विचार किया जाता है।

जनसंख्या ÷ कृषि भूमि क्षेत्र

(4) कृषि घनत्व : जिसमें कृषि की जाने वाली भूमि के क्षेत्रफल और उनमें निवास करने वाली कृषक जनता का विचार किया जाता हैं। यह बात ध्यान देने की है कि इसमें प्रदेश की समस्त जनसंख्या कानहीं वरन् केवल कृषि में लगी हुई जनसंख्या का उपयोग किया जाता है।

कृषक जनसंख्या ÷ कृषि भूमि क्षेत्रफल

(5) पोषण घनत्व : जिसमें खेती की भोज्य–फसलों के

क्षेत्रफल का और उस प्रदेश की समस्त जनसंख्या का विचार किया जाता है।

जनसंख्या ÷ भोज्य फसलों का क्षेत्रफल

प्रत्येक प्रकार के जनसंख्या घनत्व का उपयोग अलग–अलग उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया जाता है। भूगोल में गणितीय घनत्व का बहुतायात में प्रयोग किया जाता है। यह सामान्यतः प्रति वर्ग किमी. में रहने वाले व्यक्तियों के रूप में ज्ञात जाता है।

जनसंख्या का घनत्व = जनसंख्या / क्षेत्रफल

उदाहरण के लिए 'n' प्रदेश का क्षेत्रफल 100 वर्ग किमी है और जनसंख्या 150,000 है। जनसंख्या का घनत्व इस प्रकार निकाला जाएगा।

$$\text{घनत्व} = \frac{150000}{100}$$

घनत्व = 1500 व्यक्ति / किमी.

विश्व में जनसंख्या के घनत्व का वितरण

विश्व में जनसंख्या के घनत्व का वितरण भी जनसंख्या के वितरण के अनुरूप ही असमान एवं विषम प्रकृति का है। विश्व में जिन स्थानों पर अधिक जनसंख्या का बसाव है, वहाँ जनघनत्व स्वाभाविक रूप से अधिक पाया जाता है। विश्व स्तर पर जनसंख्या घनत्व में भारी विषमता पायी जाती है। एक ओर सहारा, ग्रीनलैण्ड, साइबेरिया व मंगोलिया में एक व्यक्ति प्रति वर्ग किमी. से कम जनसंख्या है। जबकि दूसरी और सिंगापुर में 7797 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी निवास करते हैं। विश्व जनसंख्या ब्यूरो वांशिगटन के अनुसार 2015 में विश्व का जनसंख्या घनत्व 47 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी है। लेकिन इसमें क्षेत्रीय असमानता मिलने के कारण एशिया में 116 व्यक्ति, यूरोप में 32 व्यक्ति, अफ्रिका में 27 व्यक्ति, उत्तरी अमेरिका में 16 व्यक्ति, दक्षिणी अमेरिका में 20 व्यक्ति तथा ओसेनिया में 3 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी जनसंख्या का घनत्व था। सारणी 3.7 में उच्च, मध्यम और अल्प जनसंख्या घनत्व के देशों को बताया गया है।

सारणी 3.3 विश्व में कुछ चयनित देशों का जनसंख्या घनत्व, 2013

क्र.सं.	देश	व्यक्ति प्रति वर्ग किमी.
1	बांग्लादेश	1088
2	दक्षिण कोरिया	506
3	रूवाण्डा	422
4	नीदरलैण्ड	405
5	भारत	388
6	बेल्जियम	367
7	जापान	337
8	श्रीलंका	312
9	फिलीपिन्स	321
10	एलसाल्वेडोर	299

Source : Population Reference Bureau, Washington, D.C. 2013

जनसंख्या घनत्व की दृष्टि से विश्व को पाँच प्रमुख भागों में विभक्त किया जा सकता है (मानचित्र 3.2)।

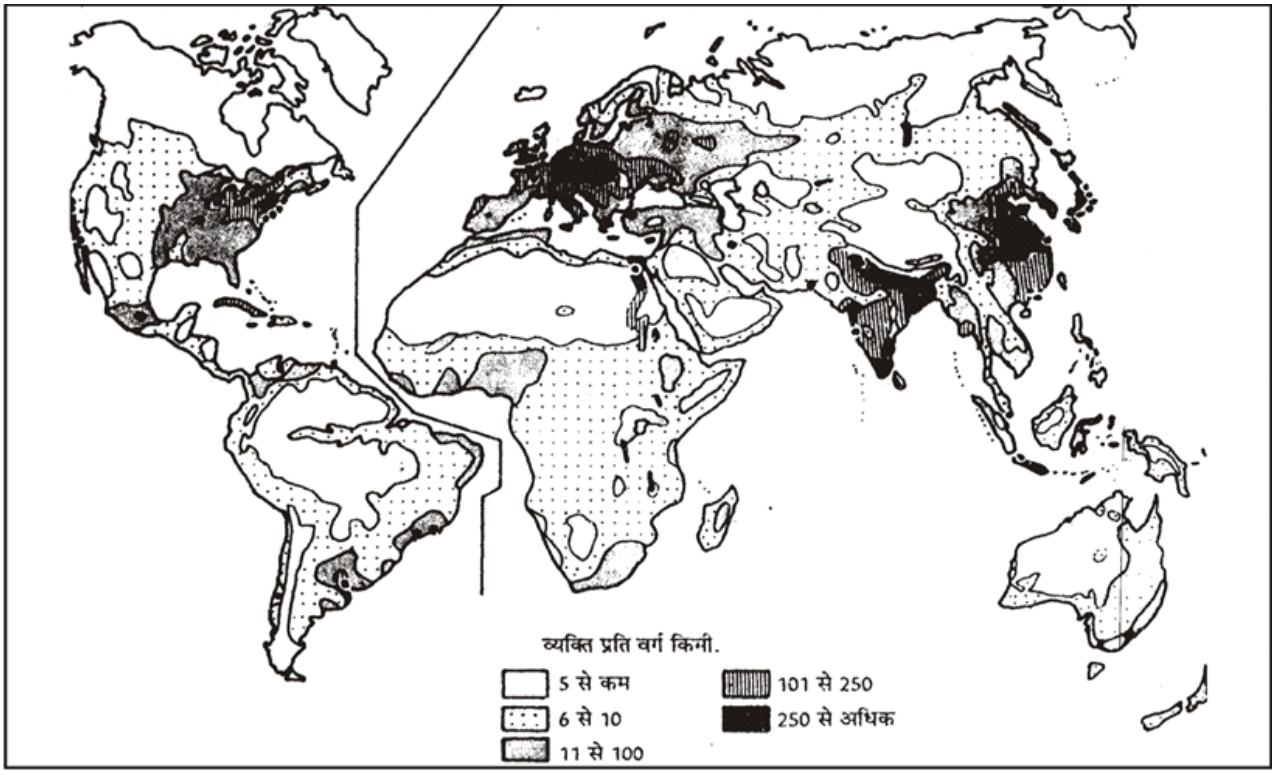

मानचित्र 3.2 : विश्व जनसंख्या धनत्व

(1) अत्यधिक जनसंख्या वाले क्षेत्र : विश्व में वे देश जहाँ जनघनत्व 250 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी से अधिक पाया जाता है, अधिक जनघनत्व वाले क्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं। इसके अन्तर्गत विश्व के तीन जनसंख्या समूहों को सम्मिलित किया जाता है (i) पूर्वी, दक्षिणी एवं दक्षिणी पूर्वी एशिया, (ii) पश्चिमी एवं मध्यवर्ती यूरोप, (iii) पूर्वी उत्तरी अमेरिका।

इन प्रदेशों में स्वास्थ्यप्रद जलवायु, समतल मैदानी भू–भाग, उपजाऊ मृदा, जल, खनिज सम्पदा, औद्योगिक विकास, परिवहन साधनों के साथ अनुकूल दशाओं के कारण उच्च जनघनत्व पाया जाता है।

एशिया के सागर तटीय भागों, यूरोप की औद्योगिक मेखला अधिक जनघनत्व वाले क्षेत्र के औद्योगिक, व्यापारिक केन्द्रों में क्रमशः 1500, 2500 तथा 4000 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी का जनघनत्व पाया जाना सामान्य बात है।

(2) अधिक जनघनत्व वाले क्षेत्र : विश्व के ऐसे क्षेत्र जहाँ जनघनत्व 100–250 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी. पाये जाते हैं वे इसके अन्तर्गत आते हैं, सामान्यतः अधिक जनघनत्व वाले क्षेत्रों के सीमान्त भागों में मध्यम जनघनत्व के क्षेत्र विस्तृत है। दक्षिणी, दक्षिणी–पूर्व एवं पूर्वी यूरोप, मध्य उत्तरी अमेरिका, दक्षिणी अमेरिका के तटवर्ती भाग, अफ्रीका के तटवर्ती भाग, दक्षिण पूर्व, एशिया के आन्तरिक भाग, उत्तरी–पश्चिमी चीन, मध्यवर्ती भारत, दक्षिणी आस्ट्रेलिया आदि इस वर्ग में आते हैं।

(3) सामान्य जनघनत्व वाले क्षेत्र : विश्व के वे क्षेत्र जहाँ घनत्व 10–100 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी है कम जन घनत्व वाले क्षेत्र है। अस्थाई कृषि, पशुचारण, वानिकी, मरूस्थलों के निकट कृषि वाले क्षेत्रों में जनघनत्व कम पाया जाता है। इसके अन्तर्गत एशिया, अफ्रिका तथा उत्तरी– दक्षिणी अमेरिका के विस्तृत घास के मैदान सम्मिलित किये जाते हैं।

(4) कम जनघनत्व वाले क्षेत्र : विश्व के वे क्षेत्र जहाँ जनघनत्व 1–10 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी. है अत्यन्त कम जनघनत्व वाले क्षेत्र है। अफ्रिका में सूडान, लीबिया, मालागासी, उत्तरी अमेरिका में कनाडा, दक्षिणी अमेरिका में उत्तरी अर्जेण्टाइना, पेरू, इक्वेडोर, एशिया में पश्चिमी साइबेरिया, बोननियो, खाड़ी के देशों में कम जनघनत्व पाया जाता है।

(5) प्रायः जनविहीन क्षेत्र : विश्व के वे क्षेत्र जहाँ जन घनत्व 1 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी से भी कम पाया जाता है। पृथ्वी के स्थल भाग का 70 प्रतिशत आवास्य क्षेत्र है जिसे इस वर्ग के अर्न्गत रखा जाता है। विश्व के अतिशीतल प्रदेश, अति उष्णआर्द्र प्रदेश, अतिशुष्क प्रदेश तथा उच्च पर्वतीय प्रदेश प्रायः जन विहीन क्षेत्र है।

जनसंख्या वृद्धि

किसी भौगोलिक क्षेत्र की जनसंख्या के आकार में एक निश्चित समय में होने वाले परिवर्तन को जनसंख्या वृद्धि कहा जाता है। वर्तमान में राष्ट्रीय स्तर पर मुख्यतः जनसंख्या वृद्धि ही दृष्टिगत होती है जिसके कारण जनसंख्या परिवर्तन ही जनसंख्या वृद्धि का पर्याय माना जाने लगा है। जनसंख्या परिवर्तन में धनात्मकता या ऋणात्मकता पर ध्यान नहीं दिया जाता है वरन् इसे कुल संख्या के रूप में मापा जाता है। जनसंख्या वृद्धि को कुल संख्या अथवा प्रतिशत दोनों के द्वारा व्यक्त किया जा सकता है।

जनसंख्या की कुल वृद्धि अथवा निरपेक्ष वृद्धि को ज्ञात करने के लिए विगत जनगणना वर्ग अथवा जनगणना की जनसंख्या को वर्तमान जनगणना वर्ष अथवा जनगणना की संख्या में से घटाया जाता है जैसे–

सारणी 3.4 : भारत की जनसंख्या (करोड़ में)

जनगणना वर्ष		निरपेक्ष वृद्धि
2011	2001	
121.01	102.7	18.3

जनसंख्या का प्रतिशत मूल्य ज्ञात करने के लिए निरपेक्ष वृद्धि को विगत वर्ष की अथवा जनगणना की जनसंख्या से भाग देकर 100 से गुणा कर दिया जाता है, जैसे पिछले उदाहरण के ही क्रम है–

$$\frac{18.3}{102.7}\times 100 = 17.81\%$$

इस प्रकार वार्षिक वृद्धि दर 17.81 / 10 = 1.781 प्रतिशत अथवा लगभग 1.78 प्रतिशत वृद्धि हुई।

विश्व जनसंख्या वृद्धि

जनसंख्या में स्थानिक सम्बद्धता के साथ निरन्तर वृद्धि होती रही है। प्रागैतिहासिक काल में जनसंख्या में वृद्धि अत्यन्त धीमी गति से हुई, जिसके लिए विषम जलवायु दशाओं, धुमक्कड़ी जीवन व अल्पपोषण आदि को उत्तरदायी माना गया है। प्रकृति में मानव द्वारा पशुपालन एवं पौधों को घरेलू बनाये जाने के साथ ही वृद्धि का दौर प्रारम्भ हुआ। कृषि विकास के कारण खाद्य आपूर्ति निश्चित हुई जिससे पर्याप्त पोषण प्राप्त हो सका। समय के साथ मानव जीवन विभिन्न जलवायु दशाओं के अनुसार अनुकूलित होने लगा। फलस्वरूप मानव ने विषम जलवायु परिस्थितियों को सहन करने की क्षमता विकसित की।

जनसंख्या वृद्धि की प्रवृत्तियाँ

पृथ्वी पर मानव का उद्‌भव काल अप्रामाणिक सा है। प्रागैतिहासिक काल में जनसंख्या एवं जनसंख्या वृद्धि के किसी प्रकार के प्रत्यक्ष साक्ष्य नहीं है। अठारहवी शताब्दी से पूर्ववर्ती काल में विश्व की जनसंख्या की गणना भी अनुमानों पर अधिक निर्भर करती है। ऐसा माना जाता है कि पृथ्वी पर मानव का आविर्भाव लगभग दस लाख वर्ष पूर्व हुआ था तथा तब पृथ्वी पर जनसंख्या कुछ हजार ही थी। जनसंख्या वृद्धि के अध्ययन को निम्न कालक्रम में विभाजित किया जा सकता है।

(अ) प्रागैतिहासिक काल : इस काल का प्रारम्भ भोजन संग्रह एवं आखेट व्यवस्था से माना जाता है। आखेट एवं भोजन संग्रह पुरा पाषाण काल में स्थलीय भागों पर ही होता था। महाद्वीपों पर बर्फ का कम होने के उपरान्त अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, दक्षिणी यूरोप तथा दक्षिणी पश्चिमी व पूर्वी एशिया में मानवीय विस्तार का अनुमान लगाया जाता है। अमेरिकी भूमि पर मानवीय उपस्थिति से पूर्व पृथ्वी पर कुल 33 लाख लोग रहते थे जो बढ़कर 15 हजार वर्ष के उपरान्त लगभग 53 लाख हो गये। जिस आधार पर अनुमान लगाया जाता है कि इस समय संसार का औसत घनत्व 0.04 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी है।

(2) प्राचीन काल : आज से लगभग छः हजार वर्ष पूर्व विश्व के कुछ सीमित भागों में मनुष्य ने कृषि और पशु पालन आरम्भ किया। इस प्रकार विश्व के कई भागों में मानव सभ्यता का विकास हो चुका था और नदी–घाटियों में कृषि के साथ ही नगरीय विकास भी प्रारम्भ हुआ। ईसा काल के आरम्भ में विश्व की कुल जनसंख्या 20 से 30 करोड़ के मध्य होने का अनुमान लगाया जाता है। इस दृष्टि से भारतीय उपमहाद्वीप में पूर्वी एशिया, यूनानी और रोमन साम्राज्यों मेसोपोटामिया और मिश्र के साथ–साथ सिन्धु सरस्वती सभ्यता विशाल जनसमूह के क्षेत्र थे।

आरेख 3.2 : विश्व–जनसंख्या वृद्धि

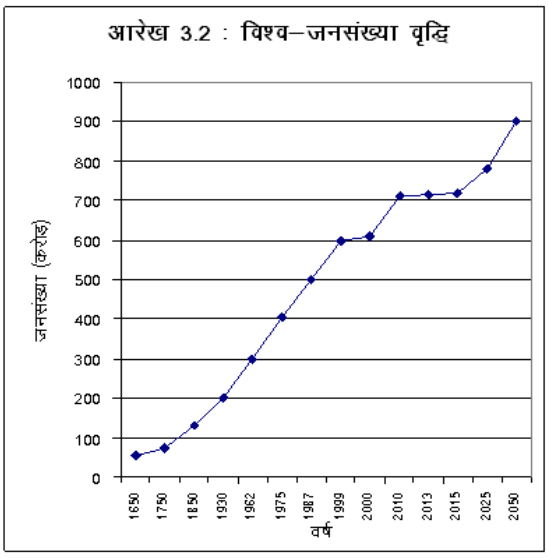

(3) मध्य काल : इतिहास की दृष्टि से यह 700 ईस्वी से 1650 ईस्वी के बीच का काल खण्ड है। 1650 ईस्वी में विश्व की कुल जनसंख्या 55 करोड़ थी। इस समय जनसंख्या वृद्धि की गति अत्यन्त मन्द रही, किन्तु कुछ देशों में अधिक रही। इस समय बाढ़, सूख, महामारी और युद्धों के कारण जनसंख्या में कमी हुई।

(4) आधुनिक काल : 17वीं शताब्दी के मध्य से आधुनिक काल का प्रारम्भ माना जाता है। 1650 ईस्वी में विश्व की कुल जनसंख्या 55 करोड़ थी। 1750 ईस्वी में यह बढ़कर 72 करोड़ हो गई। 1850 ईस्वी में यह दुगुनी वृद्धि के साथ 133 करोड़ हो गई। 1950 ईस्वी तक विश्व की जनसंख्या 251 करोड़ हो गई। 2000 में 610 करोड़ तथा 2013 में 714 करोड़ तक पहुँच गई। विश्व की जनसंख्या की वृद्धि को सारणी 3.9 तथा आरेख 3.2 में दर्शाया गया है।

जनसंख्या वृद्धि के कारण

विश्व में जनसंख्या वृद्धि की प्रवृत्तियों से ज्ञात होता है कि सभी महाद्वीपों में जनसंख्या वृद्धि हुई किन्तु जनसंख्या की वृद्धि की दर सभी महाद्वीपों में एक समान नहीं है। पृथ्वी पर मानवीय अस्तित्व के 99 प्रतिशत काल में जनसंख्या अत्यन्त कम तथा वृद्धि दर अत्यन्त मन्द रही है, किन्तु पिछले 350 वर्षों में विश्व की जनसंख्या उच्च वृद्धि दर के साथ बढ़ी है। विगत पचास वर्षों में विश्व के अनेक देश जनसंख्या की विस्फोटक स्थिति में पहुँच गये है। जनसंख्या वृद्धि के लिए उत्तरदायी कारक निम्नलिखित है।

(i) मृत्युदर में गिरावट : विश्व में जनसंख्या वृद्धि का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण मृत्युदर पर नियन्त्रण है। विगत पचास वर्षों में वैज्ञानिक उपलब्धियों तथा स्वास्थ्य एवं चिकित्सा सुविधाओं के विस्तार के कारण संक्रामक रोगों तथा महामारियों पर सफलतापूर्वक नियन्त्रण से मृत्युदर में भारी गिरावट आई है।

(ii) खाद्य पदार्थों की निश्चित आपूर्ति : विश्व में खाद्यान्नों तथा अन्य खाद्य पदार्थों की निश्चित एवं नियमित आपूर्ति से जनसंख्या की वृद्धि दर प्रभावित हुई है। यांन्त्रिक एवं गहन कृषि, सिंचाई सुविधाओं के विस्तार, उन्नत खाद–बीज के उपयोग आदि में कृषि उत्पादन में अत्यधिक वृद्धि हुई है। अकालों की संख्या भी अत्यन्त कम हुई है।

(iii) औद्योगिक विकास : औद्योगिक क्रान्ति के कारण खनन ऊर्जा, उत्पादन, उद्योग, परिवहन, व्यापार, तकनीक, आदि सभी क्षेत्रों का बहुमुखी विकास हुआ है, जिसमें रोजगार के माध्यम बढ़े हैं। मनुष्य के सामान्य जीवन स्तर में सुधार आया है।

(iv) वैज्ञानिक तथा प्राविधिक प्रगति : नवीन आविष्कारों ने मानव जीवन को आरामदायक तथा सुविधाओं से परिपूर्ण बनाने से जनसंख्या में वृद्धि हुई है।

(v) शान्ति और सुरक्षा : शान्ति और सुरक्षा की स्थापना से विश्व में सामान्य प्रगति का विस्तार हुआ है तथा जनसंख्या में वृद्धि होती रही है।

(vi) प्रवास : मृत्यु दर की तुलना में उच्च जन्मदर के कारण जनसंख्या तेजी से बढ़ने लगी तथा यूरोपीय निवासियों ने बड़े पैमाने पर उत्तरी अमेरिका, दक्षिणी अमेरिका एवं आस्ट्रेलिया की ओर प्रवास आरम्भ किया। अतः इन महाद्वीपों में प्रवास के कारण जनसंख्या वृद्धि हुई।

जनसंख्या वृद्धि की प्रवृत्ति विभिन्न महाद्वीपों में की तुलना संसार के सभी महाद्वीपों में जनसंख्या की वृद्धि होती रही है, परन्तु किसी महाद्वीप में जनसंख्या बहुत तीव्र गति से बढ़ी है और किसी में धीमी गति से है। जनसंख्या वृद्धि की मुख्य विशेषतायें निम्न प्रकार है–

(i) सन् 1650 से 1750 तक एशिया और यूरोप में साधारण वृद्धि हुई थी और अफ्रिका में जनसंख्या घट गई थी। तब तक उत्तरी तथा दक्षिणी अमेरिका में बहुत अल्प जनसंख्या थी।

(ii) सन् 1750 से 1900 तक सभी महाद्वीपों में जनसंख्या वृद्धि हुई, परन्तु अधिक वृद्धि एशिया, यूरोप और उत्तरी अमेरिका में हुई थी।

(iii) सन् 1900 के पश्चात् 20वीं शताब्दी में जनसंख्या वृद्धि की दर बहुत तीव्र गति से बढ़ी है। सबसे अधिक वृद्धि उत्तरी अमेरिका और एशिया में हुई है, पिछले 80 वर्षों में एशिया की जनसंख्या दो गुनी हो गई है और उतरी अमेरिका की लगभग 4 गुनी हो गई है। यूरोप में जनवृद्धि कम होने लगी है।

(iv) जनसंख्या वृद्धि पिछले सब महाद्वीपों में एक समान नहीं है। समस्त संसार की जनसंख्या तीन शताब्दियों में लगभग 7 गुनी हो गई है। एशिया और यूरोप में तीन शताब्दी पूर्व भी संसार की लगभग 3/4 जनसंख्या रहती थी और अब भी संसार की लगभग 3/4 है।

(v) परन्तु उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका में अब बहुत अधिक वृद्धि हुई है। उत्तरी अमेरिका में तीन शताब्दियों में जनसंख्या बढ़कर 364 गुनी हो गई। दक्षिणी अमेरिका में 14 गुनी हो गई है, सबसे कम वृद्धि अफ्रीका में हुई है जो केवल तीन गुनी है।

समस्या

दिन–प्रतिदिन संसार में जनसंख्या की समस्या अधिकाधिक गंभीर होती जा रही है, और सभी विकसित देश इस विषय में चिन्तित होने लगे हैं–

(i) अत्यन्त तीव्र और भयावह वृद्धि : वर्तमान काल में संसार की जनसंख्या में अत्यन्त तीव्र गति से वृद्धि हो रही है, जैसे पहले कभी नहीं हुई थी। यदि इस दर में वृद्धि होती रही तो 2040 ई. में विश्व जनसंख्या 1400 करोड़ हो जायेगी।

(ii) सीमित संसाधन : जिन प्राकृतिक संसाधनां से जनसंख्या को भरण–पोषण प्राप्त होता है, उसकी मात्रा निश्चित है।

(iii) वितरण संकेन्द्रित : पृथ्वी पर जनसंख्या का वितरण सर्वत्र एक समान नहीं है। केवल थोड़े से ही भाग ऐसे हैं जिनमें जनसंख्या संकेन्द्रित है। पृथ्वी के केवल 1/3 थलखण्ड पर संसार की 90 प्रतिशत जनंसख्या निवास करती है। अतः जनसंख्या में वृद्धि होने से जनसंख्या का भार पृथ्वी पर अधिकाधिक बढ़ता चला जा रहा है। चीन, जापान, कोरिया, भारत, पाकिस्तान, इण्डोनेशिया, आदि में जनता का जीवन–स्तर बहुत नीचा है।

(iv) बिना बसे भू–भागों में निराशा : पृथ्वी के बिना बसे हुए भू–भागों का क्षेत्रफल पृथ्वी के समस्त क्षेत्रफल का लगभग 70 प्रतिशत है। इससे भविष्य में भी मानव निवास होने या बढ़ने की आशा नहीं है।

(v) प्राकृतिक और मानवीय प्रतिबन्ध : जब किसी प्रदेश की जनसंख्या का भार वहाँ के भौतिक संसाधन धारण नहीं कर सकते हैं, तो उस प्रदेश में भुखमरी फैल जाती है। दरिद्रता के कारण रहन–सहन का स्तर इतना नीचा गिर जाता है कि बीमारी और महामारी से मृत्यु–दर बढ़ जाती है और जनसंख्या का ह्रास होने लगता हैं

समाधान

(i) भौगोलिक संसाधनों का अनुकूलतम प्रयोग करके आर्थिक उत्पादन में वृद्धि करना।

(ii) औद्योगीकरण, परिवहन, संचार–साधनों, खनन– उद्योगों और निर्माण–उद्योगों की उन्नति, यंत्रीकरण, कोयला, पेट्रोल–बिजली के अधिकतम उत्पादन पर नियन्त्रण आवश्यक।

(iii) शिक्षा का प्रसार और विज्ञान एवं तकनीकी प्रशिक्षण के अधिक से अधिक प्रसार से जागरूकता लाना।

(iv) कृषि का नवीनीकरण

(v) सागरीय संसाधनों का उपयोग

(vi) जनसंख्या का अल्प बसे क्षेत्रों में प्रवास

(vii) देरी से विवाह, परिवार नियोजन और सन्तति निग्रह।

जनांकिकीय संक्रमण सिद्धान्त

इस सिद्धान्त का उपयोग किसी भी क्षेत्र की जनसंख्या के वर्णन एवं भावी जनसंख्या के पूर्वानुमान के लिये किया जाता है। जनसंख्या परिवर्तन का यह सिद्धान्त हमें बताता है कि जैसे ही किसी समाज, ग्रामीण, खेतिहर और अशिक्षित अवस्था से उन्नति करते हुए साक्षर, नगरीय और औद्योगिक अवस्था की और बढ़ता है तो किसी प्रदेश की जनसंख्या उच्च जन्मदर और उच्च मृत्यु दर से निम्न जन्म दर और निम्न मृत्यु दर में परिवर्तित होने लगती है। जनसंख्या में होने वाला यह परिवर्तन विभिन्न अवस्थाओं में होता है, जिसे सामूहिक रूप से जनांकिकीय चक्र के रूप में पहचाना जाता है। उदाहरण के लिये इसे रेखाचित्र में समझाया गया है।

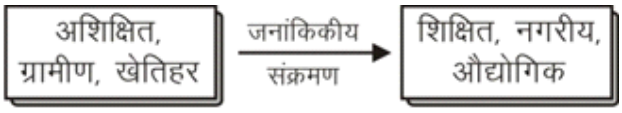

संसार में जनसंख्या की वृद्धि के इतिहास पर अध्ययन करने से हमें जनसंख्या के वृद्धि की विभिन्न अवस्थाएँ देखने को मिलती है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने अपनी जनसंख्या रिपोर्ट्स में भी जनसंख्या वृद्धि की विभिन्न अवस्थाओं पर अपने विचार प्रकट किये हैं। यह सम्पूर्ण परिवर्तन पाँच अवस्थाओं से गुजरता है।

(i) उच्च जन्म दर, उच्च मृत्यु दर

(ii) उच्च जन्म दर, मृत्यु दर, उच्च परन्तु गिरती हुई।

(iii) उच्च जन्म दर, मध्यम मृत्यु दर

(iv) मध्यम जन्म दर, निम्न मृत्यु दर

(v) निम्न जन्म दर, निम्न मृत्यु दर

जनांकिकीय संक्रमण सिद्धान्त की इन अवस्थाओं पर विश्व के कई प्रसिद्ध विश्लेषकों– ब्लेकर, साइमन, बर्गडोरफ़र ने भी अपने विचार प्रकट किये हैं। इस सिद्धान्त की इन पाँचों अवस्थाओं को निम्न रेखाचित्र 3.2 में समझाया गया है।

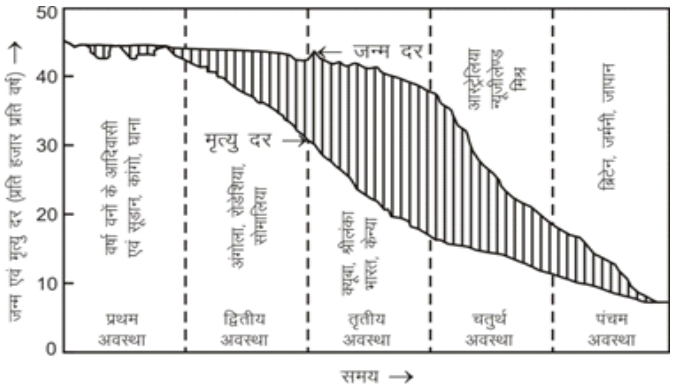

आरेख 3.3 : जनांकिकीय संक्रमण सिद्धान्त

उपरोक्त रेखाचित्र की पाँचों अवस्थाओं को विश्व स्तर पर इस प्रकार समझ सकते हैं।

(i) प्रथम अवस्था में जन्म एवं मृत्यु दर दोनों ही उच्च स्तर पर होते हैं। इसलिये इन देशों या क्षेत्रों में जनसंख्या की वृद्धि बहुत मन्द होती है। विश्व में इस अवस्था के अधिकतर देश जीवन निर्वाह कृषि पर निर्भर है अफ्रीका में सूडान, कांगो, घाना, अंगोला, रोडेशिया, नाइजीरिया तथा ग्वाटेमाला आदि आते हैं।

(ii) द्वितीय अवस्था में जन्म एवं मृत्यु दर दोनों ही उच्च होती है परन्तु स्वास्थ्य सेवाओं के विकास के कारण मृत्यु दर गिरती हुई अवस्था में प्रतीत होती है। अफ्रीका महाद्वीप के अधिकांश देश जो सन् 2000 तक प्रथम अवस्था में थे अब साक्षरता एवं नगरीकरण के बढ़ने से इस अवस्था में आते जा रहे हैं। जहाँ जनसंख्या में वृद्धि दिखाई दे रही है।

(iii) तृतीय अवस्था में उच्च जन्म दर एवं मध्यम मृत्यु दर होती है अतः जनसंख्या में तीव्रगति से वृद्धि होती है। भारत के सभी उत्तरी राज्य, पाकिस्तान, अफगानिस्तान, नेपाल इस वर्ग में सम्मिलित होते हैं।

(iv) चतुर्थ अवस्था में जन्म दर मध्यम और मृत्यु दर निम्न होती है। विश्व के न्यूजीलेण्ड, आस्ट्रेलिया, चिली, अर्जेन्टाइना, संयुक्त राज्य अमेरिका, मलेशिया, थाईलेण्ड, चीन एवं बांग्लादेश इसी वर्ग में है।

(v) पंचम अवस्था में निम्न जन्म दर और निम्न मृत्यु दर होती है ऐसी अवस्था में जनसंख्या के घट जाने का भय रहता है। पश्चिमी यूरोप के लगभग सभी देश और जापान इस वर्ग में पहुँच चुके हैं। इस अवस्था में आने पर राष्ट्रों की मानव शक्ति दुर्बल हो जाती है। उदाहरण के लिये रूस की जनसंख्या 1990 में 1480 लाख थी जो 2007 में 1420 लाख रह गई और 2020 में इसके 1380 लाख रह जाने की संभावना व्यक्त की जा रही है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

(i) विश्व का दो तिहाई भाग निर्जन प्रायः है तथा 90 प्रतिशत भू–भाग पर मात्र 10 प्रतिशत जनसंख्या रहती है।

(ii) विश्व की 85 प्रतिशत जनसंख्या उत्तरी गोलार्द्ध में तथा 15 प्रतिशत जनसंख्या दक्षिणी गोलार्द्ध में पायी जाती है।

(iii) विश्व की लगभग 30 प्रतिशत जनसख्या सागर तल से 500 मीटर की ऊँचाई तक के क्षेत्र में निवास करती है।

(iv) विश्व की जनसंख्या का औसत घनत्व 44 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी है।

(v) जनसंख्या घनत्व के प्रमुख प्रकार आंकिक जनसंख्या घनत्व, कायिक घनत्व एवं कृषि घनत्व है।

(vi) एशिया महाद्वीप में विश्व की लगभग 60.3 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है।

(vii) जनसंख्या की दृष्टि से विश्व के तीन बड़े देश चीन, भारत तथा संयुक्त राज्य अमेरिका है।

(viii) सन् 1650 में विश्व की जनसंख्या लगभग 55 करोड़ थी जो 1750 में 80 करोड़ हो गयी।

(ix) विश्व की जनसंख्या के दो गुना होने तथा प्रति अरब जनसंख्या बढ़ने की अवधि में निरन्तर गिरावट आती रही है।

(x) जनसंख्या सम्बन्धी समस्याओं के निराकरण के लिए जनसंख्या आकार को सीमित करना अनिवार्य है।

(xi) जनसंख्या वृद्धि को कुल संख्या का प्रतिशत में व्यक्त किया जा सकता है।

अभ्यास प्रश्न

1. विश्व में दूसरा सर्वाधिक जनसंख्या वाला देश है?
   (अ) चीन (ब) भारत
   (स) इण्डोनेशिया (द) यू.एस.ए.
2. संसार का सबसे बड़ा जनसमूह निवास करता है?
   (अ) यूरोप (ब) एशिया
   (स) अफ्रीका (द) द. अमेरिका
3. विश्व में सर्वाधिक जनसंख्या घनत्व देश में है?
   (अ) बांग्लादेश (ब) भारत
   (स) चीन (द) ताइवान
4. जनसंख्या घनत्व में कार्यिक घनत्व है?
   (अ) जनसंख्या कुल क्षेत्रफल
   (ब) जनसंख्सा कृषि भूमि क्षेत्र
   (स) कृषक जनसंख्या कृषि भूमि क्षेत्र
   (द) जनसंख्या संसाधन
5. उत्तरी अमेरिका में जनसंख्या प्रवास किस महाद्वीप से सर्वाधिक है?
   (अ) एशिया (ब) यूरोप
   (स) दक्षिणी अमेरिका (द) अफ्रीका
6. सन् 2015 के अनुसार विश्व का जनसंख्या घनत्व है?
   (अ) 57 (ब) 42
   (स) 47 (द) 55
7. विश्व में वर्ष 2025 तक अनुमानित जनसंख्या होगी?
   (अ) 781.8 करोड़ (ब) 903.6 करोड़
   (स) 886.9 करोड़ (द) 960.6 करोड़

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

8. सन् 2013 में विश्व की जनसंख्या कितनी थी।
9. उत्तरी अमेरिका में जनसंख्या का सर्वाधिक संकेन्द्रण किस प्रदेश में है।
10. उत्तरी गोलार्द्ध में विश्व की कितनी प्रतिशत जनसंख्या रहती है।
11. प्रवास के कारण किस महाद्वीप में जनसंख्या वृद्धि सर्वाधिक हुई है।
12. विगत 350 वर्षों में विश्व की जनसंख्या कितना गुना बढ़ी है।
13. जनसंख्या संक्रमण सिद्धान्त के अनुसार भारत कौनसी अवस्था में आता है।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

14. जनसंख्या के वितरण को प्रभावित करने वाले आर्थिक कारकों की संक्षिप्त व्याख्या कीजिए।
15. जनसंख्या घनत्व ज्ञान करने की प्रमुख विधियों के सूत्र लिखिए।
16. विश्व में जनसंख्या संकेन्द्रण के प्रमुख क्षेत्र बताइए।
17. जनसंख्या वृद्धि से क्या तात्पर्य है?
18. जनसंख्या संक्रमण सिद्धान्त की अवस्थाओं का वर्णन कीजिए।

निबन्धात्मक प्रश्न

19. विश्व में जनसंख्या घनत्व वितरण को प्रभावित करने वाले कारकों की व्याख्या कीजिए।
20. जनसंख्या घनत्व की दृष्टि से विश्व की जनसंख्या को वर्गीकृत कीजिए।
21. विश्व की जनसंख्या की वृद्धि की विवेचना कीजिए।

आंकिक प्रश्न

22. सन् 1650 से 2000 तक विश्व में जनसंख्या वृद्धि को आरेख द्वारा प्रदर्शित कीजिए।
23. विश्व मानचित्र में जनसंख्या धनत्व को प्रदर्शित कीजिए।

पाठ 04
विश्व : जनसंख्या संरचना
(World : Population Structure)

जनसंख्या की संरचना का अध्ययन किसी भी क्षेत्र के प्रादेशिक विकास नियोजन के लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होता है। जनसंख्या संरचना के अन्तर्गत सामान्यतः आयु वर्ग, स्त्री–पुरूष अनुपात, व्यवसाय, ग्रामीण तथा नगरीय जनसंख्या, साक्षरता आदि पहलुओं का अध्ययन किया जाता है। विश्व स्तर पर उल्लेखित सभी पहलुओं में प्रादेशिक अन्तर पाया जाता है। जनसंख्या संरचना या संघटन या जनांकिकी संरचना में (अ) आयु संरचना, (ब) लिंगानुपात, (स) जनसंख्या संगठन, (द) साक्षरता एवं (य) व्यावसायिक संरचना प्रमुख घटक होते हैं।

आयु संरचना

आयु संरचना के अन्तर्गत किसी देश या प्रदेश में पाये जाने वाले विभिन्न आयु के लोगों का उनकी आयु या उम्र के अनुसार वर्गों में रखकर अध्ययन किया जाता है। किसी भी देश की जनसंख्या को सामान्यतया तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है जो क्रमशः 0–14, 15–64 और 65 वर्ष से ऊपर की आयु के होते हैं। इनमें यह विभाजन जनसंख्या की आयु संरचना कहलाता है। वृद्ध जनसंख्या वर्ग में 65 वर्ष से ऊपर की जनसंख्या आती है। किसी भी देश में कार्यशील जनसंख्या ज्ञात करने के लिए उस देश की जनसंख्या की आयु संरचना का अध्ययन आवश्यक होता हैं। इस प्रकार के अध्ययन से कार्यशील व्यक्तियों की संख्या के बढ़ने और घटने का आभास हो जाता है। 2014 के जनसंख्या संरचना के वैश्विक आँकड़ों के अनुसार विश्व में 6.8 प्रतिशत जनसंख्या वृद्ध जनसंख्या है। सर्वाधिक यूरोप में 14.6 प्रतिशत इसके पश्चात् उत्तरी अमेरिका में 12.5 प्रतिशत, अफ्रीका में 3.2 प्रतिशत था एशिया में 5.8 प्रतिशत लोग वृद्ध है। राष्ट्रीय स्तर पर सर्वाधिक वृद्धों की जनसंख्या जापान (18.27) में पायी जाती है। इसके बाद जर्मनी (17.17), फ्रांस (16.21) तथा ब्रिटेन (15.9) में पायी जाती है। अनेक अफ्रीकी देशों में यह प्रतिशत 2 से 3 के मध्य ही है। इनमें इथोपिया एवं सोमालिया प्रमुख है।

विश्व की लगभग 35.2 प्रतिशत जनसंख्या युवा वर्ग में है जिसमें सर्वाधिक भूमिका अफ्रीका (44.71%), एशिया (33.6%) की है, जबकि उत्तरी अमेरिका (22.51%), एवं दक्षिणी अमेरिका (41.5%), यूरोप (17.5%) में यह प्रतिशत कम है। राष्ट्रीय स्तर पर जापान (14.3%), जर्मनी (15.2%), ब्रिटेन (17.7%), तथा संयुक्त राज्य अमेरिका (21.6%) आदि में यह प्रतिशत कम है जबकि विकासशील देशों में यह अधिक है।

- सामान्यतः विकासशील देशों में युवा जनसंख्या और विकसित देशों में प्रौढ़ों व वृद्धों की जनसंख्या अधिक पायी जाती है।
- असन्तुलित आयु संरचना के कारण किसी देश की आर्थिक व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।
- जिन देशों की जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ रही है वहाँ बच्चों की संख्या अधिक होती है।

आयु संरचना

सामाजिक, आर्थिक तथा जनांकिकीय दृष्टि से 15 वर्ष और 65 वर्ष की आयु महत्वपूर्ण विभाजक मानी जाती है। इसके अनुसार जनसंख्या को तीन वृहत् आयु वर्गों में विभक्त किया जा सकता है।

(अ) बाल आयु वर्ग (0–14 वर्ष)

(ब) वयस्क आयु वर्ग (15–64 वर्ष)

(स) वृद्ध आयु वर्ग (65 वर्ष एवं अधिक)

(अ) बाल आयु वर्ग– इस आयु वर्ग में 15 वर्ष से कम आयु के बच्चों को सम्मिलित किया जाता है। 5 वर्ष से कम आयु के बच्चों को सम्मिलित किया जाता है। 5 वर्ष के अन्तराल से इस आयु वर्ग के तीन उप विभाग किये जा सकते हैं। 0–4, 5–9 और 10–14 वर्ष बाल आयु वर्ग अनुत्पादक होता है और साथ ही बच्चों के पालन–पोषण, स्वास्थ्य, शिक्षा आदि पर अधिक खर्च होता है जिसका भार आर्थिक कार्यों में संलग्न वयस्क व्यक्तियों पर पड़ता है। आश्रित जनसंख्या का अधिकांश भाग इसी आयु वर्ग में सम्मिलित होता है। विश्व के विभिन्न देशों में बाल जनसंख्या का आकार तथा अनुपात समान नहीं पाय जाता है। सारणी 4.1 द्वारा ज्ञात होता है क सम्पर्ण विश्व की लगभग 26 प्रतिशत जनसंख्या बाल आयु वर्ग के अन्तर्गत आती है। अफ्रीकी देशों मे बाल जनसंख्या का अनुपात सर्वाधिक पाया जाता है जो समस्त जनसंख्या का औसतन 45 प्रतिशत है। संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाड़ा, पश्चिमी यूरोपीय देशों, आस्ट्रेलिया आदि विकसित देशों में जन्म दर निम्न होने तथा जीवन प्रत्याशा उच्च होने के कारण बाल जनसंख्या का आकार एवं अनुपात संकुचित है। इसके विपरित अल्प विकसित तथा विकासशील देशों में इसका आकार विशाल और अनुपात उच्च पाया जाता है। यह अनुपात विकसित देशों में 16 प्रतिशत तथा विकासशील देशों में 29 प्रतिशत पाया जाता है।

(ब) वयस्क आयु वर्ग– यह बाल वर्ग की ऊपरी सीमा (15 वर्ष) से लेकर वृद्ध आयु वर्ग की निचली सीमा (65 वर्ष) से नीचे तक के व्यक्तियों को समाहित किया जाता है। यह आयु वर्ग क्रियाशील जनसंख्या का प्रमुख घटक है। इसके दो उपवर्ग हो सकते हैं– युवा वर्ग (15–34) और प्रौढ़ वर्ग (35–64)। विश्व के विभिन्न देशों की न्यून जनसंख्या में वयस्क जनसंख्या के प्रतिशत में उल्लेखनीय भिन्नता पायी जाती है। जिन देशों में बाल संख्या अधिक होती है वहाँ प्रौढ़ जनसंख्या का अनुपात अपेक्षाकृत निम्न होता है। वयस्क आयु वर्ग के आकार और जन्म दर में विपरीत सम्बन्ध पाया जाता है।

संयुक्त राष्ट्र संघ के आंकड़े (2014) के अनुसार कुल जनसंख्या में वयस्क आयु वर्ग (15–64 वर्ष) का अनुपात विकसित देशों में 67 प्रतिशत और विकासशील देशों में 65 प्रतिशत है। सम्पूर्ण विश्व के लिए वयस्क आयु वर्ग का औसत 66 प्रतिशत है।

(स) वृद्ध आयु वर्ग– आयु के आधार पर जनसंख्या के तीन बृहद् वर्गों में अंतिम वर्ग वृद्ध जनसंख्या का है जिसके अन्तर्गत सामान्यतः 60 वर्ष या इससे अधिक आयु वाले व्यक्तियों को सम्मिलित किया जाता है। कुछ विकसित देशों में 60 के स्थान पर 65 वर्ष की आयु को इसकी निम्नतम सीमा माना जाता है। वृद्ध आयु वर्ग की स्त्रियों तथा पुरुषों दोनों की क्रियाशीलता क्रमशः कम होते–होते समाप्त हो जाती है। सम्पूर्ण विश्व की 8 प्रतिशत जनसंख्या 65 वर्ष या इससे अधिक आयु वाली है। विकसित देशों में अन्य मृत्यु दर तथा अन्य जीवन प्रत्याशा के परिणाम स्वरूप औसत 6 प्रतिशत जनसंख्या ही इस आयु वर्ग में पायी जाती है। वृद्ध आयु वर्ग के स्त्री–पुरुष सामान्यतः आर्थिक क्रियाशीलता के अभाव में आर्थिक रूप से वयस्क आयु वर्ग पर आश्रित होते हैं। इस आयु वर्ग की सर्वव्यापी और कठिन समस्या बढ़ती आयु के साथ गिरते हुए स्वास्थ्य तथा रोग ग्रस्तता की होती है।

लिंगानुपात

जनसंख्या में लिंग अनुपात पुरूष तथा स्त्रियों के बीच सन्तुलन का एक सूचक होता है। लिंग अनुपात ज्ञात करने हेतु प्रति हजार पुरूषों पर स्त्रियों की ज्ञात की जाती है। कुछ देशों में यह निम्न सूत्र द्वारा परिकलित किया जाता है।

$$\frac{\text{पुरूषों की जनसंख्या}}{\text{स्त्रियों की जनसंख्या}} \times 1000$$

अथवा प्रति हजार स्त्रियों पर पुरूषों की संख्या।

भारत में इस सूत्र का प्रयोग कर लिंगानुपात ज्ञात किया जाता है।

$$\frac{\text{स्त्रियों की जनसंख्या}}{\text{पुरूषों की जनसंख्या}} \times 1000$$

अथवा प्रति हजार पुरूषों पर स्त्रियों की संख्या

सारणी 4.1 में महाद्वीपों के अनुसार विश्व लिंगानुपात को दर्शाया गया है।

सारणी 4.1 : विश्व लिंगानुपात 2015

विश्व व महाद्वीप	लिंगानुपात (प्रति हजार पुरूषों पर स्त्रियों की संख्या)
विश्व	983
एशिया	964
अफ्रीका	999
यूरोप	1055
लेटिन अमेरिका	1033
उत्तरी अमेरिका	1029
ओशेनिया	1000

स्रोत : जनसंख्या विभाग, यूनाइटेड नेशनश संदर्भिका, 2015

विश्व के विभिन्न देशों के ग्रामीण–नगरीय लिंगानुपात में भी अन्तर पाया जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका तथा पश्चिमी यूरोपीय देशों में ग्रामीण तथा नगरीय लिंगानुपात एशिया के देशों से बिल्कुल भिन्न है। पश्चिमी देशों के ग्रामीण क्षेत्रों में पुरूषों की संख्या स्त्रियों से अधिक पायी जाती है। जबकि नगरों में स्त्रियों की संख्या पुरूषों से अधिक पायी जाती है। इसका प्रमुख कारण स्त्रियों का रोजगार के लिए नगरों की ओर प्रवास करना है।

सन् 1980 में विश्व में औसत रूप से प्रति हजार पुरूषों के पीछे 993 स्त्रियां थी अर्थात् एक हजार पुरूष संख्या पर 7 स्त्रियां कम थी। वर्ष 2015 के आँकड़ों से ज्ञात होता है कि यह लिंगानुपात 983 तक आ गया अर्थात एक हजार पुरूषों पर 17 स्त्रियां कम है। क्षेत्रीय स्तर पर भी इस औसत में कई गुना भिन्नता दिखाई देती है। विश्व के कई देश ऐसे हैं जहाँ स्त्रियों की संख्या पुरूषों के अनुपात में अधिक है और कई देश ऐसे हैं जहाँ स्त्रियों के अनुपात में पुरूषों की संख्या अधिक है। लिंगानुपात की इस भिन्नता के आधार पर विश्व को चार भागों में विभाजित किया जा सकता है।

(अ) अत्यधिक स्त्री अधिकता वाले देश : इस श्रेणी में 1050 से अधिक लिंगानुपात वाले देश सम्मिलित होते हैं जिसमें पश्चिमी यूरोपीय देश, संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, दक्षिणी अमेरिका के दक्षिणी क्षेत्रों में स्त्रियों की संख्या अत्यधिक है।

(ब) स्त्री अधिकता वाले देश : इस श्रेणी में 1050 से 1000 लिंगानुपात रखने वाले देश जैसे यूक्रेन, बेलारूस, पोलेण्ड, मंगोलिया, कजाकिस्तान, थाईलेण्ड, कम्बोडिया, म्याँनमार, दक्षिण अफ्रीकी देश है।

(स) पुरूष अधिकता वाले देश : इस वर्ग के देशों में लिंगानुपात 1000 से 950 के मध्य पाया जाता है। इसमें आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, चीन, कोरिया, मेक्सिको, ब्राजील, इरान और क्यूबा देशों में पुरूषों की अधिकता है।

(द) अत्यधिक पुरूष अधिकता : विश्व के कई देशों में 950 से भी कम लिंगानुपात पाया जाता है। भारत इस श्रेणी का मुख्य प्रतिनिधित्व करता देश है। जहाँ घटता लिंगानुपात जनसंख्या के असन्तुलन के लिये चिन्ताजनक है।

विश्व स्तर पर भी लिंगानुपात में पुरूषों की प्रधानता बताता है, लेकिन अफ्रीका, उत्तरी व दक्षिणी अमेरिका व यूरोप महाद्वीपों में स्त्रियों का अनुपात पुरूषों से अधिक पाया जाता है।

भारत जैसे विकासशील देश में पुरूषों की अपेक्षा स्त्रियों का अनुपात कम पाया जाता है। इसका मुख्य कारण यहाँ के समाज का परम्परावादी होना है। स्त्रियों में शिक्षा, रोजगार अवसर, सुरक्षा तथा समाज में उचित स्थान प्राप्त नहीं होना इसके मुख्य कारण है।

जनसंख्या संघटन

जनसंख्या संघटन में किसी देश की नगरीय व ग्रामीण जनसंख्या के अनुपात को देखा जाता है। गाँवों में रहने वाली कृषि अथवा, प्राकृतिक क्रिया– कलापों में संलग्न जनसंख्या को ग्रामीण जनसंख्या और नगरों में निवास करने वाली गैर–कृषि कार्य जैसे उद्योग व अन्य सेवाओं में संलग्न जनसंख्या को नगरीय जनसंख्या कहते हैं। ग्रामीण और नगरीय क्षेत्रों में आयु–लिंग संघटन, व्यावसायिक संरचना, जनसंख्या का घनत्व तथा विकास स्तर अलग–अलग होता है।

विश्व की कुल जनसंख्या का 50 प्रतिशत से अधिक नगरों में निवास करता है। विश्व स्तर पर नगरीय जनसंख्या में प्रतिवर्ष 6 करोड़ की वृद्धि हो रही है, जो ग्रामीण जनसंख्या वृद्धि से तीन गुना अधिक है। एशिया तथा अफ्रीका महाद्वीप में 38 प्रतिशत जनसंख्या का निवास नगरों में है, जबकि उ. अमेरिका तथा पश्चिमी यूरोपीय देशों में 75–78 प्रतिशत जनसंख्या नगरों में निवास करती है।

सन् 1800 ई. तक विश्व की केवल 2.5 प्रतिशत जनसंख्या नगरों में निवास करती थी। यह 1960 में बढ़कर 35 प्रतिशत, 1999 में बढ़कर 45 प्रतिशत तथा 2015 तक 53 प्रतिशत से अधिक हो गई। विकासशील देशों में एक महत्त्वपूर्ण लक्षण बड़े–बढ़े नगरों की संख्या में वृद्धि होना है। विश्व की आधी से अधिक जनसंख्या नगरों में निवास करती है। 1960 से 2000 तक नगरीय जनसंख्या 80 करोड़ से बढ़कर 290 करोड़ हो गई। यह तीन गुने से अधिक वृद्धि है। इसी अवधि में विश्व की कुल जनसंख्या में मात्र दो गुना 3 अरब से 6 अरब वृद्धि अंकित की गई। एक जनसंख्या प्रक्षेपण के अनुसार सन् 2030 ई. तक नगरीय जनसंख्या 8 अरब तक बढ़ जायेगी।

विश्व जनसंख्या के आँकड़ें बताते हैं कि 1975 में विश्व की 38 प्रतिशत जनसंख्या नगरों में निवास करती थी जो 2015 में 53 प्रतिशत हो चुकी है अनुमान है कि 2025 तक विश्व की 61 प्रतिशत जनसंख्या नगरीय हो जायेगी।

नगरीय जनसंख्या वितरण

नगरीय जनसंख्या के वितरण के अनुसार विश्व में वितरण का वर्गीकरण इस प्रकार है।

(अ) उच्च नगरीय जनसंख्या : इस वर्ग में विश्व के वे देश

आते हैं जिनमें नगरीय जनसंख्या का प्रतिशत 60 से अधिक है। संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, मेक्सिको, ब्राजील, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, जापान, सिंगापुर, अर्जेन्टाइना एवं यूरोप महाद्वीप के अधिकांश देशों में नगरीय जनसंख्या का उच्च प्रतिशत पाया जाता है।

(ब) मध्यम नगरीय जनसंख्या : इस वर्ग में विश्व के वे देश सम्मिलित होते हैं जिनमें नगरीय जनसंख्या का प्रतिशत 40 से 60 तक पाया जाता है। चीन, इण्डोनेशिया, द. अफ्रीका, मिश्र, वेनेजुऐला, क्यूबा, जेमैका और हैती आदि देश मध्यम नगरीय जनसंख्या रखते हैं।

(स) न्यून नगरीय जनसंख्या : इस वर्ग 40 प्रतिशत से कम नगरीय जनसंख्या वाले देशों में भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, नेपाल, दक्षिणी पूर्वी एशिया एवं अफ्रीका महाद्वीप के अधिकांश देश सम्मिलित होते हैं।

साक्षरता

साक्षरता द्वारा जनसंख्या के गुणात्मक पहलुओं का अध्ययन किया जाता है। यह प्रदेश के सामाजिक आर्थिक– विकास का विश्वसनीय तथा यथार्थ सूचक होता है। विश्व स्तर पर साक्षरता दर में अत्यधिक विभिन्नता पायी जाती है। साक्षरता दर कुल जनसंख्या के उस प्रतिशत को प्रदर्शित करती है जिसमें 7 वर्ष तथा अधिक आयु के लोग दैनिक जीवन में पढ़ तथा लिख कर एक–दूसरे को समझ व समझा सके। मानव विकास सूचकांक के निर्धारण में साक्षरता को सामाजिक–सांस्कृतिक, आर्थिक तथा राजनीतिक उन्नति का विश्वसनीय सूचक माना जाता है। वास्तव में गरीबी उन्मूलन, कृषिक विकास, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के लिए साक्षरता आवश्यक तत्व है इसलिए साक्षरता जनसंख्या के प्रजनन, मृत्यु दर, गत्यात्मकता तथा व्यवसाय आदि पक्षों को प्रभावित करती है। अतः किसी समाज में शिक्षा को उपयुक्त अवसर प्राप्ति का प्रमुख स्रोत माना जाता है। इसलिए किसी क्षेत्र के सम्पूर्ण सामाजिक–आर्थिक व्यक्तित्व के ज्ञानार्थ साक्षरता का महत्व सर्वाधिक है।

साक्षरता दर को प्रभावित करने वाले कारकों में आर्थिक विकास का स्तर, नगरीकरण जीवन स्तर, महिलाओं की सामाजिक स्थिति, विभिन्न सुविधाओं तथा सरकारी नीतियाँ प्रमुख है। आर्थिक विकास का स्तर साक्षरता के कारण ही संभव हो पाता है। सारणी में विश्व साक्षरता के आँकड़ों को प्रदर्शित किया गया है।

सारणी 4.2 : विश्व शत–प्रतिशत साक्षरता वाले देश

देश का नाम	साक्षरता 15 या उससे अधिक आयु (2008)
जापान	100
आस्ट्रेलिया	100
डेनमार्क	100
फिनलैण्ड	100
स्वीडन	100
नार्वे	100
विश्व	77

स्रोत : मानव विकास रिपोर्ट, 2008, ऑक्सफोर्ड यूनिवरसिटी प्रेस

जिन देशों में साक्षरता एवं शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता है वहाँ की जनसंख्या विभिन्न क्षेत्रों में उन्नति व विकास करती है। विश्व स्तर पर सभी देशों की सरकार इस और प्रयत्नशील रहती है कि उन्नत तथा नगरीय अर्थ व्यवस्थाएँ उच्चतर साक्षरता दर तथा उच्चतर शैक्षणिक स्तर को प्रतिबिम्बित करती है। विकासशील देशों को इस ओर ध्यान देने की विशेष आवश्यकता है।

जनसंख्या की व्यावसायिक संरचना

व्यावसायिक संरचना के अन्तर्गत कुल जनसंख्या में कार्यरत जनसंख्या के विभिन्न व्यवसाय अथवा कार्यों में सलग्नता का अध्ययन किया जाता है। परिश्रम युक्त व्यवसायिक कार्यों में जुड़ी तथा इन्हीं कार्यों से जीविकोपार्जन करने वाली जनसंख्या को आर्थिक रूप से सक्रिय जनसंख्या कहा जाता है। किसी निश्चित आर्थिक कार्य के अन्तर्गत जुड़ी हुई है इसी सक्रिय जनसंख्या के आनुपातिक वितरण को जनसंख्या की व्यावसायिक संरचना कहते हैं।

संयुक्त राष्ट्र के अनुसार कई प्रकार के व्यावसायिक वर्ग होते हैं जैसे– कृषि, वानिकी, आखेट, मत्स्य पालन, पशुपालन, खनन उत्खनन, विनिर्माण उद्योग, निर्माण कार्य, बिजली गैस, जल एवं स्वास्थ्य सेवाएं, वाणिज्य, परिवहन, भण्डारण एवं संचार सेवाएँ तथा अनेक अवर्गीकृत व्यवसाय। यह वर्गीकरण अन्तर्राष्ट्रीय तुलना के लिए होता है, लेकिन प्रत्येक देश अपनी जनसंख्या को अपनी आवश्यकतानुसार अलग–अलग व्यावसायिक वर्गों में वर्गीकृत करता है।

कार्यशील जनसंख्या (अर्थात् 15–64 आयु वर्ग में स्त्री और पुरूष), कृषि, वानिकी, मत्स्य, विनिर्माण, निर्माण, व्यावसायिक परिवहन, सेवाओं, संचार तथा अन्य अवर्गीकृत सेवाओं में संलग्न हैं। जिन देशों में अल्प विकसित अर्थ व्यवस्था पायी जाती है, वहाँ

प्राथमिक व्यवसाय में जनसंख्या का अनुपात अधिक सक्रिय रहता है। विश्व के विकासशील देशों या विकसित होती अर्थव्यवस्थाओं में द्वितीयक तथा तृतीयक कार्यों में कार्यशील जनसंख्या का अनुपात अधिक सक्रिय होता है।

अति विकसित या औद्योगीकृत देशों में तृतीयक व्यवसाय में 40–45 प्रतिशत तक कार्यशील जनसंख्या सक्रिय रहती है। संयुक्त राज्य अमेरिका तथा पश्चिम यूरोपीय देशों में इस व्यवसाय में 60–70 प्रतिशत तक जनसंख्या जुड़ी है। चतुर्थक व्यवसाय का प्रतिशत जनसंख्या में तुलनात्मक रूप से कम पाया जाता है, लेकिन इनकी आय सर्वाधिक होती है। इस व्यवसाय से सम्बन्धित जनसंख्या अपने विचारों शोध आदि कार्यों से समय को गतिशीलता प्रदान करती है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

1. जनसंख्या संरचना जनसंख्या की इन विशेषताओं को प्रदर्शित करती है, जिनको मापा जा सकता है।
2. विभिन्न आयु वर्गों में लोगों की संख्या को जनसंख्या की आयु संरचना कहते हैं।
3. विभिन्न आयु वर्गों के आकार जनसंख्या अनुसार तथा समयानुसार बदलते रहते हैं।
4. आयु वर्ग, लिंगानुपात, साक्षरता, ग्रामीण–नगरीय जनसंख्या–अनुपात, जनसंख्या की व्यावसायिक संरचना आदि जनसंख्या संघटन को प्रदर्शित करने वाले महत्वपूर्ण घटक होते हैं।
5. पुरूष तथा स्त्रियों के बीच सन्तुलन के सूचक को जनसंख्या का लिंगानुपात कहते हैं।
6. नगरीय जनसंख्या गैर कृषि या औद्योगिक एवं निर्माण कार्यों में संलग्न होती है।
7. विश्व की नगरीय जनसंख्या में प्रतिवर्ष, 6 करोड़ की वृद्धि हो रही है। जो ग्रामीण जनसंख्या में हो रही वृद्धि का लगभग तीन गुना है।
8. 1960 से 2000 के बीच नगरीय जनसंख्या 80 करोड़ से बढ़कर 290 करोड़ हो गई। यह वृद्धि तीन गुने से अधिक है।
9. साक्षरता जनसंख्या की एक गुणात्मक विशेषता होती है जो किसी क्षेत्र की सामाजिक–आर्थिक विकास का एक विश्वसनीय तथा यथार्थ सूचक होता है।

10 कार्यशील जनसंख्या के अन्तर्गत युवा व प्रौढ़ वर्ग (15–64 वर्ष तक) को ही सम्मिलित किया गया जाता है।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न

1. वृद्ध आयु जनसंख्या वर्ग में कितने वर्ष से ऊपर की जनसंख्या सम्मिलित होती है।

   (अ) 60 वर्ष (ब) 62 वर्ष

   (स) 68 वर्ष (द) 65 वर्ष

2. विश्व के सर्वाधिक वृद्ध व्यक्तियों का प्रतिशत किस देश में है–

   (अ) भारत (ब) जापान

   (स) चीन (द) दक्षिण अफ्रीका

3. विश्व में किस आयु वर्ग का प्रतिशत सर्वाधिक है–

   (अ) 65 वर्ष से अधिक (ब) 0–14 वर्ष

   (स) 25 से 54 वर्ष (स) उपर्युक्त सभी

4. शत–प्रतिशत साक्षरता वाला देश है–

   (अ) जापान (ब) भारत

   (स) चीन (द) यू.एस.ए.

5. उच्च नगरीय जनसंख्या किस देश में पाई जाती है–

   (अ) मिश्र (ब) सिंगापुर

   (स) बांग्लादेश (द) भारत

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

6. आयु वर्ग के अनुसार किस वर्ग में सर्वाधिक जनसंख्या पायी जाती है।
7. जनसंख्या संरचना में बाल वर्ग किस आयु वर्ग से सम्बन्धित है।
8. साक्षरता का महत्व बताइए।
0. कृषि किस प्रकार के व्यावसायिक वर्ग से सम्बन्धित है?
10. विश्व में सर्वाधिक नगरीय जनसंख्या किस महाद्वीप में है।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

11. जनसंख्या संरचना या संघटन से क्या तात्पर्य है।
12. लिंग अनुपात किसे कहते हैं।
13. विकासशील देशों में नगरीकरण की दर तेजी से क्यों बढ़ रही है।
14. आयु–संरचना का क्या महत्त्व हैं?

निबन्धात्मक प्रश्न

15. जनसंख्या के ग्रामीण–नगरीय संघटन का वर्णन कीजिए।

16. लिंग–संरचना द्वारा प्रकट की जाने वाली विश्व जनसंख्या की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

आंकिक प्रश्न

17. विश्व लिंगानुपात के आंकड़ों को दण्ड आरेख में प्रदर्शित कीजिए।

पाठ 05
जनसंख्या : प्रवास एवं मानव विकास
(Population : Migration and Human Development)

जनसंख्या प्रवास–संकल्पना

मानव एक सामाजिक प्राणी होने के साथ–साथ एक गतिशील प्राणी है। वस्तुतः मानव विकास की प्रत्येक अवस्था में गतिशीलता जनसंख्या की एक आधारभूत विशेषता रही है। अतः मनुष्य प्रागैतिहासिक काल से ही विभिन्न प्राकृतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक कारकों से प्रभावित होकर एक स्थान विशेष से दूसरे स्थान की ओर प्रवास करता रहा है। आज जब गतिशीलता के अधिक अवसर उपलब्ध है, तो स्थानान्तरण मानव इच्छा का कारण बनता है। इसीलिए प्रवास को सामान्य जनसंख्या को प्रभावित करने वाले कुछ निश्चित संख्या में मनुष्यों के परिवर्तन के रूप में ही नहीं देखा जाता बल्कि बसने के लिए चुने गए स्थानों एवं छोड़े गए स्थानों दोनों ही समाजों के सामाजिक, व्यावसायिक, जनांकिकी संरचना में भी परिवर्तन के कारण के रूप में समझा जाता है।

संयुक्त राष्ट्र संघ के अनुसार ''प्रवसन एक प्रकार की भौगोलिक या स्थानिक प्रवासिता है, जो एक भौगोलिक इकाई तथा दूसरी भौगोलिक इकाई के मध्य देखने को मिलती है, जिनमें रहने का मूल स्थान अथवा पहुँचने का स्थान दोनों भिन्न होते हैं। इस प्रकार का प्रवसन अधिकतर स्थायी होता है, क्योंकि इसमें मानव का निवास स्थान स्थायी रूप से परिवर्तित हो जाता है।''

बोग महोदय ने प्रवास को परिभाषित करते हुए कहा है कि– ''एक मानव समुदाय या समूह द्वारा अपने स्थान को त्यागकर किसी अन्य स्थान पर जाकर रहना या बसना ही प्रवसन कहलाता है।''

प्रवास के प्रकार

पृथ्वी के विभिन्न भागों में एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में मानव वर्गों का प्रवास होता रहता है, इसे हम जनसंख्या का स्थानान्तरण भी कहते हैं– प्रवास के दो भेद है–

1. उत्प्रवास

स्थानान्तरण की वह प्रक्रिया जिसके द्वारा एक स्थान से मनुष्य दूसरे स्थान को जाते हैं। जैसे– यूरोप से उत्तरी अमेरिका, दक्षिणी अमेरिका, आस्ट्रेलिया आदि देशों में गमन हुआ है।

2. आप्रवास

आगमन की प्रक्रिया जिसके द्वारा बाहरी स्थानों से मानव किसी प्रदेश या स्थान के अन्दर आते हैं। जैसे– उत्तरी अमेरिका में ब्रिटेन, जर्मनी, इटली, फ्रांस आदि देशों से मनुष्यों का आप्रवास होता रहा है।

मानव प्रवास के पक्ष

मानव प्रवास का अध्ययन विभिन्न पक्षों में किया जा सकता है। जिससे प्रवसन का क्षेत्र, अवधि एवं प्रवसन करने वाले लोगों की संख्या, आयु, लिंग, धर्म, प्रजाति आदि प्रमुख है।

प्रत्येक जनसंख्या प्रवास के 5 पक्ष होते हैं, जिनमें विभिन्न दृष्टिकोणों से किसी प्रवास पर विचार किया जाता है।

(i) देश पक्ष
(ii) काल पक्ष
(iii) कारण पक्ष
(iv) संख्या पक्ष
(v) स्थिरता पक्ष

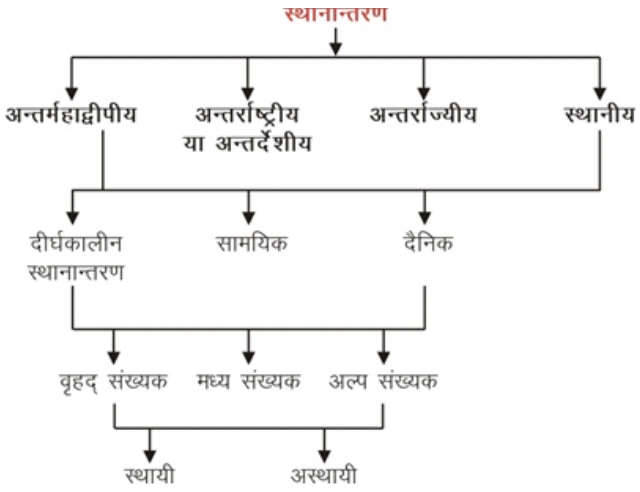

रेखाचित्र 5.1 : देश, काल, संख्या और अस्थिरता के अनुसार स्थानान्तरण के प्रकार

(i) देश पक्ष : इसमें यह विचार किया जाता है कि जनसंख्या किस प्रदेश या क्षेत्र से कहाँ को प्रवास करती है। अन्तर्महाद्विपीय प्रवास, अन्तर्राष्ट्रीय प्रवास, अन्तर्राज्यीय प्रवास एंव स्थानीय प्रवास प्रमुख है।

(ii) काल पक्ष : इसमें दीर्घकालीन प्रवास, सामयिक प्रवास दैनिक प्रवास, आदि का अध्ययन किया जाता है।

(iii) कारण पक्ष : इसमें जनसंख्या प्रवास के कारणों पर विचार किया जाता है। भौतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनैतिक कारण आदि प्रमुख है।

(iv) संख्या पक्ष : प्रवास के संख्या पक्ष में इस बात का विचार किया जाता है कि किसी देश से बाहर जाने वाली प्रवासित या उत्प्रवासी जनता, और बाहरी देशों से आने वाली अप्रवासी जनता की संख्या कितनी है।

(v) स्थिरता पक्ष : ऐसे प्रवास जिनमें प्रवासी जनता नये देशों में जाकर स्थायी प्रकार से बस जाती है। अमेरिका, दक्षिणी ऑस्ट्रेलिया, दक्षिणी अफ्रीका आदि में यूरोपीय लोग स्थाई प्रकार से बस गये।

स्थानान्तरण के प्रकार

प्रवास मुख्यतया एक देश या एक महाद्वीप से दूसरे देशों या एक ही देश के विभिन्न क्षेत्रों के मध्य होता है। इस आधार पर इसे दो भागों में बांटा जा सकता है।

(अ) अन्तर्राष्ट्रीय स्थानान्तण

(ब) अन्तर्देशीय स्थानान्तण

(अ) अन्तर्राष्ट्रीय स्थानान्तरण

विश्व में एक महाद्वीप से दूसरे महाद्वीप में या एक देश से दूसरे देश में लोगों के होने वाले प्रवास को अन्तर्राष्ट्रीय प्रवास कहते हैं। लोगों का अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर स्थानान्तरण अधिकतर आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक कारणों से हुआ है। प्राचीन काल से वर्तमान काल तक मनुष्य किसी न किसी कारण से प्रभावित होकर स्थानान्तरण करता रहा है। वर्तमान में स्थानान्तरण रोजगार प्राप्ति के लिए भी किया जा रहा है।

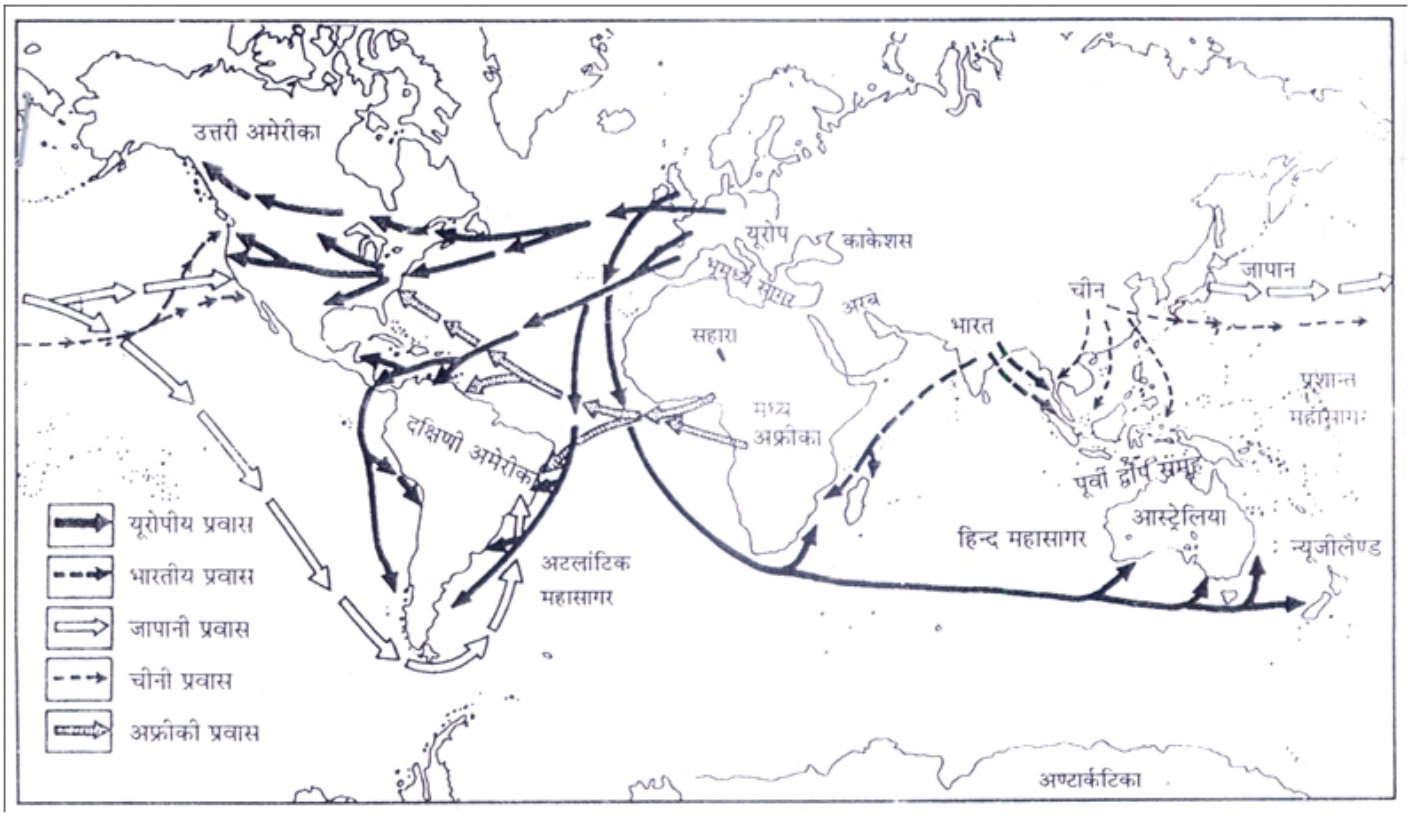

मानचित्र 5.1 : प्राचील काल में मानव जातियों का प्रवास

विश्व के प्रमुख अन्तर्राष्ट्रीय स्थानान्तरण

(i) **यूरोपीय प्रवास** : यूरोप महाद्वीप के उत्तरी– पश्चिमी भाग से दूसरों देशों में प्रवास अधिक रहा है। इस क्षेत्र के लोग समुद्री मार्ग से होकर 12वीं शताब्दी से 20 वीं शताब्दी तक विश्व के अनेक देशों में जाकर स्थायी रूप से रहने लग गए। यूरोप महाद्वीप में संसाधनों की कमी तथा जीवन स्तर के गिरने के दबाव के कारण यहाँ से विश्व के अन्य ज्ञात देशों की ओर प्रवास करने लगे। यूरोप के पश्चिमी भाग में समुद्री तट पर स्थित देशों ईंग्लैण्ड, फ्रांस जर्मनी, पुर्तगाल, स्पेन, नीदरलैण्ड आदि देशों के लोग समुद्री मार्ग से होकर अफ्रीका, एशिया तथा अमेरिकी महाद्वीप के देशों में प्रवासित हो गये। अपनी उच्च तकनीकी के उपयोग से वहाँ जाकर इन लोगों ने संसाधनों का अति तीव्र गति से दोहन किया।

यूरोपीय देशों के नागरिक यहाँ स्थानान्तरित होकर विश्व के दो मुख्य भागों में जाकर बस गये।

(अ) उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्र : उत्तरी अमेरिका एवं दक्षिणी अमेरिका के समुद्र तटीय उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों में जहाँ सुगमता से जाया जा सकता था।

एशिया महाद्वीप के दक्षिणी–पूर्वी भाग में स्थित देश, यहाँ जाकर इन लोगों ने कपास, गन्ना, गर्म मसाले, तम्बाकू, कहवा, चाय, चावल आदि व्यापारिक फसलों का उत्पादन प्रारम्भ किया गया। इन बागानों पर मजदूरी करवाने के लिए यूरोपीय लोग अन्य देशों से बन्धुआ मजदूर पकड़कर लाते थे।

(ब) शीतोष्ण कटिबन्धीय क्षेत्र : यह जलवायु यूरोपीय लोगों के लिए अनुकूल थी जिस कारण इन क्षेत्रों में ये लोग स्थायी रूप से जाकर बस गये । इन क्षेत्रों में जनसंख्या भी यूरोपीय लोगों के आगमन के पूर्व बहुत विरल थी। अतः इन्हें वहाँ जाकर स्थायी रूप से रहने में कोई कठिनाई नहीं हुई। उत्तरी अमेरिका के संयुक्त राज्य, कनाड़ा, दक्षिणी, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड आदि शीतोष्ण कटिबन्ध में स्थित देशों में इन लोगों की संख्या अधिकतम पायी जाती है।

यूरोपीय लोगों का दूसरे देशों में प्रवास सन् 1820 से पूर्व बहुत कम था लेकिन इसे बाद बढ़ती जनसंख्या व घटते आर्थिक संसाधनों के कारण 1820 से 1940 के मध्य लगभग 6 करोड़ से अधिक यूरोपीय लोग विश्व के अन्य देशों में जाकर स्थायी रूप से बस गये। संयुक्त राज्य अमेरिका निश्चित ही सबसे बड़ा प्राप्तकर्ता देश था और 1840 से 1914 के बीच इसने 5 करोड़ लोगों को शरण दी जिनसे 4 करोड़ लोग अन्तिम 34 वर्षों में ही आए थे।

(ii) **एशियाई देशों से प्रवास** : मानव शास्त्रियों का मत है कि मानव प्रजातियों की उत्पत्ति मध्य एशियाई भाग में हुई। जलवायु की दशाओं के परिवर्तन होते रहने एवं नवीन प्रजाति द्वारा प्राचीन प्रजाति को स्थान विशेष से बाहर की ओर खदेड़ने के कारण प्रागैतिहासिक काल में मध्य एशिया से विभिन्न प्रजातियाँ प्रवासित होकर विश्व के विभिन्न भागों में जाकर स्थायी रूप से बस गयी (चित्र 5.1)।

18वीं शताब्दी के बाद बढ़ती जनसंख्या के दबाव के कारण चीन, भारत एवं जापान के लोग अपने पड़ोसी देशों में प्रवासित हो गये एवं वहाँ स्थायी रूप से रहने लगे। क्योंकि उस समय पड़ोसी देशों की जनसंख्या बहत कम थी। चीन से बहुत लोग 20वीं शताब्दी के पहले एशिया के दक्षिणी–पूर्वी भाग में स्थित देशों मंचुरिया, कोरिया, मलेशिया, थाईलैण्ड, हिन्देशिया, वियतनाम, फिलीपीन्स, म्यांमार आदि विरल जनसंख्या वाले देशों में जाकर बस गये। इसके अलावा चीनी लोग अमेरिका, अफ्रीका देशों में भी जाकर स्थायी रूप से रहने लगे। जापान एक छोटा देश होने के कारण यहाँ प्रारम्भ से ही जनसंख्या दबाव अधिक रहा है। अतः यहाँ से जापानी लोग 1880 से 1900 के मध्य हवाई द्वीप, संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाड़ा, ब्राजील, ऑस्ट्रेलिया, मंचूरिया, कोरिया, मलेशिया आदि देशों में प्रवसन कर गए।

भारत से लोगों का समीपवर्ती देशों में प्राचीन काल में अपने धार्मिक उपदेशों के प्रचार के लिए कई लोग विभिन्न देशों में गये। बौद्ध धर्म का प्रचार–प्रसार करने के लिए बौद्ध भिक्षु प्राचीन काल में म्यांमार, श्रीलंका, मलेशिया, हिन्देशिया, आदि देशों में प्रवसन कर गये। भारत पर अंग्रेजों के शासनकाल के समय अंग्रेजों ने अपने कृषि बागानों पर मजदूरी करवाने हेतु भारतीयों को दक्षिण अफ्रीका, मॉरीशस, फिजी, त्रिनिडाड स्थानान्तरित किया जो वहीं के स्थायी निवासी हो गये।

(ब) अंतर्देशीय स्थानान्तरण

एक ही देश के विभिन्न राज्यों या प्रदेशों के मध्य लोगों के एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर होने वाले प्रवसन को आन्तरिक प्रवसन कहते हैं।

(i) अर्न्तराज्यीय प्रवास : एक ही देश में विभिन्न भागों के मध्य इस प्रकार का प्रवसन होता है। भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद एक राज्य से दूसरे राज्य के मध्य जैसे– उत्तर प्रदेश तथ हरियाणा से कई लोग दिल्ली आकर बस गये (चित्र 5.3)। राजस्थान से बहुत से लोग, महाराष्ट्र, गुजरात, आदि राज्यों में जाकर बस गये ।



चित्र 5.1 : आदी मानव का प्रवास



चित्र 5.2 : राजनैतिक कारणों से प्रवास



चित्र 5.3 : अन्तर्राज्यीय प्रवास



चित्र 5.4 : स्थानीय प्रवास

संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रारम्भ से लोग पूर्वी प्रान्तों मेंरहते थे। लेकिन धीरे–धीरे यातायात सुविधाओं तथा जनसंख्या दबाव के कारण यहाँ के लोग पश्चिमी प्रान्तों की ओर प्रवसन कर गये। रूस में 1917 की क्रांति के बाद रूसी लोग पूर्वी एवं पश्चिमी भाग से साइबेरिया के कृषि फार्मों में जाकर बस गये। अतः विश्व के लगभग प्रत्येक देश में लोग एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त की ओर व्यापार, उद्योग, कृषि, खनिज आदि में मजदूरी करने के उद्देश्य से स्थानान्तरित होते रहे हैं।

ii) स्थानीय प्रवास : स्थानीय प्रवसन में लोगों का स्थानान्तरण देश में एक ही प्रान्त के विभिन्न जनपदों के मध्य होता रहता है। ग्रामीण लोग शहरों में मजदूरी के लिए या उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए जाते रहते हैं। स्थानीय प्रवसन एक ग्राम से नगर की ओर या नगर से ग्रामीण की ओर हो सकता है। नगरों से मिलने वाली विभिन्न सुविधाएं इन्हें आकर्षित करती हैं। चित्र 5.4 मुम्बई में हजारों लोग प्रतिदिन 100 से 200 किमी तक प्रवास करते हैं।

प्रवास के परिणाम

जिस स्थान से लोग जाते हैं तथा जाकर रहने लगते हैं। इन दोनों स्थानों पर प्रवासित जनसंख्या का प्रभाव पड़ता है। प्रवसन के कारण निम्न प्रभाव पड़ते हैं–

(i) जनसंख्या संतुलन बिगड़ता है। जिस स्थान से लोग जाते हैं वहाँ की जनसंख्या कम एवं जहाँ जाकर बसते हैं वहाँ की जनसंख्या अधिक हो जाती है।

(ii) प्रवास के कारण संस्कृति का प्रसार, प्रवासी लोग अपने साथ अपनी तकनीकी, धर्म, परम्पराएं एवं रीति–रिवाज, भाषा आदि लेकर जाते हैं। जिसका प्रभाव स्थानीय लोगों पर पड़ता है एवं उस स्थान विशेष की संस्कृति का प्रभाव प्रवासित लोगों पर पड़ता है। ये अपनी तकनीकी ज्ञान का उपयोग करके वहाँ के आर्थिक स्तर को ऊँचा उठाते हैं।

(iii) प्रवासी लोगों की वेशभूषा, रहन–सहन, खान–पान,

भाषा आदि के अनुसार ही उस क्षेत्र विशेष की संस्कृति धीरे–धीरे परिवर्तित हो जाती है। जैसा कि अंग्रेजों के आगमन से हमारी भारतीय संस्कृति परिवर्तित हो गयी।

(iv) प्रवास के कारण जनसंख्या दबाव, बेरोजगारी, निर्धनता आदि समस्याएँ बढ़ जाती हैं। जबकि जिस देश या स्थान से लोग प्रवसन करते हैं। वहाँ इन समस्याओं में कमी आने लगती है।

(v) प्रवासी लोगों की कार्यकुशलता, तकनीकी ज्ञान आदि के कारण उन क्षेत्रों के आर्थिक संसाधनों के विदोहन से उस देश या स्थान का आर्थिक स्तर उच्च हो जाता है। जैसे यूरोपियन लोगों के आने से अमेरिका, दक्षिण अफ्रिका आस्ट्रेलिया आदि विकसित राष्ट्र बने।

मानव विकास संकल्पना

विकास मूलतः एक बहुआयामी संकल्पना है, जिसमें आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक संस्थागत, मनोवैज्ञानिक, पारिस्थितिकीय एवं नैतिकता जैसे अनेकों पक्ष समाहित होते हैं। इसे बहुधा उस प्रक्रिया के रूप में अपनाते हैं, जिसमें लोगों के आर्थिक दशाओं में सुधार करने अथवा मानव कल्याण में वृद्धि करने अथवा जीवन की गुणवत्ता में अभिवृद्धि या उन्नयन करने का प्रयास किया जाता है। सर्वविदित है कि विकास का लक्ष्य लोगों का कल्याण ही होता है। तथापि जनकल्याण केवल धन के द्वारा ही सम्भव नहीं। आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विकास मानव कल्याण के प्रमुख पक्ष है। इन बातों को ध्यान में रखकर संयुक्त राष्ट्र ने सभी सदस्य देशों के समक्ष मानव विकास की संकल्पना का लक्ष्य प्रस्तुत किया है।

अनेक दशकों तक किसी देश के विकास के स्तर को केवल आर्थिक वृद्धि के रूप में ही देखा जाता था। इसका अर्थ यह है कि जिस देश की अर्थ व्यवस्था जितनी बड़ी होती है उसे उतना ही अधिक विकसित माना जाता था। लेकिन इस वृद्धि का अधिकाँश लोगों के जीवन में परिवर्तन से कोई सम्बन्ध नहीं था। पहली बार मानव विकास संकल्पना के सम्बन्ध में प्रसिद्ध अर्द्धशास्त्री महबूब–उल–हक और प्रो. अमृर्त्य सेन ने मानव विकास की अवधारणा का प्रतिपादन किया– मानव विकास एक ऐसे विकास के रूप में होता है जो लोगों के जीवन में सुधार लाता है और उनके लिए विकल्पों में वृद्धि करता है। इस अवधारणा में सभी प्रकार के विकास का केन्द्र बिन्दु मनुष्य है।

मानव विकास सूचकांक

संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (UNDP) ने 1990 में प्रकाशित प्रथम मानव विकास सूचकांक प्रतिवेदन (HDI Report) में "लोगों के विकल्पों की परिवर्द्धित करने की प्रक्रिया को मानव विकास के रूप में परिभाषित किया है। प्रतिवेदन के अनुसार, विकास सिर्फ लोगों की आय तथा पूँजी का ही विस्तार नहीं अपितु यह मानव के कार्यप्रणाली तथा क्षमताओं में वृद्धि करने का माध्यम है। दूसरे शब्दों में लोगों के जीवन विकल्पों के परिवर्द्धन की प्रक्रिया और जनकल्याण के स्तर को उपर उठाना ही मानव विकास है।

सारणी 5.1 : मानव विकास सूचकांक मूल्य (2013)

क्र.स.	देश	मानव विकास सूचकांक
1	नार्वे	0.955
2	आस्ट्रेलिया	0.938
3	संयुक्त राज्य अमेरिका	0.937
4	जर्मनी	0.920
5	स्वीडन	0.916
6	स्विट्जरलैण्ड	0.913
7	जापान	0.912
8	फ्रांस	0.893
9	यूनाईटेड किंगडम	0.875
10	अर्जेटीना	0.811
11	क्यूबा	0.780
12	मलेशिया	0.769
13	ब्राजील	0.730
14	ईरान	0.742
15	श्रीलंका	0.715
16	चीन	0.699
17	थाईलैण्ड	0.690
18	मिश्र	0.662
19	इण्डोनेशिया	0.629
20	भारत	0.554
21	केन्या	0.519
22	पाकिस्तान	0.515
23	बांग्लादेश	0.515
24	म्यांमार	0.498
25	नेपाल	0.463
26	जाम्बिया	0.448
27	चाड	0.340
28	नाईजर	0.304

स्रोत : *HDR Report UNDP*

मानव विकास, स्वास्थ्य भौतिक पर्यावरण से लेकर आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक स्वतंत्रता तक सभी प्रकार के मानव विकल्पों को सम्मिलित करते हुए लोगों के विकल्पों में विस्तार और उनके शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं तथा सशक्तिकरण के अवसरों में वृद्धि की प्रक्रिया है।

मानव विकास सूचकांक का अन्तर्राष्ट्रीय प्रारूप

वर्ष 2013 की मानव विकास रिपोर्ट के अनुसार 186 देशों के लिए मानव विकास सूचकांक की गणना की गई।

1. उच्च मानव विकास श्रेणी (0.71 से अधिक) : कुल 94 देशों नार्वे, आस्ट्रेलिया, सुयंक्त राज्य अमेरिका, नीदरलैण्ड जर्मनी, शिखर पर विद्यमान रहे, लगभग सभी पश्चिमी देशों के साथ जापान, इजराइल, सिंगापुर, हाँगकाँग, कोरिया, चिली, युरुग्वे, संयुक्त अरब अमीरात भी इस प्रथम श्रेणी में स्थान प्राप्त कर पाये।

2. मध्यम मानव विकास श्रेणी (0.5 से 0.70) : इस श्रेणी में 47 देश स्थित थे। चीन, थाईलैण्ड, मंगोलिया, फिलिपींस, भारत, इण्डोनेशिया, पाकिस्तान, बांग्लादेश इसी श्रेणी में विद्यमान थे।

3. निम्न मानव विकास श्रेणी (0.5 से कम) : इसमें 45 देश स्थित थे, जिनमें काँगो, चाड, म्यामांर, रवांडा, सूडान, इथियोपिया, अफगानिस्तान, गिनी, नाइजर, नेपाल, जाम्बिया आदि न्यूनतम स्तर पर रहे।

तुलनात्मक निष्कर्ष

मानव विकास के शिखर पर नार्वे, आस्ट्रेलिया व संयुक्त राज्य अमेरिका प्रतिस्थापित है। जबकि चाड, काँगो तथा माली न्यूनतम स्तरपर विद्यमान है।

भारत में मानव विकास सूचकांक

भारत को मध्यम मानव विकास श्रेणी में रखा गया है। 186 देशों में इसका 138 वाँ स्थान है। भारत में विभिन्न राज्यों में केरल (0.700) सर्वोच्च स्थान पर है। इसके बाद दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, गोवा और पंजाब राज्य आते हैं। जबकि बिहार, उड़ीसा और छत्तीसगढ़ जैसे राज्य देश में सबसे नीचे आते है। इसके कारण राजनीतिक, आर्थिक और ऐतिहासिक घटक प्रमुख है। केरल के मानव विकास सूचकांक का सर्वोच्च होना उसके लिए उच्च साक्षरता दर को महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

1. एक मानव समुदाय द्वारा अपने स्थान को त्यागकर किसी अन्य स्थान पर जाकर रहना या बसना ही प्रवास कहलाता है।
2. विश्व में एक महाद्वीप से दूसरे महाद्वीप में लोगों के होने वाले प्रवास को अन्तर्राष्ट्रीय प्रवास कहते है।
3. वर्तमान में प्रवास रोजगार प्राप्ति के लिये किया जा रहा है।
4. प्रवास से जनसंख्या संतुलन बिगड़ता है।
5. प्रवसन के कारण संस्कृति का प्रसार होता है।
6. मानव विकास मानव की आकाँक्षाओं, अभिरूचियों एवं उपलब्ध जीवनयापन की सुविधाओं के उत्तम स्तर पर विस्तृत करने की प्रक्रिया है।
7. यू. एन. डी. पी. (संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम) द्वारा सन् 1990 से प्रतिवर्ष मानव विकास प्रतिवेदन प्रकाशित किया जाता है।
8. मानव विकास रिपोर्ट में भारत की स्थिति कुल 186 देशों के समूह में 138वें स्थान पर है।
9. भारत में विभिन्न राज्यों में मानव विकास की दृष्टि से केरल 0.700 सर्वोच्च स्थान पर है।
10. मानव विकास की औसत उपलब्धियों को सरल, संश्लिष्ट सूचकांक द्वारा मापा जाता है। सूचकांक का मान शून्य से एक (0–1) के बीच ही रहता है।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक

1. स्थानान्तरण से निर्मित देश है ?
   (अ) संयुक्त राज्य अमेरिका (ब) जापान
   (स) कनाड़ा (द) केन्या
2. एक ही देश या राज्यों के विभिन्न प्रदेशों की ओर होने वाले प्रवास को कहते हैं?
   (अ) अप्रवास (ब) उत्प्रवास
   (स) अन्तर्राष्ट्रीय (द) अन्तर्देशीय
3. अन्तर्क्षेत्रीय प्रवास किसके मध्य होता है।
   (अ) ग्रामीण से नगर की और
   (ब) नगर से उपनगर की और
   (स) नगर से महानगर की और
   (द) उपर्युक्त सभी

4. वर्ष 2015 की मानव विकास रिपोर्ट में भारत कौनसे स्थान पर है–

(अ) 130वाँ (ब) 138वाँ

(स) 120वाँ (द) 135वाँ

5. मानव विकास सूचकाँक की रिपोर्ट कौनसा संगठन जारी करता है।

(अ) WTO (ब) UNDP

(स) WHO (द) UNO

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

6. मानव विकास सूचकांक का मूल्य न्यूनतम से अधिकतम किन अंकों के मध्य होता है।

7. मानव विकास रिपोर्ट, यू.एन.डी.पी. (संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम) द्वारा किस वर्ष में प्रकाशित की जा रही है।

8. मानव विकास की दृष्टि से भारत का कौनसा राज्य सर्वोच्च स्थान रखता है।

8. प्रवसन के कितने प्रकार है ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

10. प्रवास को परिभाषित कीजिए।

11. अन्तर्राष्ट्रीय प्रवसन किसे कहते है?

12. मानव विकास सूचकांक (एच.डी.आई.) किसे कहते है?

13. एशिया के कौनसे देश उच्च मानव विकास की श्रेणी में आते है?

निबंधात्मक प्रश्न

14. मानव विकास की संकल्पना को विस्तार से समझाइये।

15. उच्च मानव विकास और निम्न मानव विकास समूह के देशों के मध्य पाये जाने वाले अन्तरों को विस्तार से समझाइए।

आंकिक प्रश्न

16. विश्व मानचित्र में सभी देशों को उनके कोटि अनुसार मानव विकास सूचकांक मान के साथ प्रदर्शित कीजिए।

पाठ 06
विश्व : मानव अधिवास
(World : Human Settlments)

मानव अधिवास का अभिप्राय

पृथ्वी के धरातल पर मानव द्वारा निर्मित एवं विकसित आवासों के संगठित समूह को अधिवास कहते हैं मानव अधिवास को मानव बस्ती भी कहा जाता है। मानव अधिवास साधारणतया स्थायी रूप से बसे होते हैं किन्तु कुछ अधिवास अस्थायी भी होते हैं। ये एकाकी एवं संकुल भी होते हैं।

अधिवासों का महत्त्वपूर्ण उपयोग मानव निवास के लिये होता है। मानव के अपने सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक आदि कार्यों को पूरा करने के लिए भी अधिवासों का उपयोग होता है।

आवास, मकान, धर या निवास स्थान अधिवास की मूलभूत इकाई होती है। जो एक झोंपड़ी या भव्य इमारत हो सकती है। अधिवास मकानों के समूह होते हैं जो पाँच से लेकर सैकड़ों व हजारों मकानों के समूह में हो सकते हैं। बस्तियाँ छोटे रूप में विकसित होकर नगरों, महानगरों, विराट नगरों, विश्व नगरों एवं मिलियन सिटी का रूप धारण कर सकती है। आवासों के परस्पर सम्पर्क के लिए पगडण्डी, गली, सड़क, नहर, परिवहन मार्ग आदि होते हैं।

प्रो. विडाल डी लॉ ब्लॉश के अनुसार ''मानव द्वारा स्वयं के आवास एवं अपनी सम्पत्ति को रखने के लिए निर्मित संरचना से है।

मानव अधिवासों की उत्पत्ति : मानव ने अपनी विकास यात्रा में जब एकत्रीकरण और आखेट की अवस्था को पार कर पशुपालन अवस्था के साथ ही कृषि कार्य करना प्रारम्भ कर दिया तो पशुओं की, स्वयं की सुरक्षा और अनाज भण्डारण के लिए उसे स्थायी आवास की आवश्यकता हुई। प्राचीनकाल में सभी मानव बस्तियों पशुचारकों और कृषकों पर ही आधारित थी। जनसंख्या बढ़ने और संघर्ष की स्थिति में सुरक्षा की दृष्टि से आवासों की संख्या में वृद्धि होने लगी। लोग अलग–अलग दूरियों पर घर बनाकर रहने लगे। धीरे–धीरे मानव ने विकास किया। उत्पादन में वृद्धि से व्यापार एवं परिवहन का विकास हुआ। तकनीकी विकास और जनसंख्या वृद्धि से गांवों की संख्या में वृद्धि हुई। पुराने गांवों के आकार बढ़ने से नगरों के विकास की परम्परा प्रारम्भ हुई। वर्तमान से 5000 वर्ष पूर्व मिश्र, सिन्धु, दजला–फरात की घाटियों में विशाल नगरों की उत्पत्ति एवं विकास हुआ।

मानव अधिवासों की उत्पत्ति मूलतः अपने निवास के लिये होती है। इस आधार पर अधिवासों की उत्पत्ति को दो भागों में बांटा जा सकता है।

(अ) अस्थायी अधिवास

(ब) स्थायी अधिवास

(अ) अस्थायी अधिवास : प्राचीन काल में मानव द्वारा कुछ अधिवास शिकार, मौसम की अनुकूलता, पशुचारण एवं सुरक्षात्मक दृष्टिकोण से कुछ समय के लिये निर्मित किये जाते थे। आज के आधुनिक युग में भी नागा जैसे कई जनजातियों द्वारा स्थानान्तरण कृषि के लिये अस्थायी अधिवासों का निर्माण किया जाता है। मध्य एशिया के स्टेपी मैदान में खिरगीज जनजाति द्वारा पशुओं को चराने के लिए चारे की उपलब्धता तक तम्बुओं द्वारा अस्थायी अधिवास निर्मित किये जाते हैं। एस्किमों लोगों द्वारा मौसम की अनुकूलता के लिये ध्रुवीय क्षेत्रों के इग्लू (बर्फ के घर) को छोड़कर ग्रीष्मकाल में रेण्डियर और सील की खाल से अस्थायी आवास बनाये जाते है। इनके अतिरिक्त भी अनेक जनजातियाँ जैसे अरब व सहारा के बद्दू रॉकी पर्वत के पूर्वी भागों में रेड इण्डियन, अफ्रीका के कालाहारी मरूस्थल में बुशमैन द्वारा बनाये गये आवास अस्थायी अधिवासों के प्रमुख उदाहरण है। राजस्थान

के मारवाड़ प्रदेश की रेबारी, गायरी जाति तथा बंजारे पशुचारण हेतु मूल स्थान को छोड़ कर प्रवास के दौरान अस्थायी आवास बनाते हैं। सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक कार्यों को पूरा करने के लिए भी अस्थायी अधिवासों का उपयोग होता है।

(ii) **स्थायी अधिवास :** स्थायी अधिवासों की उत्पत्ति कब और कैसे हुई? वास्तविक रूप में यह कहना कठिन है। किन्तु विद्वान उत्तर पाषाण काल में स्थायी कृषि के साथ ही स्थायी अधिवासों की उत्पत्ति मानते हैं। यह कहा जा सकता है कि मानव के विकास क्रम में जब से मानव समूह में रहने लगा, तभी से स्थायी अधिवासों का विकास हुआ होगा।

मानव अधिवास मानव की सभ्यता और संस्कृति के प्रतीक माने जाते हैं। किसी मानव बस्ती का स्थायित्व निम्न बातों पर निर्भर करता है–

1. स्थानीय संचित संसाधन
2. बाह्य विश्व से सम्बन्ध
3. भावी उन्नति की संभावना
4. सुरक्षा
5. धार्मिक सांस्कृतिक और आर्थिक कारक।

मानव अधिवासों का निर्माण निम्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिये किया जाता है–

1. भौतिक वातावरण की कठोरता को कम करने के लिये– यथा मौसमी परिस्थितियों से सुरक्षा हेतु।
2. खाद्य व उपयोगी सामग्री के भण्डारण हेतु।
3. जंगली जानवरों व पशुओं से सुरक्षा।
4. सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक व शैक्षिक कार्यों के लिये।
5. पारिवारिक एवं विलासिता पूर्ण जीवन जीने के लिये।

मानव अधिवासों का वर्गीकरण

मानव अधिवासों को प्राकृतिक दशाओं और आधारभूत कार्यों के आधार पर दो वर्गों में वर्गीकृत किया जाता है।

(1) ग्रामीण अधिवास

(2) नगरीय अधिवास

(1) ग्रामीण अधिवास (ग्रामीण बस्तियाँ)

ग्रामीण अधिवासों की अर्थव्यवस्था प्राथमिक व्यवसायों पर निर्भर होती है। जैसे कृषि, पशुपालन, लकड़ी काटना, मछली पकड़ना, खनन एवं वनों से प्राप्त पदार्थों का संग्रहण आदि। अतः ग्रामीण अधिवास मुख्यतः भूमि के विदोहन पर आधारित होते हैं।

ग्रामीण अधिवासों पर आधुनिकता का प्रभाव नगण्य होता है। इसलिये यहाँ सामाजिक संगठन सुदृढ़ एवं मानव मूल्यों में प्रगाढ़ता पायी जाती है। सामाजिक मूल्यों (हितों) को व्यक्तिगत मूल्यों से ऊपर रखा जाता है।

ग्रामीण अधिवास के प्रकार :

मकानों की संख्या और उनके बीच की दूरी के आधार पर किये गये विभाजन को अधिवासों का प्रकार कहा जाता है।

ग्रामीण अधिवासों के प्रकारों के लिये भौतिक लक्षण सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारक (जाति–धर्म) और सुरक्षा आदि अनेक कारक उत्तरदायी है। सामान्यतः ग्रामीण अधिवासों के निम्नलिखित 4 प्रकार दृष्टिगोचर होते हैं।

1. सघन या गुच्छित अधिवास
2. प्रकीर्ण या एकाकी अधिवास
3. मिश्रित अधिवास
4. पल्ली अधिवास

1. सघन या गुच्छित अधिवास

इन ग्रामीण अधिवासों को पुंजित, संहत, संकेन्द्रित, संकुलित आदि नामों से भी जाना जाता है। सघन ग्रामीण अधिवास उपजाऊ मैदानी भागों, समतल तथा पर्याप्त जल की उपलब्धता वाले क्षेत्रों में विकसित होते हैं। जिनमें आवास गृह, पास–पास होते हैं और सम्पूर्ण गाँव सघन बसा होता है। आसान पहुँच के लिये इनके साथ सड़कों का निर्माण होता है। आवासों के साथ–साथ विद्यालय, सामाजिक व धार्मिक स्थल भी बने होते हैं।

विशेषताएँ–

(i) अधिवास प्रायः खेतों के मध्य किसी ऊँचे एवं बाढ़ से सुरक्षित स्थानों पर बसे होते हैं।

(ii) सभी आवास पास–पास बने होते हैं।

(iii) सभी आवास एक स्थान पर संकेन्द्रित होते हैं एवं बाहरी आक्रमणों का मिलकर मुकाबला करते हैं।

(iv) सामाजिक प्रगाढ़ता होने से एक–दूसरे के सुख– दुख में सहभागी होते हैं।

(v) इनमें आवासों की संख्सा 40–50 से लेकर सैंकड़ों तक हो सकती है।

(vi) इनकी जनसंख्या उपलब्ध संसाधनों के आधार पर 500 से 1000 या अधिक हो सकती है।

सघन अधिवासों का वितरण : इस प्रकार के अधिवास नदियों के उपजाऊ मैदानों में सघन जनसंख्या वाले क्षेत्रों में पाये जाते हैं।

भारत में सघन ग्रामीण अधिवास गंगा– सतलज के मैदान, मालवा के पठार, विन्ध्यन पठार, नर्मदा घाटी और राजस्थान के मैदानी भाग में पाये जाते हैं।

2. प्रकीर्ण या एकाकी अधिवास

ऐसे अधिवास छितरे और बिखरे होते हैं। इसलिये आवास एक–दूसरे से दूर और कृषि भूमि को छोड़कर बनाये जाते हैं।

विशेषताएँ

(i) आवास एक दूसरे से दूर होते हैं।

(ii) व्यक्ति एकाकी रूप में रहते हैं।

(iii) व्यक्ति स्वतंत्र जीवन–यापन के आदि होते हैं।

(iv) एक–दूसरे के सहयोग की भावना कम होती है।

(v) कृषि में संलग्न जातियों में ऊँच–नीच की भावना होती है।

वितरण : उत्तरी अमेरिका में संयुक्त राज्य अमेरिका और कनाड़ा के प्रेयरी प्रदेश, एशिया के स्टेपी मैदान, गंगा के खादर क्षेत्र, हिमालय पर्वतीय क्षेत्र व तराई तथा भाबर क्षेत्र, मध्य द. अमेरिका में अर्जेन्टाइना के पम्पाज, आस्ट्रेलिया के डाउन्स तथा दक्षिणी अफ्रीका में वेल्डस प्रदेश दक्षिणी राजस्थान के उदयपुर, राजसमन्द, डूँगरपुर, प्रतापगढ़ और बांसवाड़ा जिलों में तथा मरूस्थली प्रदेश में प्रकीर्ण अधिवास प्रमुखता से पाये जाते हैं।

3. मिश्रित अधिवास

इन अधिवासों को अर्द्ध सघन या अर्द्ध केन्द्रीय अधिवास भी कहा जाता है। यह सघन व प्रकीर्ण अधिवासों के बीच की अवस्था होती है जो सामान्तया किसी परिवार की संख्या में वृद्धि होने से आवासों की संख्या बढ़ने के कारण उत्पन्न होते हैं। इनकी उत्पत्ति में पर्यावरणीय कारणों के स्थान पर पारिवारिक कारण उत्तरदायी होते हैं। जैसे– सांगोद (कोटा) तहसील का खुर्द गाँव।

4. पल्ली या पुराना अधिवास

इस प्रकार के अधिवासों में आवास एक दूसरे से अलग किन्तु एक ही बस्ती में बसे होते हैं। इसलिए उन सबका नाम एक रहता है। बस्ती के अलग–अलग भागों में अलग–अलग जातियों के लोग रहते हैं।

वितरण : पर्वतीय प्रदेशों की निचली घाटियों तथा खनन वाले क्षेत्रों में इस प्रकार के आवास दृष्टिगोचर होते हैं।

ग्रामीण अधिवासों के प्रतिरूप

अधिवासों के बसाव की आकृति के आधार पर किये गये विभाजन को अधिवासों के प्रतिरूप कहा जाता है। ग्रामीण अधिवासों के प्रतिरूपों को प्राकृतिक कारक (धरातल का स्वरूप, नदियाँ, जलाशय), ऐतिहासिक कारक, सामाजिक, सांस्कृतिक कारक, परिवहन मार्ग एवं धार्मिक स्थल आदि निर्धारित करते हैं। आकृति के आधार पर ग्रामीण अधिवासों के निम्नलिखित प्रतिरूप निर्धारित किये जा सकते हैं (रेखाचित्र 6.1)।

1. रेखीय प्रतिरूप

जब ग्रामीण क्षेत्रों में सड़क मार्ग, रेलमार्ग, नहर, नदी घाटी में या सागर तट के सहारे बस्ती का विकास होता है, तब रेखीय प्रतिरूप वाले अधिवास का निर्माण होता है। इस प्रतिरूप में आवास पास–पास एवं पंक्तिबद्ध होते हैं। जैसे गंगा–यमुना के मैदान एवं मध्य हिमालय क्षेत्र में इस प्रकार के अधिवास पाये जाते हैं। जयपुर जिले का बरवाड़ा गाँव रेखीय प्रतिरूप का उदाहरण है। इन्हें पंक्तिनुमा, मार्गोन्मुख और अर्द्धचन्द्राकार प्रतिरूप भी कहते हैं (चित्र 6.1)।

2. तीर प्रतिरूप

किसी अन्तरीप के शीर्ष पर नदी के विसर्प के सहारे या दो आब के बीच विकसित अधिवास का प्रतिरूप प्रायः तीर नुमा होता है। ऐसे स्थान पर अग्रभाग में अधिवास के विकास के लिए भूमि उपलब्ध नहीं होती है या नदी की सीमा इसके विकास में बाधा डालती है। जिससे अधिवास का विकास पृष्ठभाग की तरफ होता है। जैसे– दक्षिण भारत में कन्याकुमारी और उड़ीसा में चिल्का झील तट पर बने अधिवास आदि।

3. त्रिभुजाकार प्रतिरूप

जब नदियों, नहरों या सड़कों का संगम होता है और वे एक–दूसरे को काटती नहीं है, तब त्रिभुजाकार प्रतिरूप का निर्माण होता है। ऐसे संगम स्थलों पर अधिवास को विकसित होने के लिए दोनों नदियों, नहरों या सड़कों द्वारा निर्मित त्रिभुज के अन्दर की भूमि पर ही अधिवास विकसित होता है। भारत में हरियाणा और पंजाब में ऐसे अधिवास मिलते हैं।

4. आयताकार या चौक पट्टी प्रतिरूप

जब दो सड़कें आपस में मिलती हैं और उनके मिलन स्थल से दोनों सड़कों के किनारे लम्बवत् गलियों का निर्माण होता है, तब आयताकार प्रतिरूप बनते हैं। विश्व में समतल उपजाऊ मैदानी भागों में ऐसे प्रतिरूपों का विकास होता है।

5. अरीय त्रिज्या प्रतिरूप

जब किसी गाँव में एक स्थान पर अनेक दिशाओं से कच्ची सड़कें या पक्की सड़कें मिलती हैं तो मिलन स्थान से त्रिज्याकार मार्गों पर मकानों का निर्माण होता है, परन्तु सभी गलियाँ मुख्य चौराहों पर मिलने से समानान्तर नहीं होती है।

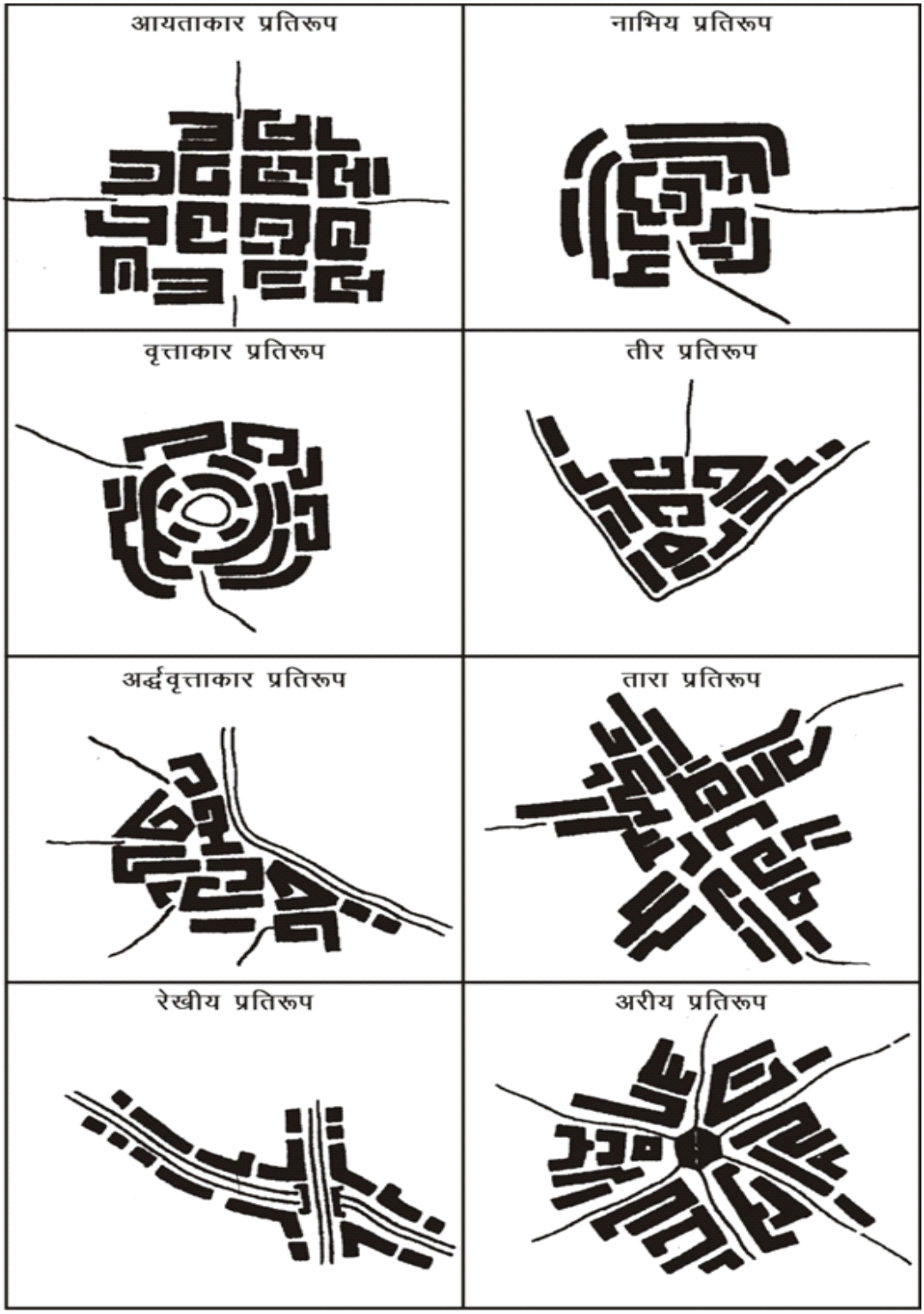

रेखाचित्र 6.1 : ग्रामीण अधिवासों के मुख्य प्रतिरूप

विश्व में घनी आबादी वाले उपजाऊ मैदानी भाग में ऐसे प्रतिरूप पाये जाते हैं। भारत में गंगा के ऊपरी मैदान एवं तमिलनाडु राज्य में इस प्रकार के प्रतिरूप दृष्टिगोचर होते हैं।

6. वृत्ताकार प्रतिरूप

प्रायः किसी झील, तालाब, कुएँ, किले, धार्मिक स्थल या चौपाल के चारों ओर मकानों के बसने से बस्ती का आकार वृत्ताकार हो जाता है। इसलिए इसे वृत्ताकार प्रतिरूप कहते हैं। नाभिक प्रतिरूप इसकी प्रारम्भिक अवस्था होती हैं।



चित्र 6.1 : रेखीय प्रतिरूप



चित्र 6.2 : जुलू जनजाति का मधुछत्ता प्रतिरूप गांव

7. तारा प्रतिरूप

तारा प्रतिरूप प्रारम्भ में अरीय प्रतिरूप के रूप में विकसित होता है किन्तु बाद में बाहर की ओर जाने वाली सड़कों के किनारे मकान बनने से इसकी आकृति तारे जैसी हो जाती है। इसलिये इसे तारा प्रतिरूप कहा जाता है।

8. पंखा प्रतिरूप

जब किसी गांव में केन्द्रीय स्थल के चारों और मकान बनते हैं। इसके बाद बस्ती का विकास सड़क के किनारे रेखीय प्रतिरूप में होने से पंखानुमा प्रतिरूप विकसित होता है।

9. अनियमित प्रतिरूप

मानव द्वारा अपनी सुविधानुसार बिना किसी योजना के मकानों का निर्माण होने से, आकार रहित अधिवास विकसित होता है, जिसे अनाकार प्रतिरूप कहते हैं। सड़कें तथा गलियाँ शेष भूमि पर बाद में विकसित होती है जो टेढ़ी–मेढ़ी, घुमावदार और प्रायः सकड़ी होती है। भारत में अधिकाँश गाँव इसी श्रेणी में आते हैं। राजस्थान के बाँरा जिले में लिसाड़ी गाँव अनाकार प्रतिरूप का उदाहरण है।

10. सीढ़ी नुमा प्रतिरूप

इस प्रकार के गाँव पर्वतीय ढालों पर होते हैं जिनमें मकान परस्पर सटे हुए, परन्तु दूर–दूर दोनों ही रूपों में मिलते हैं। इन मकानों की पंक्तियाँ ढाल के अनुसार कई स्तरों में दिखाई देती है। हिमालय, रॉकीज, एन्डीज और आल्पस पर्वतों में ग्रामीण बस्तियाँ इसी प्रतिरूप से बसी है।

11. मधु छत्ता प्रतिरूप

भारत में आदिवासी जनजातियों के गुम्बद नुमा झोपड़ियों के गाँव टोडा जनजाति, आन्ध्र प्रदेश के समुद्र तटीय मछुवारों के गाँव तथा दक्षिणी अफ्रीका के जुलू लोग इस प्रकार के प्रतिरूप में निवास करते हैं जो दूर से मधुमक्खी के छत्ते जैसा दिखाई देता है (चित्र 6.2)।

12. अन्य प्रतिरूप

अन्य प्रतिरूपों में नाभिय, अर्द्ध वृत्ताकार, टेड़ा–मेढ़ा प्रतिरूप, मकड़ी प्रतिरूप प्रमुख है।

ग्रामीण अधिवासों की समस्याएँ

सामान्यतः ग्रामीण अधिवासों में निम्न समस्याएँ दृष्टिगोचर होती है–

(i) आवागमन के साधनों का अभाव : ग्रामीण अधिवासों तक पहुँचने के लिए सार्वजनिक परिवहन साधनों का अभाव होता है। व्यक्तिगत साधन ही उपलब्ध होते हैं, इसलिए साधन रहित लोगों के सामने आवागमन एक गंभीर समस्या है।

(ii) स्वच्छ पेयजल का अभाव : वर्तमान में पेयजल की समस्या ग्रामीण अधिवासों में विकराल रूप धारण करती जा रही है, इससे यहाँ के निवासी कई बीमारियों के शिकार हो रहे हैं।

(iii) स्वास्थ्य सेवाओं का अभाव : यहाँ के निवासियों को छोटी–छोटी स्वास्थ्य सुविधाओं के लिए समीपवर्ती नगर में जाना पड़ता है। आवागमन के साधनों के अभाव में समय पर उपचार नहीं मिलने के कारण मरीज की मृत्यु तक हो जाती है।

(iv) विद्युत आपूर्ति का अभाव : ग्रामीण अधिवासों में नियमित एवं पर्याप्त विद्युत आपूर्ति का अभाव होता है, इससे दैनिक एवं कृषि कार्यों में बाधा उत्पन्न होती है।

(v) रोजगार के अवसर नहीं होना : यहाँ रोजगार के अवसर नहीं होने से तीनों प्रकार की बेरोजगारी (अ) पूर्ण बेरोजगारी, (ब) छिपी बेरोजगारी (स) मौसमी बेरोजगारी पाई जाती है। युवा शक्ति रोजगार की तलाश में नगरों की ओर पलायन कर कम मजदूरी के कारण नारकीय जीवन व्यतीत करते हैं।

(vi) सूचना तकनीक एवं दूरभाष सुविधाओं का अभाव : इनके कारण ग्रामीण अधिवास सूचना तकनीक एवं इन्टरनेट से नहीं जुड़ पाते जिससे छोटे–छोटे कार्यों के लिए समीपवर्ती कस्बा या नगर में जाना पड़ता है। इस प्रकार धन व समय का दुरूपयोग होता है।

(vii) उच्च एवं तकनीकी शिक्षा संस्थानों का अभाव : उच्च एवं तकनीकी शिक्षा उपलब्ध नहीं होने से अधिकाँश युवक–युवतियों को प्राथमिक, उच्च प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक शिक्षा के बाद अध्ययन कार्य बन्द करना पड़ जाता है।

(2) नगरीय अधिवास

नगरीय अधिवासों की अर्थ व्यवस्था, निर्माण उद्योग, परिवहन, व्यापार, वाणिज्य, संचार, शिक्षा, चिकित्सा, प्रशासन, न्याय और अन्य सेवाओं पर निर्भर करती है। दूसरे शब्दों में नगरीय अर्थ व्यवस्था द्वितीयक, तृतीयक, चतुर्थक और पंचम व्यवसायों पर निर्भर करती है। नगरीय अधिवासों की निम्न विशेषताएँ होती है–

(i) उच्च जनसंख्या घनत्व

(ii) त्वरित गतिशीलता

(iii) पक्की सड़कें एवं पक्के मकान

(iv) रोजगार की उपलब्धता

(v) यातायात के व्यक्तिगत एवं सार्वजनिक साधन,

(vi) उच्च शिक्षा एवं गहन चिकित्सा सुविधा

(vii) 50 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या का गैर प्राथमिक कार्यों में संलग्न होना।

(viii) जटिल श्रम विभाजन

(ix) सामाजिक प्रगाढ़ता का अभाव

(x) तीव्र सामाजिक एवं आर्थिक अन्तर

नगरीय बस्तियों का वर्गीकरण

विश्व में नगरीय क्षेत्र की परिभाषा एक देश से दूसरे देश में भिन्न है। नगरीय बस्तियों के वर्गीकरण के सामान्य आधार, जनसंख्या का आकार, मानव व्यवसाय, प्रशासनिक ढाँचा और आवश्यक दशाएँ हैं।

1. जनसंख्या का आकार

अधिकाँश देशों में नगरीय क्षेत्र को परिभाषित करने के लिए जनसंख्या आकार को प्रमुख माना है। विश्व के अलग–अलग देशों में नगरीय क्षेत्र की श्रेणी में आने के लिए जनसंख्या की न्यूनतम सीमा डेनमार्क, स्वीडन एवं फिनलैण्ड में 250, आईसलैण्ड में 300, कनाडा व वेनेजुएला में 1000, कोलम्बिया में 1500, पुर्तगाल एवं अर्जेन्टाइना में 2000, संयुक्त राज्य अमेरिका एवं थाईलैण्ड में 2500, जापान में 3000 और भारत में 5000 व्यक्ति निर्धारित है। भारत में 5000 जनसंख्या के अतिरिक्त जनसंख्या घनत्व भी 400 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी होना चाहिए एवं प्राथमिक व्यवसाय में लगी जनसंख्या को भी देखा जाता है।

2. व्यावसायिक संरचना

नगरीय बस्ती के लिए जनसंख्या के आधार के अतिरिक्त इटली जैसे कुछ देशों में 50 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या गैर कृषि कार्यों में संलग्न होना चाहिए। भारत में यह मापदण्ड 75 प्रतिशत है। यहाँ प्रमुख आर्थिक गतिविधियों को भी नगरीय बस्तियों के लिए मापदण्ड माना गया है।

3. प्रशासन : कुछ देशों में किसी बस्ती को नगरीय बस्ती में सम्मिलित करने के लिए प्रशासनिक ढाँचे को ही मापदण्ड माना जाता है। जैसे भारत में किसी नगर में नगर पालिका, छावनी बोर्ड और अधिसूचित नगरीय क्षेत्र समिति होने पर उसे नगरीय बस्ती माना जाता है। ब्राजील और बोलिविया में जनसंख्या के आकार के स्थान पर प्रशासकीय केन्द्र को नगरीय केन्द्र माना जाता है।

4. आवश्यक दशाएँ : विश्व में नगरीय केन्द्रों की गणना सम्पादित कार्यों के आधार पर की जाती है। जैसे अवकाश, पर्यटन स्थल की आवश्यक दशाएँ, औद्योगिक नगर, समुद्री पत्तन नगर, सेना नगरों से भिन्न होती है।

नगरीय अधिवासों के प्रकार

नगरीय अधिवास अपने आकार, उपलब्ध सुविधओं एवं सम्पादित किये जाने वाले कार्यों एवं जनसख्या के आधार कई नामों से जाने जाते हैं। जो निम्नानुसार है–

(i) नगर : एक लाख से अधिक किन्तु दस लाख से कम जनसंख्या वाले अधिवास नगर कहलाते है। इनमें 50 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या गैर प्राथमिक कार्यों में संलग्न होती है। जैसे भारत में राजस्थान का बीकानेर नगर।

(ii) महानगर : दस लाख से अधिक जनसंख्या वाले अधिवासों को महानगर कहा जाता है। ये औद्योगिक, व्यापारिक, प्रशासनिक एवं शैक्षिक गतिविधियों के केन्द्र होते हैं। जैसे भारत में जयपुर, जोधपुर और कोटा नगर। इन्हें मेट्रोसिटी भी कहते हैं।

(iii) सन्नगर : 1915 में पैट्रिक गिडिज ने इस शब्दावली का प्रयोग किया था। यह विशाल विकसित नगरीय क्षेत्र होते हैं, जो अलग–अलग नगरों या शहरों के आवास से मिलकर विशाल नगरीय क्षैत्र में बदल जात हैं। ग्रेटर लंदन, टोकियो, शिकागो आदि

इसके उदाहरण है। भारत में ग्वालियर, लश्कर–मुरार, दिल्ली–गुडगांव, दिल्ली–नोएडा, सन्नगर के उदाहरण है।

(iv) वृहत नगर : अंग्रेजी में इसे मेगालोपोलिस कहते हैं, जिसका अर्थ विशाल नगर होता है। इसका प्रयोग सन् 1857 में जीन गोटमेन ने किया था। ये अत्यन्त बड़े नगर होते हैं, जिनकी जनसंख्या 50 लाख से अधिक होती है। इन नगरों को विश्व नगरी भी कहते हैं। जैसे ग्रेटर लंदन, टोकियो, पेरिस, न्यूयार्क, मास्को, बिजिंग, कोलकात्ता, मुम्बई, दिल्ली, चैन्नई आदि।

नगरीय अधिवासों की समस्याएँ

(i) अत्यधिक जनसंख्या घनत्व एवं नगरों का बढ़ता आकार : कृषि क्षेत्रों में मशीनीकरण, शिक्षा का विकास और ग्रामीण क्षेत्रों में जनसंख्या वृद्धि के कारण रोजगार की कमी होने से युवा शक्ति रोजगार की तलाश, नौकरियों के लिए नगरों में बसने लगी है। फलस्वरूप नगरों का आकार व जनसंख्या घनत्व तीव्र गति से बढ़ रहा है। नगरीय भूमि की अधिक कीमतें बढ़ने से लोगों को छोटे–छोटे आवासों में रहना पड़ रहा है। यातायात भार बढ़ने से सुबह एवं सायंकाल आवागमन बाधित होता है एवं दुर्घटनाओं का अनुपात बढ़ रहा है। अकेले भारत में ही 1981 में 9 महानगर थे। जिनकी संख्या वर्तमान में 53 हो गई है। 2005 में विश्व में 438 महानगरों के स्थान पर वर्तमान में इनकी संख्या 600 से भी अधिक है।

(ii) गन्दी बस्तियों का प्रादुर्भाव : नगरों में जनसंख्या तथा घनत्व में वृद्धि से आवासीय भवनों की कमी से गन्दी बस्तियों का प्रादुर्भाव होने लगा है। औद्योगिक और व्यापारिक महानगरों में तो एक छोटे से कमरे में पूरा परिवार रहता है। महानगरों के धीरे–धीरे गन्दी बस्तियों का आकार बढ़ता जा रहा है। ये बस्तियाँ प्रकाश, वायु, एवं स्वच्छ पेयजल की सुविधाओं से वंचित है। मुम्बई में लगभग 10 प्रतिशत लोग गन्दी बस्तियों में निवास करते हैं और 60 प्रतिशत लोग सड़कों पर रात गुजारते हैं।

(iii) पर्यावरण प्रदूषण : नगरीयकरण के कारण नगरों में अनेक प्रकार की पर्यावरणीय प्रदूषण की समस्याएँ बढ़ रही है। उद्योगों की चिमनियों से निकलता काला जहरीला धुआँ और बाधित परिवहन के कारण वाहनों से निकलता धुआँ वायुमण्डल को प्रदूषित करता है जो मानव और पशुओं के साथ वनस्पति पर भी कुप्रभाव डालता है। प्रदूषित वायु से हृदय, श्वसन, नाड़ी तंत्र, मानसिक स्वास्थ्य तथा त्वचा सम्बन्धी रोगों में अत्यधिक वृद्धि हुई है। टोकियों में तो वायु प्रदूषण इतना हो गया है कि व्यक्ति को बीच–बीच में कृत्रिम ऑक्सीजन गैस लेनी पड़ती है। भारत में दिल्ली, मुम्बई तथा कोलकाता में कुछ वर्षों में ही वायु प्रदूषण दो गुना हो गया है।

(vi) उपभोक्ता वस्तुओं का उच्च मूल्य : नगरों में दैनिक उपभोग की वस्तुओं जैसे दूध, घी, फल, सब्जी आदि समीपवर्ती ग्रामीण क्षेत्रों से आती है। दूर क्षेत्रों से लाने मे परिवहन व्यय, दलाली और मुनाफा वसूली से ये पदार्थ महँगें होने से उच्च मूल्य पर उपलब्ध होते हैं।

(v) खाद्य पदार्थों में मिलावट : नगरों में व्यापारी अधिक लाभ कमाने के लिए खाद्य पदार्थों में मिलावट करते हैं। मिलावटी भोजन सामग्री नागरिकों के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है और नागरिकों को अनेक बीमारियों का सामना करना पड़ता है।

(vi) अपराधों का बढ़ता स्तर : ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार की तलाश में नगरों में आने वाली जनसंख्या में पुरूषों की संख्या अधिक होती है। जिससे नगरों में लिंगानुपात का सन्तुलन बिगड़ जाता है। परिणामस्वरूप अपहरण, दुष्कर्म, हत्या आदि घटनाएँ बढ़ जाती है। पर्याप्त मजदूरी नहीं मिलने या शीघ्र धनवान बनने के लालच में युवावर्ग समाजकण्टकों के चक्कर में आकर थोड़े से रूपयों की खातिर अपराध करने लगते हैं। अपहरण, जेब काटने, चोरी, बैंक लूटने और हत्या जैसी घटनाएँ समाचार पत्रों और दूर दर्शन के माध्यम से आये दिन सुनने को मिलती है। पुलिस और प्रशासन के लगातार चौकन्ना रहने पर भी अपराधों की संख्या बढ़ती ही जा रही है।

(vii) तीव्र सामाजिक–आर्थिक विषमता एवं सामाजिक असहयोग : नगरों में मकानों और संसाधनों की उपलब्धता में अन्तर होने से सामाजिक–आर्थिक विषमता दृष्टिगोचर होती है। व्यक्तिगत स्वार्थ से प्रेरित होने के कारण सामाजिक सहयोग का अभाव पाया जाता है। महानगरों में एक तरफ गगनचुम्बी, विशाल, वातानुकुलित इमारतें दिखाई देती है, दूसरी तरफ फुटपाथ में खुले आसमान के नीचे जीवन का संघर्ष दिखाई देता है।

(viii) स्वास्थ्य एवं चिकित्सा सुविधाओं की कमी : नगरों में जनसंख्या वृद्धि के कारण प्रदूषण बढ़ने से नागरिक रोग ग्रसित हो जाते हैं। जनसंख्या के अनुपात में चिकित्सा और चिकित्सालयों की कमी होती है। निजि महँगी चिकित्सा सुविधा आम जनता की पहुँच से बाहर हो जाती है। इससे व्यक्तियों को समय पर पूरी चिकित्सा सुविधा नहीं मिलती।

नगरीय कच्ची (गन्दी) बस्तियों की समस्याएँ एवं समाधान

नगरीय कच्ची बस्तियाँ रेलमार्गों, सड़कों, नालों आदि के सहारे विकसित अभावग्रस्त अस्थाई या स्थाई छत से बनी झोपड़ पट्टियाँ होती है जिनमें सड़को के नाम पर 2 से 4 फुट चोड़ी घुमावदार उबड़–खाबड़ गलियाँ होती है। ये बस्तियाँ न्यूनतम या अवांछित आवासीय क्षेत्र होते हैं, जहाँ जीर्ण–शीर्ण मकान, खुली

हवा, प्रकाश, पेयजल तथा स्वास्थ्य की निम्न सुविधाओं और शौच सुविधाओं जैसी मूलभूत आवश्यकताओं का अभाव पाया जाता है। यह क्षेत्र बहुत ही भीड़–भाड़, पतली, सँकड़ी व घुमावदार गलियों और आग जैसे गंभीर खतरों की जोखिम से युक्त होती है। यहाँ के निवासी कम वेतन और जोखिम पूर्ण कार्य करने को विवश होते हैं। अल्प पोषण से निवासियों में विभिन्न रोगों और बीमारियों की संभावना लगातार बनी रहती है। ये लोग अपने बच्चों के लिए उचित शिक्षा का खर्च भी वहन नहीं कर सकते हैं। गरीबी इन्हें शराब, अपराध, पलायन, गुण्डागर्दी, नशीली दवाओं के सेवन और सामाजिक बहिष्कार की तरफ अग्रसर करती है। नगरों, महानगरों में बसे ऐसे स्थानों को स्लम या गन्दी बस्तियाँ कहा जाता है।

कच्ची बस्तियों में वे लोग निवास करते हैं जो विवशता में रोजगार की तलाश में नगरीय क्षेत्रों में प्रवास करते हैं। धनाभाव में पर्यावरण की दृष्टि से अनुपयुक्त और निम्नीकृत क्षेत्रों पर कब्जा कर बस्तियाँ बसा लेते हैं। इनमें एक कमरे में पूरा परिवार निवास करता है। कच्ची बस्तियों की निम्नलिखित समस्याएँ उभर कर आती है–

- अस्वास्थ्य पूर्ण पर्यावरण में आवासों का निर्माण।
- सड़कों का अभाव।
- पेयजल, प्रकाश व शुद्ध वायु की कमी।
- अत्यधिक भीड़–भाड़ से संक्रमण का खतरा।
- कच्चे मकान होने से आग लग जाने का खतरा।
- शौचालय जैसी मूलभूत सुविधा का अभाव।
- शिक्षा हेतु विद्यालयों का अभाव।
- कम मजदूरी में जोखिम पूर्ण कार्य करने से असुरक्षित जीवन।
- अल्प पोषण से विभिन्न रोगों का खतरा।
- छोटे, कम ऊँचे एवं असुरक्षित आवास।
- समाज द्वारा हेय दृष्टि से देखना।
- कानून एवं व्यवस्था बनाये रखने की समस्या।

कच्ची बस्तियों की समस्याओं हेतु समाधान

(i) सरकार द्वारा निम्नतम दर पर आवास उपलब्ध कराना : कच्ची बस्ती के स्थान पर ही बहुमँजिले आवासों में ऐसे लोगों का बसाने से वायु, प्रकाश, शौचालय की सुविधा स्वतः ही पूरी हो जाएगी। स्वास्थ्यप्रद वातावरण में जीवन प्रत्याशा भी अधिक बढ़ जाएगी। कोटा और अहमदाबाद की तर्ज पर कच्ची बस्तियों के लोगों को निम्नतम दर पर आसान किश्तों में परिवार के आकार के अनुसार आवास उपलब्ध कराये जाने चाहिए।

(ii) नल या टेंकरों द्वारा स्वच्छ पेयजल की आपूर्ति न्यूनतम दर पर या निःशुल्क की जानी चाहिए।

(iii) ग्रामीण क्षेत्रों के महानरेगा की तरह न्यूनतम मजदूरी पर निर्धारित कर रोजगार उपलब्ध कराया जाना चाहिए।

(iv) कच्ची बस्ती में ही विद्यालय खोलकर बच्चों की शिक्षा हेतु समुचित व्यवस्था करनी चाहिए।

(v) कच्ची बस्तियों के पास सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र खोलकर निःशुल्क चिकित्सा उपलब्ध कराई जानी चाहिए।

(vi) ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के साधन उपलब्ध कराये जाने चाहिए जिससे नगरीय क्षेत्रों में प्रवास कम से कम हो।

(vii) चौड़ी सड़कों का निर्माण करना।

(viii) भूमि की उपलब्धता होने पर बगीचों की व्यवस्था करना।

(ix) स्वरोजगार के लिए ऋण उपलब्ध करवाना।

(x) परिवार कल्याण कार्यक्रम अपनाने पर जोर देना आदि।

(xi) कानून एवं व्यवस्था को सुचारू रूप से बनाये रखना।

मुम्बई की धारावी बस्ती का विशेष अध्ययन

मुम्बई की धारावी कच्ची बस्ती (स्लम) एशिया की विशालतम कच्ची बस्ती है। विश्व के अन्य देशों की कच्ची बस्तियों की तरह यहाँ का जनजीवन भी घोर नारकीय है।

धारावी कच्ची बस्ती का परिदृश्य निम्न प्रकार से वर्णित किया जा सकता है।

(i) धारावी बस्ती की स्थापना : 18वीं शताब्दी में यहाँ एक द्वीप था। 70 वर्ष पूर्व गुजरात के कुम्हारों ने इसे बसाया था। उनकी संख्या लगभग 10,000 थी।

(ii) अवस्थिति एवं विस्तार : यह कच्ची बस्ती मुम्बई शहर में जूहू से 12 किमी द.प. में उपनगरीय रेलमार्गों के बीच स्थित है। इसका क्षेत्रफल लगभग 557 एकड़ है जो 12 बस्तियों से मिलकर बनी है।

(iii) जनसंख्या : वर्ष 2011 के अनुसार यहाँ की जनसंख्या 6,00,000 है जो 100,000 घरों में निवास करती है। एक घर में 10 से 15 व्यक्ति तक एक ही कमरे में निवास करते हैं। यहाँ के लगभग 60 प्रतिशत परिवार 60 वर्षों से रह रहे हैं।



चित्र 6.3 : धारावी कच्ची बस्ती विंहगम दृश्य



चित्र 6.4 : धारावी में आर्थिक गतिविधियाँ



चित्र 6.5 : धारावी में प्रदूषण का स्वरूप



चित्र 6.6 : रेलमार्गों के मध्य धारावी

(iv) परिवहन : इस गन्दी बस्ती से केवल एक मुख्य सड़क गुजरती है जो नाइन्टीफुट रोड़ के नाम से जानी जाती है। जिसकी चौड़ाई घटते–घटते आधे से भी कम रह गयी है। यहाँ परिवहन निगम की बसें बस्ती की परिधि के बाहर से गुजरती है। ऑटो रिक्शा भी बस्ती के अन्दर नहीं आ सकता है। धारावी बस्ती केन्द्रीय मुम्बई में एक ऐसा भाग है, जहाँ तिपहिया वाहनों का प्रवेश भी निषेध है। कुछ गलियाँ एवं पगडण्डियां इतनी सँकड़ी है कि वहाँ से एक साईकिल का निकलना भी मुश्किल लगता है।

(v) भवन या आवास : सम्पूर्ण बस्ती में अस्थाई निर्माण के भवन है जो दो से तीन मंजिलें बने हैं तथा जंग लगी लोहे की सीढ़ियाँ लगी है। यहाँ एक कमरे को किराये पर लेकर 10–15 व्यक्ति तक भी रहते हैं। आवास अलग–अलग ऊँचाई तथा अलग–अलग रंग में पुते हैं।

(vi) आधारभूत सुविधाएँ : शुद्ध पेयजल, वायु एवं प्रकाश की पर्याप्त व्यवस्था नहीं है। यहाँ लगभग 1500 व्यक्तियों के लिए एक शौचालय है। गन्दे जल की निकासी की व्यवस्था नहीं होने से ठहरे गन्दे पानी के गड्डे भरे रहते हैं अतः आधारभूत सुविधाओं का अभाव है। जगह–जगह काले कौओं और लम्बे भूरे चूहों की बहुतायात है।

(vii) व्यवसाय एवं रोजगार : जगह–जगह मिट्टी के उत्पाद, पकाने और ईंटों के भट्टे हैं। प्लास्टिक पुनर्चक्रण में सौन्दर्य प्रसाधनों से लेकर कम्प्यूटर के बोर्ड आदि प्रत्येक वस्तु का पुनःर्चक्रण होता है। जहाँ ग्रेट ब्रिटेन (U.K.) में 23 प्रतिशत कचरे का पुनःर्चक्रण होता है वहीं मुम्बई में 80 प्रतिशत कचरे का पुनःर्चक्रण धारावी में होता है, जिससे काला जहरीला धुआँ फैला रहता है। सँकड़ी गन्दी गलियों वाली बस्ती में मछुवारों की बहुलता है जो मछली पकड़ने का कार्य करते हैं। कई उपयोगी कार्यों में बस्ती की ख्याति है।

धारावी में मिट्टी के बर्तन, मृत्तिका शिल्प (सेरेमिक्स), कसीदाकारी, जरी का काम, परिष्कृत चमड़े का काम, धातु का कार्य, उत्कृष्ट आभूषण, फर्नीचर, उच्च फैशन के कपड़े सिलने आदि का कार्य होता है। यह बड़ा पर्यटन केन्द्र तथा फिल्मों के कनिष्ठ कलाकारों का बड़ा केन्द्र भी है। 85 प्रतिशत लोग स्वयं या स्लम में रोजगार पाते हैं।

(viii) व्यापार : यहाँ बनी वस्तुएँ मुम्बई के अतिरिक्त देश के अन्य भागों के साथ–साथ अरब देशों, संयुक्त राज्य अमेरिका, यूरोपीय देशों में निर्यात होती है। एक अध्ययन के अनुसार एक वर्ष में यहाँ 650 मिलियन (U.S.) डॉलर का व्यवसाय होता है।

(ix) जनजीवन : प्रदूषित पर्यावरण एवं मूलभूत सुविधाओं के अभाव में प्रतिदिन चिकित्सकों के पास डिप्थीरिया (गलघोंटू) और टाइफाईड (आन्त्रज्वर) से ग्रसित 4000 बच्चे उपचार के लिए आते हैं। धारावी बस्ती में डेंगू, हैजा और पीलिया रोगी आसानी से देखने को मिलते हैं। जमीन का मालिकाना हक नहीं होने से धारावी आज भी कानूनन अवैध कच्ची बस्ती मानी जाती है।

धारावी कच्ची बस्ती की भावी योजनाएँ

प्रसिद्ध व्यवसायी श्री मुकेश मेहता 2 विलियन डॉलर की लागत से धारावी के पुननिर्माण की योजना बनाकर बहुमँजिले भवन बनाकर नये सिरे से यहाँ से निवासियों को बसाना चाहते हैं। यह बस्ती मुम्बई के केन्द्र में होने से भूमि की कीमतें इतनी अधिक है कि पुन निर्माण की योजना बेईमानी अधिक लगती है। इनके द्वारा सन् 2000 तक बसे लोगों को बसाने की योजना है।

महाराष्ट्र सरकार भी इस बस्ती को पुनस्थार्पित करने की योजना बना रही है। जिससे यहाँ के नागरिकों को स्वास्थ्यप्रद वातावरण के साथ–साथ, स्वच्छ पेयजल, प्रकाश, शुद्व वायु, शौचालय जैसी आधारभूत सुविधाएं उपलब्ध कराई जा सके और व्यक्तियों को गरीबी, भूख, बेरोजगारी और बीमारियों से बचाकर भावी–पीढ़ी को उचित शिक्षा प्रदान की जा सके।

महत्वपूर्ण बिन्दु

- भोजन, वस्त्र और आवास मानव की तीन मूलभूत आवश्यकताएँ है।
- पृथ्वी के धरातल पर मानव द्वारा निर्मित एवं विकसित आवासों के संगठित समूह को अधिवास या बस्ती कहते हैं।
- मानव अधिवास निवास के आधार अस्थायी एवं स्थायी दो प्रकार के होते हैं।
- आधारभूत कार्यों एवं प्राकृतिक दशाओं के आधार पर मानव अधिवास दो प्रकार के होते हैं– ग्रामीण अधिवास, नगरीय अधिवास।
- मकानों की संख्या एवं उनके बीच की दूरी के आधार पर किये गये विभाजन को अधिवासों का प्रकार कहते हैं।
- अधिवासों के बसाव की आकृति के आधार पर किये गये विभाजन को अधिवासों के प्रतिरूप कहते हैं।
- ग्रामीण अधिवासों की अर्थव्यवस्था प्राथमिक व्यवसायों पर निर्भर होती है।
- नगरीय अधिवासों की अर्थव्यवस्था गैर प्राथमिक व्यवसायों पर निर्भर होती है।
- मकानों की संख्या एवं उनके बीच की दूरी के आधार पर ग्रामीण अधिवासों के 4 प्रकार है– (i) सघन या गुच्छित, (ii) प्रकीर्ण या एकाकी, (iii) मिश्रित, (iv) पल्ली अधिवास।
- अधिवासों की आकृति के आधार 10 प्रतिरूप निर्धारित किये जा सकते हैं (i) रेखीय प्रतिरूप, (ii) तीर प्रतिरूप, (iii) त्रिभुजाकार प्रतिरूप, (iv) आयताकार प्रतिरूप, (v) अरीय या त्रिज्या, (vi) वृत्ताकार प्रतिरूप, (vii) तारा प्रतिरूप, (viii) पंखा प्रतिरूप, (ix) अनाकार प्रतिरूप, (x) अन्य प्रतिरूप।
- नगरों के प्रकार (i) नगर, (ii) महानगर, (iii) सन्न नगर, (iv) वृहत् नगर।
- नगरीय कच्ची बस्तियाँ रेलमार्गों, नालों आदि के सहारे विकसित अभावग्रस्त अस्थाई या स्थाई छत से बनी झोपड़–पट्टियाँ होती है। इन्हें गन्दी बस्ती भी कहते हैं।
- मुम्बई की धारावी कच्ची एशिया की विशालतम कच्ची बस्ती है।
- कच्ची बस्तियों में लोगों का जीवन घोर नारकीय होता है।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक

1. मानव अधिवास के अनेक रूप है, निम्न में से आप किसे मानव अधिवास नहीं मानते हैं?

   (अ) मकान (ब) नगर

   (स) गाँव (द) गलियाँ

2. बुशमैन जाति के लोग निम्न में से किस प्रकार के अधिवास बनाते हैं?

   (अ) अस्थायी अधिवास (ब) पुंज्जित अधिवास

   (स) स्थायी अधिवास (द) कृषि गृह

3. पम्पास व प्रेयरी घास के प्रदेशों में किस प्रकार के अधिवास बनाते हैं?

   (अ) मिश्रित अधिवास (ब) गुच्छित अधिवास

   (स) प्रकीर्ण अधिवास (द) सघन अधिवास

4. ग्रामीण क्षेत्रों में रेलमार्गों के सहारे बस्ती का विकास किस अधिवास प्रतिरूप में हैं?

   (अ) तीर प्रतिरूप (ब) रेखीय प्रतिरूप

   (स) वृत्ताकार प्रतिरूप (द) चौक पट्टी प्रतिरूप

5. भारत में महानगर की जनसंख्या का आकार है?

(अ) 5 लाख से अधिक

(ब) 10 लाख से अधिक

(स) 1 लाख से अधिक

(द) एक करोड़ से अधिक

6. भारत में मेगापोलिस नगर श्रेणी में शामिल नहीं है?

(अ) कोलकत्ता (ब) दिल्ली

(स) जयपुर (द) चेन्नई

7. एशिया की सबसे विशाल स्लम कच्ची बस्ती किस शहर में स्थित है?

(अ) दिल्ली (ब) मुम्बई

(स) कराची (द) बीजिंग

8. भारत में 2011 के अनुसार महानगरों की संख्या है?

(अ) 53 (ब) 27

(स) 35 (द) 47

अतिलघूत्तरात्मक

9. मानव निवास की मूलभूत इकाई क्या है?

10. मानव अधिवासों के निवास के आधार पर प्रकार बताईये।

11. मानव अधिवास का महत्वपूर्ण उपयोग किस कार्य के लिए होता है।

12. प्रकीर्ण अधिवास की प्रमुख विशेषता कौनसी है।

13. मानव अधिवासों के किन्हीं दो प्रतिरूपों के नाम बताइये।

लघूत्तरात्मक

14. मानव अधिवास से क्या तात्पर्य है?

15. ग्रामीण अधिवास किसे कहते हैं?

16. ग्रामीण अधिवासों की कोई 5 समस्याएँ बताइए।

17. नगरीय अधिवासों की 5 प्रमुख समस्याओं का उल्लेख कीजिए।

18. ग्रामीण व नगरीय अधिवासों में अन्तर कीजिए।

निबन्धात्मक

19. मानव अधिवास का अर्थ स्पष्ट करते हुए इनके प्रतिरूपों का वर्णन कीजिए।

20. ग्रामीण अधिवासों पर एक लेख लिखिए।

21. नगरीय अधिवासों के वर्गीकरण के आधारों का उल्लेख करते हुए इनके प्रकारों का विस्तृत वर्णन कीजिए।

22. मानव अधिवासों के प्रकार व प्रतिरूप में अन्तर स्पष्ट कीजिए साथ ही ग्रामीण अधिवासों के प्रकारों का भी वर्णन कीजिए।

पाठ 07
मानव व्यवसाय : प्रमुख प्रकार
(Human Occupations : Major Types)

मनुष्य मानव भूगोल के अध्ययन का केन्द्र बिन्दू है। वह एक क्रियाशील प्राणी है और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विभिन्न प्रकार की क्रियाएँ करता है। मनुष्य की जिन क्रियाओं से आर्थिक वृद्धि होती है, उन्हें आर्थिक क्रियाएँ कहते हैं। मनुष्य की आर्थिक क्रियाओं पर भौतिक व सांस्कृतिक वातावरण का प्रभाव पड़ता है। विश्व के विभिन्न प्रदेशों में भौतिक व सांस्कृतिक वातावरण की परिस्थितियाँ भिन्न होने के कारण मनुष्य की आर्थिक क्रियाएँ भी भिन्न –भिन्न होती है। उदाहरणतः मनुष्य वनों में एकत्रीकरण, आखेट व लकड़ी काटने का कार्य करता है, घास के मैदानों में पशुचारण कार्य करता है, उपजाऊ मैदानी भागों में कृषि कार्य करता है, जल में मछली पकड़ता है और खानों से खनिज निकालता है। इसके अलावा वह अनुकूल परिस्थितियों में वस्तु विनिर्माण उधोग, परिवहन या व्यापार जैसी आर्थिक क्रियाओं में व्यस्त है। जीवन–यापन के लिए की जाने वाली आर्थिक क्रियाओं को व्यवसाय कहते हैं।

मानव व्यवसायों का विकास एवं बदलती प्रकृति

आदिम मानव अपनी उदरपूर्ति जंगली जानवरों के शिकार एवं वनोत्पादों से करता था। मानव घुमक्कड़ था। भोजन प्राप्ति में हमेशा अनिश्चितता बनी रहती थी। धीरे–धीरे मानव के बौद्धिक विकास के कारण वह उपयोगी जानवरों को पालने लगा। मानव समूह बनाकर पशुपालन करने लगा। पशु की चारे की पूर्ति के लिए वह ऋतु–प्रवास करने लगा। मानव की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति पशु उत्पादों से होने लगी। कृषि ने मानव को स्थायीकरण के लिए प्रेरित किया। मानव एक जगह बस्तियाँ बनाकर रहने लगा। वह उपजाऊ नदी मैदानों में कृषि कार्य करने लगा। प्राचीन सभ्यताओं का विकास इन्हीं नदी घाटियों में हुआ। भारत की सिन्धु घाटी सभ्यता, चीन की ह्वांग्हो नदी घाटी सभ्यता, मिस्र की नील नदी घाटी सभ्यता व दजला–फरात नदियों के बीच पनपी मेसोपोटोमिया सभ्यता कृषि–क्रियाओं के विकास के साथ ही पनपी।

पुर्नजागरण काल में खोज, अन्वेषण व तकनीकी विकास के साथ ही आर्थिक विकास ने गति पकड़ी। 18 वीं सदी में जीवाश्म ईंधन की खोज के बाद विश्व में खनन व उधोग जैसी आर्थिक गतिविधियों का विस्तार हुआ। व्यापार व वाणिज्य का विकास हुआ। नगरीकरण बढ़ा जिससे सेवा कार्यों में भी लोग आने लगे। इस प्रकार हम देखते है कि मानव के व्यवसायों के विकास का एक क्रम पाया जाता है। इस विकास क्रम को काल के अनुसार निम्न प्रकार से बाँटा जा सकता है।

(अ) प्रागैतिहासिक काल

इस काल मे मानव जंगली जानवरों का शिकार करता था तथा जंगलो से कंद–मूल, फल संग्रहण करता था। इस काल मे सीमित जनसंख्या व सीमित आवश्यकताएं थी। मानव जंगली अवस्था में ही रहता था। शिकार नुकीले पत्थरों व लकड़ी के डण्डों से करता था। इस काल मे शिकार में कुत्ता मानव का सहायक बना।

धीरे–धीरे मानव उपयोगी जानवरों को पालतू बनाकर पालने

लगा। जानवरों से मानव को दूध, दही, माँस, चमड़ा, हड्डियाँ आदि उपयोगी चीज़ें मिलने लगी। पशुओं के चारे की कमी की पूर्ति हेतु घुमक्कड़ जीवन जीता रहा। अस्थायी आवास (तम्बू) बनाकर छोटे–छोटे समूहों मे रहने लगा। उपयोगी पौधों के बीजों को बोकर उसने खेती करना प्रारम्भ किया। वह झुमिंग कृषि करने लगा। फसलों व पालतु जानवरों की देखभाल व सुरक्षा के लिए टहनियों, पत्तियों व जानवरों की खालों की झोपड़ियाँ बनाकर रहने लगा। नवपाषाण काल मे मनुष्य ने पहिये का आविष्कार किया। इस काल तक मानव ने मिट्टी से बर्तन बनाने की कला सीख ली थी।

(ब) प्राचीन काल

इस काल मे कृषि व पशुपालन जैसी आर्थिक क्रियाओं के विकास के साथ मानव के जीवन में स्थायित्व आया। उसकी प्राथमिक आवश्यकताओं की सुगमता से पूर्ति होने लगी। शेष बचे समय में वह अन्य कलाओं का विकास करने लगा। लोहा, ताँबा, व काँसा जैसे मजबूत धातुओं की खोज की, जिससे वह उपयोगी हथियार व सामान बनाने लगा। हल व बैलों की मदद से कृषि करने लगा। फसलों को सिंचाई के रूप में पानी देना सीख लिया। इसी काल मे ईसा से लगभग 2500 वर्ष पूर्व मोहनजोदड़ो व हड़प्पा सभ्यता सिंधु नदी घाटी में विकसित हुयी। नगर नियोजन व भवन निर्माण की उत्कृष्ट कला का उदाहरण इस सभ्यता की खुदाई में देखने को मिला है। मिस्र के पिरामिड उस काल की तकनीकी उन्नति के सूचक है। इस काल में कृषि के साथ–साथ कुटीर उधोगों का भी तेजी से विकास हुआ। विभिन्न तैयार सामानों का आपसी व्यापार इस काल मे प्रारम्भ हो गया था। यूनानी व रोमन सभ्यताओं मे नगरीय सभ्यताएँ पनपी।

(स) मध्यकाल

600 ईस्वी से 1500 ईस्वी के बीच की अवधि को मध्यकाल के अन्तर्गत शामिल किया जाता है। यूरोप में इस काल में मानव व्यवसायों में विविधता बढ़ी। इस काल में जागीरदारी व सामंतवादी प्रथा का प्रचलन था। कृषि का भी उत्तरोतर विकास होता गया। बढ़ती शिक्षा, व्यापार तथा सांस्कृतिक विकास के कारण बड़े–बड़े नगरों का विकास हुआ। व्यापार में वस्तुओं का विनिमय होता था। ग्रामीण क्षेत्रों से कृषि उत्पाद नगरों में एवं नगरों से निर्मित माल ग्रामीण क्षेत्रों में आता था। यूरोप में धार्मिक विचारों के प्रभुत्त्व व वैचारिक स्वतंत्रता के दमन के कारण तकनीकी विकास अधिक नहीं हो सका। इसी काल में भारत में व्यावसायिक, कृषि, कुटिर उद्योग एवं व्यापार का सर्वाधिक विकास हुआ। भारत इस दृष्टि से विश्व का प्रतिनिधित्व करता था।

(द) आधुनिक काल

15वीं सदी से वर्तमान समय तक की अवधि को आधुनिक काल माना जाता है। इस काल में मनुष्य के व्यवसाय अपने चरमोत्कर्ष तक पहुँच गये। तकनीकी विकास, खोज व आविष्कारों के कारण आधुनिक विकसित मानव व्यवसायों का उदय हुआ। इस काल मे मानव प्राथमिक व्यवसायों की तुलना में द्वितीयक, तृतीयक,चतुर्थक व पंचम व्यवसायों से जुड़ने लगा। इसी युग मे औद्योगिक क्रांति आयी जिसके कारण अधिकतर आर्थिक क्रियाएँ स्वचालित मशीनों के द्वारा संचालित होने लगी। 19वीं शताब्दी से कृषि मे उन्नत बीजों, रसायनों, कीटनाशक दवाओं व उन्नत मशीनों का उपयोग होने लगा। पशुपालन व मत्स्य व्यवसाय विस्तृत व वाणिज्यक स्तर पर स्वचालित मशीनों द्वारा किया जाने लगा। औद्योगिक क्रियाओं के लिए वृहत् स्तर पर विभिन्न खनिजों जैसे लौह अयस्क, ताँबा, जस्ता व सीसा आदि का खनन वैज्ञानिक रीति से होने लगा। ऊर्जा के विभिन्न साधनों से ऊर्जा की प्राप्ति के कारण वृहत् स्तर पर उद्योगों में विभिन्न वस्तुओं का निर्माण होने लगा। विकास के उच्च स्तर पर पहुँचे विकसित देशों के लोग चतुर्थक व पंचम व्यवसायों से अधिक जुड़े हैं।

मानव व्यवसायों का वर्गीकरण

मानव की जीविका उपार्जन की विधियों और आर्थिक क्रियाओं को वर्तमान में पाँच वर्गो में बाँटा जाता है। यह विभाजन पृथ्वी के प्राकृतिक संसाधनों से सतत दूरी बढ़ने के आधार पर किया गया है।

(1) प्राथमिक व्यवसाय : आखेट, संग्रहण, कृषि, पशुपालन, खनन आदि।

(2) द्वितीयक व्यवसाय : विनिर्माण, निर्माण, ऊर्जा–उत्पादन, प्रसंस्करण व अन्य निर्माण।

(3) तृतीयक व्यवसाय : परिवहन, व्यापार, संचार, प्रशासन, मनोरंजन, बैंक, बीमा, पर्यटन।

(4) चतुर्थक व्यवसाय : सूचना, शोध, प्रबन्धन, शिक्षा, स्वास्थ्य एवं सुरक्षा।

(5) पंचम व्यवसाय : कार्यकारी निर्माणकर्त्ता, अनुसंधान, सरकार, कानूनी व तकनीकी सलाहकार।

किसी भी अर्थव्यवस्था में विभिन्न व्यवसायों में संलग्न लोगों का ऐतिहासिक विकास क्रमिक चरणों में होता है। स्पष्ट है कि प्राचीन काल में लोग मुख्यतः प्राथमिक व्यवसायों से जुड़े थे। औद्योगिक क्रान्ति के समय द्वितीयक व्यवसायों में तथा वर्तमान में

तृतीयक, चतुर्थक व पंचम व्यवसायों की और लोगों का रूझान बढ़ा है।

1. प्राथमिक व्यवसाय

जिन व्यवसायों में मनुष्य प्रकृति प्रदत्त संसाधनों भूमि, जल, वनस्पति एवं खनिज पदार्थों आदि का सीधा उपयोग करके अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है, उन्हें प्राथमिक व्यवसाय कहते है। इनका सीधा सम्बन्ध प्राकृतिक वातावरण की दशाओं से होता है। इन व्यवसायों में भोजन व कच्चे माल का उत्पादन होता है।

अधिकांश प्राथमिक व्यवसाय सरल, परम्परागत और आदिवासी आर्थिक व सामाजिक संरचना के प्रतीक है। विश्व में प्राथमिक आर्थिक क्रियाओं में संलग्न व्यक्तियों का वितरण असमान है। विकसित देशों मे 5 प्रतिशत से भी कम श्रमिक प्राथमिक क्रियाओं में लगे हुये है। जबकि विकासशील देशों में ये क्रियाएँ श्रम के बहुत बड़े भाग को रोजगार प्रदान करती है। अपवाद स्वरूप कनाडा दो प्राथमिक व्यवसायों लकड़ी काटना व पेट्रोलियम खनन के आधार पर विकसित देशों की कतार में खड़ा है। प्राथमिक क्रियाएँ बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि ये मानव जाति के लिए भोजन और उद्योगों के लिए कच्चा माल उपलब्ध कराती है। इन व्यवसायों ने मानव जाति का उसके अस्तित्त्व के लिए 95 प्रतिशत से अधिक समय तक पोषण किया है।

प्राथमिक व्यवसायों में निम्न व्यवसाय सम्मिलित होते हैं– (i) आखेट या शिकार, (ii) भोजन व वनोत्पाद एकत्रीकरण, (iii) लकड़ी काटना, (iv) मछली पकड़ना, (v) पशुपालन, (vi) कृषि, (vii) खनन आदि।

संसार में भूमि उपयोग की भिन्नता की दृष्टि से प्राथमिक व्यवसायों के प्रमुख प्रदेश निम्नलिखित हैं–

(i) उष्ण कटिबंधीय प्रदेश
  (अ) विषुवतरेखीय आर्द्रवन (अमेजन–काँगो प्रकार)
  (ब) उष्ण कटिबंधीय आर्द्र कृषि प्रदेश (पूर्वी भारत, पूर्वी ब्राजील)
  (स) आर्द्र– शुष्क निम्न अंक्षाशीय सवाना (सूडान, भारत, ब्राजील)
  (द) उष्ण कटिबंधीय उच्च प्रदेश (इथोपिया प्रकार)
  (य) मरूस्थल (सहारा, अरब, थार, मध्य एशिया, मंगोलिया, पश्चिमी आस्ट्रेलिया, कालाहारी)

(ii) समशीतोष्ण कटिबंधीय प्रदेश
  (अ) सम–शीतोष्ण घास के मैदान (प्रेयरी व स्टैपी प्रकार)
  (ब) भूमध्यसागरीय तुल्य प्रदेश
  (स) उत्तरी चीन तुल्य प्रदेश
  (द) समुद्री चक्रवातीय प्रदेश (प. यूरोप प्रकार)
  (य) महाद्वीपीय चक्रवातीय प्रदेश (उत्तरी–पूर्वी संयुक्त राज्य अमेरिका प्रकार)
  (र) शीतल महाद्वीपीय प्रदेश (पूर्वी यूरोप प्रकार)

(iii) शीत प्रदेश
  (अ) शीतल वन (टैगा, साइबेरिया, कनाडा प्रकार)
  (ब) टूण्ड्रा प्रदेश
  (स) ऊँचे पर्वत

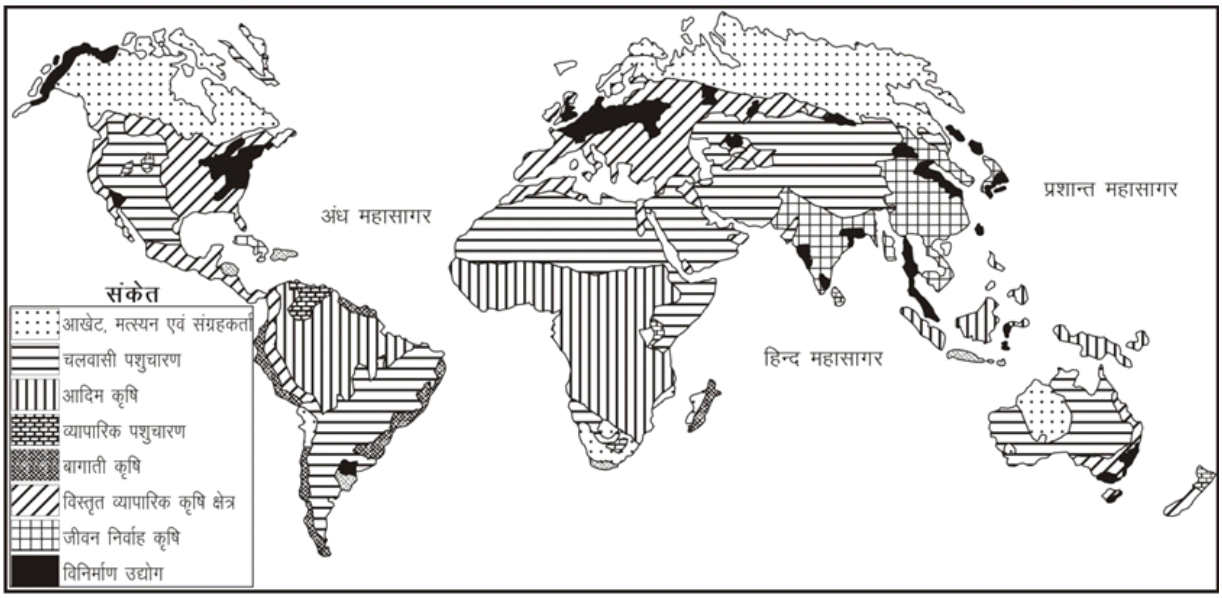

मानचित्र 7.1 : मानव के प्राथमिक व्यवसाय

इन प्रदेशों में प्राथमिक व्यवसायों को प्राकृतिक संसाधन जैसे– जलवायु, भूमि की बनावट, मिट्टी व वनस्पति निश्चित करते है।

2. द्वितीयक व्यवसाय

द्वितीयक व्यवसाय के अन्तर्गत प्रकृति प्रदत्त संसाधनों का सीधा उपयोग नहीं होता है वरन् उन्हें परिष्कृत व परिवर्तित करके उन्हें अधिक उपयोगी व मूल्यवान बनाते हैं। अर्थात ''प्रकृति प्रदत्त संसाधनों का सीधा उपयोग न करके, मनुष्य द्वारा परिष्कृत व परिवर्तित करके उसे उपयोगी योग्य बनाने सम्बन्धी क्रियाएँ द्वितीयक व्यवसाय कहलाते है। द्वितीयक व्यवसायों में विनिर्माण, प्रसंस्करण व निर्माण की गतिविधियाँ शामिल है। उदाहरण के लिए लौह अयस्क से इस्पात, गेहूँ से आटा, कपास से सूती वस्त्र, गन्ने से चीनी, लकड़ी से फर्नीचर व कागज बनाना आदि सभी द्वितीयक व्यवसाय के उदाहरण है। द्वितीयक व्यवसाय में निम्न व्यवसाय सम्मिलित किये जाते है।

(i) उद्योग धंधे, (ii) खाद्य प्रसंस्करण, (iii) निर्माण– भवन, सड़क आदि, (iv) दुग्ध उद्योग, (v) विशेषीकृत कृषि।

द्वितीयक व्यवसायों को निर्धारित करने मे प्राकृतिक संसाधनों तथा सांस्कृतिक संसाधनों, दोनों का प्रभाव होता है। इनको निर्धारित करने वाले कारक है– (i) कच्चा माल, (ii) शक्ति के संसाधन, (iii) परिवहन व संचार की सुविधाएँ, (iv) पूँजी, (v) बाजार, (vi) सरकारी नीतियाँ, (vii) श्रम व (viii) प्रौद्योगिकीय नवाचार आदि होते है।

चित्र 7.1 : विश्व में प्रमुख व्यवसाय



(1) प्राथमिक व्यवसाय



(2) द्वितीयक व्यवसाय



(3) तृतीयक व्यवसाय



(4) चतुर्थक व्यवसाय

3. तृतीयक व्यवसाय

इस व्यवसाय मे समुदायों को दी जाने वाली व्यक्तिगत तथा व्यवसायिक प्रत्यक्ष सेवाएँ सम्मिलित है। इसे 'सेवा श्रेणी' व्यवसाय भी कहते है। अधिकांश तृतीयक क्रिया–कलापों का निष्पादन कुशल श्रमिकों, व्यावसायिक दृष्टि से प्रशिक्षित विशेषज्ञों और परामर्श दाताओं द्वारा होता है। तृतीयक व्यवसायों में निम्न व्यवसाय सम्मिलित किये जाते है :

(1) परिवहन (2) व्यापार व वाणिज्य (3) संचार (4) सेवाएँ (बैंक, बीमा, पर्यटन इत्यादि)

इनको उस क्षेत्र के मनुष्यों के सांस्कृतिक स्तर तथा वैज्ञानिक व तकनीकी उन्नति के द्वारा निश्चित किया जाता है। एक विकसित अर्थव्यवस्था में बहुसंख्यक श्रमिक तृतीयक व्यवसायों से रोजगार पाते हैं। तृतीयक व्यवसायों में उत्पादन और विनिमय दोनों सम्मिलित होते है। उत्पादन में सेवाओं की उपलब्धता शामिल होती है जिनका उपयोग किया जाता है। सेवाओं के बदले में पारिश्रमिक लिया जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि तृतीयक क्रियाकलापों में मूर्त वस्तुओं के उत्पादन की बजाय सेवाओं का व्यावसायिक उत्पादन होता है। नलसाज, बिजली मिस्त्री, दुकानदार, डॉक्टर, वकील आदि का काम इसका उदाहरण है। विनिमय के अन्तर्गत परिवहन, व्यापार व संचार की सुविधाएँ सम्मिलित होती है। जिनका उपयोग दूरी को निष्प्रभावी करने के लिए किया जाता है।

सारणी 7.3 में तृतीयक आर्थिक क्रियाओं का वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है।

4. चतुर्थक व्यवसाय

जीन गॉटमैन अप्रत्यक्ष सेवाओं को चतुर्थक व्यवसाय की श्रेणी मे शामिल करते हैं। विकसित अर्थव्यवस्थाओं में आधे से ज्यादा कर्मी ज्ञान के इस क्षेत्र में कार्यरत हैं।

सूचना आधारित तथा अनुसंधान व विकास आधारित सेवाओं से इस वर्ग का सम्बन्ध है। कार्यालय भवनों, शिक्षण संस्थाओं, अस्पतालों, रंगमंचों, लेखा कार्य और दलाली की फर्मो में काम करने वाले कर्मचारी अप्रत्यक्ष वर्ग की सेवाओं से सम्बन्ध रखते हैं। चार्ट 7. 1 में मानव के सेवा सेक्टर के प्रकारों का वर्गीकरण प्रस्तुत है।

आरेख 7.1 मे आर्थिक त्रि–खण्ड सिद्धान्त के आधार पर आर्थिक विकास के साथ मानव व्यवसायो मे आय बदलाव को दर्शाया गया है।

आरेख विश्व में विभिन्न व्यवसायों में संलग्न श्रमिक

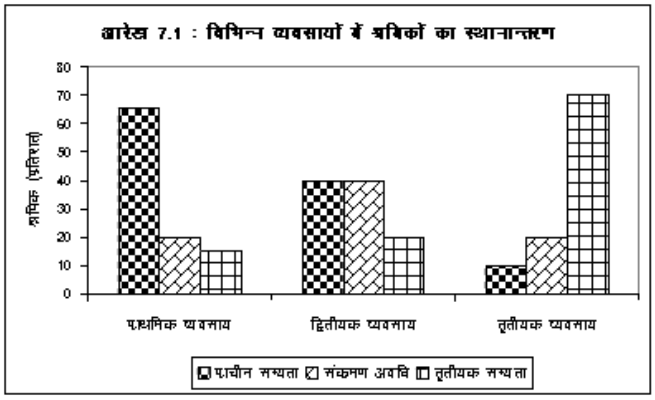

चार्ट 7.1 : सेवा सेक्टर

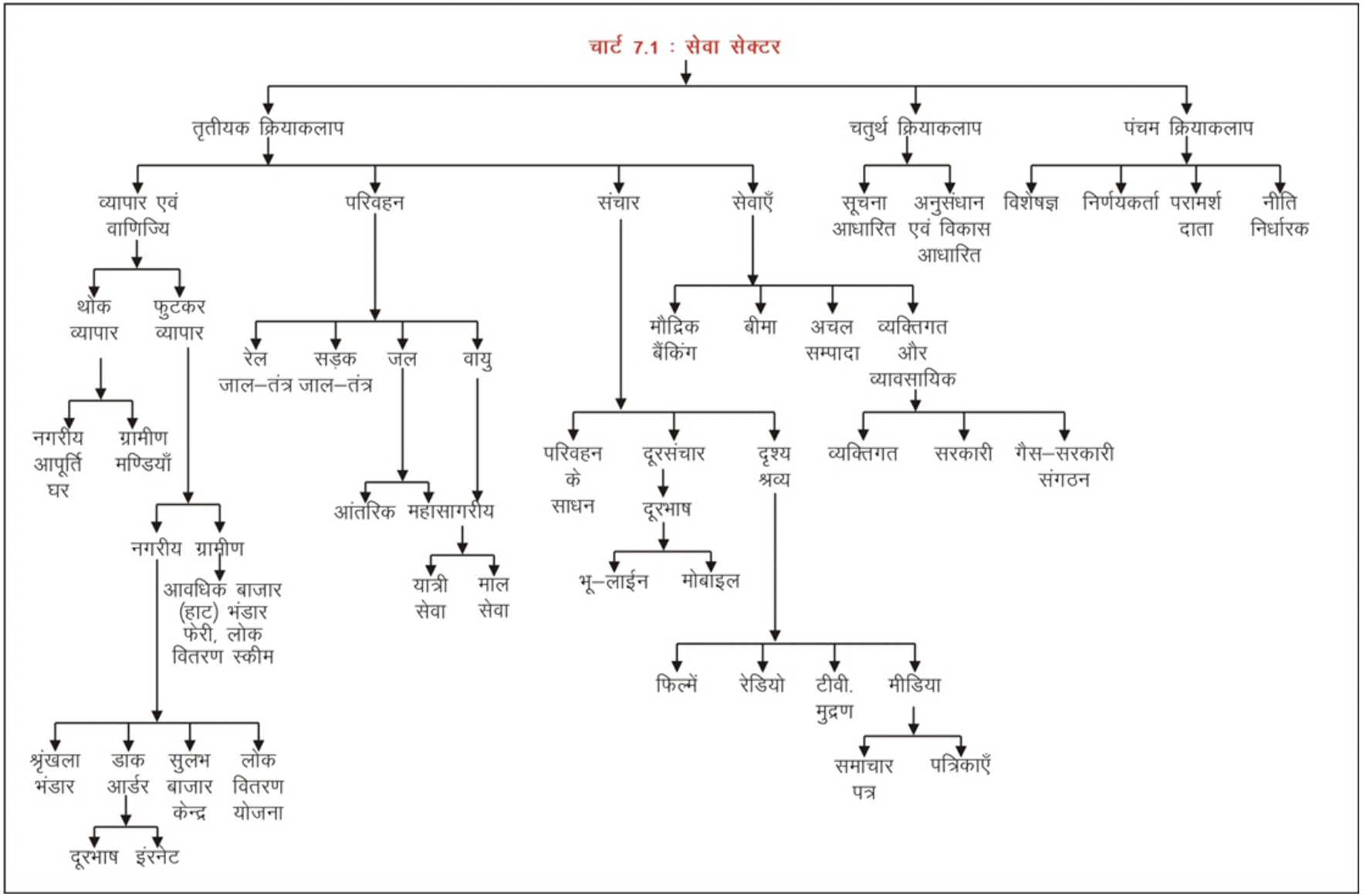

5. पंचम व्यवसाय

इसमें वे सेवाएँ आती है जो नवीन व वर्तमान विचारों की रचना व उनके पुनर्गठन की व्याख्या, आँकड़ों की व्याख्या व प्रयोग तथा नई प्रौद्योगिक के मूल्यांकन पर केन्द्रित होती है। ये व्यवसाय भी तृतीय व्यवसाय का एक और उप–विभाग है जिसमें विषय विशेषज्ञ, निर्णयकर्त्ता, परामर्शदाता व नीति निर्धारित लोगों को शामिल किया जाता है। उन्नत अर्थव्यवस्थाओं की संरचना मे इनका महत्व इनकी संख्या से कहीं अधिक होता है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दू

1. मनुष्य मानव भूगोल के अध्ययन का केन्द्र बिन्दू है।
2. तकनीकी विकास के साथ मनुष्य के व्यवसायों में बदलाव आता रहा है।
3. मानव व्यवसायों को पॉच मुख्य वर्गों में बॉटा गया है।
4. प्राथमिक व्यवसायों में मनुष्य प्रकृति प्रदत्त वस्तुओं का सीधा उपयोग कर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।
5. द्वितीयक व्यवसायों में प्रकृति प्रदत्त संसाधनों को परिष्कृत व परिवहन कर अधिक उपयोगी व मूल्यवान बनाया जाता है।
6. तृतीयक, चतुर्थक व पंचम व्यवसाय सेवा सेक्टर के अन्तर्गत आते हैं।
7. आर्थिक विकास के साथ ही मानव व्यवसायों में लगे श्रमिकों के व्यवसायों में तेजी से बदलाव आता है।
8. विकसित देशों में चतुर्थक व पंचम प्रकार के व्यवसायों में अधिक जनसंख्या कार्यरत होती है।
9. विकासशीत देशों की अधिकांश जनसंख्या प्राथमिक व्यवसायों व द्वितीयक व्यवसायों से जुड़ी होती है।

अभ्यसार्थ प्रश्न

बहुचयनात्मक

1. मानव के व्यवसाय कितने प्रकार के हैं?
   (अ) दो (ब) तीन
   (स) चार (द) पॉच
2. निम्नलिखित में से कौनसा व्यवसाय प्राथमिक व्यवसाय नहीं है?
   (अ) आखेट (ब) संग्रहण
   (स) व्यापार (द) पशुपालन
3. विनिर्माण उद्योग किस व्यवसाय से संबंधित है?
   (अ) प्राथमिक (ब) द्वितीयक
   (स) तृतीयक (द) चतुर्थक
4. प्रत्यक्ष सेवा सेक्टर किस प्रकार का व्यवसाय है?
   (अ) चतुर्थक (ब) तृतीयक
   (स) द्वितीयक (द) कोई नहीं

अतिलघूत्तरात्मक

5. प्राथमिक व्यवसाय का उदाहरण बताइए।
6. औद्योगिक क्रांति के समय लोग मुख्यतः किस व्यवसाय में संलग्न थे?
7. द्वितीयक व्यवसायों के नाम बताइये?
8. तृतीयक व्यवसायों के नाम बताइये?
9. पंचम व्यवसाय किसे कहते हैं?

लघूत्तरात्मक

10. प्राथमिक व्यवसायों का वर्णन कीजिये।
11. चतुर्थक व्यवसायों का वर्णन कीजिये।
12. द्वितीयक व्यवसायों को निर्धारित करने वाले कारकों के नाम बताइये।

निबंधात्मक

13. विश्व में किए जाने वाले प्रमुख व्यवसायों का वर्णन कीजिये।
14. मानव व्यवसायों के विकास के साथ बदलती प्रकृति को समझाइये।

आंकिक

15. अपने गांव या शहर तथा बड़े शहरों में मानव द्वारा किये जाने वाल व्यवसायों का अवलोकन कीजिए।
16. अपने गांव में प्राथमिक, द्वितीयक, तृतीयक व्यवसाय में लगे लोगों की संख्या का पता लगाइए।

पाठ 08
प्राथमिक व्यवसाय
(Primary Occupations)

पिछले अध्याय में हमने मानव द्वारा की जाने वाली आर्थिक क्रियाओं के आधार पर मुख्य व्यवसायों की जानकारी प्राप्त की। इस अध्याय में हम प्रमुख प्राथमिक व्यवसायों का अध्ययन करेगें।

विश्व के प्राथमिक व्यवसाय निम्नलिखित हैं :–

- आखेट
- संग्रहण
- मछली पकड़ना
- पशुचारण
- कृषि
- लकड़ी काटना
- खनन

1 आखेट

यह उद्यम विश्व का सबसे प्राचीन उद्यम माना जाता है। इसमें सबसे कम व्यक्ति की आवश्यकता होती है। लेकिन अन्य किसी आर्थिक क्रिया की अपेक्षा अधिक क्षेत्र की आवश्यकता होती है। इस व्यवसाय में जीवनयापन न्यूनतम आधार पर संभव है। आखेट की प्रक्रिया अपनाते हुए व्यक्ति विभिन्न क्षेत्रों का भ्रमण कर भोजन, वस्त्र एवं निवास के लिए साधन जुटाते हैं। अतिशीत व अत्यधिक गर्म प्रदेशों में रहने वाले लोग आखेट द्वारा जीवन यापन करते हैं। यह कार्य कठोर जलवायु दशाओं में घुमक्कड़ जीवन जीते हुए किया जाता है। इस कार्य के लिए बहुत कम पूँजी एवं निम्न स्तरीय तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता होती है। इसमें भोजन अधिशेष नहीं रहता है। आखेटक लोग आखेट के लिए नुकीले औजार, विषाक्त बाणों, व फंदू आदि काम में लेते हैं। अवैध शिकार के कारण जीवों की कई जातियाँ या तो विलुप्त हो गई हैं या संकटापन्न हैं। भारत में शिकार पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाया गया है। केवल कुछ विशिष्ट प्रदेशों के निवासी आखेट से जीवनयापन करते हैं।



चित्र 8.1 : बुशमैन द्वारा आखेट

वर्तमान में निम्न क्षेत्रों में इस प्रकार का उद्यम किया जाता है :–

(1) कनाडा के टूण्ड्रा और टैगा प्रदेशों में एस्किमों जनजाति द्वारा।

(2) उत्तरी साईबेरिया में बसने वाले सेमोयड़, तुंग, याकूत, माइत, चकची, कोरयाक आदि जनजातियों द्वारा।

(3) कालाहारी मरुस्थल में बुशमैन जनजाति द्वारा।

(4) काँगों बेसिन में पिग्मी जनजाति द्वारा।

(5) मलाया में सेंमाँग व सकाई जनजाति द्वारा।

(6) बोर्नियो में पुनान द्वारा।

(7) न्युगिनी में पापुऑन द्वारा।

(8) अमेजन बेसिन में जिवारो व यागुआ जनजाति द्वारा।

वर्तमान में इनके क्षेत्र सीमित होते जा रहे हैं। कई स्थानों पर आखेट में संलग्न जनजातियों के लोग भी स्थायी रूप से घर बनाकर रहने लगे हैं।

2. संग्रहण

खाद्य संग्रहण भी मनुष्य का सबसे पुराना व आर्थिक दृष्टि से निम्न क्रम का व्यवसाय है। सामाजिक व प्रौद्योगिक विकास के साथ इस व्यवसाय का महत्त्व कम होता जा रहा है। अब कुछ हजार लोग ही इस व्यवसाय में संलग्न हैं। मानव अपनी रोटी, कपड़ा और मकान तथा अन्य आवश्यकताओं के लिए विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का संग्रह करता आया है। इस व्यवसाय में संलग्न लोग जंगलों से फल, कंद–मूल, नट, बैरी, जड़ों, पत्तों आदि का संग्रहण करतें हैं। ये लोग कृषि नहीं करते तथा पशुओं को भी पालतू नहीं बनाते। ये पर्यावरण से छेड़छाड़ नहीं करते और न्यूनतम परिश्रम से प्राप्त होने वाली वस्तुओं का सेवन करते हैं। संग्रहण व्यवसाय के मुख्य क्षेत्र निम्न हैं :–



चित्र 8.2(अ) : तेन्दू पत्ता संग्रहण



चित्र 8.2(ब) : तेन्दू पत्ता संग्रहण

(1) मलाया प्रायद्वीप में सेंमाँग व सकाई जनजाति।

(2) अमेजिन बेसिन में बोरो जनजाति।

(3) कालाहारी क्षेत्र में बुशमैन जनजाति।

(4) पर्वतीय क्षेत्रों में।

(5) दक्षिणी पूर्वी एशिया के आन्तरिक भागों में।

आधुनिक काल में भोजन संग्रहण के कार्य का कुछ भागों में व्यवसायीकरण भी हो गया है। ये लोग कीमती पौधों की पत्तियाँ, छाल एवं औषधीय पौधों को सामान्य रूप से संशोधित कर बाजार में बेचने का कार्य भी करतें हैं। विभिन्न वृक्षों की छालों का उपयोग कुनैन बनाने, चमड़ा तैयार करने व कार्क तैयार करने के लिए किया जाता है। पत्तियों का उपयोग पेय पदार्थ, दवाईयाँ, व क्रान्तिवर्धक वस्तुएँ बनाने के लिए करते हैं। रेशे को कपड़ा बनाने तथा दृढ़ फल को भोजन व तेल बनाने के लिए किया जाता है। तने का उपयोग रबर, बलाटा, गौंद, व रॉल बनाने में होता है। विश्व स्तर पर संग्रहण का महत्त्व अधिक नहीं है। इन क्रियाओं के द्वारा प्राप्त उत्पाद विश्व व्यापार में प्रतिस्पर्द्धा नहीं कर सकते हैं।

3. मछली पकड़ना

यह व्यवसाय भी प्राचीन काल से ही होता आ रहा है, इसमें मानव को प्राकृतिक अवरोधों से निरन्तर संघर्ष करना पड़ता है। मछलियाँ तालाबों, पोखरों, नदियों, नालों, झीलों तथा तटवर्ती सागरों से पकड़ी जाती हैं। इस व्यवसाय में प्राकृतिक रूप से उपलब्ध मछलियों को पकड़तें हैं तथा अपना जीवन निर्वाह करतें हैं। मछलियों को भोजन के अलावा तेल व चमड़ा प्राप्त करने, दूधारू पशुओं को खिलाने व खाद बनाने आदि विभिन्न कामों में भी लिया जाता है।



चित्र 8.3 : मछली पकड़ने का व्यवसाय



चित्र 8.4 : केरल में मछली पकड़ने के झाल

तकनीकी विकास व बढ़ती जनसंख्या की उदरपूर्ति की माँग के कारण मत्स्य व्यवसाय में आधुनिकीकरण हुआ है। मछलियाँ ताजे पानी के स्रोतों, तथा खुले व तटवर्ती समुद्रों में पकड़ी जाती हैं। समुद्रों में शीतोष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों में ठण्डी और गरम धाराओं के मिलन स्थलों पर अधिक पकड़ी जाती हैं। विश्व में मछली पकड़ने के प्रमुख क्षेत्र निम्न हैं –

(1) उत्तरी प्रशांत महासागर तटवर्तीय क्षेत्र

(2) उत्तरी अटलांटिक तटीय अमेरिकन क्षेत्र

(3) उत्तरी पश्चिमी यूरोपियन क्षेत्र

(4) जापान सागर क्षेत्र

4. पशुचारण

आखेट व संग्रहण पर निर्भर रहने वाले मानव समूह ने जब यह महसूस किया कि इनसें ढ़ग से जीवन यापन नहीं हो सकता है, तब मानव ने पशुपालन व्यवसाय को अपनाया। विभिन्न प्राकृतिक दशाओं में रहने वाले लोगों ने उन क्षेत्रों में पाये जाने वाले पशुओं का चयन करके पालतू बनाया। पशुओं से भोज्य पदार्थ, चमड़ा व ऊन प्राप्त करते हैं। यह व्यवसाय मुख्यतः उन क्षेत्रों में किया जाता है जहाँ जलवायु उष्ण व शुष्क अथवा शीतोष्ण व शुष्क होती है तथा धरातल उबड़–खाबड़ व पर्वतीय होता है। पशुपालन के मुख्य क्षेत्र हैं–

(1) उष्ण कटिबन्धीय घास के मैदान : ये 5^{0} से 30^{0} अक्षांशों के बीच में फैले हैं, जहाँ वर्षा का औसत 100 सेमी से कम है। घास की ऊँचाई 1.8 से 3.0 मीटर के बीच होती है। इन घास के मैदानों को सूडान में सवाना, वेनेजुएला में लानोस, ब्राजील में कम्पाज तथा दक्षिणी अफ्रीका में पार्कलैंड के नाम से जाना जाता है।



चित्र 8.5 : सूडान में ऊँट पालन



चित्र 8.6 : भारत में पशुचारण

(2) शीतोष्ण कटिबन्धीय घास के मैदान– ये 30^{0} से 45^{0} अक्षांशों के बीच फैले हैं। यहाँ वर्षा का औसत 50 सेमी है। इन घास के मैदानों को रूस में स्टेपीज, संयुक्त राज्य अमेरिका में पम्पाज, आस्ट्रेलिया में डाउन्स के नाम से जाना जाता है।

(3) मरूस्थलीय क्षेत्र : थार मरूस्थल, कालाहारी, अरब मरूस्थल।

(4) पर्वतीय क्षेत्र : विश्व के सभी पर्वतीय स्थल।

यह व्यवसाय आदिम ढंग का भी हो सकता है और अति विकसित एवं वैज्ञानिक ढंग से व्यापारिक स्तर पर भी हो सकता है।

(अ) चलवासी पशुचारण

(1) चलवासी पशुचारण मुख्यतः जीवन–निर्वाह क्रिया है।

(2) यह पशुपालन का साधारण रूप जिसमें पशु मुख्यतः प्राकृतिक वनस्पति पर ही आश्रित होते हैं।

(3) चलवासी पशुचारण में भूमि का विस्तृत उपयोग किया जाता है।

(4) इनकी सम्पत्ति इनके पशु होते हैं।



चित्र 8.7 : पश्चिमी राजस्थान में बकरी पालन



चित्र 8.8 : चलवासी पशुचारण

(5) अधिकांश चलवासी चरवाहे कबीलों में रहते हैं।

(6) पशुचारण की विधि प्राचीन ढंग की होती है।

(7) ये लोग चारे की प्राप्ति के लिए ऋतुओं के अनुसार पशुचारण करते हैं।

(8) दक्षिणी–पश्चिमी एशिया तथा अफ्रीका के सहारा मरुस्थल में ऊँट, अरब प्रायद्वीप, इराक, ईरान, अफगानिस्तान आदि देशों में भेड़, बकरी, गाय, घोड़े, गधे व खच्चर, मध्य एशिया के उच्च पर्वतीय क्षेत्रों में याक् व टून्ड्रा प्रदेशों में रेण्डियर व कैरिबू पाले जाते हैं।

(9) भारत में हिमालय के पर्वतीय क्षेत्रों में गुज्जर, बकरवाल, गद्दी व भूटिया लोगों का समूह ग्रीष्मकाल में मैदानी क्षेत्रों से पर्वतीय क्षेत्रों में चले जाते हैं तथा शीतकाल में पर्वतीय क्षेत्रों से मैदानी क्षेत्रों में आ जाते हैं।

(10) चलवासी पशुचारकों की संख्या व क्षेत्र निरन्तर घट रही है। इसके दो कारण है (i) राजनीतिक सीमाओं का अधिरोपण, (ii) कई देशों द्वारा नई बस्तियों की योजना बनाना।

(11) पिछली एक सदी के दौरान उत्तरी व दक्षिणी अमेरिका तथा आस्ट्रेलिया में चलवासी पशुचारण का स्थान व्यापारिक पशुचारण ने ले लिया है। दक्षिणी रूस के स्टेपीज में चलवासी पशुचारण के स्थान पर स्थायी कृषि होने लगी है। रूसी गणराज्य में सिंचाई की व्यवस्था कर कपास की खेती की जा रही है।

(ब) वाणिज्यक पशुचारण

ज्ञान व विज्ञान की प्रगति तथा मानव की आवश्यकताओं में हुई वृद्धि ने पशुपालन व्यवसाय के रूप में भारी परिवर्तन कर दिया है। आज अनेक नये–नये व बड़े–बड़े क्षेत्रों में पशुपालन व्यापारिक स्तर पर व्यवस्थित ढंग से किया जाता है। इसकी विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:–

(1) यह अधिक व्यवस्थित तथा पूँजी प्रधान व्यवसाय है।

(2) पशुओं के लिए बड़े–बड़े फार्म बनाये जाते हैं, जिन्हें 'रेंच' कहतें हैं।

(3) पशु उत्पादों को वैज्ञानिक ढंग से संशोधित एवं डिब्बा बन्द कर विश्व बाजार में निर्यात कर दिया जाता है।

(4) इन उत्पादों को सड़ने से बचाने के लिए रेफ्रिजरेटर का प्रयोग किया जाता है।

(5) इसमें मुख्य ध्यान पशुओं के प्रजनन, जननिक सुधार, बीमारियों पर नियंत्रण व उनके स्वास्थ्य पर रहता है।

(6) व्यापारिक पशुपालन मुख्यतः शीतोष्ण घास के मैदानों में किया जाता है।



चित्र 8.9 : यूरोप में व्यापारिक पशुचारण



चित्र 8.10 : न्यूजीलैण्ड में व्यापारिक पशुचारण

(7) डेनमार्क व न्यूजीलैण्ड दूध के लिए, आस्ट्रेलिया दूध व ऊन के लिए, संयुक्त राज्य अमेरिका माँस व दूध उत्पादन के लिए विशेष पहचान रखते हैं।

(8) विश्व में न्यूजीलैण्ड, आस्ट्रेलिया, अर्जेन्टाइना, युरुग्वे, संयुक्त राज्य अमेरिका, डेनमार्क, स्वीडन तथा हालैण्ड में वाणिज्यक पशुपालन किया जाता है।

सारणी 8.1 : चलवासी पशुचारण व व्यापारिक पशुचारण में अंतर

चलवासी पशुचारण	व्यापारिक पशुचारण
1 ये चारे व पानी की खोज में एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते हैं।	1 इस प्रकार का पशुपालन एक निश्चित् स्थान पर बाड़ों में किया जाता है।
2 पशु प्राकृतिक रूप से पाले जाते हैं। और उनकी विशेष देखभाल नहीं की जाती है।	2 पशुओं को वैज्ञानिक रीति से पाला जाता है और उनकी विशेष देखभाल की जाती है।
3 चलवासी पशुपालक जीवन निर्वाह की एक आर्थिक क्रिया ही है।	3 यह व्यापार पर आधारित आर्थिक क्रिया है।
4 यह पुरानी दुनिया तक सीमित है।	4 यह मुख्यतःनई दुनिया के देशों में प्रचलित है।

5. कृषि

प्राथमिक स्तर की आर्थिक क्रियाओं में कृषि का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह सबसे अधिक प्रचलित व्यवसाय है। कृषि ने मनुष्य को स्थायी आवास की सुविधा दी। विश्व के भोजन के मुख्य स्रोत कृषि द्वारा भोजन की लगभग 71 प्रतिशत आवश्यकताएँ पूरी होती हैं। विकासशील देशों में कृषि प्रमुख व्यवसाय है। कृषि का मशीनीकरण हो जाने से उत्पादन में वृद्धि हुयी और कृषि उत्पादों का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार शुरु हो गया। कृषि का बदलता स्वरूप व विकास मानव सभ्यता के विकास का प्रतीक है। विश्व में पाई जाने वाली विभिन्न भौतिक, सामाजिक एवं आर्थिक दशाएँ कृषि कार्य को प्रभावित करती हैं। इस प्रभाव के कारण संसार में विभिन्न कृषि प्रणालियाँ देखी जाती हैं। कृषि की मुख्य प्रणालियाँ निम्न हैं :

(1) स्थानान्तरित कृषि

यह कृषि का सबसे प्राचीन रूप है। यह कृषि उष्ण कटिबन्धीय वनों में की जाती है। यहाँ वनों को जला दिया जाता है। भूमि को साफ किया जाता है और उस भूमि पर कृषि की जाती है। यह कृषि आदिम जनजाति के लोगों द्वारा की जाती है। इस प्रकार की कृषि की विशेषताएँ हैं:–

(i) इसमें बोये गये खेतों का आकार बहुत ही छोटा होता है।

(ii) कृषि पुराने औजारों जैसे लकड़ी, कुदाली, फावड़े आदि से की जाती है।

(iii) दो–तीन वर्षों में भूमि में उर्वरता समाप्त होने पर अन्यत्र नये सिरे से खेत तैयार कर खेती की जाती है।

(iv) इस प्रकार की कृषि को भारत के पूर्वी राज्यों में झूमिंग, मध्य अमेरिका एवं मैक्सिको में मिल्पा, मलेशिया व इण्डोनेशिया में लदांग तथा वियतनाम में 'रे' कहा जाता है।

(v) यह कृषि अमेजन नदी बेसिन, काँगो बेसिन, व पूर्वी द्वीप समूह में की भी जाती है।

(vi) वर्तमान में इसमें धान, स्थानीय मोटे अनाज मक्का, ज्वार, बाजरा, दालें, तिलहन आदि फसलें पैदा की जाती हैं।

(2) आदिम स्थायी कृषि

धीरे–धीरे स्थानान्तरणशील कृषि ने स्थायी रुप ग्रहण कर लिया तो ऐसी कृषि आदिम स्थायी कृषि कहलायी। इस कृषि की मुख्य विशेषताएँ है–

(i) भूमि को साफ करके मिट्टी की जुताई ढंग से की जाती है।

(ii) उपलब्ध जल का प्रयोग सिंचाई के लिए किया जाता है।

(iii) उत्पादन में वृद्विहोने के कारण अन्य व्यवसाय भी पनप जाते हैं।

(iv) कृषि के साथ पशुपालन भी किया जाता है।

(v) पशुओं का प्रयोग खेतों की जुताई व परिवहन में किया जाता है।

(vi) इस कृषि का विस्तार उत्तरी–पूर्वी भारत, मलेशिया, इण्डोनेशिया, मध्य इण्डीज के देशों में मिलता है।

(3) जीवन–निर्वाहन कृषि

यद्यपि कृषि की शुरूआत जीवन यापन के रूप में हुयी थी। लेकिन यह कृषक के लिए रोजगार का प्रमुख साधन बन गई। उसकी भोजन की आवश्यकताओं के साथ–साथ अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति करने लगी, तो कृषि का यह प्रकार जीवन–निर्वाहन कृषि कहलाने लगा। विगत 100 वर्षों में इस प्रकार की कृषि का तेजी से विस्तार हुआ। इस प्रकार की कृषि की मुख्य विशेषताएँ हैः–

(i) यह कृषि का स्थायी रूप है तथा अनुकूल प्राकृतिक दशाओं वाले क्षेत्रों में की जाती है।

(ii) कृषि भूमि पर जनसंख्या के दबाव के कारण भूमि का गहनतम उपयोग होता है।

(iii) कृषि की गहनता इतनी है कि वर्ष में दो या तीन फसलें ली जाती है।

(iv) भू–जोत छोटे आकार के व छितरे हुए होते हैं।

(v) मानवीय श्रम के भरपूर उपयोग के साथ–साथ कृषि यंत्रों का प्रयोग भी किया जाता है।



चित्र 8.11 : भारत में जीवन–निर्वाहन कृषि

(vi) उन्नत बीजों, रासायनिक उर्वरकों व कीटनाशक दवाओं के प्रयोग द्वारा उत्पादकता बढ़ी है।

(vii) सिंचाई सुविधाओं का विस्तार हुआ है तथा फसल चक्र का अनुसरण किया जाता है।

(viii) सघन जनसंख्या के कारण मुख्यतः खाद्यानों का उत्पादन होता है।

(ix) इस प्रकार की कृषि मानसून एशिया के घने बसे क्षेत्रों में की जाती है।

जीवन निर्वाहन कृषि के दो प्रकार है –

1. चावल प्रधान निर्वाहन कृषि – इसका विस्तार भारत, बाँग्लादेश म्याँमार, इण्डोनेशिया, कम्बोडिया, थाइलैण्ड, दक्षिणी व मध्य चीन में मिलता है। इन क्षेत्रों में 100 सेमी से अधिक वर्षा होती है। इन क्षेत्रों में चावल प्रमुख खाद्यान फसल है।

2. गेहूँ प्रधान निर्वाहन कृषि – इसका विस्तार उत्तरी–मध्य व पश्चिमी भारत, उत्तरी चीन, पाकिस्तान व कोरिया में मिलता है। इन क्षेत्रों में वर्षा 100 सेमी से कम होती है। इन क्षेत्रों में गेहूँ प्रमुख खाद्यान फसल है।

(4) विस्तृत वाणिज्यक अनाज कृषि –

वास्तव में जब जीवन निर्वाहन कृषि ने विस्तृत निर्वाहन का रूप ले लिया तो कृषि उत्पादन व्यापारिक दृष्टि से किया जाने लगा। इस प्रकार की कृषि विकसित देशों में जहाँ भूमि अधिक व जनसंख्या कम है, की जाती है। इसकी विशेषताओं को इस प्रकार समझा जा सकता है–

(i) इस प्रकार की कृषि विस्तृत भू–जोतों पर की जाती है। इनका क्षेत्रफल प्रायः 240 से 1600 हैक्टर तक होता है।

(ii) खेत तैयार करने से फसल काटने तक का समस्त कार्य मशीनों के द्वारा किया जाता है। ट्रैक्टर, हार्वस्टर, थ्रेसर, कम्बाईन, विनोअर आदि मुख्य यंत्र है।

(iii) इस प्रकार की कृषि की मुख्य फसल गेहूँ है। जौ, जई, राई, तिलहन आदि फसलें भी बोई जाती है।

(iv) खाद्यानों को सुरक्षित रखने के लिए बड़े–बड़े माल गोदाम बनाये जाते हैं।

(v) मानवीय श्रम का उपयोग न्यूनतम होता है।

(vi) प्रति हैक्टर उपज कम तथा प्रति व्यक्ति उपज अधिक होती है।

(vii) शीतोष्ण कटिबन्धीय घास के मैदानों में इस प्रकार की कृषि की जाती है। यूरेशिया के स्टेपीज, उत्तरी अमेरिका के

प्रेयरीज, अर्जेन्टाइना के पम्पास, दक्षिणी अफ्रीका के वेल्डस, आस्ट्रेलिया के डाउन्स तथा न्यूजीलैंड के कैंटरबरी के मैदानों में इस प्रकार की कृषि की जाती है।

(viii) इन कृषि क्षेत्रों में निरन्तर जनसंख्या वृद्विके कारण कृषि क्षेत्र निरन्तर घटता जा रहा है।

(ix) इस प्रकार की कृषि करने वाले सभी देश विकसित है।

(x) यह कृषि यंत्रीकृत व उच्च तकनीक आधारित है।

(5) बागाती कृषि – इस प्रकार की वाणिज्यक कृषि का विकास उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में उपनिवेश काल में यूरोपीय लोगों के द्वारा किया गया था। इनका मुख्य उद्देश्य यूरोपीय देशों को वे जरूरी उपजें उपलब्ध कराना था जो उष्ण कटिबंधीय जलवायु में ही पैदा हो सकती है। ब्रिटेनवासियों ने भारत व श्रीलंका में चाय के बागान, मलेशिया में रबड़ के बागान एवं पश्चिमी द्वीप समूह में गन्ना एवं केलों के बागान विकसित किए। फ्रांसवासियों ने पश्चिमी अफ्रीका में कॉफी एवं कोकोआ का रोपण किया। अमेरिकावासियों ने फिलीपाइन्स में नारियल व गन्ने के बागान लगााये। ब्राजील में कई यूरोपीय देशों ने कहवा के बागान लगाये। ये बागान 'फेजेंडा' के नाम से जाने जाते है। उपनिवेशवाद की समाप्ति के बाद वर्तमान में अधिकतर बागानों का स्वामित्व स्थानीय देशों की सरकार अथवा नागरिकों के नियंत्रण में है। अब ये बागान अपनी उपजों को निर्यात करने के साथ–साथ स्थानीय बाजारों में भी बेचते हैं। इसकी विशेषताएँ इस प्रकार है–

(i) इसमें भारी पूँजी निवेश, उच्च प्रबंध एवं तकनीकी आधार एवं वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग किया जाता है।

(ii) इसमें बहुत बड़ी संख्या में श्रमिकों की आवश्यकता होती है।

(iii) यह एक फसली कृषि है।

(iv) इनसे उद्योगों को कच्चा माल मिलता है।

(v) इलायची, काली मिर्च, गन्ना, रबर, चाय, कहवा, नारियल, केला प्रमुख बागाती फसलें है।

(vi) इस प्रकार की कृषि इण्डोनेशिया, मलेशिया, दक्षिणी व पूर्वी भारत, दक्षिणी चीन, म्यांमार, कम्बोडिया, फिलिपाइन्स, श्रीलंका, मध्य अफ्रीका, ब्राजील, फिजी, क्यूबा व हवाई द्वीपों पर की जाती है।

(6) मिश्रित कृषि – इस कृषि में फसलें उगाने तथा पशुओं को पालने का कार्य एक साथ किया जाता है। इस प्रकार की कृषि विश्व के अत्यधिक विकसित भागों में की जाती है। उत्तरी अमेरिका के पूर्वी भाग, उत्तरी–पश्चिमी यूरोप, यूरेशिया के कुछ भाग एवं दक्षिणी महाद्वीपों के शीतोष्ण अक्षांशो वाले भागों में इनका विस्तार है। इस कृषि की मुख्य विशेषताएँ हैं –

(i) फसल उत्पादन एवं पशुपालन दोनों को इसमें समान महत्त्व दिया जाता है।

(ii) इस कृषि में खेतों का आकार मध्यम होता है।

(iii) गेहूँ, जो, राई, जई, मक्का, सोयाबीन एवं चारे की फसल आदि प्रमुख बोई जाने वाली फसलें हैं।

(iv) फसलों के साथ पशुओं जैसे– भेड़–बकरी, सुअर, मवेशी, मुर्गी आदि को पाला जाता है।

(v) शस्यावर्त्तन एवं अंतः फसली कृषि मृदा की उर्वरता को बनाये रखती है।

(vi) इस प्रकार की कृषि में भारी पूंजी निवेश होता है।

(vii) कुशल व योग्य कृषक इस प्रकार की खेती को करते हैं।

(viii) यह कृषि महानगरों के समीप की जाती है।

(xi) उत्तम कृषि विधियाँ, उत्तम परिवहन व विश्वसनीय वर्षा से इस कृषि को बड़ी सहायता मिलती है।

(7) दुग्ध कृषि – यह कृषि का एक विशिष्ट तरीका है। इसमें दूध देने वाले पशुओं के प्रजनन, पशुचारण और नस्ल सुधारने पर विशेष ध्यान दिया जाता है। इसमें पशुओं की देखभाल वैज्ञानिक तरीकों से की जाती है। दूध दोहने और उसको परिष्कृत करने की क्रियाओं को मशीनों द्वारा किया जाता है। डेयरी कृषि का कार्य नगरीय व औद्योगिक केन्द्रों के समीप किया जाता है। क्योंकि ये क्षेत्र दुग्ध व अन्य डेयरी उत्पादों के अच्छे बाजार होते हैं। न्यूजीलैण्ड, आस्ट्रेलिया, हॉलेण्ड, डेनमार्क, संयुक्त राज्य अमेरिका में डेयरी फार्मिंग ने एक उद्योग का रूप ले लिया है।

(8) ट्रक कृषि – यह भी विशिष्ट प्रकार की कृषि है। जिसमें साग–सब्जियों की कृषि की जाती है। इन वस्तुओं को प्रतिदिन ट्रकों में भरकर निकटवर्ती नगरीय बाजारों में ले जाकर बेचा जाता है। बाजार से कृषि क्षेत्र की दूरी इस बात पर निर्भर करती है कि ट्रक द्वारा रातभर चलनें में कितनी दूरी तय होती है। इसलिए इस कृषि का नाम ट्रक कृषि रखा गया है। सर्वप्रथम इस प्रकार की कृषि का शुभारम्भ संयुक्त राज्य अमेरिका में हुआ। तेजी से बढ़ते महानगरों व औद्योगिक क्षेत्रों में ताजी सब्जियों की माँग अधिक होने के कारण इस प्रकार की कृषि का तेजी से प्रसार हुआ है। इस

कृषि का नगरीकरण से गहरा सम्बन्ध है। भारत में नगरीकरण तेजी से बढ़ा है। अधिकांश जनसंख्या शाकाहारी है। इसलिए देश में बढ़ती सब्जियों की माँग के कारण इस प्रकार की कृषि का तेजी से विकास हो रहा है।

(9) फलोद्यान कृषि – यह भी कृषि का एक विशिष्ट प्रकार है। जिसमें ट्रक फार्मिंग की तरह साग–सब्जियों की जगह फल एवं फूलों की कृषि की जाती है। फलों व फूलों की माँग नगरों में अधिक होती है। विभिन्न भागों में विभिन्न प्रकार के फल उगाये जाते हैं। उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में केला, आम, नारियल, शीतोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में सेब, नाशपत्ती, तथा भूमध्य सागरीय क्षेत्रों में नीबू, नांरगी, संतरा, अंगूर आदि मुख्य फल हैं।



चित्र 8.12 : भूमध्य सागरीय प्रदेश में अंगूर की खेती

फलों की भाँति फूलों की भी नगरीय क्षेत्रों में काफी माँग रहती है। फूलों की बिक्री से कृषकों को भारी मुनाफा होता है। भारत में गुलाब, गैंदे, व अन्य फूलों की अच्छी पैदावार होती है।

6. लकड़ी काटना

यह भी मानव का एक प्रमुख प्राथमिक व्यवसाय है। इसमें वनों से लकड़ी काटना, उसके लट्ठे बनाना तथा उन्हें आरा मशीनों तक भेजना शामिल है। इस व्यवसाय में भी अन्य व्यवसायों की भाँति महत्त्वपूर्ण बदलाव आया है। पहले लकड़ी को केवल ईंधन के लिए काटा जाता था लेकिन आज इसका प्रयोग कई उद्योगों में कच्चे माल के रूप में किया जाता है। कागज व फर्नीचर उद्योग इस पर आधारित उद्योग है।



चित्र 8.13(अ) : भारत में लकड़ी व्यवसाय



चित्र 8.13(ब) : म्यानमार में लकड़ी व्यवसाय



चित्र 8.13(स) : कनाडा में लकड़ी व्यवसाय



चित्र 8.13(द) : संयुक्त राज्य अमेरिका में लकड़ी व्यवसाय

लकड़ी काटने का व्यवसाय उष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों में प्राथमिक स्तर पर मिलता है। उष्ण कटिबंधीय वनों के प्रमुख वृक्ष साल, सागौन, महोगनी, चंदन, रोजवुड आदि हैं। इनका उपयोग इमारती व फर्नीचर बनाने में किया जाता है।

शीतोष्ण कटिबंधीय कोणधारी वनों में लकड़ी काटने का कार्य व्यापारिक रूप से किया जाता है। इन वनों में एक ही प्रकार के वृक्षों की बहुलता होती है। पेड़ काटने व लट्ठे बनाने का कार्य मशीनों से किया जाता है। इन क्षेत्रों में परिवहन के साधनों का भी पर्याप्त विकास हुआ है। इनकी मुलायम लकड़ी लुग्दी, कागज, पैकिंग का सामान बनाने में काम आती है। व्यापारिक स्तर पर लकड़ी काटने का कार्य कनाडा, नार्वे, फिनलैंड व संयुक्त राज्य अमेरिका में किया जाता है। लकड़ी की बढ़ती माँग के कारण आज सम्पूर्ण विश्व में वनों की अन्धाधुंध कटाई हो रही है। वन क्षेत्र तेजी से घटते जा रहे हैं। इसके कारण मिट्टी के अपरदन की मात्रा बढ़ रही है। उपजाऊपन घट रहा है। मृदा अपरदन के कारण नदियों में भयंकर बाढ़े आ रही है। पर्यावरण असन्तुलित होता जा रहा है।

9. खनन

जिन स्थानों में खनिज पाये जाते हैं, वहीं पर खनन व्यवसाय विकसित हो पाता है। खनन कार्य का अर्थ खनिजों को भूगर्भ से बाहर निकालना होता है। खनिजों के विश्व वितरण में अत्यधिक असमानताएँ पायी जाती हैं। खनिज प्राकृतिक रासायनिक तत्त्व या यौगिक है। ये अपने भौतिक तथा रासायनिक गुणों से जाने जाते है। जिन स्थानों से खनिज निकाले जाते है, उसे खान कहते है। मानव विकास के इतिहास में खनिजों की खोज की कई अवस्थाएँ देखी जा सकती है जैसे पाषाण युग, ताम्र युग, काँस्य युग एवं लौह युग। आजकल हम इस्पात युग में रह रहे है। प्राचीन काल में खनिजों का उपयोग औजार बनाने व हथियार बनाने तक ही सीमित था। इनका वास्तविक विकास तो औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात् ही संभव हुआ। निरन्तर इनका महत्त्व बढ़ता जा रहा है। आज किसी देश की सभ्यता एवं आर्थिक जीवन का मापदण्ड खनिजों के उपयोग की मात्रा ही है क्योंकि यह उद्योग व व्यापार जगत की धुरी है। यह किसी देश की प्राकृतिक सम्पदा होते हैं। उनमें लौह धातु सबसे उपयोगी है। कोयला व पेट्रोलियम शक्ति का आधार स्तम्भ है। अनेक लौह पूरक व अलौह धातुएँ किसी भी राष्ट्र के औद्योगिक विकास के लिए आवश्यक है।



चित्र 8.14(अ) : भारत में कोयला खनन



चित्र 8.14(ब) : यूरोप में कोयला खनन



चित्र 8.14(स) : अफ्रीका में ताम्बा खनन



चित्र 8.14(द) : यूरोप में खनन

(अ) खनन कार्य को प्रभावित करने वाले कारक

खनिजों की उपस्थिति मात्र से उसका खनन संभव नहीं होता अपितु भौतिक व मानवीय दशायें भी खनिज उत्खनन को प्रभावित करती हैं

(i) प्राकृतिक दशायें : प्राकृतिक दशाओं के अन्तर्गत खनिज भंडारों की स्थिति, खनिज की कोटि, मात्रा, प्रकार, सम्पन्नता एवं बाजार क्षेत्र की समीपता आदि प्रमुख हैं।

(ii) मानवीय दशायें : मानवीय दशाओं के अर्न्तगत खनिज की माँग, यातायात की सुविधा, पूँजी, श्रम, तकनीकी विकास का स्तर, सरकारी नीतियाँ आदि प्रमुख है।

(ब) खनिजों की विशषताएँ

खनिजों की कुछ आधारभूत विशेषताएँ निम्न हैं–

(i) पृथ्वी पर इनका वितरण असमान है।

(ii) अधिकांश खनिज निशिचित व अनव्यकरणीय होते है।

(iii) अधिकांश खनिज भूगर्भ में छिपे रहते हैं जिनके सर्वेक्षण एवं उत्खनन के लिए बड़ी मात्रा में पूँजी, श्रम और विकसित प्राविधिकी की आवश्यकता पड़ती है।

(iv) निरन्तर खनन द्वारा खाने दिन–प्रतिदिन खर्चीली व अनार्थिक होती जाती है।

(v) कोई भी देश खनिजों के उत्पादन में आत्म निर्भर नहीं है।

(vi) खनिजों का उत्खनन, उपयोग, बाजार तथा मांग पर आधारित होता है।

(स) खनिजों का वर्गीकरण

भूपटल में 1600 से अधिक खनिज पाये जाते हैं। इनमें से लगभग 200 खनिजों का उत्पादन औद्योगिक उपयोग के लिए हो रहा है। आधुनिक औद्योगिक अर्थतंत्र के लिए लगभग 80 खनिज पदार्थ आवश्यक समझे जाते है। खनिज पदार्थों को प्रधानतः तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है–

(द) खनिजों का वितरण

खनिजों का सम्बन्ध चट्टानों से होता है। चट्टानें मुख्यत तीन प्रकार की होती हैः 1. आग्नेय चट्टानें 2. कायान्तरित चट्टानें तथा 3. अवसादी चट्टानें।

आग्नेय चट्टानों में सोना, चाँदी, ताँबा, जस्ता, सीसा, मैंगनीज, अभ्रक, गंधक आदि खनिज पाये जाते हैं। कायान्तरित

रेखाचित्र 8.1 : खनिजों का वर्गीकरण

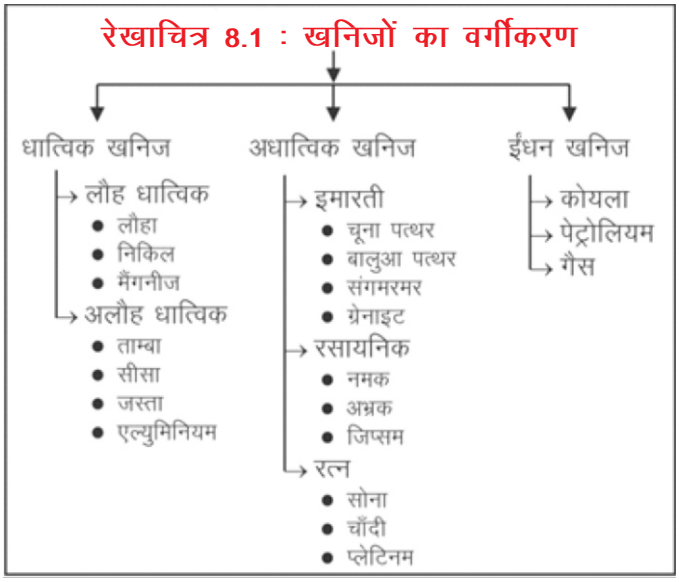

चट्टानों में ग्रेफाइट, हीरा, संगमरमर आदि पाये जाते हैं। कोयला, पेट्रोलियम, प्राकृतिक गैस, रॉक फॉस्फेट, पोटाश, नमक आदि खनिज अवसादी चट्टानों में प्रमुखता से पाये जाते है। सारणी 8. 2 द्वारा विश्व के प्रमुख खनिज उत्पादक देशों को दर्शाया गया है।

विकसित अर्थव्यवस्था वाले देश खनन, प्रसंस्करण एवं शोधन कार्य से पीछे हट रहे हैं क्योंकि इसमें श्रमिक लागत अधिक आने लगी है। जबकि विकासशील देश अपने विशाल श्रमिक शक्ति के बल पर अपने देशवासियों के उॅचे रहन–सहन को बनाये रखने के लिये खनन कार्य को महत्त्व दे रहे हैं। अफ्रीका के कई देश, दक्षिणी अमेरिका के कुछ देश एवं एशिया में आय के साधनों का पचास प्रतिशत तक खनन कार्य से प्राप्त होता है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दू

1. आखेट, संग्रहण, मछली पकड़ना, पशुचारण, कृषि, लकड़ी काटना व खनन आदि प्रमुख प्राथमिक व्यवसाय है।
2. आखेट व संग्रहण विश्व के सबसे प्राचीन उद्यम हैं।
3. कंद–मूल, फल, नट, बैरी, जड़े, पत्ते, तना, जड़ी–बूंटियाँ आदि मुख्य संग्रहण की जाने वाली वस्तुयें है।
4. वर्तमान में सर्वाधिक मछलियाँ समुद्रों में शीतोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में ठण्ड़ी व गर्म धाराओं के मिलन स्थलों पर पकड़ी जाती है
5. पशुपालन मुख्यतः उष्ण कटिबंधीय व शीतोष्ण कटिबंधीय घास के मैदानों में तथा पर्वतीय व मरूस्थलीय क्षेत्रों में किया जाता है।
6. विश्व में न्यूजीलैंड, आस्ट्रेलिया, अर्जेन्टाइना, युरूग्वे, संयुक्त

राज्य अमेरिका, डेनमार्क, स्वीडन तथा हालैंड में वाणिज्यिक पशुपालन किया जाता है।

7. विश्व में भोजन के मुख्य स्रोत कृषि द्वारा भोजन की लगभग 71 प्रतिशत आवश्यकताएँ पूरी होती है।

8. स्थानान्तरणशील कृषि को भारत के उत्तरी–पूर्वी राज्यों में झूमिंग, मध्य अमेरिका एवं मैक्सिको में मिल्पा तथा मलेशिया व इण्डोनेशिया में लदांग कहा जाता है। वियतनाम में इसे 'रे' कहा जाता है।

9. मिश्रित कृषि में फसलें उगाने तथा पशुओं को पालने का कार्य एक साथ किया जाता है।

10. खनिजों को मुख्यतः तीन समूहों में बाँटा जा सकता है– धात्विक खनिज, अधात्विक खनिज व ईंधन खनिज।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुचयनात्मक

1. निम्न में से कौनसी जनजाति उत्तरी साईबेरिया में नहीं रहती है?
   (अ) सेमोयड (ब) तुंग
   (स) याकूत (द) एस्किमो
2. निम्न में से कौन सा कार्य प्राथमिक व्यवसाय नहीं है?
   (अ) आखेट (ब) संग्रहण
   (स) मछली पकड़ना (द) विनिर्माण
3. निम्न में से कौन सी रोपण फसल नहीं है?
   (अ) चावल (ब) गेहूँ
   (स) गन्ना (द) चाय
4. निम्न में से कौन सी कृषि प्रकार का विकास यूरोपीय औपनिवेशिक समूहों द्वारा किया गया था?
   (अ) ट्रक फार्मिंग (ब) मिश्रित कृषि
   (स) रोपण कृषि (द) निर्वाहन कृषि
5. निम्न प्रदेशों में से किसमें वाणिज्य अनाज कृषि नहीं की जाती?
   (अ) प्रेयरीज क्षेत्र (ब) सवाना क्षेत्र
   (स) पम्पाज क्षेत्र (द) डाउन्स क्षेत्र
6. व्यापारिक स्तर पर लकड़ी काटने का व्यवसाय कौनसे क्षेत्र में किया जाता है?
   (अ) कोणधारी वन क्षेत्र
   (ब) भूमध्य सागरीय वन
   (स) उष्ण कटिबंधीय वन क्षेत्र
   (द) उपरोक्त में कोई नहीं

अतिलघूत्तरात्मक –

7. विश्व में पाये जाने वाले दो शीतोष्ण घास के मैदानों के नाम बताइए?
8. ब्राजील में कहवा के बागानों को क्या कहतें हैं?
9. मछलियों की लगभग कितनी किस्में व्यापारिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं?
10. गहन निर्वाहन कृषि के मुख्य विशेषता बताइए?

लघूत्तरात्मक

11. प्राथमिक व्यवसायों के कोई चार उदाहरण बताइए?
12. व्यापारिक पशुपालन के क्षेत्रों के नाम बताइए ?
13. ट्रक कृषि का क्या अर्थ है?इसकी मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिए ?
14. बागाती कृषि की मुख्य विशेषताएँ कौन–कौनसी हैं?
15. खनिज कार्य को प्रभावित करने वाले कारक बताइए?

निबन्धात्मक

16. विश्व के मुख्य कृषि प्रकारों का वर्णन कीजिए?
17. पशुचारण व्यवसाय पर एक लेख लिखिए?
18. मानव के प्रमुख आदिम व्यवसायों का विवरण दीजिए?

मानचित्र / आंकिक

1. विश्व के मानचित्र में प्रथमिक व्यवसाय के क्षेत्रों को दर्शाइए।

पाठ 09
द्वितीयक व्यवसाय
(Secondary Occupations)

सम्पूर्ण आर्थिक क्रियाएँ चाहे वो प्राथमिक, द्वितीयक, तृतीयक या चतुर्थक हों, सभी का कार्य क्षेत्रीय संसाधनों की प्राप्ति एवं उनके उपयोग का अध्ययन करना है। ये संसाधन मनुष्य के जीवित रहने के लिए आवश्यक है। उन सभी क्रियाओं को द्वितीयक व्यवसाय कहते हैं जिनके अन्तर्गत प्राकृतिक संसाधनों को परिष्कृत करना, उनका रूप बदलना तथा जीवन यापन के लिए अधिक उपयोगी बनाने सम्बन्धी क्रियाएँ सम्पन्न होती है। द्वितीयक आर्थिक गतिविधियों के द्वारा प्राकृतिक संसाधनो का मूल्य बढ जाता है। द्वितीयक व्यवसायों को दस मुख्य समूहों में बॉटा जा सकता है– (1) इजीनियरिंग उद्योग, (2) निर्माण उद्योग, (3) इलेक्ट्रोनिक उद्योग, (4) रासायनिक उद्योग, (5) शक्ति उद्योग, (6) वस्त्र उद्योग, (7) भोजन व पेय पदार्थ उद्योग, (8) धातुकर्म उद्योग, (9) प्लास्टिक उद्योग, (10) परिवहन व संचार उद्योग

विनिर्माण उद्योग

विनिर्माण उद्योग का अर्थ प्राथमिक उत्पादन से प्राप्त कच्ची सामग्री को शारीरिक अथवा यांत्रिक शक्ति द्वारा परिचालित औजारों की सहायता से पूर्व निर्धारित एवं नियंत्रित प्रक्रिया द्वारा किसी इच्छित रूप, आकार या विशेष गुणधर्म वाली वस्तुओं में बदलना है। विनिर्माण उद्योग के नाम से अक्सर यह भ्रांति हो जतती है कि यह केवल वृहद् स्तर का उद्योग है। परन्तु वास्तव में ऐसा नही है इस उद्योग को किसी भी स्तर पर आरम्भ किया जा सकता है। इस अर्थ में अति साधारण वस्तुओं यथा मिट्टी से मिट्टी के बर्तन व खिलौनें बनाने से लेकर भारी से भारी निर्मित वस्तुए जैसे बड़ी मशीनें, जलयान, भारी रसायन बनाने सम्बन्धी आदि सभी उद्योग सम्मिलित हैं। निर्माण उद्योग में प्रयोग किये जाने वाले पदार्थ प्राकृतिक दशा में कच्चा माल कहलाते हैं जैसे धातु अयस्क, लकडी, कपास आदि। ये असंशोधित पदार्थ भी होते है जैसे –इस्पात, जिससे यंत्र व कल–पुर्जे बनाये जाते है। चिरी हुयी लकडी जिससे कागजी लुग्दी बनाई जाती है। कपास का धागा जिससे वस्त्र बुना जाता है।

किसी भी देश में निर्माण उद्योग के विकास के साथ ही उसकी राष्ट्रीय आय बढ़ती है। वह देश विकसित होता जाता है। औद्योगिक विकास देश की आर्थिक सम्पन्नता का मापदण्ड होता है। विश्व के सभी विकसित देश जैसे – संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान, जर्मनी, ग्रेट ब्रिटेन आदि औद्योगिक दृष्टि से विकसित देश हैं।

उद्योगों की अवस्थिति को प्रभावित करने वाले कारक

उद्योगों की स्थापना केवल उन्हीं स्थानों पर हो सकती हैं, जहाँ उनके विकास के लिए आवश्यक भौगोलिक दशायें उपलब्ध हों। उद्योगों की अवस्थिति व विकास को प्रभावित करने वाले कारकों को आरेख 9.1 द्वारा दर्शाया गया हैं। उद्योगों की अवस्थिति को निम्न कारक प्रभावित करते हैं :

(1) कच्चा माल : किसी भी उद्योग के विकास के लिए कच्चा माल सुगमतापूर्वक, पर्याप्त व सस्ती दर पर प्राप्त होना

चाहिए। अतः अधिकतर उद्योग खानों, वनों, कृषि क्षेत्रों अथवा समुद्र तटीय क्षेत्रों के निकट ही अवस्थित हैं। जिन उद्योगों का कच्चा माल भारी, सस्ता व जिनमें निर्माण के दौरान वजन कम होता है, उनमें इसी तरह की प्रवृति पायी जाती है। ऐसा न होने पर उनका परिवहन व्यय बढ़ जायेगा। अधिकांश लौह–इस्पात उद्योग कोयले की खानों के पास, लोहे की खानों के पास अथवा कोयला व लौह अयस्क की खानों के बीच किसी अनुकूल स्थान पर स्थापित किया जाता है। फल, सब्जियाँ, दूध, मछलियाँ जैसे शीघ्र खराब होने वाले कच्चे माल पर आधारित उद्योगों को कच्चे माल के स्त्रोंत के समीप ही स्थापित किया जाता है। लेकिन कुछ वस्तुएँ ऐसी भी होती है जिनमें निर्माण प्रक्रिया में भार में कमी नही होती है। उदाहरण के लिए एक टन रूई से एक टन सूत का निर्माण होता है। इसलिए जापान व ब्रिटेन में सूती वस्त्र उद्योग के लिए कपास संयुक्त राज्य अमेरिका, मिश्र व भारत से आयात की जाती है। जापान जैसे कुछ देश ऐसे भी है, जहाँ उद्योगों के विकास में कच्चे माल का विशेष महत्व नहीं है। जापान के अधिकांश उद्योग आयातित कच्चे माल पर ही आधारित है।

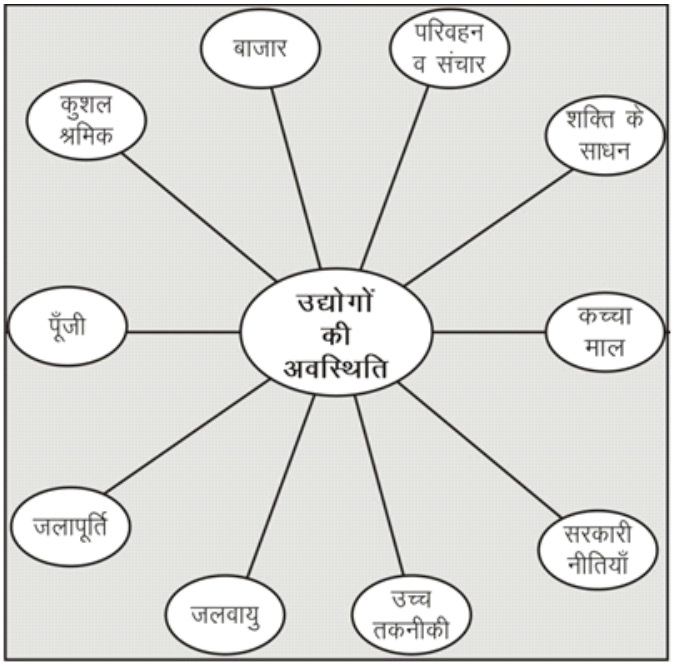

रेखाचित्र 9.1 : उद्योगों को प्रभावित करने वाले कारक

(2) शक्ति के साधन : शक्ति के साधन का सुचारू एवं सुगम रूप में मिलना उद्योगों के केन्द्रीयकरण एवं विकास के लिए आवश्यक है। शक्ति के प्रमुख साधन कोयला, पेट्रोलियम, जल विद्युत, प्राकृति गैस और परमाणु उर्जा है।

लौह इस्पात उद्योग जैसे भारी उद्योग कोयले से शक्ति प्राप्त करते है। ये कोयले की खानों के समीप ही स्थापित किये जाते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका, रूस व यूरोपीय देशों के अधिकांश लौह इस्पात केन्द्र कोयला खदानों के पास ही अवस्थित हैं। भारत के प्रमुख लौह इस्पात केन्द्र दामोदर घाटी में झरिया व रानीगंज कोयला खदानों के निकट स्थापित है। एल्युमिनियम उद्योग सस्ते जल विद्युत उत्पादक क्षेत्रों में ही स्थापित किये गये हैं।

जल विद्युत का तारों के माध्यम से सम्प्रेषण तथा पेट्रोलियम व प्राकृतिक गैस का पाईप लाइन द्वारा आसानी से परिवहन की सुविधा के कारण उद्योगों का विकेन्द्रीकरण हुआ है। यही कारण है कि पेट्रोलियम व प्राकृतिक गैस उत्पादक प्रदेश बड़े औद्योगिक क्षेत्र नहीं बन पाये हैं।

(3) परिवहन व संचार के साधन : कच्चे माल को कारखानों तक लाने तथा तैयार माल को बाजार तक पहुँचाने के लिए तीव्र व सक्षम परिवहन सुविधाएँ औद्योगिक विकास के लिए अत्यावश्यक है। परिवहन लागत का औद्योगिक इकाई की अवस्थिति में महत्वपूर्ण स्थान होता है। पश्चिमी यूरोप व उत्तरी अमेरिका के पूर्वी भागों में विकसित परिवहन तंत्र के जाल की वजह से सदैव इन क्षेत्रों में उद्योगों का जमाव है।एशिया, अफ्रीका, व दक्षिणी अमेरिका के अधिकांश देशों में परिवहन के साधनों की कमी के कारण औद्योगिक विकास कम हुआ है।

परिवहन के साधनों की भाँति संचार के साधन जैसे डाक, तार, टेलिफोन, ई–मेल तथा इन्टरनेट आदि भी औद्योगिक विकास में सहायक है। इनसे उद्योग सम्बन्धी सूचनाओं का आसानी से आदान–प्रदान हो जाता है।

(4) बाजार : उद्योगों की स्थापना में सबसे प्रमुख कारक उसके द्वारा उत्पादित माल के लिए बाजार का उपलब्ध होना जरूरी है। बाजार से तात्पर्य उस क्षेत्र में तैयार वस्तुओं की माँग एवं वहाँ के निवासियों की क्रय शक्ति है। विकसित देशों के लोगों की क्रय शक्ति अधिक होना तथा सघन बसे होने के कारण वृहद वैश्विक बाजार है। दक्षिणी व दक्षिणी–पूर्वी एशिया के सघन बसे प्रदेश भी वृहद बाजार उपलब्ध कराते है।

(5) कुशल श्रमिक : यद्यपि निर्माण–उद्योगों में तेजी से यंत्रीकरण और स्वचालन की वृद्विहोती जा रही है, फिर भी उद्योगों में अब भी कुशल श्रमिकों की अधिक आवश्यकता होती है। कम्प्यूटर नियंत्रण प्रणाली से युक्त स्व–चालित कारखाने जिनमें

मशीनों को सोचने के लिए विकसित किया गया है, पूरे विश्व में नजर आने लगी है।

(6) पूँजी : किसी भी उद्योग की स्थापना एवं संचालन के लिए पर्याप्त पूँजी होना अनिवार्य है। कारखाना लगाने, मशीने व कच्चा माल खरीदने और मजदूरों को वेतन देने के लिए पूँजी की आवश्यकता होती है। विकासशील देशों में पूँजी की कमी के कारण आशातीत औद्योगिक विकास नहीं हो पाया है।

(7) जलापूर्ति : किसी निर्माण उद्योग की अवस्थिति पर जलापूर्ति का भी प्रभाव होता है। लौह इस्पात उद्योग, वस्त्र उद्योग, रासायनिक उद्योग, कागज उद्योग, चमड़ा उद्योग, आणविक विद्युत–गृह आदि कुछ ऐसे उद्योग हैं जो जल के बिना विकसित नहीं हो सकते हैं। अतः ऐसे उद्योग किसी स्थायी जलस्त्रोत के निकट ही स्थापित किये जाते हैं।

(8) जलवायु : उपयुक्त एवं स्वास्थ्यप्रद जलवायु से श्रमिकों की कार्य क्षमता बढ़ जाती है। सूती वस्त्र उद्योग के लिए आर्द्र जलवायु की आवश्यकता होती है। सिनेमा उद्योग के लिए वर्ष भर मेघ रहित आकाश व सूर्य के प्रकाश की आवश्यकता होती है। उपयुक्त जलवायु के कारण ही मुम्बई व कैलीफोर्निया में सिनेमा उद्योग तेजी से पनपा है।

(9) उच्च तकनीक : उच्च तकनीक के द्वारा ही विनिर्माण की गुणवत्ता को नियंत्रित करने, अपशिष्टों के निस्तारण तथा प्रदूषण के विरूद्वसंघर्ष सम्भव है। आजकल उद्योगों की स्थापना के साथ ही साथ पर्यावरण संरक्षण के पहलुओं पर ध्यान देना अत्यावश्यक है। ऐसा उच्च तकनीकी ज्ञान व युक्तियों से ही सम्भव है।

(10) सरकारी नीतियाँ : किसी देश की सरकार की नीतियाँ भी उद्योगों के विकास को प्रभावित करती है। यदि किसी देश की सरकार वहाँ उद्यागों का राष्ट्रीयकरण कर रही है तो विदेशी कम्पनियाँ वहाँ उद्योग नहीं लगा पायेगी। इसके विपरीत यदि टैक्स में छूट अथवा अन्य सुविधाऐं दी जाये तो उद्योगों के विकास की संभावना बढ जाती है।

(11) अन्य कारक : सस्ती भूमि, राजनैतिक स्थिरता, बैकिंग व बीमा की सुविधा आदि अन्य महत्वपूर्ण कारक हैं। रेखाचित्र 9.2 में उद्योगों का वर्गीकरण प्रदर्शित है।

विनिर्माण उद्योगों का वर्गीकरण

विनिर्माण उद्योगों का वर्गीकरण उनके आकार, कच्चे माल, उत्पाद व स्वामित्व के आधार पर किया जाता है।

(1) आकार पर आधारित उद्योग : किसी उद्योग का आकार उसमें निवेशित पूँजी, कार्यरत श्रमिकों की संख्या एवं उत्पादन की मात्रा पर निर्भर करता है। आकार के आधार पर उद्योगों को तीन वर्गो में बाँटा जा सकता है–

(अ) कुटीर उद्योग

(ब) लघु उद्योग

(स) बड़े पैमाने के उद्योग

(अ) कुटीर उद्योग : यह निर्माण की सबसे छोटी इकाई है। इसमें दस्तकार स्थानीय कच्चे माल का उपयोग करते है। वह कम पूँजी तथा दक्षता से साधारण औजारों के द्वारा परिवार के सदस्यों के साथ मिलकर घरों में ही अपने दैनिक जीवन के उपयोग की वस्तुओं का उत्पादन करते है। निजी उपभोग के बाद शेष बचे तैयार माल को स्थानीय बाजार में विक्रय कर देते हैं।



चित्र 9.1 : पूर्वोत्तर भारत में कुटीर उद्योग सामग्री

कुटीर उद्योगों के अन्तर्गत कुछ ऐसी वस्तुओं का निर्माण होता है जो आधुनिक तकनीक से उत्पादित वस्तुओं से भी प्रतिस्पर्धा करने में सक्षम है।

इस उद्योग में दैनिक जीवन में काम आने वाली वस्तुओं जैसे खाद्य पदार्थ, कपड़ा, फर्नीचर, बर्तन, औजार, जूते, मिट्टी के बर्तन, आभूषण, कागज, पत्तल, आदि बनाये जाते हैं। भारत के गाँव कुटीर उद्योग के विकास के कारण आत्मनिर्भर थे। गाँव में ही लुहार, सुनार, कुम्हार, नाई, चर्मकार, बढ़ई आदि स्थानीय माँग की वस्तुओ, की पूर्ति करते थे।

(ब) लघु उद्योग : इन्हें छोटे पैमाने के उद्योग कहते है। इसमें स्थानीय कच्चे माल का उपयोग होता है। इसमें अर्द्व–कुशल श्रमिकों व शक्ति के साधनों से चलने वाले यंत्रो का प्रयोग किया जाता है। ये उद्योग विकासशील देशों की सघन बसी जनसंख्या



चित्र 9.2 : राजस्थान में मिट्टी के बर्तन बनाना (एक लघु उद्योग)

को बड़े पैमाने पर रोजगार उपलब्ध कराते हैं। जिससे स्थानीय लोगों की क्रय शक्ति बढ़ती है। लघु उद्योग तथा कुटीर उद्योग में मुख्य अंतर यह है कि लघु उद्योग में मशीनों एवं चालक शक्ति का प्रयोग किया जाता है तथा वैतनिक श्रमिक भी रखे जाते हैं जबकि कुटीर उद्योगों में ऐसा नहीं होता है। कपड़े, कागज का सामान, खिलौने, मिट्टी के बर्तन, फर्नीचर, डेयरी उत्पाद, खाने के तेल निकालने के उद्योग, धातु के बर्तन, चमड़े का सामान आदि लघु उद्योगों के उदाहरण हैं।

(स) बडे पैमाने के उद्योग : बड़े पैमाने के उद्योगों के लिए विभिन्न प्रकार का कच्चा माल, शक्ति के साधन, विशाल बाजार, कुशल श्रमिक, उच्च प्रौद्योगिकी व अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है। इन उद्योगों का सूत्रपात औधोगिक क्रान्ति के बाद हुआ। इन उद्योगों में उत्पाद की गुणवत्ता पर विशेष ध्यान दिया जाता है। उत्पादन में विशिष्टीकरण बड़े पैमाने के उद्योगो की महत्वपूर्ण विशेषता है। उत्पादित माल को निर्यात किया जाता है। बडे पैमानें के उद्योग आरम्भ में ग्रेट ब्रिटेन, पश्चिमी यूरोप, रूस, जापान, आदि में लगाये गए थे परन्तु वर्तमान में इनका विस्तार विश्व के सभी भागों में हो गया है। सीमेन्ट, सूतीवस्त्र, पेट्रो रसायन, लौह इस्पात उद्योग इसके उदाहरण है।



चित्र 9.3 : सीमेन्ट उत्पादन एक वृहद उद्योग

(2) कच्चे माल पर आधारित उद्योग : कच्चे माल पर आधारित उद्योगों को पाँच वर्गों में बांटा जा सकता है–

(अ) कृषि आधारित उद्योग : कृषि उपजों को विभिन्न प्रक्रियाओं द्वारा तैयार माल को ग्रामीण व नगरीय बाजारों में विक्रिय हेतु भेजा जाता है। वस्त्र (सूती, रेशमी, जूट), पेय पदार्थ (चाय, कहवा, कोको), भोजन प्रसंस्करण, वनस्पति घी, रबड़ आदि उद्योग इसके उदाहरण है। भोजन प्रसंस्करण में डिब्बाबंद खाद्य पदार्थ तैयार करना, आदि सम्मिलित की जाती है। खाद्य पदार्थों को सुखाकर या आचार के रूप में तेल या सिरका डालकर सुरक्षित किया जाता है।

(ब) खनिज आधारित : इन उद्योगों में खनिजों का कच्चे माल के रूप में उपयोग किया जाता है। कुछ उद्योग लौह अंश वाले धात्विक खनिजों का उपयोग करते हैं। लौह–इस्पात उद्योग, मशीन व औजार, रेल इंजन, कृषि औजार आदि इसके प्रमुख उदाहरण हैं। कुछ उद्योग अलौह धात्विक खनिजों का उपयोग करते है जैसे एल्युमिनियम या ताँबा उद्योग। सीमेंट व भवन–सड़क निर्माण में अधात्विक खनिजों जैसे ग्रेनाइट, संगमरमर, बलुआ पत्थर आदि को कच्चे माल के रूप में प्रयुक्त किया जाता है।

(स) रसायन आधारित उद्योग : इस प्रकार के उद्योगों में प्राकृतिक रूप से पाये जाने वाले रासायनिक खनिजों का उपयोग होता है। पेट्रो–रसायन उद्योग में खनिज तेल का उपयोग होता है। रासायनिक उर्वरक पेन्ट, वार्निश, प्लास्टिक, औषधि आदि पेट्रो–केमिकल उद्योग के प्रमुख उदाहरण है। नमक, गंधक एवं पोटाश उद्योगो में भी प्राकृतिक खनिजों को काम में लेते है। रासायनिक उत्पादों का प्रयोग कृषि, धात्विक कपड़ा, चमड़ा, कागज, काँच, चीनी मिट्टी, साबुन, खाद्य प्रसंस्करण आदि सभी में होता है। रसायन उद्योग के अन्य उदाहरण कृत्रिम रेशे बनाना व प्लास्टिक निर्माण भी हैं।

(द) वनोत्पाद आधरित उद्योग : इन उद्योगों में वनों से प्राप्त उत्पादों का प्रयोग होता है। कागज व लुग्दी उद्योग, फर्नीचर उद्योग व दियासलाई उद्योग, लाख उद्योग इसके उदाहरण है। कागज उद्योग के लिए लकड़ी, बाँस एवं घास, फर्नीचर उद्योग के लिए इमारती लकड़ी तथा लाख उद्योग के लिए लाख वनों से ही प्राप्त होतीं हैं।

(य) पशु आधारित उद्योग : चमड़ा व ऊन पशुओं से प्राप्त प्रमुख कच्चा माल है। चमड़ा उद्योग के लिए चमड़ा व ऊनी वस्त्र उद्योग के लिए ऊन पशुओं से ही प्राप्त होती है।

(3) स्वामित्व के आधार पर उद्योग : स्वामित्व के आधार पर उद्योगों को तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है :

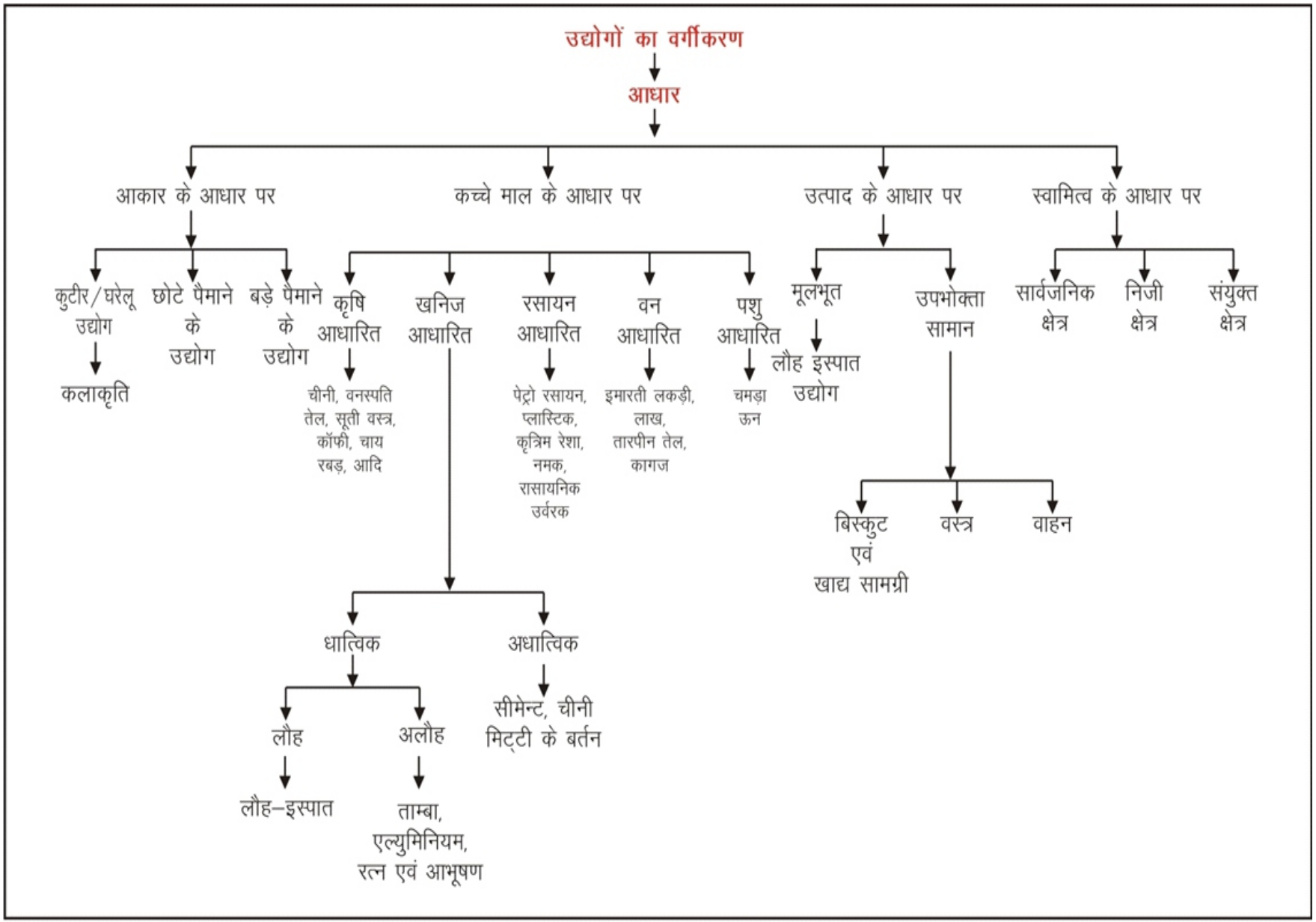

रेखाचित्र 9.2 : उद्योगों का वर्गीकरण

(अ) सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योग : ये उद्योग सरकार के अधीन होते है। भारत में बहुत से उद्योग सार्वजनिक क्षेत्र के अधीन है। साम्यवादी देशों में अधिकांश उद्योग सरकारी स्वामित्त्व वाले होते है। मिश्रित अर्थव्यवस्था में निजी व सार्वजनिक दोनों प्रकार के उद्योग पाये जाते हैं।

(ब) निजी क्षेत्र के उद्योग : इन उद्योगों का स्वामित्त्व निजी निवेशकों के पास होता है। पूँजीवादी व्यवस्था वाले देशों में अधिकांश उद्योग निजी क्षेत्र में हैं।

(स) संयुक्त क्षेत्र के उद्योग : इस प्रकार के उद्योगों का संचालन संयुक्त कम्पनी के द्वारा या किसी निजी व सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनी के संयुक्त प्रयासों के द्वारा किया जाता है।

विश्व के प्रमुख निर्माण उद्योग

आज विश्व में सैकड़ो उद्योग हैं, जिनमें से हम यहॉ दो प्रमुख उद्योगों लौह–इस्पात व वस्त्र उद्योग का विस्तार से अध्ययन करेगें।

लौह–इस्पात उद्योग

महत्व– लौह–इस्पात उद्योग आधुनिक औद्योगिक युग की आधारशिला है। यह स्वयं एक भारी उद्योग है तथा सैकड़ो उद्योगों के लिए कच्चे माल का स्त्रोत है। अतएव इसे आधारभूत उद्योग कहते है। इसके बगैर हम औद्योगिक विकास की कल्पना भी नहीं कर सकते हैं, इसलिए इसे 'धुरी उद्योग' भी कहा जाता है।



चित्र 9.4 : चीन में लौह इस्पात उद्योग



चित्र 9.5 : रूस में लौह इस्पात उद्योग

आधुनिक लौह–इस्पात निर्माण में तीन विधियों का प्रचलन है– (i) बेसीमर विधि, (ii) उन्मुक्त भट्टी विधि तथा (iii) विद्युत भट्टी विधि। लौह–इस्पात बनाने के लिए लौह–अयस्क को उक्त भट्टियों में कोक एवं चूना पत्थर के साथ पिघलाया जाता है। पिघला लोहा जब बाहर निकल कर ठण्डा हो जाता है तो उसे कच्चा लोहा कहते हैं। इसी कच्चे लोहे में मैंगनीज मिलाकर इस्पात बनाया जाता है।

परम्परागत रूप से भारी इस्पात उद्योग की अवस्थिति कच्चे माल के भण्डारों के समीप ही हुयी थी जहाँ लौह– अयस्क, कोयला, मैगनीज व चूना–पत्थर आसानी से उपलब्ध हो जाते हों। ताकि परिवहन लागत को न्यूनतम किया जा सके। कुछ उद्योग बन्दरगाहों के समीप भी स्थापित है जहाँ कच्चा माल आसानी से पहुँचाया जा सकता है। आजकल कच्चे माल के रूप में स्क्रेप को प्रयोग में लेकर बाजार के समीप भी लौह–इस्पात उद्योगों की स्थापना होने लगी है।

सारणी 9.1 : विश्व के प्रमुख देशों मे लौह इस्पात उत्पादन (2013)

क्र.सं.	देश	उत्पादन (मिलियन टन में)
1	चीन	822.70
2	जापान	110.60
3	संयुक्त राज्य अमेरिका	88.17
4	भारत	86.50
5	द. कोरिया	71.50
6	रूस	71.50
7	जर्मनी	42.90
8	टर्की	34.0
9	ब्राजील	33.90
10	यूक्रेन	27.20

लौह–इस्पात उद्योग का विश्व वितरण

लौह इस्पात उद्योग विस्तृत रूप से वितरित है। उत्तरी अमेरिका, यूरोप व एशिया के विकसित देशों में इसका केन्द्रीकरण है। चीन, संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान, रूस व जर्मनी विश्व के प्रमुख उत्पादक देश हैं। इसके अतिरिक्त दक्षिणी कोरिया, यूक्रेन, ब्राजील, इटली व भारत में भी लौह–इस्पात का उत्पादन होता है। मानचित्र 9.1 में विश्व के प्रमुख लौह इस्पात उत्पाद केन्द्र प्रदर्शित हैं।

चीन

चीन विश्व का सबसे बड़ा इस्पात उत्पादक देश है। चीन में इस उद्योग के लिए पर्याप्त कच्चा माल उपलब्ध है चीन के प्रमुख लौह–इस्पात उत्पादक क्षेत्र अधोलिखित है–

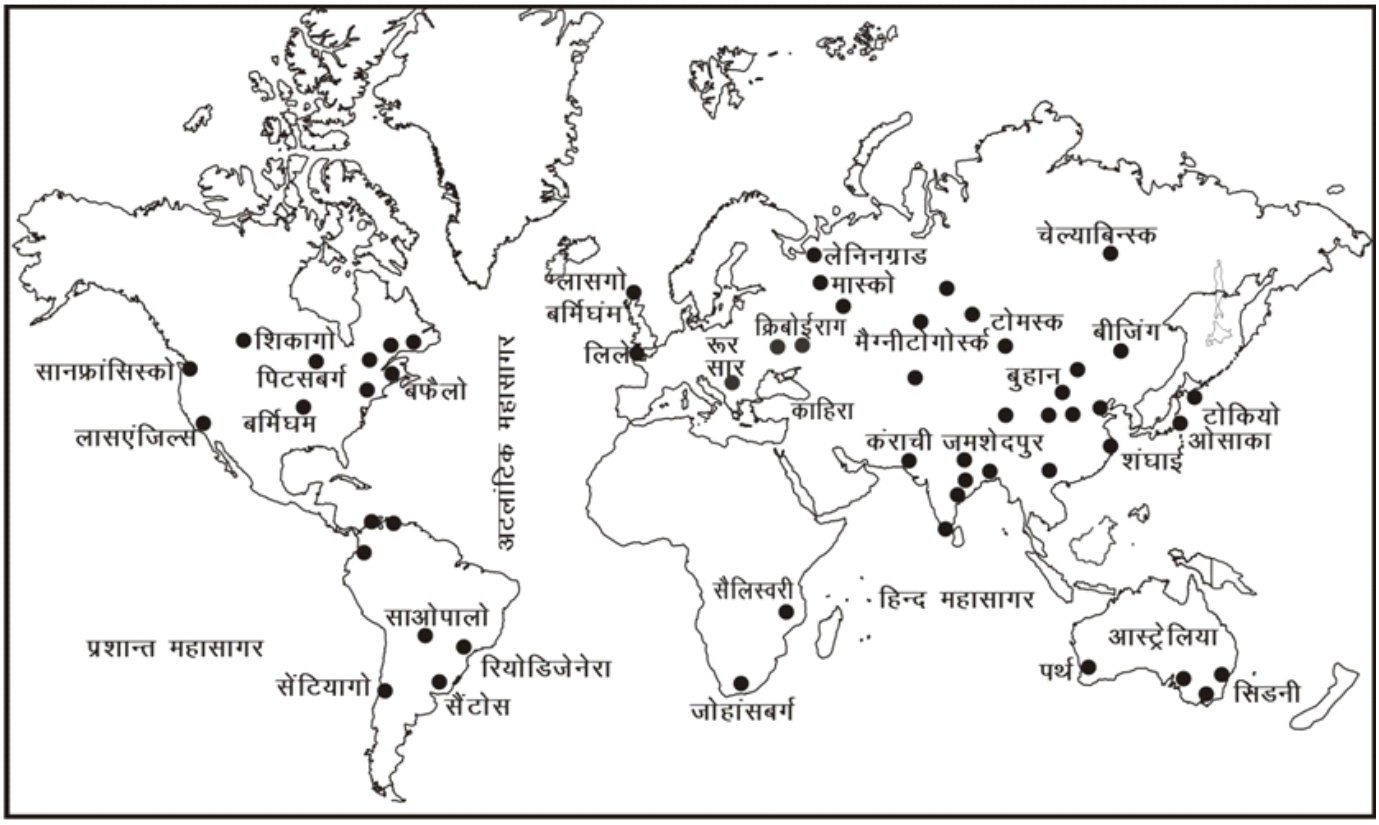

मानचित्र 9.1 : विश्व के प्रमुख लोह इस्पात उत्पादक केन्द्र

- मूंचरिया क्षेत्र – चीन का सबसे बड़ा क्षेत्र है। यहाँ अनशान व फुशुन प्रमुख केन्द्र है।
- उत्तरी चीन क्षेत्र : शांसी व शेन्सी कोयला क्षेत्रों के समीप कई इस्पात केन्द्र विकसित हुए है। केन्द्र पाओटाओ, बीजिंग, टिटसिन।
- यॉंग्टिसी घाटी क्षेत्र : यहाँ क्षेत्र कच्चे माल व जल परिवहन की सुविधा प्राप्त है। इस क्षेत्र के प्रमुख केन्द्र– बुहान, शंघाई, हैकॉऊ, चुंगकिग है।
- अन्य केन्द्र – केन्टन, कुनमिंग, चुंगचिंग, सिगटाओ।

जापान

जापान विश्व का दूसरा बड़ा इस्पात उत्पादक देश है। स्थानीय कच्चे माल की अनुपलब्धता के बावजूद अपनी उत्कृष्ट तकनीक, यातायात के साधनों, पर्याप्त पूँजी व सरकारी नीतियों के बल पर प्रमुख इस्पात उत्पादक क्षेत्र बन गया है। मुख्य क्षेत्र निम्नवत है –

- नागासाकी–यावाता क्षेत्र : उत्तरी क्यूशु, द्वीप में स्थित यह क्षेत्र जापान का सबसे बड़ा लौह–इस्पात उत्पादक क्षेत्र है। मुख्य केन्द्र– यावाता, नागासाकी, कोकुरा, मोजी, शिमोनोस्की।
- कोबे–ओसाका क्षेत्र : यह होन्शू द्वीप के दक्षिणी भाग में स्थित है। यहाँ मुख्य केन्द्र है– कोबे, ओसाका, हिरोहिता, सिकाई।
- टोकियो–याकोहामा क्षेत्र : यह होन्शू द्वीप के उत्तरी–पूर्वी भाग में स्थित है। क्षेत्र के मुख्य केन्द्र–टोकियो, याकोहामा, कावासाकी है।
- मुरोरान क्षेत्र : यह क्षेत्र होकैडो द्वीप के दक्षिणी भाग में स्थित है। केन्द्र– मुरोरान, वैनिशी, इशीकारी।

संयुक्त राज्य अमेरिका–

यह अपने संसाधनों के कारण दशाब्दियों तक विश्व में लौह–इस्पात का वृहत्तम उत्पादक तथा उपभोक्ता रहा है। यहाँ इस उद्योग के स्थानीयकरण में कच्चे मालों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। यहाँ लौह इस्पात के प्रमुख क्षेत्र निम्नलिखित है–

- पिट्सबर्ग–यंग्स्टन क्षेत्र : यह क्षेत्र उत्तरी अप्लेशियन प्रदेश में ओहियो नदी की घाटी में स्थित है। केन्द्र – पीट्सबर्ग, यंग्सटन, ब्रेडाक, जार्ज टाउन, होम्सटेड।
- शिकागो–गैरी क्षेत्र : यह क्षेत्र मिशिगन झील के दक्षिण में

स्थित है। प्रमुख केन्द्र– शिकागो, गैरी, मिलबाउकी।

- ईरी झील क्षेत्र : ईरी झील के तट व समीपवर्ती भागों में इस क्षेत्र का विस्तार है। प्रमुख केन्द्र– डेट्राइट, बफेलो, ईरी, क्लीवलैण्ड, टालेडो आदि।
- मध्य अटलांटिक क्षेत्र : यह क्षेत्र मैसाचुसेट्स व मैरीलैंड राज्यों में फैला है। मुख्य केन्द्र– स्पेरोज प्वाइन्ट, एलन टाउन, स्टीलटन आदि।
- अलाबामा क्षेत्र : अलाबामा व टिनेसी राज्यों में विस्तृत है। प्रमुख केन्द्र– अलबामा, बरमिंघम आदि।
- पश्चिमी क्षेत्र : इस क्षेत्र के अधिकांश कारखाने छोटे व छितरे हुए हैं। केन्द्र– प्यूबलो, सैन फांसिस्को, लॉस ऐंजिल्स।

रूस

रूस विश्व का चौथा बड़ा लौह–इस्पात उत्पादक देश है। यहाँ लौह–इस्पात उद्योग के प्रमुख क्षेत्र हैं –

- यूराल क्षेत्र : सबसे पुराना व अग्रणी लौह–इस्पात उत्पादक क्षेत्र है। प्रमुख केन्द्र– मैगनिटोगोस्क्र, निझनीतागिल।
- कुजनेत्सक क्षेत्र : यह क्षेत्र पश्चिमी साइबेरिया में अवस्थित है। मुख्य केन्द्र– कुजनेत्स्क, नोवा कुजनेत्सक।
- मध्यवर्ती क्षेत्र : यह क्षेत्र मास्को के समीपवर्ती भागो में स्थित है। प्रमुख केन्द्र– टुला, लिपेत्स्क, मास्को, लेनिनग्राड, गोर्की।

अन्य देश : जर्मनी में डूइसबर्ग, डोरटमुंड, डूसूलडोरफ एवं ऐसेन, यूक्रेन में क्रिबोइरॉग एवं दोनेत्सक, भारत में जमशेदपुर, कुल्टी–बुरहानपुर, दुर्गापुर, राउरकेला, भिलाई, बोकारो, सलेम, विशाखापट्टनम एवं भद्रावती प्रमुख इस्पात केन्द्र हैं। ब्रिटेन में कार्डिफ, टालबाट, हार्टफूल, शैफील्ड, ग्लासगो, फालकर्क, लंकाशायर, केन्द्र है।

इनके अलावा कनाडा, ब्राजील, आस्ट्रेलिया, द. अफ्रीका, अलजीरिया, मोरक्को, जिम्बावे अन्य इस्पात उत्पादक देश है।

(ii) वस्त्र उद्योग

भोजन के बाद मानव की मुख्य आवश्यकता वस्त्र है। यह उद्योग मानव के सबसे प्राचीन उद्योगों मे से है। इसका आरम्भ तो कुटीर व लघु उद्योग के रूप में हुआ लेकिन वर्तमान में यह मुख्य औद्योगिक देशों में उच्च कोटि का विकसित उद्योग हो गया है। आधुनिक वस्त्र निर्माण का जन्म औद्योगिक क्रांति के दौरान ब्रिटेन में हुआ। ब्रिटेन से यह उद्योग विश्व के अन्य देशों में फैला। वस्त्र उद्योग के अन्तर्गत निम्न उद्योग शामिल किये जाते है–

(अ) सूती वस्त्र उद्योग

(ब) ऊनी वस्त्र उद्योग

(स) रेशमी वस्त्र उद्योग

(द) पटसन या जूट उद्योग

(अ) सूती वस्त्र उद्योग : सूती वस्त्र उद्योग वस्त्र उद्योगों में सबसे महत्त्वपूर्ण उद्योग है।

सारणी 9.2 : विश्व में सूती धागे का वार्षिक उत्पादन

2013 (प्रतिशत में)

क्र.सं.	देश	विश्व का प्रतिशत
1	चीन	26.4
2	भारत	21.0
3	संयुक्त राज्य अमेरिका	14.7
4	पाकिस्तान	10.7
5	इण्डोनेशिया	7.0
6	ब्राजील	3.8
7	टर्की	3.7
8	द. कोरिया	2.2
9	इटली	2.0
10	मिश्र	1.5

आवश्यक कारक–

सूती वस्त्र उद्योग की स्थापना के लिए कच्चे माल के रूप में कपास, चालक शक्ति के रूप में कोयला व जल विद्युत, प्रचूर मात्रा में सस्ता व कुशल श्रम, समुद्री समीर युक्त आर्द्र जलवायु, बड़ी मात्रा में शुद्ध जल तथा पर्याप्त पूँजी, विस्तृत बाजार तथा सरकारी प्रोत्साहन चाहिए।

यद्यपि कुटीर उद्योग के रूप में सूती धागा तथा सूती वस्त्रों का निर्माण सभी उष्ण व उपोष्ण कटिबंधीय देशों में होता है। चीन, भारत, रूस, संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान आदि प्रमुख सूती वस्त्र उत्पादक देश है।



चित्र 9.6 : सूती धागों का उत्पादन भारत में



चित्र 9.7 : चीन में सूती वस्त्र उद्योग

चीन का सूती वस्त्र उत्पादन में प्रथम स्थान है। शंघाई, केन्टन, सिंगटाओं, टीण्टसिन, शांतुग व डेआरिन आदि प्रमुख सूती वस्त्र केन्द्र हैं। भारत का सूती वस्त्र उत्पादन में चीन के बाद द्वितीय स्थान है। भारत में मुम्बई, अहमदाबाद, शोलापुर, नासिक, सूरत, बडौदा, नागपुर, इन्दौर, वारंगल, ग्वालियर, कोलकोता, दिल्ली, कानपुर, भीलवाड़ा, ब्यावर, पाली, कोयम्बटूर, मदुरई सलेम, बैंगलौर, आदि मुख्य केन्द्र हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में न्यू इंलैण्ड, मध्य अटलांटिक राज्यों तथा दक्षिण अप्लेशियन राज्यों में सूती वस्त्र का उत्पादन होता है। वर्तमान में इस उद्योग को कृत्रिम रेशे से प्रतिस्पर्धा करनी पड़ रही है। जिसके कारण अनेक देशों में इसमें नकारात्मक प्रवृति देखी जा रही है। यह उद्योग विकसित देशों की तुलना में कम विकसित देशों में स्थानान्तरित हो रहा है, जहॉ श्रम लागत कम है।

(ब) ऊनी वस्त्र उद्योग : सूती वस्त्र उद्योग के बाद ऊनी वस्त्र उद्योग विश्व का दूसरा सबसे बड़ा उद्योग है। ऊनी वस्त्र उद्योग का तेजी से विकास 17वीं शताब्दी में इंग्लैण्ड में हुआ है। द्वितीय विश्व युद्वके बाद जापान में आधुनिक मशीनों के आविष्कार से इस उद्योग के विकास में तेजी आयी। मात्रा की दृष्टि से विश्व में ऊनी वस्त्र उद्योग सूती वस्त्र उद्योग का 10 से 15 प्रतिशत भाग ही है परन्तु मूल्य की दृष्टि से यह महत्त्वपूर्ण उद्योग है। ऊनी वस्त्र उद्योग की अवस्थिति में बाजार और कच्चे माल की सुगम प्राप्ति का सबसे अधिक महत्त्व है। कुशल श्रम, स्वच्छ जल की आपूर्ति, शक्ति के संसाधनों की उपलब्धता, पूँजी व यातायात की सुलभता अन्य महत्त्वपूर्ण कारक है।

विश्व का लगभग दो–तिहाई ऊनी वस्त्र उद्योग यूरोप में केन्द्रित है। वर्तमान समय में इस उद्योग का विकास 40 से अधिक देशों में हो गया है। रूस, चीन, जापान, जर्मनी, भारत, संयुक्त राज्य अमेरिका, रोमानिया, पौलेण्ड, ग्रेट ब्रिटेन आदि प्रमुख ऊनी वस्त्र उत्पादक देश है। दक्षिणी गोलार्द्ध के प्रमुख ऊन उत्पादक देशों में आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, दक्षिणी अफ्रीका, अर्जेन्टीना, व यूरूग्वे में मात्र 5 प्रतिशत ऊनी वस्त्र का उत्पादन होता है क्योंकि ये देश उष्ण जलवायु व विरल जनसंख्या वाले देश है।

(द) रेशमी वस्त्र उद्योग – रेशमी वस्त्र उद्योग का विकास सर्वप्रथम चीन में कुटीर उद्योग के रूप में हुआ है। यहीं से यह उद्योग विश्व के अन्य देशों में विकसित हुआ। स्वचालित करघों के आविष्कार के साथ ही इसने फैक्ट्री उद्योग का रूप धारण कर लिया। रेशमी वस्त्र प्रारम्भ से ही धनी लोगों की विलास की वस्तु रहा है। अतः यह उद्योग सूती वस्त्र उद्योग तथा ऊनी वस्त्र उद्योग की तुलना में अधिक सीमित एवं केन्द्रित उद्योग है।

प्राकृतिक रेशम बॉयोक्जिमू नामक कीड़े की लार से निकले पदार्थ से प्राप्त होता है। शहतूत के पत्तों पर पलने वाला यह कीड़ा अपने मुँह से निकले लसलसे पदार्थ को अपने शरीर के चारों तरफ लपेटता है। इस स्थिति में इसे कोये (कोकून) कहते है। पूर्ण विकसित कोयो को पानी में उबाल कर उन पर लिपटे रेशम को उतार कर अलग धागे के रूप में लपेटा जाता है। इसके बाद रेशम के कपडे बनाये जाते हैं। स्पष्ट है कि रेशमी वस्त्र उद्योग के तीन चरण है – 1. कोयों का उत्पादन 2.कोयो से रेशमी धागा लपेटना 3. रेशमी वस्त्रो की बुनाई।

विश्व में प्राकृतिक कच्चे रेशम का उत्पादन करने वाले देशों में जापान लगभग 50 प्रतिशत, चीन 28 प्रतिशत, रूस 6 तथा भारत 6 प्रतिशत रेशम उत्पादित करते है। रेशमी वस्त्र उद्योग मुख्यतः मॉंग व बाजार से प्रभावित होता है। रेशमी वस्त्र काफी महँगे होते हैं और यह उद्योग उन्हीं देशों में पनपता है जिनमें पर्याप्त संख्या में कुशल श्रम हो।

जापान, संयुक्त राज्य अमेरिका, फ्रांस, चीन, ताईवान,

जर्मनी, इग्लैण्ड, तथा भारत रेशमी वस्त्र के प्रमुख निर्माता है। पूर्वी एशिया के देशों में विश्व का लगभग 85 प्रतिशत कच्चा रेशम तैयार होता है जबकि ये देश विश्व का 35 प्रतिशत रेशमी वस्त्र ही बनाते है। जापान के यामागाता, फूकूशीमा, निगीता, किन्की, तथा क्यूटो, रेशमी वस्त्रों की बुनाई के प्रमुख केन्द्र है। चीन में रेशम उद्योग प्राचीन काल से ही विकसित है। प्राचीन समय में चीन का रेशम स्थल मार्ग से यूरोप के देशों को पहुँचता था। इसी मार्ग को इतिहासकार रेशम मार्ग के नाम से पुकारते है। शंघाई, क्वांगचाऊ प्रमुख रेशम उद्योग के केन्द्र है।

संयुक्त राज्य अमेरिका में रेशमी वस्त्रों के उत्पादन में पेन्सिलवेनिया राज्य सबसे आगे है। पैटरसन नगर यहॉ का सबसे बड़ा रेशमी वस्त्र उत्पादक नगर है जिसे अमेरिका का ''रेशम नगर'' भी कहते है। फ्रांस की रोन घाटी में स्थित लियोंस नगर रेशमी वस्त्रों की उत्पादन करने वाला प्रमुख केन्द्र है। भारत में कोलकात्ता, मैसूर, बैंगलोर, चेन्नई प्रमुख केन्द्र है।

(य) जूट वस्त्र उद्योग : जूट उद्योग का सम्बन्ध टाट, बोरी, जूट के कपड़े, मोटी दरियों के उत्पादन से है। जूट उद्योग से पैकिंग के लिए सस्ती, मजबूत व टिकाऊ सामग्री उत्पादित की जाती है। वर्तमान में उच्च कोटि की जूट को कपास या ऊन के साथ मिलाकर उत्तम गुणवतत्ता के वस्त्र व अन्य उत्पाद बनाये जाते हैं। जूट की कृषि में भारत व बांग्लादेश अग्रणी है जहाँ ब्रह्मपुत्र घाटी व गंगा के डेल्टाई भाग में इसकी खेती की जाती है।



चित्र 9.8 : प. बंगाल में जूट की फसल

यह उद्योग भारत, बाँग्लादेश, जर्मनी, ग्रेट ब्रिटेन, फ्राँस, इटली, बैल्जियम, स्पेन, स्वीडन, जापान, कनाडा, संयुक्त राज्य अमेरिका, चीन, थाइलैण्ड, आदि देशों में विकसित है। भारत व बाँग्लादेश जूट से बनी वस्तुओं के प्रमुख निर्यातक देश है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दू

1. प्राकृतिक संसाधनों को परिष्कृत करने, उनका रूप बदलने तथा जीवन यापन के लिए उन्हें अधिक उपयोगी बनाने वाली सभी क्रियाओं के द्वितीयक आर्थिक क्रियाएँ कहते हैं।
2. द्वितीयक व्यवसायों में इंजीनियरिंग, निर्माण, इलेक्ट्रानिकी, रसायन, वस्त्र, भोजन व पेय पदार्थ, धातुकर्म, प्लास्टिक आदि उद्योग शामिल हैं।
3. कच्चा माल, शक्ति के साधन, परिवहन व संचार के साधन, बाजार, पूँजी, जलापूर्ति, जलवायु, तकनीकी, व सरकारी नीतियाँ आदि उद्योगों को प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण कारक है।
4. आकार के आधार पर उद्योगों को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है– कुटीर, लघु व वृहत् उद्योग।
5. लौह–इस्पात उद्योग विश्व का प्रमुख व आधारभूत निर्माण उद्योग है।
6. चीन, जापान, संयुक्त राज्य अमेरिका, रूस, जर्मनी, यूक्रेन, भारत आदि प्रमुख लौह–इस्पात उत्पादक देश है।
7. वस्त्र उद्योग में सूती, ऊनी, रेशमी, पटसन, तथा कृत्रिम वस्त्र उद्योग शामिल किये जाते हैं।
8. सूती वस्त्र उद्योग में श्रम लागत बढ़ने की वजह से विकसित देशों से अब विकासशील देशों में स्थानान्तरित हो रहा है।
9. मात्रा की दृष्टि से विश्व में ऊनी वस्त्र उद्योग, सूती वस्त्र उद्योग का मात्र 10 से 15 प्रतिशत भाग ही है।
10. भारत व बाँग्लादेश जूट से बनी वस्तुओं के प्रमुख निर्यातक है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुचयनात्मक

1. निम्न में से कौनसा शक्ति का साधन नहीं है ?

   (अ) कोयला (ब) पेट्रोलियम

   (स) जल विद्युत (द) तांबा

2. वह देश जिसमें कच्चे माल न्यून होने पर भी उद्योगों का विकास हुआ है?

   (अ) जापान (ब) भारत

   (स) चीन (द) रूस

3. निम्न में से कौनसा शक्ति का साधन उद्योगों के विकेन्द्रीकरण में सहायक नहीं है?

(अ) जल विद्युत (ब) कोयला

(स) पेट्रोलियम (द) प्राकृतिक गैस

4. कौनसा कथन कुटीर उद्योगों से सम्बन्धित नहीं है?

(अ) स्थानीय कच्चा माल

(ब) परिवार के सदस्यों द्वारा श्रम

(स) उत्पाद की कम मात्रा (द) अधिक पूँजी

5. निम्न में से कौनसा कृषि आधारित उद्योग नहीं है?

(अ) सूती वस्त्र उद्योग (ब) रबड़ उद्योग

(स) सीमेंट उद्योग (द) वनस्पति तेल उद्योग

6. वनोत्पाद आधारित उद्योग है –

(अ) चमडा उद्योग (ब) चीनी उद्योग

(स) कागज उद्योग (द) एल्युमिनियम उद्योग

7. निम्न मे से कौनसा चीन का प्रमुख लौह–इस्पात उत्पादन क्षेत्र है –

(अ) मंचूरिया (ब) नागासाकी–यवाता

(स) पिट्सबर्ग–टंगस्टन (द) यूराल क्षेत्र

8. भारत का लौहा–इस्पात केन्द्र नहीं है –

(अ) जमशेदपुर (ब) दुर्गापुर

(स) राउरकेला (द) पिट्सबर्ग

अतिलघूत्तरात्मक –

9. भारत के प्रमुख लौह इस्पात केन्द्र कौनसे कोयला क्षेत्र के समीप अवस्थित है?

10. लौह–इस्पात निर्माण की विधियों के नाम बताइये।

लघुत्तरात्मक

11. लौह–इस्पात उत्पादक देशों के नाम बताइए।

12. वस्त्र निर्माण उद्योग का संक्षिप्त वर्णन दीजिए।

13. बड़े पैमाने के उद्योग किसे कहते हैं?

14. जापान में लौह–इस्पात उद्योग का वर्णन कीजिए?

15. ऊनी वस्त्र उद्योग का वर्णन कीजिए?

निबंधात्मक

16. उद्योगों के स्थानीयकरण के कारको का वर्णन कीजिए।

17. उद्योगो का वर्गीकरण प्रस्तुत कीजिए।

18. लौह–इस्पात उद्योग या सूती वस्त्र उद्योग पर एक लेख लिखिये।

आंकिक

19. विश्व मानचित्र में विश्व के प्रमुख लौह इस्पात केन्द्रों को दर्शाइये।

20. विश्व के मानचित्र में विश्व के प्रमुख वस्त्र उत्पादक देशों को दर्शाइये।

पाठ 10
विश्व : परिवहन एवं संचार
(World : Transport and Network)

परिवहन मानव द्वारा संचालित एक महत्त्वपूर्ण आर्थिक क्रिया है। आर्थिक क्रियाओं के त्रिस्तरीय वर्गीकरण में परिवहन को तृतीयक क्रिया के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है। किसी भौतिक माध्यम द्वारा वस्तुओं या व्यक्तियों के एक स्थान से दूसरे स्थान के लिए स्थानान्तरण या आवागमन को परिवहन या यातायात कहते हैं। सामान्यतः परिवहन व्यक्तियों और वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान तक वहन करने की सेवा या सुविधा को कहते हैं जिसमें मनुष्यों (मानवीय), पशुओं तथा विभिन्न प्रकार के वाहनों का प्रयोग किया जाता है। ऐसा गमनागमन स्थल, जल एवं वायु मार्गों द्वारा होता है।

इसी प्रकार संदेश, विचार आदि के स्थानिक आदान– प्रदान को संचार कहा जाता है। परिवहन तथा संचार को सम्मिलित रूप से परिसंचरण के अन्तर्गत रखा जाता है। इस प्रकार परिवहन परिसंचरण का एक प्रमुख अंग है। विश्व के विभिन्न भागों में परिवहन के विविध साधनों का प्रयोग किया जाता है जिनकी अपनी पृथक तकनीकी विशेषताएँ तथा क्षेत्रीय विस्तार प्रतिरूप होते हैं। परिवहन के आधुनिक साधनों को 3 वृहत् वर्गों के अन्तर्गत रखा जाता है।

1. स्थल मार्ग (सड़कें एवं रेलमार्ग)
2. जल मार्ग
3. वायु मार्ग

अन्य पाइप लाइन (जल, तैल एवं गैस)

किसी प्रदेश की परिवहन व्यवस्था के क्षेत्रीय प्रतिरूप को परिवहन जाल कहा जाता है। इस प्रकार किसी प्रदेश की सम्पूर्ण परिवहन व्यवस्था त्रिविधि प्रकार के परिवहन साधनों के सम्मिलित स्वरूप को प्रकट करती है।

परिवहन एक उत्पादक क्रिया है जिसके द्वारा वस्तुओं तथा व्यक्तियों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाने के परिश्रमिक के रूप में आय प्राप्त होती है। परिवहन का उत्पादन मूल्य माल भाड़ा अथवा यात्री भाड़ा के रूप में प्राप्त होता है। परिवहन के लिए मार्ग प्रायः निर्धारित होते हैं जो जल, स्थल एवं वायु से होकर गुजरते हैं जिन्हें क्रमशः जलमार्ग, स्थल मार्ग और वायु मार्ग कहते हैं। जल मार्ग किसी झील, नदी अथवा सागर (या महासागर) से होकर गुजरते हैं। जल मार्ग द्वारा परिवहन नाव, स्टीमर, जलपोत आदि वाहनों के द्वारा होता है। स्थल मार्ग के अन्तर्गत सड़क और रेल मार्ग आते हैं। सड़क पर चलने वाले परिवहन के साधनों के अन्तर्गत रिक्शा, ताँगा आदि लघु वाहनों से लेकर बस, टैक्सी, ट्रक आदि मोटर वाहन सम्मिलित किये जाते हैं। रेल मार्गों पर सवारी गाड़ी तथा मालगाड़ी के द्वारा क्रमशः यात्रियों तथा सामानों का परिवहन होता है। वायु मार्गों के साधनों में हवाई जहाज, हैलीकॉप्टर आदि प्रमुख हैं।

परिवहन में सुधारों के साथ–साथ संचार के साधनों का भी महत्त्वपूर्ण विकास होता रहा है। टेलीग्राफ, टेलीफोन, बेतार संचार (वायरलैंस) रडार और स्वचालित कम्प्यूटरों की सहायता से व्यापारिक संदेशों के आने–जाने में तथा रेलगाड़ियों, जलपोतों और वायुयानों की अपनी यात्राएँ पूरी करने में भारी सहायताएँ मिल रही है। पृथ्वी पर लम्बी दूरी पर स्थित क्षेत्र भी अब समीपस्थ हो गए हैं।

स्थलीय परिवहन (Land Transport)

स्थलीय परिवहन को दो वृहत भागों में विभक्त किया जा सकता है (i) सड़क परिवहन, (ii) रेल परिवहन। यद्यपि यात्रियों के परिवहन में सड़क और रेल दोनों का बहुत महत्त्व है किन्तु व्यापारिक दृष्टिकोण से रेलमार्ग अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण साधन है।

(i) सड़क परिवहन

अधिकांश वस्तुओं एवं सेवाओं का अधिकांश संचलन स्थल पर होता है। आरम्भिक दिनों में मानव स्वयं वाहक था। बाद के वर्षों में पशुओं का उपयोग बोझा ढोने के लिए किया जाने लगा। पहिए के आविष्कार के साथ गाड़ियों और माल डिब्बों का प्रयोग महत्त्वपूर्ण हो गया। परिवहन में क्रान्ति अठारहवीं शताब्दी में भाप के इंजन के आविष्कार के बाद आई। स्थल परिवहन के अन्तर्गत नवीनतम विकास के रूप में पाइपलाइनों, राजमार्गों एवं तारमार्गों को रखा जाता है।

सड़क मार्ग के अन्तर्गत साधारण पगडंडी से लेकर मोटर गाड़ियों के चलने योग्य पक्की सड़कों को समाहित किया जाता है। छोटी दूरी के परिवहन के लिए सड़क यातायात से वस्तुओं को उत्पत्ति स्थान से उपभोक्ता स्थल तक पहुँचाया जा सकता है। दुर्गम पहाड़ी स्थानों पर भी सड़कें बनाई गई है। परिवहन के अन्तर्गत साधारण साधन बैलगाड़ी, ताँगा, साइकिल, रिक्शा आदि से लेकर मोटर साइकिल, स्कूटर, मोटर कार, बस, ट्रक, ट्राली आदि स्वचालित वाहन तक सभी सड़कों पर चलते हैं और यात्रियों तथा सामानों के स्थानान्तरण में सहायक होते हैं।

सामान्यतः मानव कुली, बोझा ढोने वाले पशु, गाड़ियाँ अथवा माल डिब्बों जैसे पुराने और प्रारम्भिक रूप परिवहन के सर्वाधिक खर्चीले साधन थे, जबकि बड़े मालवाहक सस्ते पड़ते हैं। विशाल देशों के आन्तरिक भागों में पाए जाने वाले आधुनिक जलमार्गों और वाहकों की संपूरकता प्रदान करने में इनका बहुत महत्त्व है। भारत और चीन के सघन बसे जिलों में आज भी मानव कुलियों और मनुष्य द्वारा खींची जाने वाली गाड़ियों से होने वाले स्थल परिवहन का प्रचलन है।

सड़कें

सड़कें दो प्रकार की हाती है– कच्ची एवं पक्की।

कच्ची सड़कें सामान्यतः विकासशील देशों के ग्रामीण क्षेत्रों में पायी जाती है। पक्की सड़कों को कंकड़, पत्थर या कंकरीट आदि से मजबूत करके ऊपर से डामर (कोलतार) या अन्य आधुनिक पदार्थों से चिकना कर दिया जाता है। कच्ची सड़कें, यद्यपि निर्माण की दृष्टि से सरल होती है, सभी ऋतुओं में प्रभावी व प्रयोग योग्य नहीं होती है। वर्षा ऋतु में इन पर मोटर वाहन नहीं चलाए जा सकते हैं और यहाँ तक की पक्की सड़के भी अत्यधिक भारी वर्षा एवं बाढ़ के समय गंभीर रूप से प्रभावित हो जाती है।

विकसित एवं विकासशील देशों में सड़कों की गुणवत्ता में पर्याप्त अन्तर पाया जाता है क्योंकि सड़कों का निर्माण व उनके रख–रखाव पर भारी खर्च आता है। विकसित देशों में अच्छी गुणवता वाली सडकें सर्वत्र पायी जाती है और तीव्र संचलन के लिए मोटर मार्गों, ऑटो वाहन (जर्मनी) और अन्तर राज्यीय राजमार्गों के द्वारा लम्बी दूरियों को जोड़ती है।

सारणी 10.1 : सड़कों की लम्बाई

क्र.सं.	देश	लम्बाई	एक्सप्रेस हाइवे किमी.
1	सुयंक्त राज्य अमेरिका	65,86,610	1,03,027
2	भारत	48,65,000	1,324
3	चीन	45,00,000	1,23,000
4	ब्राजील	17,51,868	11,000
5	रूस	13,96,000	929
6	जापान	12,15,000	8,050
7	कनाडा	10,42,300	17,000
8	फ्रांस	10,28,446	11,882
9	आस्ट्रेलिया	8,23,217	3,132
10	दक्षिण अफ्रिका	7,47,014	1,400

स्रोत : इनएसाइक्लोपिडिया, 2016

महामार्ग

महामार्ग दूरस्थ स्थानों को जोड़ने वाली पक्की सड़कें होती है इनका निर्माण इस प्रकार से किया जाता है कि अबाधित रूप से यातायात का आवागमन हो सके। यातायात के अबाधित प्रवाह की सुविधा के लिए अलग–अलग यातायात लेन, पुलों, फ्लाई ओवर और दोहरे वाहन मार्गों से युक्त ये 80 मीटर चौड़ी सड़कें होती है। विश्व के देशों में प्रत्येक नगर और बन्दरगाह महामार्गों द्वारा जुड़े हुए हैं।

विश्व के प्रमुख सड़क मार्ग

(1) पैन–अमेरिकन महामार्ग : यह विश्व की सबसे लम्बी सड़क है जो दक्षिण अमेरिका के देशों को मध्य अमेरिका, मैक्सिको एवं संयुक्त राज्य अमेरिका से मिलाती है। यह महामार्ग अलास्का के उत्तर–पश्चिम से शुरू होकर सैंटियागों (चिली), ब्यूनस आयर्स (अर्जेन्टाइना) होते हुए ब्रासीलिया (ब्राजील) में समाप्त होती है।

(2) ट्रांस कनाडियन–महामार्ग : यह महामार्ग न्यू फाउण्डलैण्ड प्रान्त के सेंट जॉन नगर को पश्चिमी तट पर ब्रिटिश कोलम्बिया में स्थित बैंकूवर नगर से जोड़ती है।

(3) अलास्का महामार्ग : यह महामार्ग कनाडा के एडमान्टन नगर को अलास्का के ऐंकोरेज नगर से जोड़ती है।

(4) स्टुअर्ट महामार्ग : यह महामार्ग उत्तरी आस्ट्रेलिया से स्थित बिरटुम को एलिस स्प्रिंग होते हुए दक्षिण आस्ट्रेलिया में स्थित ऊनादत्ता से जोड़ती है।

अमेरिका में महामार्गों का घनत्व उच्च है जो लगभग 0.65 किमी प्रतिवर्ग किमी है। प्रत्येक स्थान महामार्ग से 20 किमी दूरी पर स्थित है। अमेरिका में लगभग 63 लाख किमी लम्बी सड़कें हैं जो विश्व में सबसे अधिक है। अधिकांश सड़कें संयुक्त राज्य के पूर्वी भाग में स्थित है। विश्व की लगभग एक–तिहाई सड़कें (लम्बाई) और लगभग आधी मोटर गाड़ियाँ यू.एस.ए. में पायी जाती है। पूर्वी भाग में अत्यधिक औद्योगीकरण और नगरीकरण के परिणाम स्वरूप सड़कों का जाल बिछा हुआ है।

अफ्रीका महाद्वीप में स्थलाकृति की विविधता के कारण सड़कें ही परिवहन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण साधन है। यूरोप में वाहनों की बहुत विशाल संख्या तथा महामार्गों का सुविकसित जाल पाया जाता है। परन्तु महामार्गों को रेलमार्गों एवं जलमार्गों के साथ कड़ी प्रतिद्वंद्विता का सामना करना पड़ता है।

रूस में यूराल के पश्चिम में स्थित औद्योगिक प्रदेश में महामार्गों के अत्यधिक सघन जाल का विकास हुआ है, जिसकी धुरी मास्को है। महत्त्वपूर्ण मास्को– ब्लाडीवोस्टक महामार्ग पूर्व में स्थित प्रदेश की सेवा करता है। अत्यधिक विस्तृत भौगोलिक क्षेत्रफल के कारण रूस में महामार्ग इतने नहीं है, जितने रेलमार्ग।

चीन में सड़कें यातायात की प्रमुख साधन हैं जिनका पूर्वी भाग के मैदानी भागों में जाल बिछा हुआ है। चीन में लगभग 15 लाख किमी लम्बी सड़कें हैं। यहाँ महामार्ग प्रमुख नगरों को जोड़ते हुए देश में क्रिस–क्रॉस करते है। ये शासों (वियतनाम सीमा के समीप), शंघाई (मध्य चीन), ग्वागंजाओं (दक्षिण) एवं बीजिंग उत्तर को परस्पर जोड़ते हैं। नवीन महामार्ग तिब्बती क्षेत्र में चेगडू को ल्हासा से जोड़ता है।

भारत में भी अनेक महामार्ग है। पक्की सड़कों की लम्बाई की दृष्टि से भारत का विश्व में तीसरा स्थान है। यहाँ लगभग 14.6 लाख किमी लम्बी सड़कें है। कच्ची व पक्की सभी प्रकार की सड़कों की लम्बाई 33 लाख किमी. है। भारत में सड़कों (राजमार्गों) को राष्ट्रीय, राज्यीय मार्ग और जनपदीय श्रेणियों में विभक्त किया जाता है। देश में कुल 230 प्रमुख राष्ट्रीय राजमार्ग (एन.एच.) है। देश का सबसे लम्बा राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या 7 है जो वाराणसी को कन्याकुमारी से जोड़ता है। स्वर्णिम चतुर्भुज योजना में चार बड़े महानगरों को मिलाया गया। कॉरिडॉर योजना में उत्तर दक्षिण व पूर्व–पश्चिम को मिलाया, जिसमें पूर्व में असम में सिलचर से पश्चिम में गुजरात के पोरबन्दर को जोड़ा गया। उत्तर–कॉरिडोर में कश्मीर से कन्याकुमारी को जोड़ा गया तथा निर्माणाधीन द्रुतगामी सिक्सलेन, आठलेन, महामार्ग व ग्रीन कॉरिडॉर हाइवे का निर्माण किया जा रहा है। इनके निर्माण व रख–रखाव का कार्य ''राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण'' करता है।

सीमावर्ती सड़कें

अन्तर्राष्ट्रीय सीमाओं के सहारे बनाई गई सड़कों को सीमावर्ती सड़के कहा जाता है। ये सड़कें सुदुर क्षेत्रों में रहने वाले लोगों को प्रमुख नगरों से जोड़ने और प्रतिरक्षा प्रदान करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। प्रायः सभी देशों में गाँवों एवं सैन्य शिविरों तक वस्तुओं को पहुँचाने के लिए ऐसी सड़कें बनाई जाती हैं।

(ii) रेलमार्ग

स्थल परिवहन में रेल परिवहन का महत्त्व सर्वाधिक है। रेलमार्ग का विकास सड़कों के विकास की तुलना में काफी देर से हुआ। इग्लैण्ड में जेम्सवाट ने 1769 में इंजन का आविष्कार किया और जार्ज स्टीफेन्स ने सर्वप्रथम 1814 में वाष्प चलित प्रथम रेल इंजन बनाया। 27 सितम्बर 1825 में उत्तरी इग्लैण्ड के ऑर्कटन और डार्लिगटन के मध्य संसार की पहली रेलगाड़ी इंग्लैण्ड में चलना प्रारम्भ हुई। रेल लाइनों की चौड़ाई (गेज) प्रत्येक देश में अलग–अलग पाई जाती हैं। सामान्यतया बड़ी (1.5 मीटर से अधिक), मीटर लाइन (1 मीटर) और छोटी लाइनों में वर्गीकृत किया जाता है। भारत में रेल परिवहन की शुरूआत 1853 में मुम्बई से ठाणे (34 किमी.) के बीच हुई। भारतीय रेल 4 आयामों में संचालित होती है (अ) ब्रॉडगेज या बडी लाईन (चौड़ाई 1.676 मीटर), (ब) मीटर गेज या छोटी लाईन (चौड़ाई 1 मीटर), (स) नैरोगज या संकरी लाईन (0.762 मीटर), और (द) लिफ्टगेज (0.610 मीटर)। विश्व में मानक लाइन (1.44 मीटर) का उपयोग ब्रिटेन में किया जाता है।

दैनिक आवागमन की रेलें, ब्रिटेन, सं.रा. अमेरिका, जापान,

रूस और भारत में अत्यधिक लोकप्रिय है। ये दैनिक गाड़ियाँ नगरों में प्रतिदिन लाखों यात्रियों को लाती ले जाती है। विश्व में लगभग 13 लाख किमी लम्बे रेल यातायात मार्ग है।

यूरोप में विश्व का सघनतम रेल तंत्र पाया जाता है। यहाँ रेल मार्ग लगभग 121 हजार किमी लम्बे हैं, जिनमें से अधिकांश दोहरे अथवा बहुमार्गी है। बैल्जियम में रेल घनत्व सर्वाधिक अर्थात् 6.5 वर्ग किमी. क्षेत्र पर लगभग 1 किमी पाया जाता है। औद्योगिक प्रदेश विश्व के कुछ सर्वाधिक घनत्वों का प्रदर्शन करते हैं। लन्दन, पेरिस, ब्रुसेल्स, मिलान, बर्लिन और वारसा महत्त्वपूर्ण रेल केन्द्र है। इग्लैण्ड में यूरो टनल ग्रुप द्वारा प्रचालित सुरंग मार्ग लन्दन को पेरिस से जोड़ता है।

रूस, यूराल पर्वत के पश्चिम में अत्यनत सघन जाल से युक्त रूप से में रेलमार्गों के द्वारा कुल परिवहन का 90 प्रतिशत भाग प्रभावित होता है। रेलमार्ग की लम्बाई (87 हजार किमी.) के अनुसार रूस का विश्व में तीसरा स्थान है।

उत्तरी अमेरिका में सर्वाधिक विस्तृत रेलमार्ग तंत्र है, जो विश्व के कुल रेलमार्गो का लगभग 40 प्रतिशत है। इसके विपरित यूरोप के अनेक देशों में रेलमार्गों का प्रयोग यात्री परिवहन की अपेक्षा अधिकतर लम्बी दूरी के स्थल पदार्थों जैसे अयस्क, अनाज, इमारती लकड़ी तथा मशीनरी आदि के परिवहन हेतु अधिक होता है। सर्वाधिक सघन रेलतंत्र पूर्वी मध्य सं.रा. अमेरिका तथा उससे संलग्न कनाडा के उच्च औद्योगिक एवं नगरीय प्रदेश में पाया जाता है।

कनाडा में रेलमार्ग सार्वजनिक सेक्टर में है। कनाडा में दो ट्रॉस महाद्वीपीय रेलमार्ग है (i) कैनेडियन पैसिफिक रेलवे और (ii) कैनेडियन नेशनल रेलवे। कनैडियन पैसिफिक रेलमार्ग पूर्व में हेलीफ्रॉक्स से आरम्भ होकर मांट्रियल, विनिपेग होता हुआ बैंकुवर तक जाता है। कैनेडियन नेशनल रेलमार्ग भी अंटलाटिक तट (क्यूबेक) से लेकर प्रशांत तट (प्रिंस रूपर्ट) तक जाता है। जिसके मध्यवर्ती स्टेशनों में विनीपेग, एडगांटन, प्रिंस जार्ज आदि प्रमुख है। महाद्वीपीय पार रेलमार्गों के द्वारा गेहूँ एवं कोयले के भार के अधिकांश भाग का परिवहन किया जाता है।

सारणी 10.2 में विश्व के प्रमुख देशों के रेलमार्गों की स्थिति को दर्शाया गया है।

सारणी 10.2 : रेल लाईनों की लम्बाई

क्र.सं.	देश	लम्बाई (किमी.)	विद्युतीकरण
1	सुयंक्त राज्य अमेरिका	226,932	1,600
2	चीन	121,000	65,000
3	रूस	87,157	50,000
4	भारत	67,312	27,999
5	कनाडा	46,552	129
6	जर्मनी	43,468	19,973
7	आस्ट्रेलिया	38,445	2,715
8	अर्जेन्टाइना	36,966	136
9	द. अफ्रिका	31,000	24,800
10	फ्रांस	29,640	15,140

स्रोत : *World Data Bank, 2015*

आस्ट्रेलिया : यहाँ रेलमार्ग मुख्यतः दक्षिणी–पूर्वी भाग में पाये जाते हैं। आस्ट्रेलिया में रेलमार्गों की कुल लम्बाई 49 हजार किमी. है, जिसका 25 प्रतिशत अकेले न्यू साउथ वेल्स में पाया जाता है। पश्चिमी–पूर्वी आस्ट्रेलिया राष्ट्रीय रेलमार्ग पर्थ से सिडनी तक एक छोर से दूसरे छोर तक जाती है। आस्ट्रेलिया के सभी प्रमुख सम्मुद्री पत्तन पर्थ, मेलबोर्न, सिडनी आदि रेलमार्गों द्वारा अपने पृष्ठ प्रदेशों से जुड़े हुए हैं।

दक्षिण अमेरिका में रेलमार्ग दो प्रदेशों में सघन है, जिनके नाम है अर्जेंटाइना के पम्पास तथा ब्राजील के कॉफी उत्पादक प्रदेश। इन दोनों प्रदेशों में दक्षिणी अमेरिका के कुल रेलमार्गों का 40 प्रतिशत भाग पाया जाता है। दक्षिण अमेरिका के शेष देशों में केवल चीली एक मात्र ऐसा देश है जहाँ महत्त्वपूर्ण लम्बाई के रेल मार्ग है जो तटीय केन्द्रों को आन्तरिक क्षेत्रों में स्थित खनन स्थलों से जोड़ते हैं। पेरू, बोलीविया, इक्वेडोर, कोलम्बिया और वेनेजुएला में छोटे एकल मार्ग वाली रेल लाईने पाई जाती है।

यहाँ केवल एक महाद्वीप पार रेलमार्ग है जो एंडीज पर्वतों के पार 3900 मीटर की ऊँचाई पर अवस्थित उसप्लाटा दर्रे से गुजरता हुआ ब्यूनस आयर्स (अर्जेटीना) को वालपैराइजों से मिलाता है।

एशिया में चीन, जापान और भारत के सघन बसे हुए क्षेत्रों में रेलमार्गों का सघनतम घनत्व पाया जाता है। अन्य देशों में अपेक्षाकृत कम रेलमार्ग बने है। विस्तृत मरूस्थलों और विरल जनसंख्या के प्रदेशों के कारण रेल सुविधाओं का न्यूनतम विकास हुआ है। भारत का विश्व में चौथा व एशिया में तीसरा स्थान है। यहाँ रेलमार्गों की लम्बाई 67,312 हजार किमी है। भारत में

रेलमार्गों की सघनता उत्तरी मैदानी भाग में है। दक्षिण के पठारी भाग में रेलमार्ग अपेक्षाकृत कम है।

अफ्रिका : दूसरा विशालतम महाद्वीप होने के बावजूद अफ्रिका में केवल 40,000 किमी लम्बे रेलमार्ग है जिनमें से सोने, हीरे के सान्द्रण और ताम्बा–खनन क्रिया– कलापों के कारण अकेले द. अफ्रिका में 31000 किमी लम्बे रेलमार्ग है।

अफ्रीका (i) बेंगुएला रेलमार्ग अंगोला से कंटगा– जांबिया ताम्बे की पेटी से होकर जाता है, (ii) तंजानिया रेलमार्ग जांबिया ताम्र पेटी से तट पर स्थित दार–ए–सलाम तक, (iii) बोत्सवाना और जिम्बाब्वे से होते हुए रेलमार्ग से स्थलबद्ध राज्यों को दक्षिण अफ्रीकी रेलतंत्र से जोड़ता है, और (iv) दक्षिण अफ्रिका गणतंत्र में केपटाउन से प्रिटोरिया तक ब्लू ट्रेन।

विश्व के प्रमुख रेलमार्ग

(1) पारमहाद्वीपीय रेलमार्ग : पारमहाद्वीपीय रेलमार्ग पूरे महाद्वीप से गुजरते हुए इसके दोनों छोरों को जोड़ते है। इनका निर्माण आर्थिक और राजनीतिक कारणों से विभिन्न दिशाओं में लम्बी यात्राओं की सुविधा प्रदान करने के लिए किया गया है।

(i) ट्रॉंस–साइबेरियन रेलमार्ग : यह विश्व का सबसे अधिक लम्बा रेलमार्ग है। यह रूस के पश्चिम भाग में बाल्टिक सागर के तट पर स्थित लेनिनग्राद (सेंट पीटर्सबर्ग) नगर से लेकर रूस के सुदूर पूर्व में प्रशान्त महासागर के तट पर स्थित ब्लाडीबोस्टक नगर तक 9560 किमी लम्बा है। इसका निर्माण कार्य 1891 में प्रारम्भ हुआ था। यह रेलमार्ग 1905 में बन कर तैयार हो गया और 1945 में इसे दोहरे पथ से युक्त विद्युतीकृत पारमहाद्वीपय रेलमार्ग में रेलें दोनों और से बिना अवरोध से चल सकती है। यह रेलमार्ग साइबेरिया के आर–पार जाता है। इसे ट्रॉंस–साइबेरियन रेलमार्ग के नाम जाना जाता है। मानचित्र 10.1 में इस रेलमार्ग के मुख्य केन्द्रों को दर्शाया गया है।

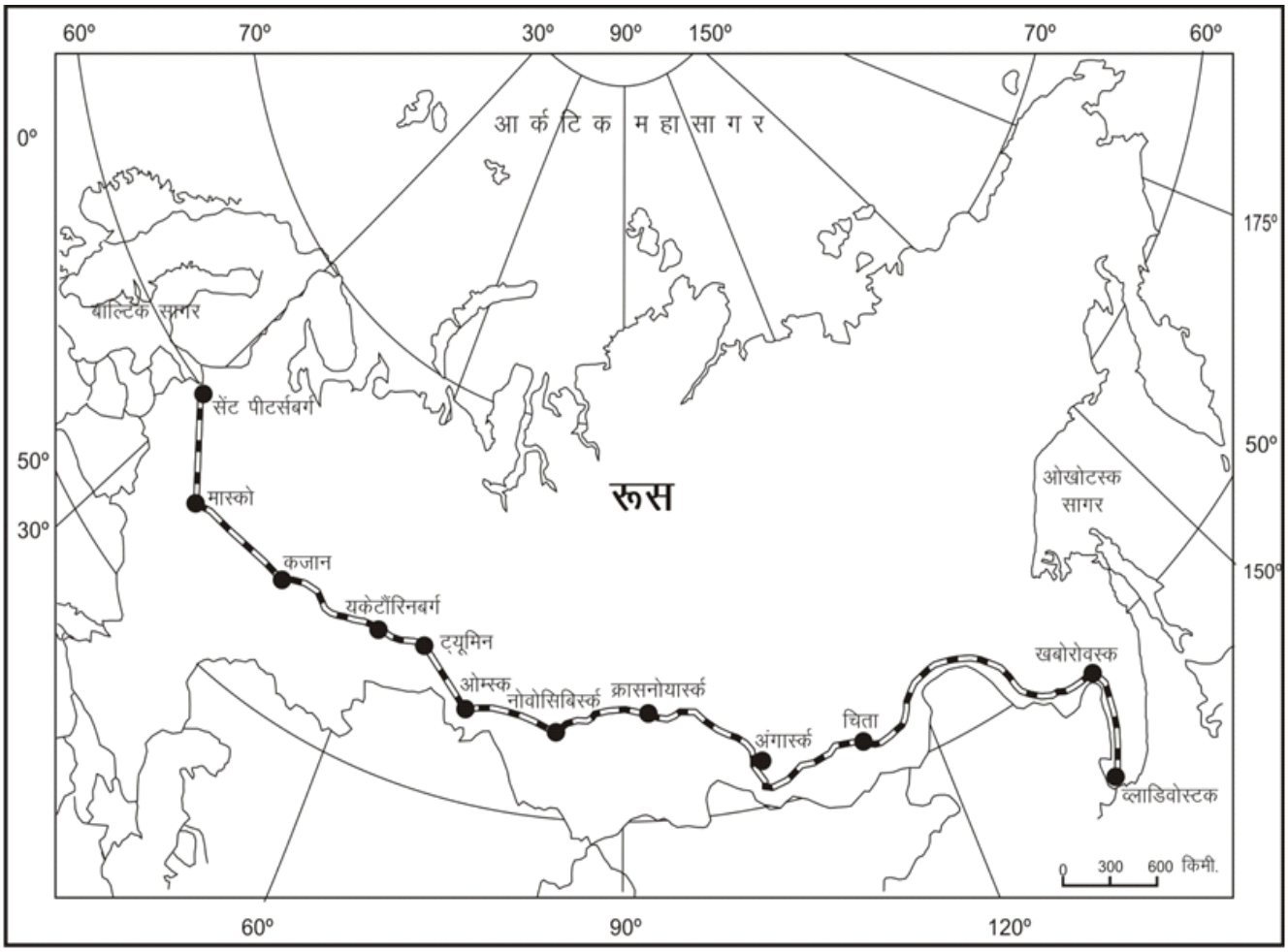

मानचित्र 10.1 : ट्रांस साइबेरियन रेलमार्ग



चित्र 10.1 : ब्लाडीकोस्टल के निकट ट्राँस–साइबेरियन रेलमार्ग



चित्र 10.2 : वोल्गा नदी के सहारे ट्राँस–साइबेरियन

यह रेलमार्ग रूस की राजधानी मास्को तक जाता है जो एक मुख्य औद्योगिक नगर भी है। मास्को से आगे टूला नगर होते हुए वोल्गानदी के किनारे कुइविशेव नगर से यूराल क्षेत्र में उफा नगर पार करके विलियाबिन्स्तु तक पहुँचता है। यहाँ से स्टेपी का समतल मैदान आरम्भ होता है जहाँ ओमस्क महत्त्वपूर्ण केन्द्र है।

यह एशियाई प्रदेशों को पश्चिमी यूरोपीय बाज़ारों से जोड़ता है। यह रेलमार्ग यूराल पर्वतों और यूराल की नदियों से गुजरता है। चीता एक महत्त्वपूर्ण कृषि केन्द्र है। इस रेल मार्ग से आर्थिक रूप से पिछड़े साइबेरिया का विकास सम्भव हुआ है।

(ii) कैनेडियन–पैसिफिक रेलमार्ग : यह कनाडा का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रेलमार्ग है। जो संयुक्त राज्य की सीमा के समानान्तर तथा निकट से होता हुआ अंटलांटिक तट से प्रशान्त महासागर के तट तक 7050 किमी लम्बा है। इस रेल मार्ग का निर्माण 1886 में मूल रूप से एक सन्धि के अन्तर्गत पश्चिमी तट पर स्थित ब्रिटिश कोलम्बिया को राज्यों के संघ में सम्मिलित करने के उद्देश्य से किया गया था। क्यूबेक–माण्ट्रियल औद्योगिक–व्यापारिक केन्द्र है (मानचित्र 10.2 में इस रेलमार्ग के मुख्य केन्द्रों को दर्शाया गया है)।



चित्र 10.3 : केनेडियन–पेसेफिक रेलमार्ग

(iii) संयुक्त राज्य अमेरिका के रेलमार्ग: संयुक्त राज्य अमेरिका में तीन प्रमुख अन्तर्महाद्वीपीय रेलमार्ग है जो अटलांटिक तट पर स्थित न्यूर्याक बन्दरगाह एवं प्रधान नगर को प्रशान्त तटीय बन्दरगाहों सिएटल, सैनफ्रान्सिकों और लॉस एंजिल्स से मिलाते हैं। स्थिति के अनुसार इन्हें क्रमशः उत्तरी मध्य और दक्षिणी अन्तर्महाद्वीपीय रेलमार्ग के नाम से जाना जाता है (मानचित्र 10.3 में संयुक्त राज्य अमेरिका के रेल मार्ग प्रदर्शित है।)।

(अ) उत्तरी–अन्तर्महाद्वीपीय रेलमार्ग : यह रेल मार्ग संयुक्त राज्य के उत्तरी भाग में अटलांटिक महासागर के तट पर स्थित न्यूयार्क नगर से आरम्भ होता है और शिकागो होता हुआ प्रशान्त महासागर के तटीय पत्तन सिएटल पहुँचता है। इस रेलमार्ग की लम्बाई लगभग 6100 किमी है। यह संयुक्त राज्य का सबसे अधिक लम्बा और महत्त्वपूर्ण रेलमार्ग है। यह मार्ग पिट्सबर्ग नगर जो लौह– इस्पात उद्योग का विश्व प्रसिद्ध केन्द्र है। यहाँ से पश्चिम की ओर अग्रसर यह रेलमार्ग मिशिगन झील के दक्षिण तट पर स्थित विशाल शिकागो–गैरी औद्योगिक नगर तथा उत्तर–पश्चिम और यह रेलमार्ग सेन्टपाल नगर में प्रेयरी प्रदेश में स्थित विस्मार्क नगर पहुँचता है।

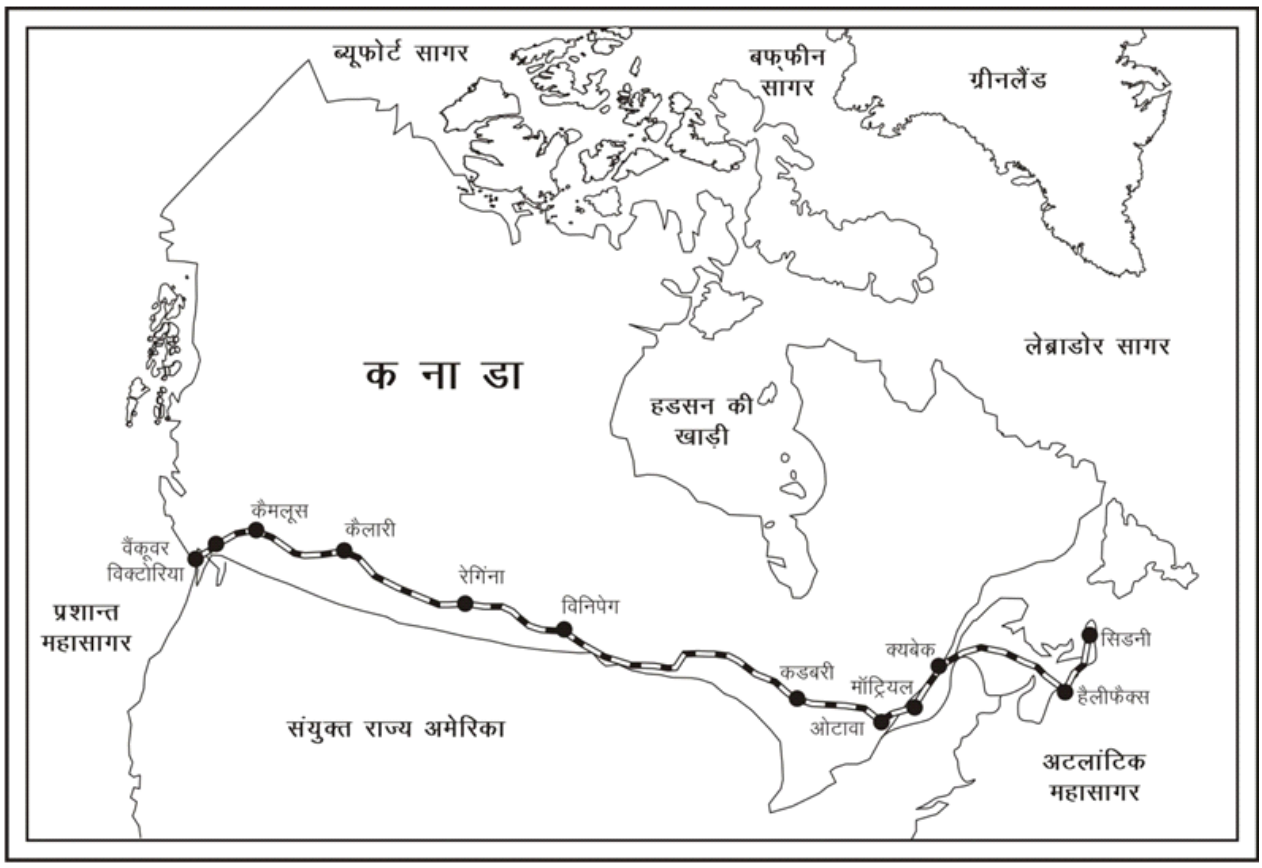

मानचित्र 10.2 : पार–कैनेडियम रेलमार्ग

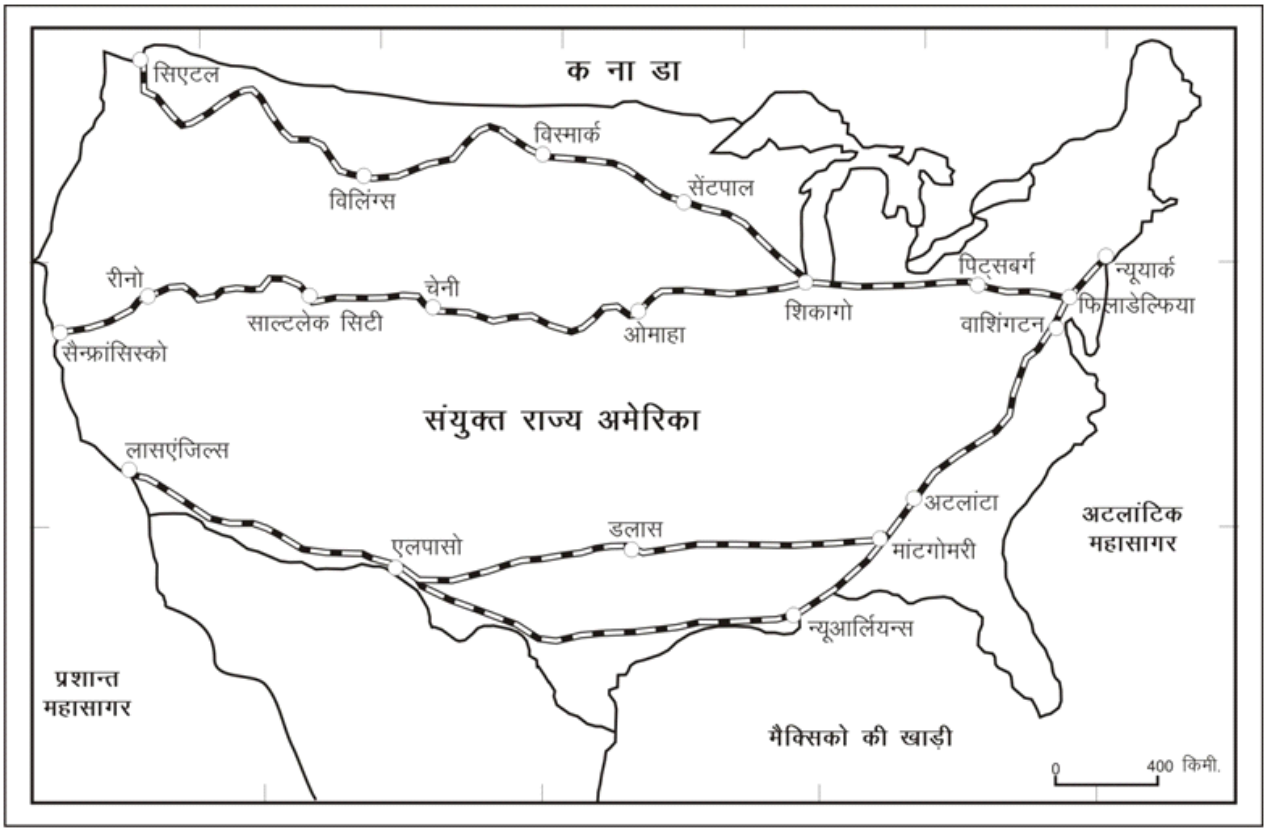

मानचित्र 10.3 : संयुक्त राज्य अमेरिका के अन्तर्महाद्वीपीय रेलमार्ग

यहाँ से आगे बढ़ने पर रॉकी पर्वतमाला की पहाड़ियों की दर्रों तथा सुरंगों से पार करता हुआ यह रेलमार्ग प्रशान्त तटीय पत्तन सिएटल पहुँच जाता है। यह मार्ग संयुक्त राज्य के उत्तरी–पश्चिमी भाग को उत्तरी–पूर्वी औद्योगिक क्षेत्र से जोड़ता है। इस रेलमार्ग पर अनाज (मक्का, गेहूँ) लोह इस्पात, मशीनों, माँस, फल, लकड़ी आदि का परिवहन होता है।

(ब) मध्य अन्तर्महाद्वीपीय रेलमार्ग : यह रेलमार्ग न्यूयार्क नगर को प्रशान्त तटीय प्रसिद्ध बन्दरगाह सैन्फ्रांसिस्कों से जोड़ता है। यह रेलमार्ग शिकागो तक उत्तरी अन्तर्महाद्वीपीय रेलमार्ग के समान है किन्तु शिकागो से इसका पथ अलग हो जाता है। शिकागो से पश्चिम की ओर जाता हुआ यह रेल रेलमार्ग मिसौरी नदी के तट पर स्थित ओमाहा नगर पहुँचता है जहाँ से आगे प्लाट नदी की घाटी में होते हुए पश्चिम के पठारी प्रदेश में प्रवेश करता है जहाँ चेनी नगर मिलता है। इसके पश्चिम में रॉकी पर्वत के इनान्स दर्रे से होते हुआ यह रेलमार्ग साल्ट लेकसिटी पहुँचता है। जहाँ से कैलीफोर्निया की हरी भरी घाटी आरम्भ होती है। पश्चिम में सैन्फ्रामेन्टो नगर होते हुए यह रेलमार्ग प्रशान्त महासागर के तट पर स्थित सैन्फ्रांसिस्कों नगर तक जाकर समाप्त हो जाता है।

(स) दक्षिण अन्तर्महाद्वीपीय रेलमार्ग : यह रेलमार्ग न्यूयार्क से न्यूआर्लियन्स होते हुए प्रशान्त महासागर के तट पर स्थित लासएंजिल्स नगर तक जाता है। यह मार्ग संयुक्त राज्य की प्रमुख औद्योगिक पेटी के मध्य से होकर जाता है जिससे इसका विशिष्ट महत्त्व है। लॉस एंजिल्स नगर फिल्म उद्योग के लिए विश्व प्रसिद्ध है।

(iv) आस्ट्रेलियन अन्तर्महाद्वीपीय रेलमार्ग : यह रेलमार्ग आस्ट्रेलिया महाद्वीप की दक्षिणी सीमा के निकट से होता हुआ पूर्व में सिडनी से दक्षिण–पश्चिम में पर्थ समुद्रपत्तन तक जाता है। इस सम्पूर्ण रेलमार्ग में कई भागों में रेलमार्ग की चौड़ाई (गेज) में भिन्नता पाई जाती है।

आस्ट्रेलिया के पूर्वी तट पर स्थित प्रमुख बन्दरगाह सिडनी से प्रारम्भ होकर यह रेलमार्ग ग्रेट डिवाइडिंग रेज को पार करके डार्लिंग नदी के पश्चिम में स्थित ब्रोकन हिल नगर पहुँचता है। यहाँ से दक्षिण–पश्चिम में पीटरबरो और पोर्टपिरी होते हुए पोर्ट आगस्टा पहुँचता है। पश्चिम की ओर अग्रसर यह मार्ग पश्चिमी आस्ट्रेलिया की विश्व प्रसिद्ध स्वर्ण खदानों वाले नगर कालगूर्ली और कूलगार्डी नगरों से होते हुए हिन्द महासागर के तटपर स्थित प्रसिद्ध समुद्रपत्तन पर्थ पहुँचता जाता है (मानचित्र 10.4)।

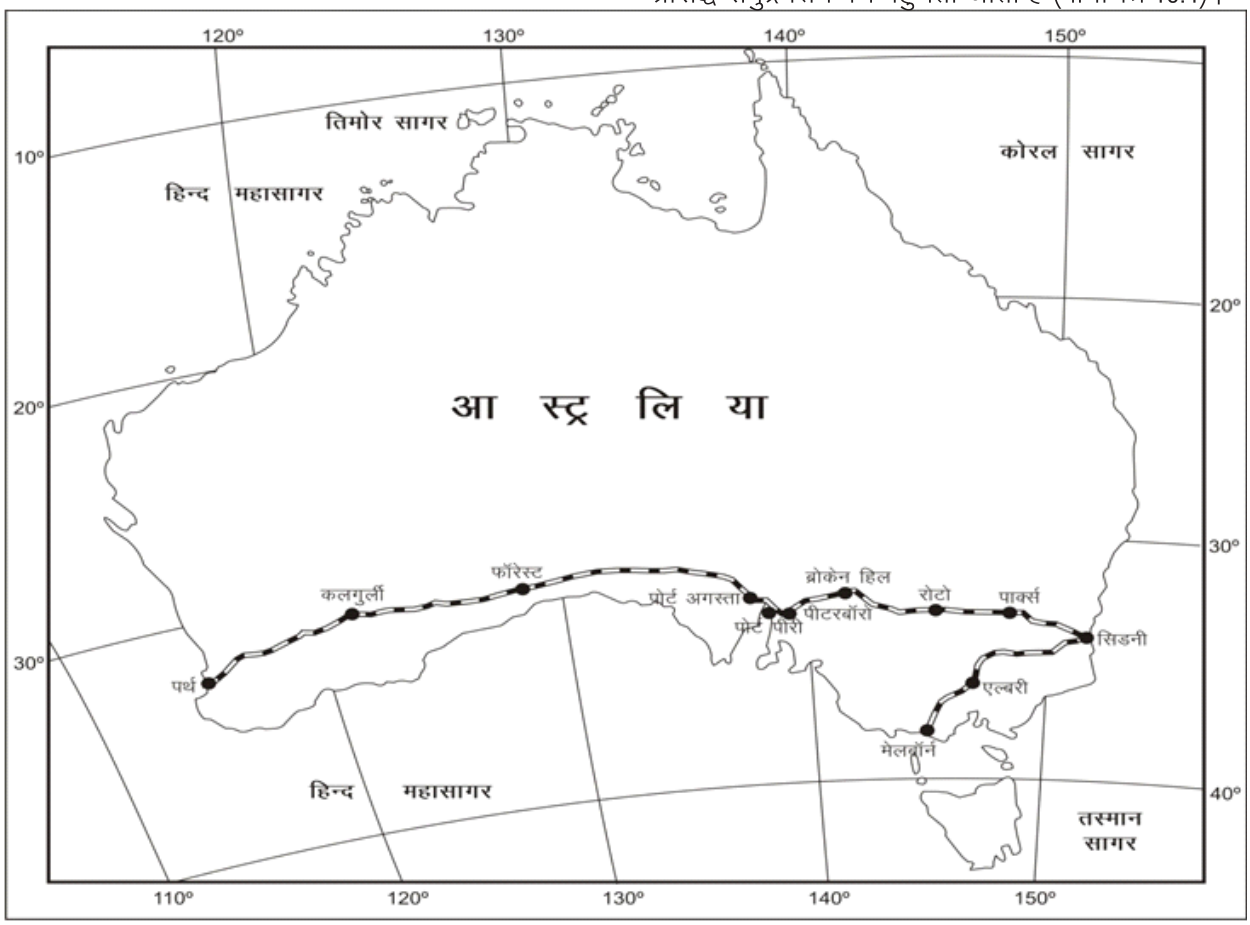

मानचित्र 10.4 : आस्ट्रेलियाई पारमहाद्वीपीय रेलमार्ग

(v) ओरिएंट एक्सप्रेस रेलमार्ग : यह लाइन पेरिस से स्ट्रेस्बर्ग, म्यूनिख, विएना, बुडापेस्ट और बेलग्रेड होती हुई इस्ताम्बूल तक जाती है। इस रेलमार्ग द्वारा होने वाले प्रमुख निर्यात पनीर, सूअर का माँस, जई, शराब, फल और मशीनरी है।

इस्ताम्बूल को बैंकाक तक वाया ईरान, पाकिस्तान, भारत, बाँग्लादेश और म्याँनमार से जोड़ने वाली एशियाई रेलवे के भी निर्माण का प्रस्ताव है।

(vi) केप–काहिरा रेलमार्ग : यह एक प्रस्तावित अन्तर्महाद्वीपीय रेलमार्ग है। इसके अन्तर्गत अफ्रीका के उत्तर–पूर्व में मिश्र में नील नदी के उत्तरी छोर पर स्थित नगर एवं बन्दरगाह काहिरा को दक्षिण अफ्रिका के दक्षिण छोर पर स्थित केपटाउन नगर को रेलमार्ग द्वारा मिलाने की योजना बनाई गई है। इस मार्ग की लम्बाई लगभग 14000 किमी होगी। इसके दक्षिण में जिम्बाबे के नगर बुलवाथों से होते हुए रेलमार्ग दक्षिण अफ्रिका की राजधानी प्रिटोरिया और प्रसिद्ध खनन नगर जोहान्सवर्ग और किम्बरले (स्वर्ण खदान) होते हुए केपटाउन तक जाता है। प्रस्तावित केप–काहिरा रेलमार्ग का उत्तरी (मिस्त्र और सूडान) और दक्षिणी (जिम्बाब्बे और दक्षिण अफ्रिका) भाग ही निर्मित है जबकि मध्यवर्ती भाग रेलमार्ग रहित है। घने वन तथा ऊँचे–नीचे पहाड़ी क्षेत्र होने और अत्यन्त पिछड़े क्षेत्र होने के कारण इस भाग में यातायात के स्थलीय साधन पूर्णतया अविकसित है। प्रस्तावित केपकाहिरा के पूर्ण रूप से तैयार होने पर उत्तर से दक्षिण के अफ्रिकी भू–भाग



मानचित्र 10.5 : केप काहिरा रेलमार्ग



चित्र 10.4 : केप–काहिरा रेलमार्ग (जोहन्सबर्ग में)

परस्पर सम्बद्ध हो जायेंगे और उनके आर्थिक विकास में सहायता मिलेगी।

(iii) जल परिवहन

परिवहन के सभी साधनों में जल परिवहन सामान्यतः सबसे सस्ता तथा सुलभ साधन है। जलमार्ग नदियों, झीलों, नहरों तथा समुद्रों से होकर जाते हैं। जलमार्ग के निर्माण के लिए विशेष धन नहीं व्यय करना पड़ता है, यद्यपि पोताश्रेयों के निर्माण, जल मार्गों को गहरा एवं सुरक्षित रखने आदि पर्याप्त कुछ धन व्यय होता है। नौकाएँ, स्टीमर, जलपोल (जलयान) आदि जल परिवहन के प्रमुख साधन है। सामान्यतः सस्ते और भारी पदार्थ, कोयला, लौह अयस्क, लौहा इस्पात, सीमेन्ट, अनाज आदि को ढोने के लिए जलयानों का प्रयोग किया जाता है। नदियों तथा झीलों में जल की गहराई और मात्रा के अनुसार नौकाएँ तथा छोटे–बड़े जलपोत भी चलते हैं। जल परिवहन को दो वर्गों में विभक्त किया जाता है– (अ) आन्तरिक जलमार्ग, (ब) समुद्री या महासागरीय जलमार्ग।



चित्र 10.5 : यूरोप के आधुनिक बन्दरगाह



चित्र 10.5 : राईन जलमार्ग से गुजरता पोत

(अ) आन्तरिक जलमार्ग : यह महाद्वीपीय या स्थलीय भागों में स्थित नदियों तथा झीलों से होकर जाता है। इसके लिए वे नदियाँ और झीलें उपयुक्त होती है जिनमें पर्याप्त जल और गहराई के साथ ही ढाल कम पाया जाता है। नदियों में रेत आदि के निक्षेप भी जल परिवहन में बाधा उत्पन्न करते हैं जो नदियाँ या झीलें शुष्क ऋतु में सूख जाती है अथवा शीत ऋतु में जम जाती है, उनमें केवल मौसमी परिवहन ही सम्भव हो पाता है। विश्व में जिन भागों में पर्याप्त जल प्रवाह वाली बड़ी–बड़ी नदियाँ पायी जाती है, उनका उपयोग जल परिवहन के लिए किया जाता है। विश्व के प्रमुख आन्तरिक जलमार्गों का विवरण इस प्रकार है।

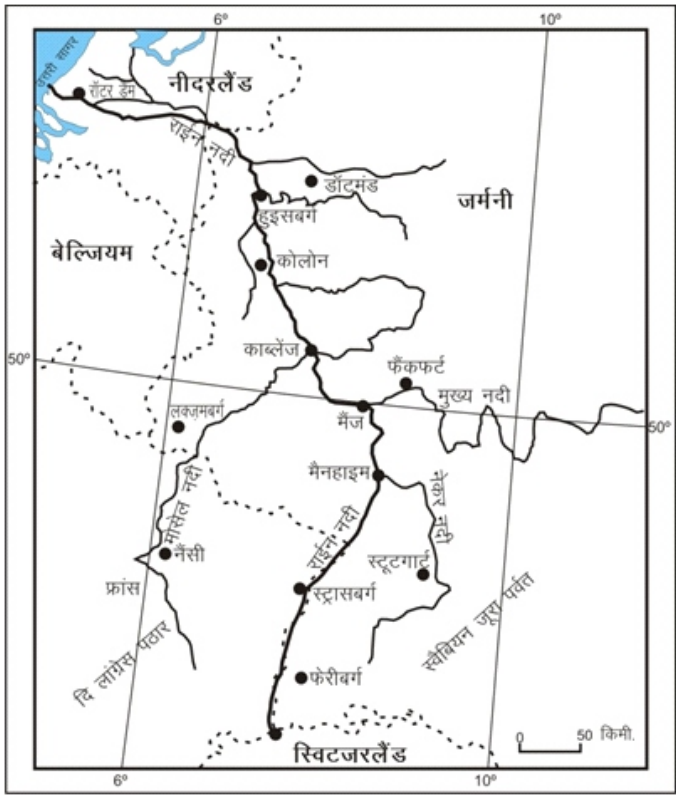

मानचित्र 10.6 : राईन जलमार्ग

(i) यूरोप के आंतरिक जलमार्ग : आन्तरिक जल मार्गों की दृष्टि से यूरोप की स्थिति उत्तम है। उत्तर–पश्चिम में अटलांटिक महासागर और दक्षिण में भूमध्य सागर में गिरने वाली नदियाँ यूरोपीय देशों को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की सुविधा प्रदान करती है। उत्तर की ओर प्रवाहित होने वाली राइन, सीन और पो नदियों, दक्षिण की ओर बहने वाली डेन्यूब, डोन, नीपर तथा नीस्टर नदियों और कैस्पियन सागर में गिरने वाली वोल्गा नदी के निचले भागों का प्रयोग जल परिवहन के लिए किया जाता है। पश्चिमी यूरोपीय कुछ देशों (जर्मनी, फ्रांस आदि) में जल परिवहन के लिए नहरों का भी निर्माण किया गया है। राईन नदी जर्मनी और नीदरलैण्ड से होकर प्रवाहित होती है। रूर नदी पूर्व में राईन में मिलती है जो सम्पन्न कोयला क्षेत्र से प्रवाहित होती है। यह जलमार्ग विश्व का अत्यधिक प्रयोग में लाया जाने वाला जलमार्ग है (मानचित्र 10.6)।

(ii) उत्तरी अमेरिका के आन्तरिक जलमार्ग : संयुक्त राज्य अमेरिका और कनाडा के मध्य स्थित महान झीलों में जल परिवहन की पूर्ण सुविधा है। सुपीरियर, मिशिगन, हारून और इरी झील से होकर सेन्टलोरेंस नदी के मुहाने तक जलपोतों के आने–जाने की सुविधा से यह एक प्रमुख व्यापारिक मार्ग है। मिसीसिपी, मिसौरी और ओहियो नदियाँ भी नौगम्य है जो कई औद्योगिक नगरों को जोड़ती हैं। कनाडा में महान झील मार्ग के अतिरिक्त सस्केचान, मैकेन्जी और ओटावा नदियों में भी जल परिवहन होता है किन्तु शीत ऋतु में हिमाच्छादन से इसमें अवरोध उपस्थित होता है।

(iii) एशिया के आन्तरिक जल मार्ग : चीन में हवांगहो नदी अपने मुहाने से लगभग 200 किमी ऊपर तक नौगम्य है। याँगटिसीक्याँग नदी भी मुहाने पर स्थित शंघाई नगर से लेकर क्यूकियाँग तक नौका जाने योग्य है। दक्षिणी भाग में प्रवाहित होने वाली सीक्याँग नदी अपेक्षाकृत अधिक नौगम्य है। दक्षिण–पूर्वी एशिया में ईरावदी, मीनाम, सीक्याँग आदि नदियाँ मुहाने से थोड़ी दूरी तक ही नौगम्य है जिनका व्यापारिक महत्त्व बहुत कम है।

(iv) दक्षिणी अमेरिका के आन्तरिक जलमार्ग : उत्तरी भारत में पश्चिम से पूर्व की ओर प्रवाहित होने वाली विशाल नदी आमेजन अपनी सहायक नदियों सहित लगभग 30,000 किमी लम्बा जलमार्ग प्रदान करती है। दक्षिणी ब्राजील, अर्जेन्टाइना और यूरूग्वे को पराना, पराग्वे तथा प्लाटा नदियों के जलमार्ग की सुविधा है जहाँ मुहाने से लगभग 1500 किमी अन्दर तक जल पोत सुगमता से पहुँच जाते हैं।

(v) अफ्रीका के आन्तरिक जलमार्ग : अफ्रीका में नील, काँगो, नाइजर आदि कई बड़ी नदियाँ है। यद्यपि नील नदी केवल मुहाना

प्रदेश में ही नौगम्य है किन्तु नाइजर और काँगो नदियों के मुहाने से लेकर लगभग 1100 किमी भीतरी भाग तक जल परिवहन की सुविधा है।

(vi) आस्ट्रेलिया में केवल मर्रे तथा डार्लिंग नदियों के मुहाने से लगभग 1500 किमी अन्दर तक जलपोत पहुँच सकते हैं। अन्य नदियाँ नौगम्य नहीं है।

(ब) महासागरीय जलमार्ग

महासागर सभी दिशाओं में मुड़ सकने वाले ऐसे महामार्ग प्रस्तुत करते हैं जिनको रख–रखाव की लागत नहीं होती। एक महाद्वीप से दूसरे महाद्वीप तक स्थूल पदार्थों का लम्बी दूरियों तक समुद्री परिवहन स्थल और वायु परिवहन की अपेक्षा सस्ता पड़ता है। विश्व के प्रमुख महासागरीय जल मार्गों का संक्षिप्त जानकारी इस प्रकार है–

(i) उत्तरी अटलांटिक समुद्री मार्ग : यह विश्व का सबसे व्यस्ततम समुद्री जलमार्ग है। सर्वाधिक प्रयोग में आने वाला यह जलमार्ग पश्चिम यूरोपीय देशों और उत्तरी अमेरिका (यू.एस.ए. व कनाड़ा) को जोड़ता है। विश्व के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का लगभग एक चौथाई भाग इस मार्ग द्वारा परिवहित होता है। इस समुद्री मार्ग पर विश्व के 25 प्रतिशत समुद्री जहाज चलते हैं। विश्व के 50 वृहत् समुद्री पत्तनों में से 30 इसी मार्ग पर स्थित है।

(ii) भू–मध्य सागर एवं हिन्द महासागर जलमार्ग : यह संसार का सबसे लम्बा व्यापारिक मार्ग है। यह संसार के मध्य भाग से होकर जाता है। संसार के सबसे बड़े थल भाग तथा संसार की अधिकतम जनसंख्या की सेवा करता है। यह रेलमार्ग विश्व की लगभग 75 प्रतिशत जनसंख्या की सेवा करता है। यह समुद्री मार्ग प्राचीन विश्व के 'हृदय स्थल' कहे जाने क्षेत्र से गुजरता है। पश्चिमी यूरोप के औद्योगिक देशों को भूमध्य सागर, लालसागर एवं हिन्दमहासागर से होकर पूर्वी अफ्रीका, दक्षिण एशिया एवं आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड की वाणिज्यिक कृषि तथा पशुपालन आधारित अर्थव्यवस्थाओं से जोड़ता है। स्वेज नहर के निर्माण से पहले यह मार्ग लिवरपुल और कोलम्बो को जोड़ता था, जो स्वेज नहर मार्ग से 6400 किमी लम्बा था। सोना, हीरा, ताम्बा, टीन, मूँगफली, चाय, कपास, कहवा, रबड़, शक्कर, फलों जैसे समृद्ध प्राकृतिक संसाधनों के कारण पूर्वी और पश्चिमी अफ्रीका के बीच

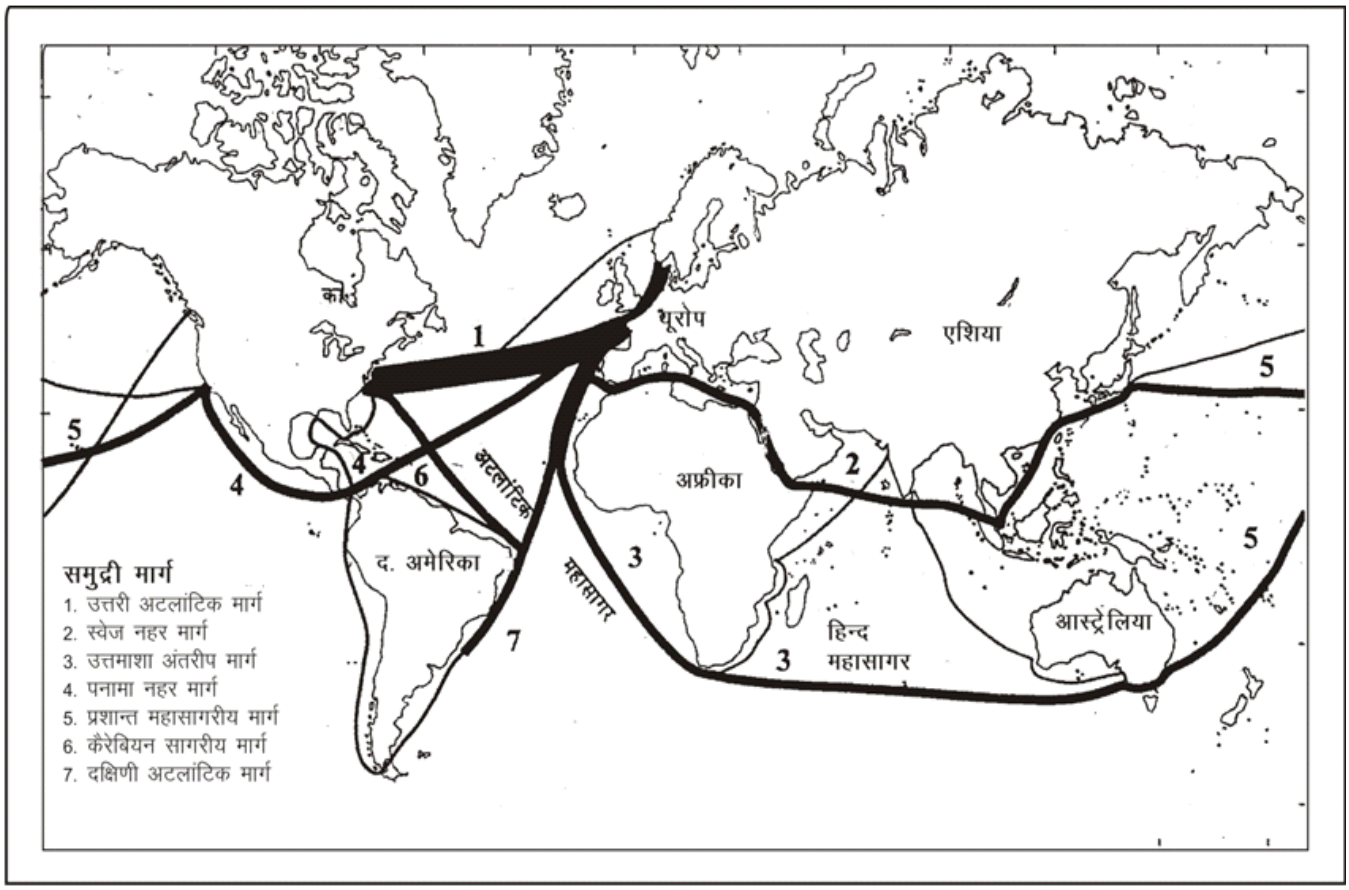

मानचित्र 10.7 : विश्व के प्रमुख समुद्री मार्ग

व्यापार की मात्रा और यातायात में वृद्धि हो रही है। पोर्ट सईद अदन, मुम्बई, कोचीन, कोलम्बो, एडिलेड आदि पत्तन इस जलमार्ग पर स्थित है।

(iii) उत्तमाशा अन्तरीप मार्ग : अटलांटिक महासागर के पार यह एक महत्त्वपूर्ण समुद्री मार्ग है। यह पश्चिमी यूरोपीय और पश्चिमी अफ्रीकी देशों व दक्षिण अमेरिका में ब्राजील, अर्जेन्टाइना और उरूग्वे से मिलाता है। इस मार्ग पर यातायात उत्तरी अटलांटिक मार्ग की तुलना में दक्षिण अमेरिका और अफ्रीका के सीमित विकास और कम जनसंख्या के कारण बहुत कम है। पश्चिमी यूरोप के जहाज केप वर्डे द्वीपों के समीप होते हुए वृहत्–वृत्त द्वारा अफ्रीका के दक्षिण में केप ऑफ गुडहोप पहुँचते हैं। यहाँ केपटाउन बन्दरगाह है। यहाँ से इण्डोनेशिया जाने वाले जहाज वृहत–वृत मार्ग में आते हैं। केपटाउन से आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड का मार्ग वृहत्–वृत् से कुछ उत्तर में है, ताकि जहाजों के मार्ग में तूफान ओर हिमखण्ड न आए। मार्ग में जहाजों के ईंधन लेने के बन्दरगाह केपटाउन, पोर्ट एलिजाबेथ, एडिलेड, मेलबोर्न, सिडनी आदि है।

(iv) दक्षिणी अटलांटिक मार्ग : रियो–डी–जेनेरो से जलयान केपटाउन होते हुए पूर्वी अफ्रीका, एशिया और आस्ट्रेलिया जाते हैं। दक्षिण अमेरिका में (a) आमेजन बेसिन जैसे विस्तृत सघन वन है, (ii) ब्राजील के पठार और पेटागोनिया जैसे विस्तृत चारागाह है, (iii) पम्पास जैसे उपजाऊ कृषि प्रदेश है और (iv) एण्डीज जैसे खनिज भण्डारों के प्रदेश है। दक्षिणी अमेरिका के पूर्वी तट पर रियो–डी–जेनेरो, सैन्टोस, मान्टीविडियो, ब्यूनस–आयर्स, वाहिया ब्लाँका, आदि प्रमुख बन्दरगाहों से गूहँ, मक्का, ऊन, चमड़ा, माँस, कहवा, कपास, तम्बाकू, चीनी, मशीनें, लौह इस्पात खनिजों आदि का निर्यात होता है।

(v) खाड़ी कैरीबियन सागरीय मार्ग : कैरेबियन सागर के तटवर्ती देशों कोलम्बिया, वेनेजुएला, ट्रिनिडाड, गायना, सूरीनाम, पश्चिमी द्वीप समूह, मैक्सिको की खाड़ी तटीय देशों, मैक्सिको और संयुक्त राज्य अमेरिका के मध्य इस मार्ग से वस्तुओं का आदान–प्रदान होता है। यह लघु दूरी का समुद्री मार्ग है जो मैक्सिकों की खाड़ी तथा कैरीबियन सागर तटीय बन्दरगाहों को संयुक्त करता है। यह मार्ग पनामा नहर द्वारा उत्तरी और दक्षिणी अमेरिकी के बन्दरगाहों से मुख्यतः चीनी, कोको, नारियल, कहवा, केला, सब्जियाँ, कठोर लकड़ियाँ, पेट्रोलियम, गंधक, लौह अयस्क, बॉक्साइड आदि निर्यात किया जाता है।

(vi) प्रशान्त महासागरीय मार्ग : प्रशान्त महासागर सबसे बड़ा महासागर है। यह पृथ्वी तल के लगभग 12 प्रतिशत क्षेत्र पर फैला हुआ है फिर भी इसमें व्यापारिक परिवहन की मात्रा बहुत कम है। इसके दो कारण है– (a). संसार के मुख्य औद्योगिक प्रदेश, यूरोप तथा अमेरिकी अटलांटिक तटों पर है। (b) प्रशान्त महासागर में कोई ऐसा द्वीप नहीं है जिसका व्यापारिक महत्त्व है। इसके साथ ही पश्चिम भाग में जापान को छोड़कर कोई उद्योग प्रधान विकसित देश नहीं है और पूर्वी भाग में भी संयुक्त राज्य तथा कनाडा के अतिरिक्त अन्य सभी विकासशील देश है। मुख्य जलमार्ग उत्तरी प्रशान्त महासागर के मध्य स्थित हवाई द्वीप के होनूलुलू (हवाईद्वीप) पत्तन से होकर जाता है। पश्चिमी और उत्तरी अमेरिका के जलयान पनामा को पार करके सीधे होनूलूलू पहुँचते हैं। यहाँ से यह जल मार्ग मुख्यतः दो जल मार्गों में बट जाता है (i) उत्तरी मार्ग जो जापान, चीन, फिलिपिन्स और हिन्देशिया को जाता है (ii) दक्षिणी मार्ग जिस पर चलकर जलयान आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड को जाते है। उत्तरी अमेरिका के बन्दरगाह लॉस एजिल्स, सेन फ्रांसिस्को, सिएटल, पोर्टलैण्ड, बैंकूवर और प्रिंस रूपर्ट है।

(vii) स्वेज नहर मार्ग : स्वेज नहर मिस्र में भूमध्य सागर और लाल सागर को मिलाने के लिए बनाया गया एक कृत्रिम जलमार्ग है। यह योजना 1859 में अलेग्जेण्ड्रिया में स्थित फ्रांसिसी दूतावास के इंजीनियम फर्डिनेण्ड– डी–लेसेप्स के निर्देशन में आरम्भ हुई। नहर का उद्घाटन 1869 में हुआ। इस नहर की लम्बाई 162 किमी. है। औसत चौड़ाई 60 मीटर और गहराई 10 मीटर है। 1956 में इसका मिस्र सरकार ने राष्ट्रीयकरण कर लिया था। 1967 में संयुक्त राष्ट्र संघ (U.N.O.) ने इस राष्ट्रीयकरण को सहमति प्रदान कर दी थी। इस नहर में प्रतिदिन लगभग 100 जलयान आवागमन करते हैं। यह यूरोप को हिन्द महासागर में एक नवीन प्रवेश मार्ग प्रदान करता है। लिवरपूल एवं कोलम्बो के बीच प्रत्यक्ष समुद्री मार्ग की दूरी को उत्तमाशा अन्तरीप मार्ग की तुलना में लगभग 1600 किमी दूरी की बचत होती है। इस नहर के सहारे एक रेलमार्ग स्वेज तक जाता है और फिर इस्माइलिया से एक शाखा काहिरा जाती है। नील नदी से नौगम्य ताजा पानी की नहर भी स्वेज नहर से इस्माइलिया में मिलती है।

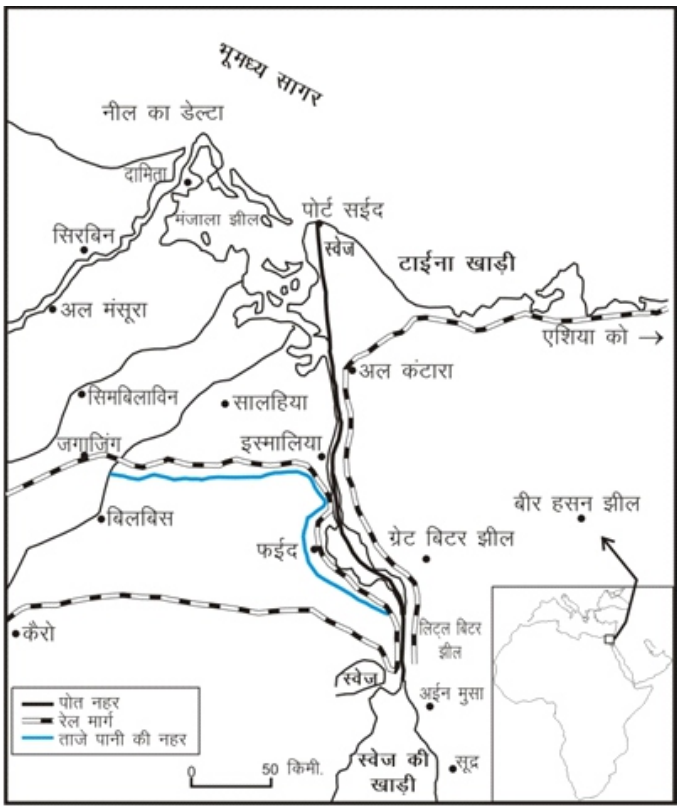

मानचित्र 10.8 : स्वेज नगर

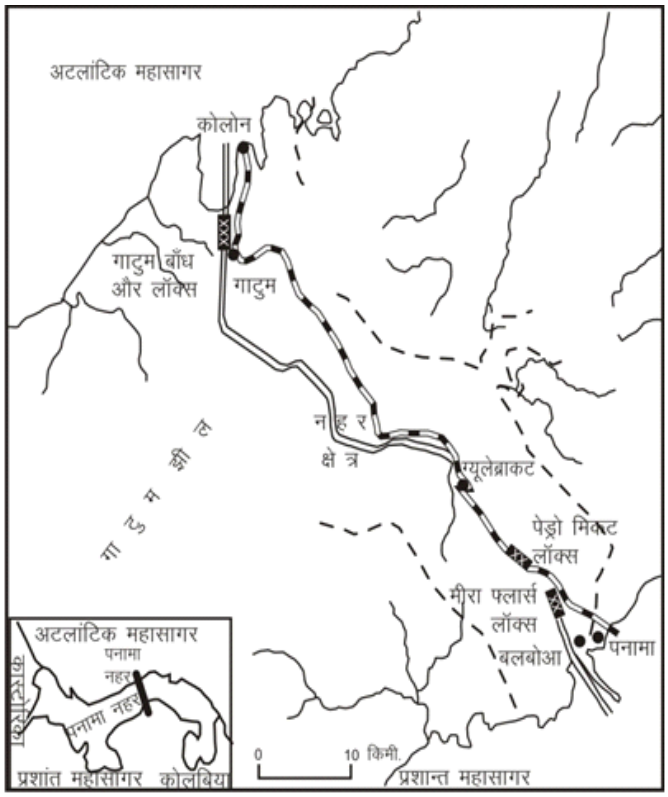

मानचित्र 10.9 : पनामा नगर

इसके निर्माण से पूर्वी देशों और यूरोप तथा पश्चिमी देशों के मध्य व्यापारिक महत्त्व बढ़ने से वस्तुएँ सस्ती हुई और व्यापार में वृद्धि हुई। इस नहर से विश्व का सबसे लम्बा समुद्री मार्ग जो अटलांटिक महासागर से लेकर भूमध्यसागर और स्वेज नहर से होता हुआ हिन्द महासागर के उत्तरी पूर्वी भाग तक जाता है। इसे पश्चिमी यूरोप–भूमध्य सागर–हिन्द महासागर मार्ग के नाम से भी जाना जाता है। उत्तरी अमेरिकी तथा यूरोप से एशियाई देशों (सउदी अरब, ईराक, ईरान, पाक, भारत, श्रीलंका, म्याँनमार, थाईलेण्ड, सिंगापुर, इण्डोनेशिया, चीन, जापान आदि) तक जलयान इसी मार्ग से गुजरते हैं।

(viii) पनामा नहर : यह नहर पूर्व में अन्ध महासागर को पश्चिम में प्रशान्त महासागर से जोड़ती है। उत्तरी अमेरिका और दक्षिणी अमेरिक के मध्य निर्मित पनामा नहर का उद्घाटन 15 अगस्त 1914 को हुआ था। यद्यपि नहर का विचार तो 16वीं शताब्दी में आरम्भ हुआ था, पर नहर को बनाने की योजना के क्रियान्वयन में बहुत से वर्ष लगे। इसका मुख्य कारण यह था कि पनामा थल संयोजक की भूमि पर्वतीय थी और उसकी बाधाओं को दूर करने के लिए नहर में कई स्थानों पर लॉक्स बनाने पड़े थे। इसका निर्माण पनामा जलडमरूमध्य के आर–पार पनामा नहर एवं कोलोन के बीच संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा किया गया, जिसमें दोनों ही ओर से 8 किमी क्षेत्र को खरीद कर इसे नहर मण्डल का नाम दिया है। इस नहर पर 85 वर्षों तक संयुक्त राज्य अमेरिका का अधिकार रहा। 1 जनवरी 2000 से इस पर पनामा नगर का नियन्त्रण स्थापित हो गया है। पनामा नहर 82 किमी लम्बी और 12 किमी लम्बी अत्यधिक गहरी कटान से युक्त है। इसकी न्यूनतम गहराई 12 मीटर व चौड़ाई 90 मीटर है। नहर का सबसे बड़ा समुद्री भाग समुद्र तल से 26 मीटर ऊँचा है। इस नहर में कुछ छः जलबंधक तंत्र से प्रवेश करते हुए तीन लॉक प्रणाली है– (a) गातून लॉक्स एटलांटिक सिरे पर, (b) पैडरोमिकट लॉक्स मध्य में और, (c) मीरा फ्लार्स लॉक्स प्रशांत सिरे पर है। इन लॉक्स के द्वारा जहाज पर्वतीय भूमि को पार कर लेते हैं। इस नहर से होकर जाने पर न्यूयार्क और सैनफ्रान्सिसको के मध्य की दूरी हार्न अंतरीय की तुलना में लगभग 13000 किमी कम हो गयी है। न्यूआर्लियन्स से सैन्फ्रासिस्को की दूरी में लगभग 9000 किमी, न्यूयार्क से सिडनी में लगभग 6500 किमी. इसी प्रकार न्यूयार्क से बालपराइजों (चीली) जाने में लगभग 6000 किमी की बचत होती है। इस नहर का आर्थिक महत्त्व स्वेज नहर की अपेक्षा कम है। फिर भी दक्षिण अमेरिका की अर्थव्यवस्था में इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

वायु परिवहन

संसार में वायु परिवहन का विकास प्रथम विश्व युद्ध

(1914–19) के बाद से हुआ है। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से वायु या हवाई परिवहन का प्रचलन बहुत बढ़ गया है। वर्तमान युग को हवाई युग भी कहा जाता है। आजकल अत्यन्त तीव्र गति से चलने वाले वायुयान आकाशी यातायात के लिए प्रयुक्त होने लगे हैं। परिवहन की दृष्टि से यह सबसे तीव्र किन्तु सबसे महँगा साधन है। यही कारण है कि वायुयानों द्वारा सामान्यतः हल्की, कीमती तथा शीघ्र नष्ट होने वाली वस्तुओं को ही भेजा जाता है। वायु यातायात सस्ती तथा भारी वस्तुओं के परिवहन के लिए उपयुक्त नहीं है। ऐसे पहाड़ी क्षेत्रों या अन्य दुर्गम क्षेत्रों में जहाँ जल परिवहन अथवा थल परिवहन संभव नहीं होता है, वहाँ भी छोटे वायुयानों या हैलीकॉप्टरों द्वारा यात्रियों तथा सामानों को पहुँचाया जा सकता है। प्राकृतिक आपदाओं जैसे बाढ़, भूकम्प, युद्ध आदि में राहत कार्य के लिए वायु परिवहन सर्वाधिक उपयोगी सिद्ध होता है। पर्वतों, हिमक्षेत्रों अथवा विषम मरूस्थलीय भू–भागों हिमालय में भू–स्खलन अथवा भारी हिमपात के कारण प्रायः मार्ग अवरूद्ध हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में वायुयान ही एक मात्र विकल्प है।

वायुयानों के निर्माण तथा उनकी कार्य प्रणाली के लिए अत्यन्त विकसित अवस्थापनात्मक सुविधाओं जैसे– विमान शाला, हवाई अड्डे, हवाई पट्टी, भूमि पर उतरने, ईंधन तथा रख–रखाव की सुविधाओं की आवश्यकता होती है। हवाई अड्डों का निर्माण अत्यधिक खर्चीला है। विश्व के अनेक भागों में नित्यवायु सेवाएँ उपलब्ध है। यद्यपि ब्रिटेन का वाणिज्यिक वायु परिवहन का प्रयोग अनुकरणीय है। संयुक्त राज्य अमेरिका ने मुख्य रूप से युद्धोत्तर अन्तर्राष्ट्रीय नागरिक उड्डयन का विकास किया है। आज 250 से अधिक वाणिज्यिक एयरलाइनों द्वारा विश्व के विभिन्न भागों में नियमित सेवाएँ प्रदान की जा रही है। सुपरसोनिक वायुयान लन्दन और न्यूयार्क के बीच की दूरी का साढ़े तीन घंटों में तय कर लेता है।

अन्तर महाद्वीपीय वायुमार्ग

उत्तरी गोलार्द्ध में अन्तर महाद्वीपीय वायुमार्गों की एक सुस्पष्ट पूर्व–पश्चिम पट्टी है। पूर्वी संयुक्त राज्य अमेरिका पश्चिमी यूरोप और दक्षिण–पूर्वी एशिया में वायुमार्गों का सघन जाल पाया जाता है। विश्व में कुल वायुमार्गों के 60 प्रतिशत भाग का प्रयोग अकेला संयुक्त राज्य अमेरिका करता है। न्यूयार्क, लन्दन, पेरिस, एमस्टर्डम और शिकागो केन्द्रीय बिन्दु है जहाँ से वायुमार्ग अभिसरित होते हैं अथवा सभी महाद्वीपों की ओर विकिरित होते हैं।

अफ्रीका, रूस के एशियाई भाग और दक्षिण अमेरिका में वायु सेवाओं का अभाव है। दक्षिण गोलार्द्ध में 10 स 35° अक्षाशों के मध्य अपेक्षाकृत विरल जनसंख्या, सीमित स्थलबद्ध और कम आर्थिक विकास के कारण सीमित वायु सेवाएँ उपलब्ध है (मानचित्र 10.10)।

वायुमार्गों के प्रकार

संसार में वायुमार्ग छः प्रकार के हैं–

(1) अन्तर्महाद्वीपीय ग्लोबीय वायुमार्ग : सबसे लम्बी यात्राओं के मार्ग है जैसे (i) न्यूयार्क–लंदन–पेरिस–रोम –काहिरा–दिल्ली–मुम्बई–कोलकात्ता–हाँगकाँग–टोकियो वायुमार्ग। यह सबसे लम्बा वायुमार्ग है। (ii) न्यूयार्क–सेन फ्रांसिस्कों–होनोलुलू–हाँगकाँग–एडिलेड–पर्थ मार्ग जो प्रशान्त महासागर को पार करता है।

(2) महाद्वीपीय वायुमार्ग : एक ही महाद्वीप के विभिन्न देशों के बीच वायुमार्ग जैसे (i) न्यूयार्क–शिकागो–मॉंट्रियल मार्ग, (ii) लंदन–पेरिस–फ्रेंकफर्ट–प्राग–वारसा मार्ग, (iii) लंदन–फ्रेंकफर्ट–वारसा–मास्को–वायुमार्ग, (iv) दिल्ली–कोलकाता–हाँगकाँग–टोकिया मार्ग।

(3) राष्ट्रीय वायुमार्ग : किसी भी देश के अन्दर दूरी की यात्राओं को तय करने के लिए जैसे (i) न्यूयार्क–शिकागो–सेनफ्रांसिस्को मार्ग, (ii) लेनिनग्राद–मास्को (iii) दिल्ली– कानपुर–पटना–कोलकाता मार्ग।

(4) प्रादेशिक वायुमार्ग : किसी प्रदेश के अन्दर छोटी–छोटी यात्राओं को भी समय की बचत के लिए वायुयान द्वारा किया जाता है। धनी देशों में जैसे स.रा. अमेरिका, पूर्व सोवियत संघ, जर्मनी, ब्रिटेन, जापान, कनाडा, आस्ट्रेलिया, आदि ने ऐसे प्रादेशिक वायुमार्गों का विकास हुआ है जो अधिकाधिक वृद्धि पर है।

(5) स्थानीय वायुयान : स्थानीय वायु यात्राएँ प्रायः हेलीकॉप्टरों के द्वारा की जाती है।

(6) सैनिक, युद्ध, कूटनीतिक तथा राजनीतिक महत्त्व की वायु यात्राओं के लिए सभी राष्ट्राध्यक्षों, प्रशासनिक वर्गों की विभिन्न यात्राएँ विभिन्न प्रकार के वायुयानों, हेलीकॉप्टरों आदि के द्वारा वायु यात्राएँ की जाती है।

विश्व में महाद्वीपों के अनुसार प्रमुख हवाई अड्डे इस प्रकार है– उत्तरी अमेरिका में न्यूयार्क, न्यूआर्लियन्स शिकागो, सैनफ्रांसिस्को, लॉस एंजिल्स (स.रा.अ.) मॉंट्रियल, ओटावा (कनाडा) और मैक्सिको सिटी आदि, दक्षिण अमेरिका में–रियो–डी–जेनेरो, व्यूनस आयर्स, सेन्टियागो आदि, यूरोप में– लन्दन, पेरिस, बर्लिन, रोम, मास्को आदि एशिया में टोक्यो, शंघाई, बीजिंग, बैंकॉक, सिंगापुर, जकार्ता, रंगून, कोलकाता, मुम्बई, दिल्ली, चेन्नई, करॉंची, कोलम्बो आदि, अफ्रीका में केपटाउन, अदिस–अबाबा, नैरोबी, काहिरा आदि और आस्ट्रेलिया में सिडनी, मेलबोर्न, पर्थ, कैनबरा आदि।

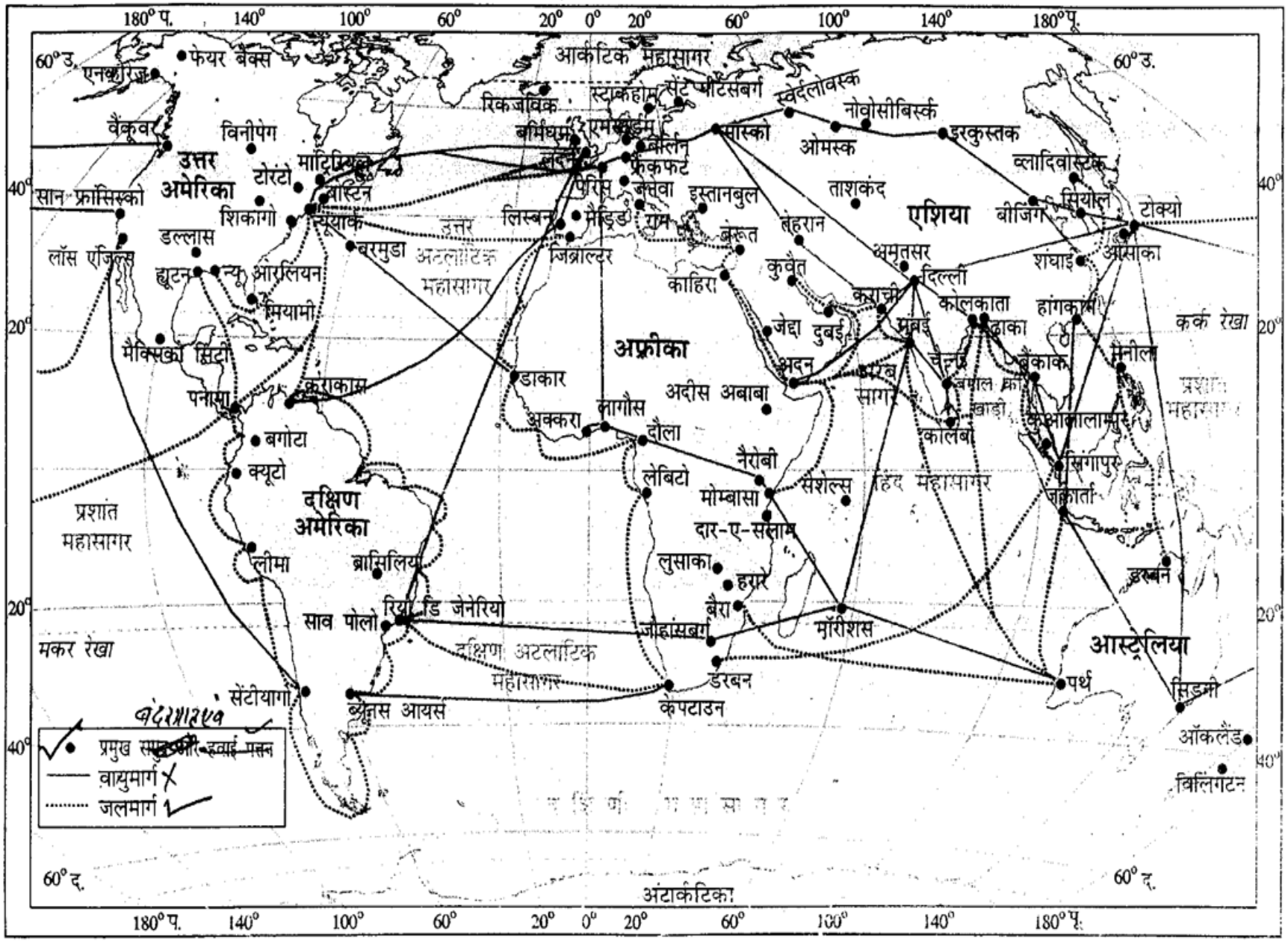

मानचित्र 10.10 : विश्व प्रमुख समुद्र और वायु मार्ग

पाईप लाईन्स परिवहन

पाइप लाइनें परिवहन का आधुनिकतम साधन है। इनके द्वारा अशुद्ध तेल (कच्चा) को परिष्करण शालाओं तक एंव शोधित पेट्रोलियम उत्पादों को उपभोक्ता केन्द्रों तक पहुँचाया जाता है। इसके अतिरिक्त प्राकृतिक गैस का भी परिवहन पाइन लाइनों द्वारा होता है। विश्व में पाइप लाइनों का अधिक घनत्व यूरोप एवं मध्य पूर्व के देशों में पाया जाता है। जल, पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैसे जैसे तरल एवं गैसीय पदार्थों के आबाधित प्रवाह और परिवहन के लिए पाइपलाइनों की आपूर्ति से सभी परिचित है। विश्व के अनेक भागों में रसोई गैस अथवा एल.पी.जी. की आपूर्ति पाइपलाइनों द्वारा की जाती है। न्यूजीलैण्ड में फर्मों से फैक्ट्रियों तक दूध को पाइपलाइनों द्वारा भेजा जाता है।

संयुक्त राज्य अमेरिका में उत्पादक क्षेत्रों और उपभोग क्षेत्रों के बीच तेल पाइपलाइनों का सघन जाल पाया जाता है।

यूरोप, रूस, पश्चिम एशिया और भारत में पाइप लाइनों का प्रयोग तेल के कुओं को तेल परिष्करण शालाओं और पत्तनों अथवा घरेलू बाजारों से जोड़ने के लिए किया जाता है। मध्य एशिया में स्थित तुर्कमेनिस्तान से पाइपलाइन को ईरान और चीन के कुछ भागों तक बढ़ा दिया गया है।

प्रस्तावित गैस पाइपलाईन ईरान–भारत वाया पाकिस्तान अन्तर्राष्ट्रीय तेल और प्राकृतिक गैस पाइपलाईन विश्व में सर्वाधिक लम्बी होगी।

विश्व की प्रमुख पाइपलाइन

(1) बिंग–इंच पाइपलाइन : इस पाइपलाइन द्वारा संयुक्त राज्य अमेरिका में मैक्सिको की खाड़ी के तटीय कुँओं से उत्तर–पूर्वी राज्यों तक पहुँचाया जाता है।

(2) टैप लाइन : यह पाइप लाइन फारस की खाड़ी के पास के कुँओं को सिडान नामक नगर से जोड़ती है। इसकी लम्बाई 1600 किमी. से भी अधिक है।

(3) कॉमेकॉन पाइन लाइन : यह भूतपूर्व सोवियत संघ में स्थित है। इससे वोल्गा तथा यूराल के कुँओं से पूर्वी यूरोप के राष्ट्रों तक तेल पहुँचाया जाता है।

(4) ओ.आई.एल. पाईप लाईन : एशिया की पहली 1157 किमी लम्बी देश पारीय पाइपलाईन (असम के नाहरकटिया तेल क्षेत्र से बरौनी के तेल शोधन कारखाने तक) का निर्माण आई.ओ. एल. ने किया था। इसे 1966 में कानपुर तक विस्तारित किया गया।

(5) एच.वी.जे. पाइपलाइन : पश्चिमी भारत में एक दूसरे विस्तीर्ण पाइपलाइन का महत्त्वपूर्ण नेटवर्क–अंकलेश्वर –कोयली, मुम्बई हाई–कोयली तथा हजीरा–विजयपुरा– जगदीशपुर (HVJ) निर्माण किया गया। हाल ही में 1256 किमी लम्बी एक पाइप लाइन सलाया (गुजरात) से मथुरा (उ.प्र.) तक बनाई गई।

(6) तापी परियोजना (TAPI) : बहुप्रतीक्षित तुर्कमेनिस्तान, अफगानिस्तान, पाकिस्तान, भारत (तापी), गैस पाइप लाइन परियोजना का शुभारम्भ 3 दिसम्बर 2015 को ऐतिहासिक सिल्क रूट से जुड़े 'मेरी' शहर (तुर्कमेनिस्तान) में किया गया। इसके 2019 तक पूर्ण होने की संभावना है जो 1814 किमी. लम्बी होगी। यह गलकीनाइश (तुर्कमेस्तिान) क्षेत्र से कंधार (अफगानिस्तान–774 किमी.) व मुल्तान (पाकिस्तान–826 किमी.) होते हुए फाजिल्का (भारत) पहुँचेगी।

संचार (Network)

मानव ने कालान्तर में संचार के विभिन्न माध्यम विकसित किए हैं। आरम्भिक समय में लोग ढोल या पारम्परिक वाद्य यंत्रों को बजाकर, आग या धुएँ के संकेतों द्वारा संदेश पहुँचाते थे। उस समय घोड़े, ऊँट, कुत्ते, पक्षी तथा अन्य पशुओं को भी संदेश पहुँचाने के लिए उपयोग किया जाता था। बाद में मानव ने लम्बी दूरियों के संचार हेतु अनेक विधियों का प्रयोग किया जिनमें से टेलीग्राफ और टेलीफोन महत्त्वपूर्ण थे। टेलीग्राफ पश्चिम में अमेरिका के उपनिवेशवाद का साधन बना। टेलीफोन और टेलीग्राफ कम्पनी का स.रा.अ. के टेलीफोन उद्योग पर एकाधिकार था। आज भी टेलीफोन विश्व में सर्वाधिक मोबाइल के बाद प्रयोग की जाने वाली वस्तु है। डाकघर, प्रिटिंग प्रेस, दूरभाष, मोबाइल तथा उपग्रहों की खोज ने संसार को बहुत त्वरित एवं आसान बना दिया। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में विकास संचार में क्रांति लाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

आज विकास अद्भूत गति से हो रहा है। पहला प्रमुख परिवर्तन ऑप्टिक फाइबर तारों का प्रयोग है। बढ़ती प्रतिस्पर्धा का सामना करती कम्पनियों ने पूरे विश्व में ऑप्टिक तारों को समाविष्ट करने के लिए अपनी तांबे की तारों वाली प्रणालियों को उन्नत किया। 1990 के दशक में सूचनाओं के अंकीकरण के साथ दूरसंचार का धीरे–धीरे कम्प्यूटर के साथ विलय हो गया। परिणामस्वरूप एक समन्वित नेटवर्क बना जिसे 'इन्टरनेट' के नाम से जाना जाता है।

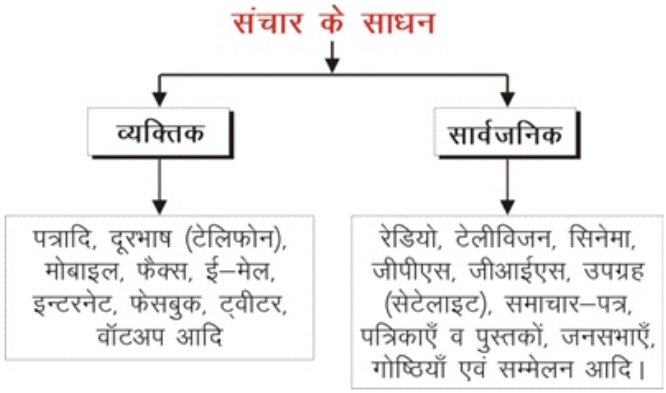

उपग्रह संचार

1970 से जब सं.रा.अ. एवं पूर्व सोवियत संघ (रूस) के द्वारा अंतरिक्ष विज्ञान के क्षेत्र में अग्रणी शोध किया, तब से उपग्रह के माध्यम से होने वाले संचार ने संचार तकनीकी के क्षेत्र में, एक नवीन युग का आरम्भ किया है। पृथ्वी की कक्षा में कृत्रिम उपग्रहों के सफलतापूर्वक प्रेक्षण के कारण अब ग्लोब के उन दूरस्थ भागों को जोड़ा गया है, जिसका यथास्थान सत्यापन सीमित था। इस तकनीकी के प्रयोग द्वारा दूरी के सन्दर्भ में लगने वाले इकाई मूल्य एवं समय में होने वाली वृद्धि को नियन्त्रित कर लिया गया है जिसका तात्पर्य यह है कि 500 किमी की दूरी तक होने वाले संचार में लगने वाली लागत, उपग्रह के द्वारा 5000 किमी की दूरी तक होने वाली संचार लागत के बराबर है।

उपग्रह के विकास के क्षेत्र में भारत ने भी बड़े कदम उठाए है। आर्य भट्ट का 19 अप्रेल 1979 को, भास्कर–1 का 1979 में तथा रोहिणी का प्रक्षेपक 1980 में हुआ। 18 जून 1981 की एप्पल का प्रक्षेपण एरियन रॉकेट के द्वारा हुआ। भास्कर, चैलेंजर तथा इंसेट–1बी, ने लम्बी दूरी के संचार दूरदर्शन तथा रेडियो को अत्यधिक प्रभावी बना दिया है।

साइबर स्पेस इन्टरनेट

साइबर स्पेस विद्युत द्वारा कम्प्यूटरीकृत स्पेस संचार है। यह वर्ल्ड वाइड वेबसाइट (www) जैसे इन्टरनेट द्वारा आवृत है। जिस गति से इलैक्ट्रॉनिक नेटवर्क का विस्तार हुआ है। वह मानव इतिहास में अभूतपूर्व है। इन्टरनेट प्रयोक्ता 1995 में 5 करोड़, 2000 में 40 करोड़, 2005 में 100 करोड़ तथा जून 2016 में लगभग 363 करोड़ प्रयोक्ता जुड़ चुके हैं। विश्व में सर्वाधिक प्रयोक्ता 49.6 प्रतिशत यूरोप, 16.9 प्रतिशत स.रा.अ., 10.70 प्रतिशत लोग एशिया में इन्टरनेट से जुड़ चुके हैं।

वर्तमान में करोड़ों लोग प्रति वर्ष इन्टरनेट का प्रयोग करते हैं। साइबर स्पेस लोगों के समकालीन आर्थिक और सामाजिक कार्यों को ई.मेल. ई. वाणिज्य, ई. शिक्षा और ई. प्रशासन के माध्यम से विस्तृत करेगा। फैक्स, टेलीविजन और रेडिया के साथ इन्टरनेट समय और स्थान की सीमाओं को लांघते हुए अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचेगा। ये आधुनिक संचार प्रणालियाँ है जिन्होंने परिवहन से कहीं ज्यादा वैश्विक ग्राम की संकल्पना को साकार किया है।

जैसे–जैसे तकनीकी का विकास हो रहा है तथा सुरक्षात्मक दृष्टिकोण से इस पर लगाए प्रतिबन्ध समाप्त हो रहे है, निजी व्यावसायिक कम्पनियाँ, शैक्षणिक संस्थान तथा सरकार द्वारा सूचनाओं तथा उपग्रह चित्रों का उपयोग असैनिक क्षेत्रों जैसे नगरीय नियोजन, प्रदूषण नियन्त्रण, वन विनाश (वनोन्मूलन) से प्रभावित क्षेत्रों को ढूँढना तथा सैकड़ों भौतिक प्रतिरूपों एवं प्रक्रमों को पहचानने हेतु किया जा रहा है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दू

1. विश्व के तीव्र विकास के लिए तृतीयक क्रिया कलाप में परिवहन संचार का विकसित होना आवश्यक है। इसके अन्तर्गत सड़क, रेल, वायु, जल परिवहन एवं रज्जु (उड़न खटेला) मार्गों को सम्मिलित किया जाता है।
2. परिवहन : स्थलीय परिवहन को दो वृहत् भागों में विभक्त किया गया है (i) सड़क परिवहन एवं (ii) रेल परिवहन। अन्य में पाईपलाईन परिवहन।
3. सड़क परिवहन : सड़क मार्ग के अन्तर्गत साधारण पगडण्डी से लेकर मोटर गाड़ियों के चलने योग्य पक्की सड़कों को समाहित किया जाता है। विश्व में सर्वाधिक सडकों की लम्बाई संयुक्त राज्य अमेरिका में 65,86,610 किमी. तथा सर्वाधिक एक्सप्रेस हाइवे द. अमेरिका के ब्राजील में 123000 किमी है।
4. विश्व के महामार्ग हाइवे – महामार्ग दूरस्थ स्थानों को जोड़ने वाली पक्की सड़कें है। विश्व के देशों में यह पत्तन नगर और प्रत्येक महानगरों को जोड़ते हैं। अमेरिका में 63 लाख किमी लम्बी सड़के तथा महामार्ग घनत्व भी 0.65 किमी सर्वाधिक है।
5. विश्व के प्रमुख महामार्गों में (i) पेन–अमेरिकन महामार्ग, (ii) ट्रांस–कनाडियन महामार्ग, (iii) अलास्का महामार्ग, (iv) स्टुअर्ट महामार्ग।

6. रेल परिवहन :' रेल इंजन का आविष्कार सर्वप्रथम इंग्लैण्ड में हुआ। रेलों का विकास ब्रिटेन, स.रा. अमेरिका, जापान, रूस, चीन, जर्मनी और भारत में लोकप्रिय है। यूरोप में विश्व का सघनतम रेल घनत्व बेल्जियम में 6.5 वर्ग किमी. क्षेत्र पर 1 किमी पाया जाता है।

7. विश्व के प्रमुख रेल मार्ग : कैनेडियन पैसिफिक, केनेडिनियप नेशनल रेलवे, ट्रॉंस साइबेरियन, संयुक्त राज्य अमेरिका के अन्तर्महाद्वीपीय रेलमार्ग, आस्ट्रेलियन अन्तर्महाद्वीपीय, ओरिएंट एक्सप्रेस है।

8. जल परिवहन : जल परिवहन अधिक दूरी तक भारी माल ढोने का सस्ता साधन है। विश्व में आन्तरिक जलमार्ग महाद्वीपीय या स्थलीय भागों में नदियों या झीलों से होकर जाते हैं।

9. यूरोप के आन्तरिक जलमार्गों में डेन्यूब, डोन, राइन, सीन, नीपर, नीस्टर, वोल्गा नदियों में परिवहन के लिए नहरों का निर्माण किया गया है। (ii) द. व उ. अमेरिका के आन्तरिक जलमार्ग : सुपीरियर, मिशिगन, हारून और इरी झील, मिसीसिपी–मिसौरी, ओहियो नदियों के मुहानें तक व्यापारिक मार्ग है। (iii) एशिया के आन्तरिक मार्ग चीन में हवागहों, याँगटिसीक्याँग, गंगा, ब्रह्मपुत्र, गोदावरी, कृष्णा, महानदी, ईरावदी, सीक्यांग और मींकाग नदियों में नौगम्य परिवहन है। (iv) अफ्रिका व आस्ट्रेलिया के आन्तरिक जलमार्ग – नील, कागो, जायरे, नाइजर व मरे डार्लिग नदियों के मुहानों पर नौगम्य परिवहन है।

10. महासागरीय जलमार्ग : यह एक महाद्वीप से दूसरे महाद्वीप तक स्थूल पदार्थों का लम्बी दूरियों तक समुद्री परिवहन सस्ता पड़ता हैं

11. संसार में वायु परिवहन का विकास (1914–19) के बाद शुरू हुआ। वर्तमान युग के हवाई युग भी कहा जाता है। संसार में 6 प्रकार के वायुमार्ग है।

12. पाईपलाइन परिवहन : इसके द्वारा अशुद्ध तेल को परिष्करण शालाओं तक पहुँचाया जाता है। विश्व पाईप लाइन परिवहन घनत्व यूरोप एवं मध्यपूर्व देशों में पाया जाता है। अन्य कार्यों में जैसे न्यूजीलैण्ड में दुध को फार्मों से फैक्ट्रियों तक भेजा जाता है। गैस पाईपलाईन ईरान, इराक, अमेरिका व चीन, व भारत में है।

13. संचार : मानव ने संचार की क्रान्ति से संसार की दूरियों को तकनीकी आविष्कारों से विश्व में एक अद्भूत विकास से विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

14. इन्टरनेट, टेलीग्राफ, टेलीफोन, उपग्रह, संचार, जीआईएस, जीपीएस, साइबर स्पेस इन्टरनेट www. से ई–शिक्षा, ई–प्रशासन, ई–वाणिज्य, फैक्स टेलीविजन रेडिया के साथ इन्टरनेट समय और स्थान की सीमाओं को लाँघते हुए अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचाया गया है।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न

1. किसी भौतिक माध्यम द्वारा वस्तुओं या व्यक्तियों का किसी स्थान पर स्थानान्तरण का कहते हैं?

(अ) प्रवास (ब) परिवहन

(स) संचार (द) उपर्युक्त सभी

2. विश्व में सर्वाधिक सड़कों की लम्बाई किस देश में है?

(अ) भारत (ब) यू.एस.ए.

(स) जापान (द) चीन

3. सेंट जॉन नगर से बैंकूवर नगर को जोड़ने वाला महामार्ग है?

(अ) पैन–अमेरिकन (ब) ट्रांस कनाडियन

(स) अलास्का महामार्ग (द) स्टुअर्ट महामार्ग

4. भारत का सबसे लम्बा राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या है?

(अ) एन.एच. 7 (ब) एन.एच. 8

(स) एन.एच. 15 (द) एन.एच. 27

5. ''स्वर्णिम चतुर्भुज योजना'' में कितने महानगरों को मिलाया गया है?

(अ) पाँच (ब) दो

(स) चार (द) सात

6. संसार की बसे पहली रेलगाड़ी चलना प्रारम्भ हुआ?

(अ) इग्लैण्ड (ब) भारत

(स) अमेरिका (द) चीन

7. यूरो टनल चैनल जोड़ता है?

(अ) इग्लैण्ड को पेरिस

(ब) लन्दन से पेरिस

(स) ऑकलेण्ड से पेरिस

(द) यूरोप व इग्लिश चेनल

8. विश्व का सबसे लम्बा रेलमार्ग है?
   (अ) कैनेडियन–पैसिफिक मार्ग
   (ब) उत्तरी अन्तर्ममहाद्वीपीय
   (स) ट्राँस–साइबेरियन
   (द) केप–काहिरा

9. विश्व का सबसे व्यस्ततम समुद्री जलमार्ग है?
   (अ) भूमध्य सागर व हिन्द महासागर
   (ब) दक्षिणी अटलांटिक
   (स) प्रशान्त महासागरीय
   (द) उत्तरी अटलांटिक समुग्री

10. ''त्रि– प्रणाली'' किस नहर पर बनाई गई है?
   (अ) स्वेज नहर (ब) पनामा नहर
   (स) सू–नहर (द) राइन नहर

11. संसार में वायुमार्गों के कितने प्रकार है?
   (अ) पाँच (ब) दस
   (स) छः (द) प्रन्दह

12. संसार के साधनों में सार्वनिक संसार में शामिल नहीं है?
   (अ) रेडियो (ब) टेलीविजन
   (स) इन्टरनेट (द) जीपीएस

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

13. परिवहन किसे कहते हैं?
14. विश्व में सर्वाधिक सड़कों की लम्बाई किस देश की हैं?
15. ट्रांस कनाडियन महामार्ग किन दो नगरों को जोड़ता हैं?
16. पाईप लाईन में किन–किन प्रदार्थों का परिवहन किया जाता है।
17. संचार किसे कहते हैं।
18. इन्टरनेट क्या हैं?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

18. विश्व के आन्तरिक जलमार्गों पर टिप्पणी लिखिए।
19. विश्व के प्रमुख समुद्री जलमार्गों के नाम लिखिए।
20. विश्व के सड़क महामार्गों पर एक टिप्पणी लिखिए।
21. ट्रांस साइबेरियन रेलमार्ग का वर्णन कीजिए।
22. पनामा नगर मार्ग का वर्णन कीजिए।
23. स्वेज नगर मार्ग की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
24. कनैडियन पेसिफिक रेलमार्ग पर एक टिप्पणी लिखिए।
25. संचार के प्रमुख साधन कौन–कौनसे है? वर्णन कीजिए।

निबन्धात्मक प्रश्न

26. विश्व के किन्हीं दो प्रमुख रेलमार्गों का वर्णन कीजिए।
27. स्वेज तथा पनामा जलमार्गों के व्यापारिक महत्त्व पर प्रकाश डालिए।
28. उत्तरी अटंलाटिक जलमार्ग के महत्त्व का वर्णन कीजिए।
29. विश्व के वायु परिवहन का महत्त्व बताते हुए किन्हीं एक वायु परिवहन प्रकार का वर्णन कीजिए।

पाठ 11
विश्व : अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार
(World : International Trade)

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार

व्यापार आर्थिक क्रियाकलाप में 'तृतीयक क्रियाकलाप' के रूप में आता है। व्यापार को दो स्तरों पर विभाजित किया जा सकता है– अन्तर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार विभिन्न राष्ट्रों के बीच राष्ट्रीय सीमाओं के आर–पास वस्तुओं और सेवाओं के आदान–प्रदान को कहते हैं। राष्ट्रों को व्यापार करने की आवश्यकता उन वस्तुओं को प्राप्त करने के लिए होती है, जिन्हें या तो वे (देश) स्वयं उत्पादित नहीं कर सकते या जिन्हें वे अन्य स्थान से कम दामों में खरीद सकते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय या विदेशी व्यापार वह व्यापार है जो दो या दो से अधिक देशों के मध्य सम्पन्न होता है। इसके विपरित आन्तरिक या अन्तक्षेत्रीय व्यापार एक ही देश के भीतर रहने वाले लोगों तथा क्षेत्रों के मध्य किया जाता है। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एक देश की राजनीतिक सीमा को पार कर जाता है जबकि अन्तक्षैत्रीय (आन्तरिक) व्यापार में ऐसा नहीं होता है। ओहलिन तथा एली हैक्शर जैसे आधुनिक अर्थशास्त्री अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और अन्तक्षैत्रीय व्यापार में गुणात्मक नहीं बल्कि मात्रात्मक अन्तर बताते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का इतिहास

प्राचीन समय में लम्बी दूरियों तक वस्तुओं का परिवहन जोखिमपूर्ण होता था, इसलिए व्यापार स्थानीय बाजारों तक ही सीमित था। लोग तब अपने संसाधनों का अधिकाँश भाग मूलभूत आवश्यकताओं– भोजन और वस्त्र पर खर्च करते थे। केवल धनी लोग ही आभूषण व महँगे परिधान खरीदते थे और परिणामस्वरूप विलास की वस्तुओं का व्यापार आरम्भ हुआ।

प्राचीन रेशम मार्ग लम्बी दूरी के व्यापार का एक आरम्भिक उदाहरण है, जो 6000 किमी. लम्बे मार्ग के सहारे रोम को चीन से जोड़ता था। व्यापारी भारत, पार्शिया (ईरान) और मध्य एशिया के मध्यवर्ती स्थानों से चीन में बने रेशम, रोम तक बहुमूल्य धातुओं, वस्त्रों, मसालों तथा अन्य अनेक महँगी वस्तुओं का परिवहन करते थे।

रोमन साम्राज्य के विखण्डन के पश्चात् 12वीं और 13वीं शताब्दी के दौरान यूरोपीय वाणिज्य में वृद्धि हुई। समुद्रगामी युद्धपोतों के विकास के साथ यूरोप तथा एशिया के बीच व्यापार बढ़ा।

15वीं शताब्दी से ही यूरोपीय उपनिवेशवाद शुरू हुआ और विदेशी वस्तुओं के साथ व्यापार के साथ ही व्यापार के एक नए स्वरूप का उदय हुआ, जिसे 'दास व्यापार' कहा गया।

पुर्तगालियों, डचों, स्पेनिश लोगों व अंग्रेजों ने अफ्रीकी मूल निवासियों को पकड़ा और उन्हें बलपूर्वक बागानों में श्रम हेतु नए खोजे गए अमेरिका में परिवहित किया। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में प्राथमिक वस्तुओं का उत्पादन करने वाले प्रदेश अधिक महत्वपूर्ण नहीं रहे और औद्योगिक राष्ट्र एक दूसरे के मुख्य ग्राहक बन गए। प्रथम व द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान पहली बार राष्ट्रों ने व्यापार कर और संख्यात्मक प्रतिबंध लगाए। विश्व युद्ध के बाद के समय के दौरान 'व्यापार व शुल्क हेतु सामान्य समझौता' (GATT)

जैसे संस्थाओं ने (जो कि बाद में विश्व व्यापार संगठन WTO बना) शुल्क को घटाने में सहायता की।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के आधार

(1) राष्ट्रीय संसाधनों में भिन्नता : भौतिक संरचना जैसे कि भू–विज्ञान, उच्चावच, मृदा व जलवायु में भिन्नता के कारण विश्व के राष्ट्रीय संसाधन असमान रूप से वितरित है।

(क) भौगोलिक संरचना, खनिज संसाधन आधार को निर्धारित करती है। धरातलीय विभिन्नताएँ फसलों व पशुओं की विविधता सुनिश्चित करती है। निम्न भूमियों में कृषि–संभाव्यता अधिक होती है। पर्वत पर्यटकों को आकर्षित करते हैं और पर्यटन को बढ़ावा देते हैं।

(ख) खनिज संसाधन सम्पूर्ण विश्व में असमान रूप से वितरित है। खनिज संसाधनों की उपलब्धता औद्योगिक विकास को आधार प्रदान करती है।

(ग) जलवायु किसी दिए हुए क्षेत्र में जीवित रह जाने वाले पादप व वन्य जात के प्रकार को प्रभावित करती है। यह विभिन्न उत्पादों की विविधता को भी सुनिश्चित करती है, उदाहरणतः ऊन–उत्पादन ठण्डे क्षेत्रों में ही हो सकता है, केला, रबड़ तथा कहवा ऊष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों में ही उग सकते हैं।

(2) जनसंख्या कारक : विभिन्न देशों में जनसंख्या के आकार, वितरण तथा उसकी विविधता व्यापार की गई वस्तुओं के प्रकार और मात्रा को प्रभावित करते हैं।

(क) सांस्कृतिक कारक : विशिष्ट संस्कृतियों में कला तथा हस्तशिल्प के विभिन्न रूप विकसित हुए हैं जिन्हें विश्व–भर में सराहा जाता है। उदाहरणस्वरूप चीन द्वारा उत्पादित उत्तम कोटी का पॉर्सलिन (चीनी मिट्टी का बर्तन) तथा ब्रोकेड (किमखाब–जरीदार या बूटेदार कपड़ा)। ईरान के कालीन प्रसिद्ध है, जबकी उत्तरी अफ्रीका का चमड़े का काम और इण्डोनेशियाई बटिक (छीट़ वाला) वस्त्र बहुमूल्य हस्तशिल्प है।

(ख) जनसंख्या का आकार : सघन बसाव वाले देशों में आन्तरिक व्यापार अधिक है। बाह्य व्यापार कम परिमाण वाला होता है क्योंकि कृषित और औद्योगिक उत्पादों का अधिकांश भाग स्थानीय बाजारों में ही खप जाता है। जनसंख्या का जीवन स्तर बेहतर गुणवत्ता वाले आयातित उत्पादों की माँग को निर्धारित करता है क्योंकि निम्न जीवन स्तर के साथ केवल कुछ लोग की महँगी आयातित वस्तुएँ खरीद पाने में समर्थ होते हैं।

(iii) आर्थिक विकास की प्रावस्था : देशों के आर्थिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं में व्यापार की गई वस्तुओं का स्वभाव (प्रकार) परिवर्तित हो जाता है। कृषि की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण देशों में विनिर्माण की वस्तुओं के लिए कृषि उत्पादों का विनिमय किया जाता है। औद्योगिक राष्ट्र मशीनरी और निर्मित उत्पादों का निर्यात करते हैं तथा खाद्यान्न तथा अन्य कच्चे पदार्थों का आयात करते हैं।

(vi) विदेशी निवेश की सीमा : विदेशी निवेश विकासशील देशों में व्यापार को बढ़ावा दे सकता है, जिनके पास खनन, तेल–खनन, भारी अभियांत्रिकी, काष्ठ कबाड़ तथा बागवानी कृषि के विकास के लिए आवश्यक पूँजी का अभाव है। विकासशील देशों में ऐसे पूँजी प्रधान उद्योगों के विकास के लिए आवश्यक पूँजी का अभाव है। विकासशील देशों में ऐसे पूँजी प्रधान उद्योगों के विकास द्वारा औद्योगिक राष्ट्र, खाद्य पदार्थों, खनिजों का आयात सुनिश्चित करते है तथा अपने निर्मित उत्पादों के लिए बाजार निर्मित करते हैं। यह सम्पूर्ण चक्र देशों के बीच में व्यापार के परिणाम को आगे बढ़ाता है।

(v) परिवहन : पुराने समय में परिवहन के पर्याप्त और समुचित साधनों का अभाव स्थानीय क्षेत्रों में व्यापार को प्रतिबंधित करता था। केवल उच्च मूल्य वाली वस्तुओं जैसे रत्न, रेशम तथा मसाले का लम्बी दूरियों तक व्यापार किया जाता था। रेल, समुद्री तथा वायु परिवहन के विस्तार और प्रशीतलन तथा परिरक्षण के बेहतर साधनों के साथ, व्यापार ने स्थानिक विस्तार का अनुभव किया है।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के महत्त्वपूर्ण पक्ष

(i) व्यापार का परिमाण : व्यापार की गई वस्तुओं का वास्तविक तौल परिमाण कहलाता है। हालांकि व्यापारिक सेवाओं को तौल में नहीं मापा जा सकता। इसलिए व्यापार की गई वस्तुओं तथा सेवाओं के कुल मूल्य को व्यापार के परिमाण के रूप में जाना जाता है।

(ii) व्यापार संयोजन : पिछली शताब्दी में देशों द्वारा आयातित तथा निर्यातित वस्तुओं और सेवाओं के प्रकार में परिवर्तन हुए हैं। पिछली शताब्दी के आरम्भ में, प्राथमिक उत्पादों का व्यापार प्रधान था। बाद में, विनिर्मित वस्तुओं ने प्रमुखता प्राप्त कर ली और वर्तमान समय में यद्यपि विश्व व्यापार का अधिकाँश विनिर्माण क्षेत्र के आधिपत्य में है। सेवा क्षेत्र जिसमें यात्रा, परिवहन तथा अन्य व्यावसायिक सेवाएँ सम्मिलित है।

(iii) व्यापार की दिशा : ऐतिहासिक रूप में ज्ञात है कि वर्तमान भारत जैसे विकासशील देशों से मूल्य परक वस्तुएँ तथा शिल्प कला जो यूरोपीय देशों में निर्यात की जाती थी। 19वीं

शताब्दी के दौरान व्यापार की दिशा में प्रत्यावर्तन हुआ। यूरोपीय देशों ने विनिर्माण वस्तुओं को अपने उपनिवेशों से खाद्य पदार्थ तथा कच्चे माल के बदले, निर्यात करना शुरू कर दिया। यूरोप और संयुक्त राज्य अमेरिका विश्व में बड़े व्यापारिक साझेदार के रूप में उभरे और विनिर्माण वस्तुओं के व्यापार में अग्रणी बने। उस समय जापान भी तीसरा महत्त्वपूर्ण व्यापारिक देश था। 20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में विश्व व्यापार की पद्धति में तीव्र परिवर्तन हुए। यूरोप में उपनिवेश समाप्त हो गया, जबकि भारत, चीन और अन्य विकासशील देशों ने विकसित देशों के साथ प्रतिस्पर्धा शुरू कर दी। वर्तमान में व्यापारिक वस्तुओं की प्रकृति भी बदल गई।

(iv) व्यापार सन्तुलन : व्यापार सन्तुलन, एक देश के द्वारा अन्य देशों को आयात एवं इसी प्रकार निर्यात की गई वस्तुओं एवं सेवाओं की मात्रा (परिमाण) का प्रलेखन करता है। यदि आयात का मूल्य, देश के निर्यात मूल्य की अपेक्षा अधिक है, तो देश का व्यापार सन्तुलन ऋणात्मक अथवा प्रतिकूल है। यदि निर्यात का मूल्य, आयात के मूल्य की तुलना में अधिक है तो देश का व्यापार सन्तुलन धनात्मक अथवा अनुकुल है।

एक देश की आर्थिकी के लिए व्यापार सन्तुलन एवं भुगतान सन्तुलन के गंभीर निहितार्थ होते हैं। एक ऋणात्मक सन्तुलन का अर्थ होगा कि देश वस्तुओं के क्रय पर उससे अधिक व्यय करता है जितना कि अपने सामानों के विक्रय से अर्जित करता है। यह अन्तिम रूप में वित्तीय संचय की समाप्ति को अभिप्रेरित करता है।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रकार

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को दो प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है–

(i) द्विपार्श्विक व्यापार : द्विपार्श्विक व्यापार दो देशों के द्वारा एक–दूसरे के साथ किया जाता है। आपस में निर्दिष्ट वस्तुओं का व्यापार करने के लिए वे सहमति करते हैं। उदाहरणार्थ देश 'क' कुछ कच्चे पदार्थ के व्यापार के लिए इस समझौते के साथ सहमत हो सकता है कि देश 'ख' कुछ अन्य निर्दिष्ट सामग्री खरीदेगा अथवा स्थिति इसके विपरीत भी हो सकती है।

(ii) बहु पार्श्विक व्यापार : जैसा कि शब्द से स्पष्ट होता है कि बहु पार्श्विक व्यापार कोई भी देश बहुत से व्यापारिक देशों के साथ व्यापार कर सकता है। विश्व का कोई भी देश कुछ व्यापारिक साझेदारों देशों को 'सर्वाधिक पसंदिदा राष्ट्र' (MFN) की श्रेणी प्रदान कर सकता है।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभ

अन्तर्राष्ट्रीय (विदेशी) व्यापार से अनेक प्रकार के आर्थिक तथा सामाजिक–सांस्कृतिक लाभ प्राप्त होते हैं। जिनमें कुछ स्थैतिक प्रकार के तो कुछ प्रावैधिक या गतिशील प्रकार के होते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रमुख लाभ निम्नलिखित है–

(i) उत्पादन में वृद्धि : अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में संलग्न देश उन वस्तुओं के उत्पादन में विशिष्टीकरण प्राप्त कर लेते हैं जिन्हें वे अपेक्षाकृत कम लागत पर तैयार कर सकते हैं। प्रत्येक देश उन वस्तुओं का निर्यात करता है जिन वस्तुओं का उत्पादन वह अन्य देशों की अपेक्षा कम लागत पर तैयार कर लेता है। इस प्रकार निर्यात में वृद्धि कर उस वस्तु के उत्पादन में वृद्धि होती है।

(ii) राष्ट्रीय आय में वृद्धि : किसी वस्तु के उत्पादन में विशिष्टीकरण प्राप्त कर लेने पर अनेक निर्यातों से अधिक आय प्राप्त होती है। इससे देश की राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है। विदेशी व्यापार से उत्पादन स्तर और अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर में भी वृद्धि होती है।

(iii) अतिरेक का निर्गम : अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में संलग्न होने से पहले जो संसाधन (भूमि, श्रम आदि) व्यर्थ पड़े होते हैं, व्यापार से वे भी प्रयोग में आने लगते हैं। किसी देश में देश की आन्तरिक आवश्यकता से अधिक उत्पादित वस्तुओं को निर्यात करके ही लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

(iv) संसाधनों का कुशल प्रयोग : अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में प्रवृत्त देश प्रायः उन वस्तुओं के उत्पादन में विशिष्टीकरण प्राप्त करते हैं, जिनके उत्पादन में वे अधिक कुशल होते हैं। अतः तुलनात्मक लाभ की दृष्टि से संसाधनों का कुशल प्रयोग किया जाता है।

(v) श्रम विभाजन तथा विशिष्टीकरण के लाभ : अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार देशों की सीमा के बाहर व्यापार का विस्तार है। अतः यह वस्तुओं के उत्पादन में विशिष्टीकरण और उनसे उत्पन्न लाभों के क्षेत्र को विस्तीर्ण कर देता है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में संलग्न देशों को क्षेत्रीय श्रम विभाजन तथा विशिष्टीकरण के सभी लाभ प्राप्त होते हैं।

(vi) बाजार का विस्तार : अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से किसी देश की वस्तुओं और सेवाओं के बाजार की सीमा का विस्तार होता है जिससे वस्तुओं तथा सेवाओं की आपूर्ति काफी विस्तृत क्षेत्र में होने लगती है।

(vii) बड़े पैमाने पर उत्पादन : विदेशी व्यापार के कारण बाजार क्षेत्र के विस्तार से देश को अपने प्राकृतिक संसाधनों का

अनुकुलतम उपयोग करने की सुविधा प्राप्त होती है। मांग में वृद्धि को देखते हुए उत्पादन में वृद्धि हेतु वस्तुओं का उत्पादन बड़े पैमाने पर किया जाने लगता है।

(viii) वस्तुओं एवं सेवाओं की उपलब्धता: अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से किसी देश के नागरिक उन वस्तुओं तथा सेवाओं का भी उपयोग कर सकते हैं जिनका उत्पादन उनके देश में नहीं होता है। आयात द्वारा ऐसी वस्तुओं तथा सेवाओं को अनेक देशों से मँगाया जाता है। कोई भी देश वस्तुओं को उन देशों से खरीद सकता है जहाँ उनकी कीमतें न्यूनतम होती है।

(ix) मूल्यों में समता : अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार द्वारा वस्तुओं के मूल्यों में समता स्थापित होती है। इसके परिणामस्वरूप वस्तुएँ कम मूल्य वाले स्थान से अधिक मूल्य वाले स्थान के लिए भेजी जाती है। इस प्रकार व्यापारिक क्रिया के फलस्वरूप मूल्यों में समानता आने की प्रवृत्ति पायी जाती है।

(x) सांस्कृतिक लाभ : अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से विभिन्न देशों के लोग सम्पर्क में आते हैं और एक–दूसरे की संस्कृतियों, भाषा, धर्म, परम्पराओं, रीति–रिवाजों आदि से परिचित होते हैं। व्यापारिक प्रतिनिधि मण्डल प्रायः एक–दूसरे देश को आते–जाते रहते हैं। इससे विभिन्न देशों के लोगों में पारस्परिक सामंजस्य स्थापित होता है। यह सत्य है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सभ्यता एवं संस्कृति का सर्वोत्तम प्रचारक है।

हानियाँ

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को सामान्यतया लाभदायक ही माना जाता है किन्तु इससे कई प्रकार की हानियाँ भी होती है। इससे उत्पन्न होने वाली कुछ प्रमुख हानियाँ निम्नलिखित है।

(1) प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक विदोहन : विदेशों को निर्यात करके अधिकाधिक मुद्रा कमाने के उद्देश्य से सामान्यतया विकासशील तथा अल्पविकसित देशों में खनिज पदार्थों, शक्ति संसाधनों आदि का अत्यधिक विदोहन किया जाता है, जिससे वे शीघ्र ही समाप्त हो जाते हैं। विकसित औद्योगिक देशों में कोयला, लोहा, मैंगनीज, पेट्रोल या खनिज तेल आदि की अधिक माँग होने के कारण विकासशील देशों से इन पदार्थों के अत्यधिक निर्यात से इनका संचित भण्डार अत्यन्त तीव्र गति से समाप्त हो जाता है।

(ii) देश का एकाँगी विकास : विशिष्टीकरण तथा श्रम विभाजन के आधार पर होने वाले विदेशी व्यापार से प्रत्येक देश केवल उन्हीं वस्तुओं का उत्पादन करता है जिसे वह अन्य देशों की तुलना में निम्नतम लागत पर तैयार कर सकता है। अतः देश में संतुलित औद्योगिक विकास न होकर केवल कुछ ही उद्योग धन्धों का विकास होता है। एकांगी विकास के कारण देश के बहुत से संसाधन बेकार पड़े रहते हैं। इससे देश कभी–कभी भयंकर आर्थिक संकट में भी फँस जाते हैं।

(iii) विदेशी निर्भरता : अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से विभिन्न देशों की निर्भरता एक–दूसरे पर बढ़ जाती है और स्वालम्बन की भावना तथा आर्थिक स्थिति कमजोर पड़ जाती है। किसी आपातकाल या युद्धकाल में जब आयात–निर्यात बाधित हो जाता है तो देश में भारी आर्थिक संकट उत्पन्न हो जाता है।

(iv) विदेशी प्रतियोगिता का प्रतिकूल प्रभाव : अपेक्षाकृत सस्ती विदेशी वस्तुओं के आयात से देश के अनेक उद्योगों के लिए खतरा उत्पन्न हो जाता है। इससे विकासशील देशों में अनेक कारखाने बन्द हो जाते हैं और नये उद्योग स्थापित नहीं हो पाते है। इस प्रकार देश की अर्थव्यवस्था पराश्रित हो जाती है। उसकी आत्मनिर्भरता समाप्त होने लगती है। उन्नसवीं शताब्दी में ब्रिटिश व्यापार प्रतियोगिता के कारण भारत के असंख्य लघु एवं कुटीर उद्योग नष्ट हो गये थे।

(v) राजनीतिक दासता : साधन सम्पन्न विदेशी पूँजीपति तथा शासक निर्बल देशों के साथ अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के माध्यम से उसकी भूमि पर आधिपत्य जमाने लगते हैं, जिससे देश की स्वाधीनता खतरे में पड़ जाती है। वर्तमान वैश्वीकरण के द्वारा भी नव–उपनिवेशवाद का विस्तार हो रहा है।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक संगठन

1. प्रशुल्क एवं व्यापार पर महा समझौता–गेट (GATT)

गेट विश्व का सबसे पहला और विशाल अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक समझौता था जिस पर 30 अक्टूबर, 1947 को 96 देशों ने हस्ताक्षर किये थे। यह समझौता 1 जनवरी, 1948 से लागू हो गया। यह एक बहुपक्षीय अन्तर्राष्ट्रीय संधि थी जो विश्व व्यापार के लगभग 80 प्रतिशत को समाहित करती थी। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की आचार सँहिता युक्त यह व्यापार उदारीकरण की कार्य पद्धति वाली एक संस्था थी जिनसे अनुबन्ध करने वाले विश्व के विभिन्न देशों को अपनी व्यापार समस्याओं पर बातचीत करने तथा उनका हल ढूँढ़ने के लिए समय–समय पर एकत्र होने के लिए एक मंच प्रदान किया। 1 जनवरी, 1995 को गैट समाप्त हो गया और उसे नव गठित विश्व व्यापार संगठन (World Trade Organisation - WTO) में सम्मिलित कर लिया गया। गैट एक स्थायी अन्तर्राष्ट्रीय संगठन था जिसका मुख्यालय जेनेवा (स्वीटजरलैण्ड) में था।

2. विश्व व्यापार संगठन (W.T.O.)

विश्व व्यापार संगठन एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था है। इसकी स्थापना 15 अप्रेल 1994 को हुई थी और इसने 1 जनवरी, 1995 से कार्य करना आरम्भ किया। इसका मुख्यालय जेनेवा (स्वीटजरलैण्ड) में है। यह 1947 में संस्थापित 'व्यापार और प्रशुल्क पर सामान्य समझौता या गैट का ही नया रूप है। विश्व व्यापार संगठन उदारीकरण, भूमण्डलीकरण (वैश्वीकरण) और निजीकरण की एक अन्तर्राष्ट्रीय कार्य योजना है जिसका अनुपालन सभी सदस्य देशों को करना होता है। 19 दिसम्बर 2015 से इस संगठन के लगभग 164 देश सदस्य है जिनमें विकसित और विकासशील सभी प्रकार के देश सम्मिलित है। विश्व के कुल व्यापार का अधिकाँश इन्हीं देशों के मध्य होता है। गेट के तात्कालीन महानिदेशक आर्थर डंकल ने यूरूग्वे दौर के विचार–विमर्श का अन्तिम प्रारूप सितम्बर 1991 में तैयार कर लिया था। इस डंकल प्रस्ताव को 1992 में पेश किया गया। बाद में विचार–विमर्श के पश्चात् 15 सितम्बर 1993 को स्वीकार कर लिया गया। भारत भी इसका सदस्य देश है।

प्रादेशिक व्यापार समूह

प्रादेशिक व्यापार समूह व्यापार की मदों में भौगोलिक सामीप्य, समरूपता और पूरकता के साथ देशों के मध्य व्यापार को बढ़ाने एवं विकासशील देशों के व्यापार पर लगे प्रतिबंध को हटाने के उद्देश्य से अस्तित्व में आए। इन व्यापार समूहों का विकास अन्ततः प्रादेशिक व्यापार को गति देने में वैश्विक संगठनों के असफल होने के प्रत्युत्तर में हुआ है। यद्यपि, ये प्रादेशिक समूह सदस्य राष्ट्रों में व्यापार शुल्क को हटा देते हैं तथा मुक्त व्यापार को बढ़ावा देते हैं लेकिन भविष्य में विभिन्न व्यापारिक समूहों के बीच मुक्त व्यापार का बने रहना कठिन होता जा रहा है। कुछ प्रमुख प्रादेशिक व्यापार समूह तालिका 11.1 में सूचीबद्ध किए गए हैं।

विश्व व्यापार संगठन और भारत

विश्व व्यापार संगठन के गठन का उद्देश्य विभिन्न सदस्य देशों के मध्य अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को निर्बाध रूप से विकसित करना है। यूरूग्वे (डंकल) प्रस्ताव आने के पश्चात् भारत में तीन वर्षों तक इसकी सकारात्मक एवं नकारात्मक संभावनाओं पर विचार–विमर्श होता रहा। अतंतः 15 दिसम्बर 1993 को भारत ने

सारणी 11.1 : प्रमुख व्यापारिक समूह

प्रादेशिक समूह	मुख्यालय	सदस्य राष्ट्र	उत्पत्ति	वस्तुएँ	सहयोग के अन्य क्षेत्र
आसियान	जकार्ता इण्डोनेशिया	ब्रुनेई, इण्डोनेशिया, मलेशिया, सिंगापुर, थाईलैण्ड, वियतनाम, म्यानमार	अगस्त 1967	कृषि उत्पाद, रबड़, ताड़ का तेल, चावल, नारियल, कॉफी, खनिज–ताँबा, कोयला, निकिल और टंगस्टन, ऊर्जा पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस तथा सॉफ्टवेयर उत्पाद	आर्थिक वृद्धि को त्वरित करना, सांस्कृतिक विकास, शान्ति और प्रादेशिक स्थायित्व
सी.आई.एस.	मिंसक, बेलारूस	आरमीनिया, अजरबैजान, बेलारूस, जॉर्जिया, कज़ाखस्तान, किरगिस्तान, मॉल्डोवा, रूस, ताजीकिस्तान, युक्रेन, तुर्कमेनिस्तान और उज़बेकिस्तान	–	अशोधिक तेल, प्राकृतिक गैस, सोना, कपास, रेशे, एल्युमिनियम	अर्थ व्यवस्था, प्रतिरक्षा और विदेश नीति के मामलों पर समन्वय एवं सहयोग
ई.यू. यूरोपीय संघ	ब्रुसेल्स बेल्जियम	ऑस्ट्रिया, बेल्जियम, डेनमार्क, फ्रांस, फिनलैण्ड, आयरलैण्ड, इटली, नीदरलैण्ड, लक्जमबर्ग, पुर्तगाल, स्पेन, स्वीडन और युनाइटेड किंगडम	ई.ई.सी. मार्च 1957 ई.यू. फरवरी 1992	कृषि उत्पाद, खनिज, रसायन, लकड़ी, कागज, परिवहन की गाड़ियाँ, आप्टीकल उपकरण, घड़ियाँ, कलाकृतियाँ, पुरावस्तु	एकल मुद्रा के साथ एकल बाजार
लेटिन अमेरिकन इंटीग्रेशन एसोसिएशन	मॉण्टेविडियो उरूग्वे	अर्जेंटाइना, बोलीविया, ब्राजील, कोलम्बिया, इक्वाडोर, मैक्सिको, पराग्वे, पेरू, उरूग्वे और वेनेजुएला	1960	–	–
नार्थ अमेरिकन फ्री ट्रेड एसोसिएशन	–	संयुक्त राज्य अमेरिका	1994	कृषि उत्पाद, मोटर गाड़ियाँ, स्वचालित पुर्जे, कम्प्यूटर, वस्त्र	–
ओपेक (आर्गेनाइज़ेशन ऑफ पैट्रोलियम एक्सपोर्टिंग कंट्रीज)	वियना	अल्जीरिया, इण्डोनेशिया, इरान, ईराक, कुवैत, लीबिया, नाइजीरिया, कतर, सऊदी अरब, संयुक्त अरब अमीरात और वेनेजुएला	1949	अशोधिक खनिज तेल	खनिज तेल की नीतियों का समन्वय एवं एकीकरण करना
साफ्टा (साउथ एशियन फ्री ट्रेड एग्रीमेन्ट)	–	बांग्लादेश, मालदीप, भूटान, नेपाल, भारत, पाकिस्तान, और श्रीलंका	जनवरी 2006	–	अन्तर–प्रादेशिक व्यापार के करों को घटाना

डंकल प्रस्ताव को अपनी स्वीकृति दे दी। विश्व व्यापार संगठन के क्रियाशील होने से भारत पर महत्त्वपूर्ण प्रभावों में हुए है।

विदेशी व्यापार के आँकड़ें

वित्तीय वर्ष 2015–15 के पहले नौ महीनों (अप्रेल–दिसम्बर 2015) में भारत के वस्तुगत व्यापार के अन्तिम आँकड़े वाणिज्य एवं उद्योग मंत्रालय ने 18 जनवरी, 2016 को जारी किए। इन आँकड़ों के अनुसार भारत का विदेशी व्यापार भारी मंदी का शिकार बना हुआ है। वैश्विक माँग में गिरावट की स्थिति बने रहने के कारण देश के निर्यातों व आयातों, दोनों में ही ऋणात्मक वृद्धि अप्रेल–दिसम्बर 2015 में दर्ज की गई है। डॉलर मूल्य के साथ–साथ रूपए मूल्य में भी ऋणात्मक वृद्धि दर्ज की गई है। आयातों में कमी तेल आयातों व गैर तेल आयातों, दोनों में ही इस अवधि में हुई है। इससे पूर्व पिछले वित्त वर्ष 2014–15 में देश के वस्तुगत निर्यातों व आयातों में डॉलर मूल्य में ही ऋणात्मक वृद्धि हुई थी। 2015–16 लगातार दूसरा वर्ष होगा, जब वस्तुगत निर्यातों व आयातों में ऋणात्मक वृद्धि होगी, अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में खनिज तेज की कीमतों में गिरावट के चलते तेल आयात बिल में 41.60 प्रतिशत की कमी नौ महीनों की इस अवधि में जहाँ दर्ज की गई है, वहीं गैर तेल आयातों में भी कमी इस अवधि में हुई है। नौ महिनों की इस अवधि में व्यापार घाटा भी घटा है।

वाणिज्यिक मंत्रालय के इन आंकड़ों के अनुसार अप्रेल–दिसम्बर 2015 में देश के वस्तुगत निर्यात (डालर मूल्य में 196.60) अरब डॉलर व आयात 295.81 अरब डॉलर के रहे हैं, जबकि पूर्व वर्ष की समान अवधि (अप्रेल–दिसम्बर 2014) में यह क्रमशः 239.93 अरब डॉलर व 351.61 अरब डॉलर के रहे थे। इस प्रकार डॉलर मूल्य में निर्यातों में 18.06 प्रतिशत तथा आयातों में 15.87 प्रतिशत की गिरावट दर्ज की गई है। इसके साथ ही व्यापार घाटा भी अप्रेल–दिसम्बर 2015 के दौरान 99.21 अरब डॉलर का रहा है। पिछले वर्ष समान अवधि (अप्रेल–दिसम्बर 2014) में व्यापार घाटा 111.68 अरब डॉलर था। इन आँकड़ों के अनुसार 2015–16 के पहले नौ महीनों में भारत के निर्यात रू. 12,73,323 करोड़ व आयात रू. 19,15,849 करोड़ के रहे हैं। पूर्व वित्तीय वर्ष की समान अवधि में रूपए मूल्य में भारत के निर्यात व आयात क्रमशः रू. 14,58,094 करोड़ व रू. 21,36,855 करोड़ के थे इस प्रकार रूपए मूल्य में निर्यातों में 12.67 प्रतिशत व आयातों में 10.34 प्रतिशत की गिरावट अप्रेल–दिसम्बर 2015 के दौरान दर्ज की गई है। विदेशी व्यापार के यह आंकड़ें एक दृष्टि में निम्न लिखित तालिका में दर्शाए गए है–

सारणी 11.2 : भारत के विदेशी व्यापार के आंकड़े : एक दृष्टि में

डालर मूल्य में (अरब डालर में)

	अप्रेल– दिसम्बर	
	2014–15	2015–16
निर्यात	239.93	196.60 (–18.06)
आयात	351.61	295.81 (–15.87)
व्यापार शेष	111.68	99.21
	रूपए मूल्य में (करोड़ रूपए में)	
निर्यात	14,58,094	12,73,323 (–12.67)
आयात	21,36,855	19,15,849 (–10.34)
व्यापार शेष	6,78,761	6,42,526

नोट– कोष्ठक में दिए गए आंकड़ें पूर्व वर्ष की तुलना में प्रतिशत वृद्धि दर्शाते हैं।

अप्रेल–दिसम्बर 2015 की अवधि में देश के कुल आयातों में डॉलर मूल्य में जहाँ 15.87 प्रतिशत की गिरावट अन्तिम आंकड़ों में दर्ज की गई है। तेल आयातों का कुल मूल्य में 41.60 प्रतिशत घटा है, जबकि गैर तेल आयातों में गिरावट 3.11 प्रतिशत रही है। अप्रैल–दिसम्बर 2014 में देश के तेल आयात जहाँ 116.56 अरब डॉलर थे, वहीं अप्रैल–दिसम्बर 2015 में यह आयात 68.07 अरब डॉलर के रहे हैं। इसी अवधि के गैर तेल आयात 235.05 अरब डॉलर से घटकर 227.24 अरब डॉलर के रहे हैं।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

1. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार : दो या दो से अधिक देशों की राजनीतिक सीमा को पार कर किया जाता है। आन्तरिक (अन्तक्षेत्रीय) व्यापार एक ही देश के भीतर लोगों तथा क्षेत्रों के मध्य किया जाता है।
2. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के आधार : (i) राष्ट्रीय संसाधनों में भिन्नता, (ii) जनसंख्या कारक, (iii) सांस्कृतिक कारक, (iv) जनसंख्या का आकार, (v) आर्थिक विकास की प्रावस्था, (vi) विदेशी निवेश की सीमा, (vii) परिवहन।
3. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के महत्वपूर्ण पक्ष : (i) व्यापार का परिणाम, (ii) व्यापार का संयोजन, (iii) व्यापार की दिशा, (iv) व्यापार सन्तुलन।
4. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रकार : (i) द्विपार्श्विक व्यापार, (ii) बहुपार्श्विक व्यापार।
5. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभ – उत्पादन में वृद्धि, राष्ट्रीय आय में वृद्धि, अतिरेक का निर्गम, संसाधनों का कुशल

प्रयोग, श्रम विभाजन तथा विशिष्टीकरण, बाजार का विस्तार, वृहत् पैमाने पर उत्पादन, वस्तुओं एवं सेवाओं की उपलब्धता, मूल्यों में समानता, सांस्कृतिक लाभ।

6. हानियाँ : प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक विदोहन, देशों का एंकाकी विकास, विदेशी निर्भरता, विदेशी प्रतियोगिता का प्रतिकूल प्रभाव, राजनीतिक दासता।

7. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन : गैट GATT : यह विश्व का पहला और विशाल व्यापारिक समझौता है। यह 1947 को बना था और लागू 1948 से किया गया था। बाद में यह 1 जनवरी 1995 की गैट समाप्त कर विश्व व्यापार संगठन (WTO) बनाया गया है।

8. गैट (GATT) : यह एक स्थायी अन्तर्राष्ट्रीय संगठन था जिसका मुख्यालय जेनेवा था।

9. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन (WTO) : यह अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संस्था है। जिसकी स्थापना 1994 में हुई और कार्य का आरम्भ 1 जनवरी 1995 में किया गया। यह संगठन उदारीकरण, भूमण्डलीकरण, वैश्वीकरण और निजीकरण की एक अन्तर्राष्ट्रीय कार्य योजना है। सगठन में 19 दिसम्बर 2015 तक 164 देश सदस्य है।

10. प्रादेशिक व्यापार समूह : इसमें सदस्यों, समूहों में व्यापार शुल्क हटा देते हैं तथा मुक्त व्यापार को बढ़ावा देते है। जैसे आसियान, ओपेक, ई.यू, सी.आई.एस., साफ्टा, नाफ्टा, इत्यादि।

11. विश्व व्यापार संगठन और भारत : डंकल प्रस्ताव के बाद भारत ने 1993 में स्वीकृति प्रदान कर दी। भारत के 2015–16 में विदेशी व्यापार में निर्यात 196.10 अरब डॉलर व आयात 295.81 अरब डॉलर के रहे हैं।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक

1. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के महत्त्वपूर्ण पक्ष में शामिल है?
   (अ) जनसंख्या कारक (ब) विदेशी निवेश
   (स) व्यापार का परिमाण (द) परिवहन
2. गेट–व्यापारिक समझौता लागू हुआ था?
   (अ) 1948 (ब) 1995
   (स) 1950 (द) 1945
3. विश्व–व्यापार संगठन का मुख्यालय स्थित है?
   (अ) जापान (ब) फ्रांस
   (स) संयुक्त राज्य अमेरिका (द) जिनेवा
4. विश्व व्यापार संगठन की स्थापना हुई थी?
   (अ) 1948 (ब) 1947
   (स) 1994 (द) 1996
5. अन्तर्राष्ट्रीय तेल उत्पादक राष्ट्रों का समूह है?
   (अ) आसियान (ब) ओपेक
   (द) साफ्टा (द) ई.यू.
6. आसियान का मुख्यालय है?
   (द) जकार्ता (ब) सिंगापुर
   (स) मलेशिया (द) वियतनाम

अतिलघूत्तरात्मक

7. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की परिभाषा दीजिए?
8. ''गैट'' क्या है?
9. विश्व व्यापार संगठन (WTO) की स्थाना कब हुई?
10. WTO का मुख्यालय कहाँ है?
11. आसियान के कोई दो सदस्य देशों के नाम लिखिए?

लघूत्तरात्मक

12. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के इतिहास पर टिप्पणी लिखिए।
13. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार ''गैट'' या डब्लु.टी.ओ. किसी एक पर टिप्पणी लिखिए।
14. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभों पर प्रकाश डालिए।
15. विदेशी व्यापार क्या है?समझाइये।
16. प्रादेशिक व्यापार समूह को समझाते हुए किन्हीं एक व्यापार समूह पर प्रकाश डालिए।

निबन्धात्मक

17. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को समझाते हुए लाभ तथा हानियों का वर्णन कीजिए।
18. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन में भारत की भूमिका का वर्णन कीजिए?
19. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के महत्व को बतलाते हुए महत्वपूर्ण पक्षों का वर्णन कीजिए।
20. प्रादेशिक व्यापार समूह संगठन का वर्णन कीजिए।

पाठ 12
पर्यावरणीय समस्याएँ एवं समाधान
(Environmental Problems and Solution)

पर्यावरण का अर्थ

पर्यावरण शब्द का निर्माण दो शब्दों परि–आवरण से हुआ है। इसका शाब्दिक अर्थ है ''बाहरी आवरण'' अर्थात् हमारे चारों ओर जो प्राकृतिक, भौतिक व सामाजिक आवरण है वहीं वास्तविक अर्थों में पर्यावरण कहलाता है। अंग्रेजी में पर्यावरण को Environment कहते हैं।

जीव जिस वातावरण या परिस्थितियों में रहता है उसे उसका पर्यावरण कहते हैं। पर्यावरण में जीवों के जीवन यापन हेतु मूलभूत सुविधाएँ उपलब्ध होती है। हवा, पानी, खाद्यान्न, आवास और प्रकाश जैसी मूलभूत सुविधाओं के साथ वायु, तापमान, प्रकाश या नमी जैसी कई अन्य गौण सुविधाएँ भी स्वतः उपस्थित होती है। जैसे श्वास लेने हेतु ऑक्सीजन एवं नदियों में स्वच्छ जल अनादि काल से इस पृथ्वी पर उपलब्ध है।

प्राकृतिक संसाधन प्रारम्भ से ही मानव विकास के आधार रहे हैं परन्तु पिछले 200 वर्षों में जनसंख्या के दबाव से इनका दोहन इस प्रकार बढ़ा कि इनके स्वरूप और अस्तित्त्व पर खतरा मंडराने लगा। पर्यावरण जीवों को प्रभावित करता है और जीव पर्यावरण को प्रभावित करते हैं।

परिभाषाएँ

सी.सी. पाई के अनुसार ''मनुष्य एक विशेष स्थान पर विशेष समय पर जिन सम्पूर्ण परिस्थितियों से घिरा हुआ है इसे पर्यावरण कहा जाता है।''

बोरिंग के अनुसार ''एक व्यक्ति के पर्यावरण में वह सब कुछ सम्मिलित किया जाता है जो उसके जन्म से मृत्यु पर्यन्त प्रभावित करता है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि पर्यावरण किसी एक तत्व का नाम न होकर उन समस्त दशाओं या तत्वों का योग है, जो मानव के जीवन और विकास को प्रत्यक्ष्य–अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं।

पर्यावरणीय समस्याएँ

मानव का सृष्टि की उत्पत्ति से ही प्रकृति के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। पृथ्वी पर मानव के आर्विभाव के साथ ही उसकी आवश्यकताओं का भी जन्म हुआ। आदि मानव का तो जीवन पूर्णतः प्रकृति पर ही निर्भर था। मानव ने अपने भौतिक सुख की प्राप्ति के लिए अनेक कल–कारखानों उद्योगों का विकास किया। जनसंख्या वृद्धि के कारण ग्राम, नगर और महानगरों की संख्या में तीव्र विस्तार होता गया।

सम्पूर्ण मानव समाज ने अपनी उत्पत्ति से लेकर 1950 तक जितना प्रकृति का उपयोग किया (हानि पहुँचाई) उतना तो संयुक्त राज्य अमेरिका ने 1950 से 2000 के मध्य 50 वर्षों में ही कर लिया है।

मानव समाज प्रकृति से सांमजस्य रखने के स्थान पर विजय प्राप्त करने की धारणा पर बढ़ने लगा। उसका कुप्रभाव यह हुआ कि दोनों के सम्बन्ध बिगड़ने लगे। मानव की भोगवादी एवं प्रकृति के शोषण की धारणा अब उसी के जीवन के लिए भयानक समस्या के रूप में आ खड़ी हुई है।

मानव और प्रकृति के मध्य असन्तुलन बढ़ने से आये दिन प्राकृतिक प्रकोप, भूकम्प, ज्वालामुखी, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, सूखा जैसी आपदायें बढ़ रही हैं।

यहीं नहीं मानव जीवन पर भी अनेक तरह के संकट मंडरा रहे। इन्हीं सबके कारण हर रोज नई व्याधियाँ सामने आ रही है। भोजन श्रंखला पर बढ़ता दबाव, मौसम तंत्र में आँशिक परिवर्तन, फसल चक्र में परिवर्तन, अम्लीय वर्षा, ग्रीन हाउस प्रभाव, ओजोन परत क्षरण, बंजर भूमि प्रदूषण, मरूस्थलीकरण जैसी अनेक पर्यावरणीय या उससे जनित समस्यायें मानव सभ्यता को समाप्त करने के लिए खड़ी है। इन समस्याओं से कमोवेश सम्पूर्ण विश्व जूझ रहा है और बचने के रास्ते भी तलाशे जा रहे हैं।

प्रस्तुत पाठ में हम पर्यावरण प्रदूषण, अम्लीय वर्षा, ओजोन परत क्षरण, ग्रीन हाउस प्रभाव जैसे पर्यावरणीय समस्याओं के के महत्त्वपूर्ण पक्षों का अध्ययन करेंगे।

पर्यावरणीय प्रदूषण

मानव सभ्यता के विकास के साथ उसकी आवश्यकताओं का भी विस्तार हुआ। तेजी से बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु मनुष्य ने प्राकृतिक संसाधनों का दोहन शुरू किया। औद्योगिक एवं तकनीकी विकास जैसे हथियारों के सहारे मानव ने अपनी स्वार्थी प्रकृति और जनसंख्या के दबाव में प्रकृति का अनियन्त्रित दोहन किया। हर बड़े नगर के साथ औद्योगिक क्षेत्र का विकास हुआ और इन उद्योगों से निकलने वाले अपशिष्ट पदार्थों के बढ़ने से पर्यावरणीय प्रदूषण नामक समस्या का जन्म हुआ।

पर्यावरणीय प्रदूषण आज सिर्फ क्षेत्रीय, देशीय समस्या न होकर एक सर्वव्यापी समस्या का रूप ले चुका है। कई विकासशील एवं विकसित देशों के महानगरों में तो शुद्ध वायु और स्वच्छ पेयजल का संकट खड़ा हो चुका है।

प्रदूषण का अर्थ एवं परिभाषा

प्रदूषण अंग्रेजी के शब्द Pollution का अनुवाद है जो मूल रूप से लेटिन भाषा के शब्द Pollutus से बना है जिसका अर्थ है दूषित करना (to make unclean)।

''वायु, जल एवं मृदा के भौतिक, रासायनिक व जैविक गुणों में होने वाला ऐसा अंवाछित परिवर्तन जो मनुष्य के साथ ही सम्पूर्ण परिवेश के प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक तत्वों को हानि पहुँचाता है प्रदूषण कहते हैं।''

– इपी ओडम

अमेरिका की राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी के अनुसार ''वायु, जल तथा पृथ्वी के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों में अवांछनीय परिवर्तन जिससे मनुष्य, अन्य जीवों एवं प्राकृतिक संसाधनों की क्षति होती हो को प्रदूषण कहा जाता है।

राष्ट्रीय प्रदूषण शोध समिति के अनुसार ''वायु, जल तथा पृथ्वी के भौतिक, रासायनिक तथा जैविक गुणों में नकारात्मक परिवर्तन को प्रदूषण कहते हैं।

ऐसे अवांछनीय पदार्थ जो पर्यावरण के किसी भी मूल तत्व में अपनी उपस्थिति से उसे परिवर्तित कर देते हैं या प्रदूषण फैलाते हैं ''प्रदूषक'' कहलाते हैं। प्रदूषण सभी प्रकार के जीवों के लिये हानिकारक होने के साथ–साथ अजैविक संसाधनों को भी भारी क्षति पहुँचाता है।

प्रदूषण के प्रकार

वायुमण्डल, स्थलमण्डल तथा जलमण्डल के जीवन युक्त भागों के संयुक्त क्षेत्र को जैवमण्डल कहते हैं। इसी जैव मण्डल में उपलब्ध सभी प्राकृतिक तत्वों को प्राकृतिक पर्यावरण का नाम दिया जाता है। मानव द्वारा की गई समस्त प्रकार की गतिविधियों से बने प्रदूषकों ने जैव मण्डल के इन सभी भागों को प्रभावित किया है। प्रदूषकों की प्रकृति के आधार पर प्रदूषण को विभिन्न प्रकारों में समझा जा सकता है– (i) वायु प्रदूषण, (ii) जल प्रदूषण, (iii) ध्वनि प्रदूषण, (iv) मृदा प्रदूषण (भूमि प्रदूषण), (v) वाहन प्रदूषण, (vi) विकिरणीय प्रदूषण, (vii) तापीय प्रदूषण, (viii) औद्योगिक प्रदूषण, (ix) कूड़े–कचरे से प्रदूषण, (x) समुद्रीय प्रदूषण, (xi) घरेलू अपशिष्ट के कारण प्रदूषण, (xii) अन्य कारणों से प्रदूषण।



चित्र 12.1 : औद्योगिक इकाई द्वारा वायु, भूमि, जल एवं ध्वनि प्रदूषण

(i) वायु प्रदूषण

समस्त जीव जगत के लिए वायु आवश्यक है उसके बिना जीवन सम्भव नहीं है। वायुमण्डल में विद्यमान सभी गैस एक निश्चित अनुपात में पाई जाती है जैसे नाइट्रोजन, 78.08 प्रतिशत, ऑक्सीजन 20.94 प्रतिशत, आर्गन 0.93 प्रतिशत,

कार्बनडाइऑक्साइड 0.03 प्रतिशत तथा अन्य 0.02 प्रतिशत। इस अनुपात में थोड़ा भी परिवर्तन वायुमण्डल की सम्पूर्ण व्यवस्था को प्रभावित करता है। जिसका परोक्ष अपरोक्ष प्रभाव जीव जगत पर पड़ता है।

वायु प्रदूषण को स्रोत के आधार पर दो भागों में विभाजित किया जाता है– (अ) प्राकृतिक प्रदूषण, (ब) अप्राकृतिक प्रदूषण।

(अ) प्राकृतिक प्रदूषण : यह प्रकृति की देन है। ज्वालामुखी उदगार से निकले पदार्थ, धूलभरी आधियाँ, तूफान, दावानल, पहाड़ों का झड़ना आदि प्राकृतिक क्रियाओं से प्रदूषण होता है।

(ब) अप्राकृतिक कारण : वायु को प्रदूषित करने में सबसे बड़ा योगदान स्वयं मानव का ही है। घरों में जलाने वाला ईंधन, उद्योग, परिवहन साधन, धूम्रपान, रसायनों का उपयोग, रेडियो धर्मिता जैसे उपयोगों से सर्वाधिक प्रदूषण हो रहा है।

वायु प्रदूषण के दुष्प्रभाव

(i) मानव स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है।

(ii) वनस्पति पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। जीव जन्तु एवं कीटों के अस्तित्व का खतरा बनने लगा है।

(iii) जलवायु एवं वायुमण्डलीय दशाओं पर प्रतिकूल प्रभाव, जलवायु परिवर्तन, ओजोन परत में क्षरण, ग्रीन हाउस प्रभाव, मौसम पर प्रभाव।

(iv) महानगरों एवं नगरों पर कोहरे के गुम्बद बन जाते हैं।

चीन–रेड अलर्ट जारी : 30 नवम्बर 2015 को चीन में इस वर्ष दूसरी बार गहरी धुंध में लिपट गया। 23 शहरों का करीब 5 लाख 30 हजार वर्ग किमी क्षेत्र धुंध की गिरफ्त में कैद हो गया। चीन को रेड अलर्ट जारी करना पड़ा। इसके अन्तर्गत औद्योगिक संयंत्रों के उत्पादन में कटौती या पूर्णतः बन्द, सड़कों पर ढुलाई कार्य बन्द, ट्रकों का आवागमन बन्द, चीन में 200 से ज्यादा एक्सप्रेस हाइवे पर यातायात बन्द कर दिया गया था।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि वायु प्रदूषण एक धीमा जहर है जो क्रमिक रूप से सम्पूर्ण पर्यावरण जैविक– अजैविक जगत को प्रभावित कर रहा है। समय रहते समाधान नहीं किया गया तो सृष्टि को समूचा नष्ट कर देगा। यह किसी व्यक्ति, समाज, धर्म या देश कि समस्या नहीं है और संसाधन भी किसी एक के पास नहीं है अतः निराकरण भी जन जागरण एवं जन सहभागिता से ही संभव है।





चित्र 12.2 : वाहनों एवं औद्योगिक इकाइयों द्वारा वायु प्रदूषण

वायु प्रदूषण के नियन्त्रण हेतु उपाय

वायु प्रदूषण नियन्त्रण हेतु द्विआयामी नीति पर चलना होगा। पूर्व में हो चुके पर्यावरण पर नियन्त्रण पाना तथा भावी प्रदूषण को रोकना जिसमें नई तकनीक का विकास कर उपयोग किया जाय।

(i) प्रदूषण रोकने के लिए वृक्षा रोपण करना, क्षेत्रफल के कम से कम 33 प्रतिशत भाग पर वन हो। ग्राम, नगर के समीप हरित पेटी का विकास किया जाए। इस कार्य में विभिन्न सामाजिक संगठन, सरकारें, व्यक्तिगत रूप से लोग आगे आ रहे हैं

(ii) वाहनों के प्रदूषण पर नियन्त्रण किया जाए। पेट्रोल–डीजल की अपेक्षा सौर ऊर्जा, बैटरी चालित, विद्युत इंजन (रेल्वे) में उपयोग किया जाए।

(iii) निधूम चूल्हों का उपयोग किया जाए। पेड़ नहीं काटे जाए।

(iv) ईंट भट्टों व बर्तन बनाने व पकाने जैसे उद्योगों को शहर से बाहर स्थापित किया जाए।

(v) उद्योग के नवीन तकनीक का उपयोग एवं शहर से

बाहर स्थापित किया जाए।

- 24 जून 2016 को राष्ट्रीय वन नीति केन्द्र सरकार द्वारा मसौदा तैयार किया गया जिसके अन्तर्गत हरित कर लगाने की सिफारिश की गई है जिससे प्राप्त धन से जंगलों को हरा भरा किया जायेगा।
- हरित राजमार्ग नीति 2015 द्वारा सड़कों के प्रदूषण को नियन्त्रित करने के केन्द्र सरकार के द्वारा प्रयास किए जा रहे है। लेकिन पूर्ण रूप से इससे मुक्ति तभी संभव है जब व्यक्तिगत स्तर पर प्रत्येक व्यक्ति अपनी भूमिका समझ एक वृक्ष लगाकर उसे जीवित रख सके तो यह समस्या समाप्त हो सकती है।
- भारत सरकार ने गाड़ियों के प्रदूषण की रोकथाम के लिए पूरे देश में 1 अप्रेल 2017 से बीएस–4 ग्रेड का फ्युल (पेट्रोल) मिलेगा जो अभी बी.एस. 3 ग्रेड दिया जा रहा है। 1 अपेल 2020 से बीएस 5 ग्रेड के स्थान पर बीएस–5 ईंधन की आपूर्ति का आश्वासन दिया है।

(ii) जल प्रदूषण

जल के भौतिक, रासायनिक और जैविक विशेषताओं में होने वाले अवांछित परिवर्तन जिससे मानव और समस्त जीवों पर बुरा प्रभाव पड़ता है, जल प्रदूषण कहलाता है।

जल की रासायनिक, भौतिक व जैविक विशिष्टताओं में मुख्यतः मानवीय क्रियाओं के गुणवत्ता में गिरावट ही जल प्रदूषण है।



जल प्रदूषण के दुष्परिणाम

प्रदूषित जल में विषाक्त पदार्थों के साथ–साथ कई बीमारियों के जीवाणु व विषाणु की संख्या में वृद्धि हो जाती है। इसके कारण जलीय जीवों की मृत्यु और मनुष्यों में हैजा, पीलीया एवं पेट के रोग हो जाते हैं। ऐसा माना जाता है कि आज भारत में लगभग मानवों में होने वाले दो तिहाई रोग जल के प्रदूषण के कारण हो रहे हैं।

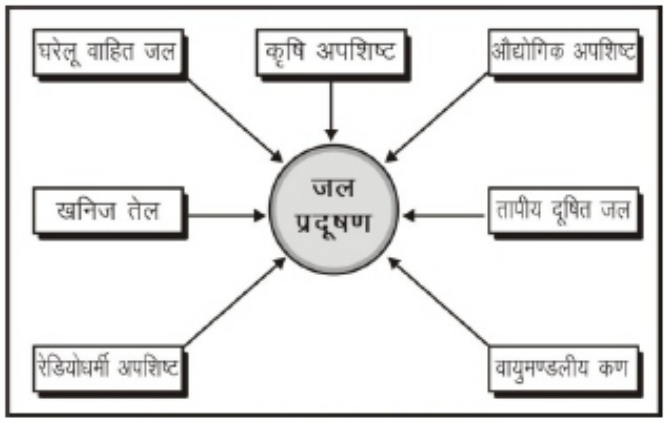

रेखाचित्र 12.3 : जल प्रदूषण के स्रोत



चित्र 12.4 : यमुना नदी में जल प्रदूषण

नगरों का विकास, तीव्र औद्योगीकरण, परमाणु शक्ति के विभिन्न उपयोग, रासायनिक व तेलीय पदार्थों के उपयोग में हो रही तीव्र वृद्धि से नदियों, झीलों का जल प्रदूषित हो रहा है। एक अनुमान के अनुसार देश के 300 शहरों/नगरों से प्रतिदिन लगभग 3000 करोड़ से 4000 करोड़ लीटर गन्दे जल का प्रवाह नदी नालों में किया जाता है जिससे नदी व झीलें प्रदूषण के उच्चतम स्तर तक पहुँच गए हैं।

गंगा, यमुना जैसी पवित्र नदियों का जल भी अब उपयोग

लायक नहीं रह गया है।

यूएनओ की एक रिपोर्ट के अनुसार शुद्ध पानी के अभाव व डायरिया के कारण विश्व में 2300 लोग प्रतिदिन मर रहे हैं। पिछले 30 से 40 वर्षों में समुद्री जल के प्रदूषण के कारण 40 प्रतिशत समुद्री जीव कम हो गए हैं।

उदाहरण के लिए भारत में यमुना नदी में कानपुर शहर में चमड़े के परिशोधन में प्रयुक्त जल को प्रवाहित किया जाता है। जिसके परिणामस्वरूप यमुना नदी का जल दैनिक जीवन जीवन में उपयोग के योग्य नहीं बचा है (चित्र 12.4)।

जल प्रदूषण बचाव के उपाय

(i) सभी नगरों में जल–मल के निस्तारण हेतु सीवर शोधन संयत्रों की स्थापना की जायें।

(ii) रासायनिक कृषि के स्थान पर जैविक खाद की खेती को प्रोत्साहित किया जाए।

(iii) औद्योगिक अपशिष्ट युक्त जल को उपचारित कर वहीं पुनः उपयोग लिया जाए।

(iv) मृत पशु शवों को नदी में विसर्जन पर पूर्ण रोक हो विद्युत शव गृहों की स्थापना की जाए।

- 300 नमामी गंगे प्रोजेक्ट लांच : भारत सरकार ने नमामी गंगे प्रोजेक्ट को सफल बनाने के लिए 7 जुलाई 2016 को देशभर में एक साथ 300 प्रोजेक्ट शुरू किए जो गंगा नदी के किनारे शुरू हो रहे है जिसके अन्तर्गत घाटों का आधुनिकीकरण करने के साथ–साथ किनारों पर वृक्षारोपण किया जाएगा।

(iii) ध्वनि प्रदूषण

जब ध्वनि की तीव्रता एवं आवृत्ति कर्णप्रिय स्तर से अधिक हो जाती है तो उसे शोर की संज्ञा दी जाती है। शोर व अवांछित दशा में मनुष्यों में बैचेनी और अशान्ति उत्पन्न हो जाने की स्थिति को ध्वनि प्रदूषण कह सकते हैं। तेजी से बढ़ते औद्योगीकरण, शहरीकरण एवं यातायात के साधनों एवं ध्वनि विस्तारकों के कारण ध्वनि प्रदूषण एक गंभीर समस्या बन चुका है। भारत जैसे विशाल देश में ध्वनि प्रदूषण अन्य देशों की अपेक्षा अधिक है।

ध्वनि प्रदूषण के नियन्त्रण एवं प्रभाव के अध्ययन हेतु इसकी तीव्रता और आवृत्ति का मापन किया जाता है। ध्वनि तीव्रता मापन की सामान्य इकाई डेसीबल है। 80–120 डेसीबल से अधिक की सभी ध्वनियाँ ध्वनि प्रदूषण के अन्तर्गत आती है।

जब ध्वनि एक निश्चित स्तर से अधिक हो जाए तथा किसी व्यक्ति या समूह को शारीरिक एवं मानसिक स्तर पर प्रतिकूल प्रभाव डाले तो उसे हम ध्वनि प्रदूषण कहते हैं।

ध्वनि प्रदूषण के कारण

परिवहन के साधनों से, स्पीकरों से, उद्योगों से निकलने वाली ध्वनि से, वायुयानों एवं जैट विमानों से।

ध्वनि प्रदूषण से हानियाँ

मानव मे मस्तिष्क पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। जिससे मनुष्यों में चिड़चिड़ापन, बहरापन, अत्यधिक उच्च ध्वनि से व्यक्ति के स्थायी रूप से श्रवण शक्ति समाप्त हो जाती है जिससे व्यक्ति पागल की तरह व्यवहार करने लगता है।

(iv) भूमि प्रदूषण

प्राकृतिक एवं मानवीय क्रियाओं से मिट्टी की गुणवत्ता में ह्रास को भूमि (मृदा) प्रदूषण कहा जाता है। मृदा प्रदूषण से भूमि की उर्वरता में कमी आती है। समस्त भूमण्डल पर वासित जीवों पर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है।

भूमि प्रदूषण के प्रमुख कारण

प्रदूषित जल से अत्यधिक रासायनिक खादों के प्रयोग से, औद्योगिक अपशिष्टों, नगरों एवं महानगरों से निकलने वाले अपशिष्टों से। उदाहरण के लिए पंजाब में रासायनिक खादों के अत्यधिक प्रयोग के कारण भूमि प्रदूषण की समस्या वहाँ के निवासियों के सामने सबसे बड़ी चुनौती बनी हुई है। इसी प्रकार चीन में तीव्र औद्योगीकरण के द्वारा वहाँ के जल स्रोतों अधिक संख्या में प्रदूषित होने के कारण उसके आस–पास की भूमि सर्वाधिक प्रभावित हुई है। जो मृदा प्रदूषण के रूप में देखा जा सकता है।

मृदा प्रदूषण के नुकसान

(i) कृषि योग्य भूमि में लगातार न्यूनता हो रही है।

(ii) इससे होने वाली प्रमुख बीमारियाँ पेचिस, प्रवाहिका, हैजा, आंखों के रोग तथा तपेदिक प्रमुख है।

(iii) मृदा प्रदूषण अन्य पर्यावरणीय प्रदूषणों को जन्म देता है।

(iv) भूमि प्रदूषण से भूमि न्यूनता की समस्या बढ़ी है।



चित्र 12.5(अ) भूमि प्रदूषण



चित्र 12.5(ब) भूमि एवं वायु प्रदूषण

अम्लीय वर्षा (Acid Rain)

वस्तुतः विभिन्न उद्योगों की विविध उत्पादन क्रियाओं से निकले कार्बन डाइ ऑक्साइड, सल्फर डाइ ऑक्साइड तथा नाइट्रिक ऑक्साइड गैसे वायुमण्डल में जलवाष्प तथा बारिश के पानी से मिलकर अम्लीय अवस्था में आ जाती है। वह वर्षा जिसके पानी में यह गैसे मिल जाती है अम्ल वर्षा कहलाती है।

सामान्यतः वातावरण में 60–90% अम्लीयता H_2SO_4 के कारण तथा 30–40% HNO_3 के कारण होती है।

$$SO_2 + H_2O \longrightarrow H_2SO_4 \text{ (सल्फ्यूरिक अम्ल)}$$

$$NO_2 + H_2O \longrightarrow HNO_3 \text{ (नाइट्रिक अम्ल)}$$

अम्ल वर्षा से सम्बन्धित जल का pH मान 5 से 2.5 के बीच हो जाता है। pH का तटस्थ मान 7 होता है इससे कम मान अम्लता तथा अधिक मान क्षारीयता का प्रतीक है। अम्लीय वर्षा में हाइड्रोजन आयनों का स्तर ऊँचा हो जाता है।

अम्लीय वर्षा के कारण

अम्लीय वर्षा का प्रमुख कारण NO_2, SO_2, NO, CO आदि है। सल्फर डाइ–ऑक्साइड रासायनिक अभिक्रिया द्वारा H_2SO_4 का निर्माण करती है। SO_2 के निम्न स्रोत है–

(i) ऑटोमोबाइल या कोयला या जल विद्युत संयंत्रों के कारण वातावरण में बनती है।

(ii) ताप शक्ति गृह जहाँ पर बिजली उत्पन्न करने हेतु भारी मात्रा में कोयला जलाया जाता है।

(iii) खनिज तेल शोधन शालाएँ

(iv) स्वचालित वाहन

(v) जीवाश्म ईंधनों का दहन

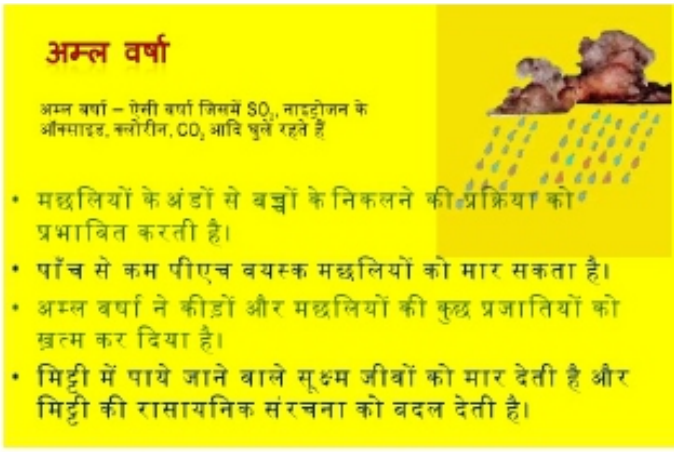

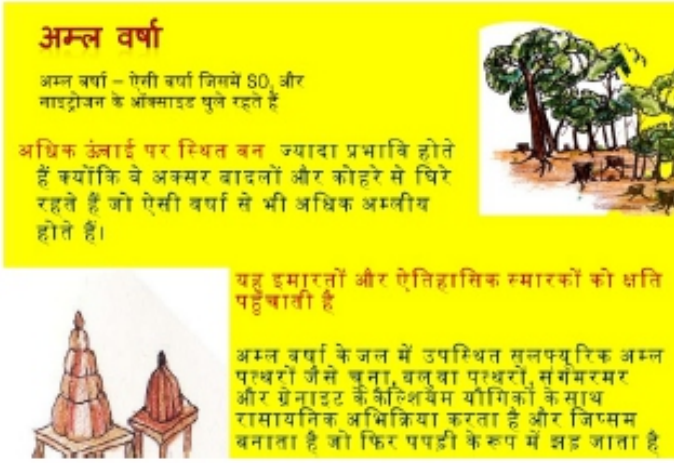

अम्लीय वर्षा के प्रभाव

मिट्टी की उत्पादकता घट जाती है। अधिक अम्लता के कारण मिट्टी के खनिज एवं पोषक तत्व नष्ट हो जाते हैं।

(i) अम्लीय वर्षा का दुष्प्रभाव एक स्थान विशेष तक ही सीमित नहीं रहता और न ही यह SO_2 तथा NO_2 उगलने वाले

औद्योगिक एवं परिवहन स्रोतों तक सीमित रहता है। यह स्रोतों से दूर अत्यधिक विस्तृत क्षेत्रों को भी प्रभावित करती है क्योंकि अम्लीय वर्षा के उत्तरदायी कारक वायु के वेग के साथ वायु की दिशा में हजारों किमी. दूर तक बह जाते हैं और आर्द्रता पाकर अम्लीय वर्षा के रूप में बरसते हैं।

(ii) पेयजल भण्डार दूषित हो जाते हैं। अम्लीय वर्षा से मानव में साँस एवं त्वचा की बीमारियाँ हो जाती है। आँखों में जलन की समस्या उत्पन्न होती है।

(iii) अम्लीय वर्षा का वनों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। क्योंकि इससे पत्तियों की सतह पर मोम जैसी परत जमा हो जाती है। पत्तियों के स्टोमेटा बंद हो जाते हैं। फलस्वरूप प्रकाश संश्लेषण वृद्धि, जनन, वाष्पोत्सर्जन आदि जैविक क्रियाएँ मन्द पड़ जाती है जर्मनी में 8% के लगभग वन नष्ट हुए हैं।

(iv) जल स्रोतों यथा झील, नदी आदि की अम्लीयता बढ़ने से पानी के जीवों व वनस्पतियों पर हानिकारक असर होता है। अमेरिका और नार्वे, स्वीडन, आदि देशों में अम्ल वर्षा के कारण अधिकांश झीलों के जैविक समुदाय समाप्त हो गए हैं।

(v) अम्ल वर्षा से मृदा की अम्लता बढ़ जाती है जिससे पादप व जन्तु जगत को हानि होती है। जैविक प्रक्रियाओं का अवनयन हो जाता है।

(vi) इससे भवनों को संक्षरण के कारण क्षति होती है। पत्थर एवं संगमरमर विशेष रूप से प्रभावित होता है। यूनान, इटली एवं कई यूरोपीय देशों में संगमरमर से बनी मूर्तियाँ तथा आगरा का प्रसिद्ध ताजमहल अम्लीय वर्षा से धुँधला पड़ता जा रहा है।

संभावित समाधान

अम्ल वर्षा पर्यावरण सम्बन्धी मौजूदा समस्याओं में से एक सबसे बड़ी समस्या है। अम्ल वर्षा अति प्रदूषित इलाके में बड़ी दूर तक बड़ी आसानी से फैलती है। अम्लीय वर्षा के लिए मानवीय उत्पादन मुख्य रूप से जिम्मेदार है।

(i) विभिन्न स्रोतों से अम्लीय वर्षा उत्पन्न करने वाली SO_2 एवं NO_2 के उत्पादन पर नियंत्रण किया जाए। इन्हें वातावरण में घुलने से रोका जाए। अतः उद्योगों में स्क्रबर्स का उपयोग करें। बैग फिल्टर तथा कोलाइंडल टैंक बनाये जाए।

(ii) सौर ऊर्जा तथा पवन ऊर्जा के प्रयोग को बढ़ावा दिया जाए।

(iii) व्यक्तिगत वाहनों का प्रयोग कम किया जाए। समय– समय पर वाहनों की जाँच करवाई जाए।

(iv) जल स्रोतों जहाँ पानी की अम्लीयता बढ़ गई है वहाँ पानी में चूना डाला जाए। इसी प्रकार मिट्टी की अम्लता नष्ट करने हेतु भी चूने का प्रयोग किया जाए।

अधिकाँश भारतीय नगरों में वर्षा जल में अम्लता का स्तर सुरक्षा सीमा से कम है। लेकिन बढ़ते उद्योग इकाइयों से हानिकारक गैसों की सान्द्रता पर रोकथाम पूरी तरह प्रभावी नहीं हो पा रही है। हमें अपने देश की उद्योग इकाइयों को नियंत्रित करना पड़ेगा।

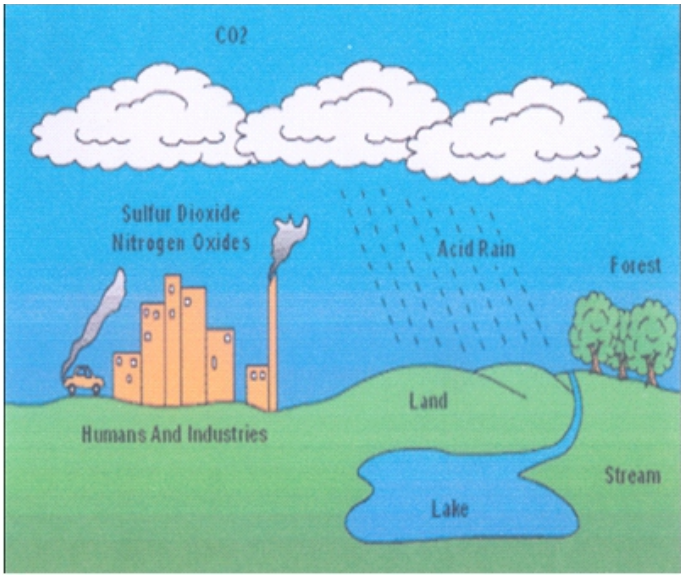

रेखाचित्र 12.6 : अम्लीय वर्षा

हरित गृह प्रभाव

ग्रीन हाऊस प्रभाव एक प्राकृतिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी ग्रह या उपग्रह के वातावरण में मौजूद कुछ गैसें वातावरण के तापमान को अपेक्षाकृत अधिक बढ़ाने में मदद करती है। इन ग्रीन हाऊस गैसों में कार्बन–डाइ–ऑक्साइड, जलवाष्प, नाइट्रोजन डाइ ऑक्साइड, मिथेन आदि शामिल है।

सामान्यतया कार्बन डाईऑक्साइड (CO_2) सूर्य की किरणों को पृथ्वी पर पहुँचने देती है तथा पृथ्वी से ऊष्मा को बाहर भी निकलने देती है लेकिन यह गैस अधिक मात्रा में होने पर एक मोटा आवरण बना देती है तथा पृथ्वी से वापस लौटने वाली ऊष्मा को रोकने लगती है इसलिए पृथ्वी के इस क्षेत्र का तापमान बढ़ जाता है इसे हरित गृह प्रभाव कहते हैं।

''ग्रीन हाऊस प्रभाव पृथ्वी के तापमान में निरन्तर वृद्धि होने की समस्या हैं क्योंकि सूर्य से आने वाले ताप को पृथ्वी पर रोक तो लिया जाता है पर उसे वायुमण्डल से बाहर नहीं निकाला जा सकता है।''

हरित गृह प्रभाव के कारण

(1) औद्योगिकरण (उद्योगों में कोयले, पेट्रोलियम के उपयोग के कारण)।

(2) वनों का विनाश : कार्बन डाईऑक्साइड बहुत उपयोगी गैस है क्योंकि यह पौधों में प्रकाश संश्लेषण क्रिया के लिए अत्यन्त आवश्यक है लेकिन वनों की लगातार कटाई के कारण वृक्षों की कमी होने से वायुमण्डल में CO_2 की मात्रा लगातार बढ़ रही है। अधिक मात्रा में यह हानिकारक होती है।

(3) जीवाश्म ईंधन (लकड़ी एवं कोयले) के दहन से: जीवाश्म ईंधन के दहन से लगभग 80% CO_2 वातावरण में मुक्त होती है। CO_2 की मात्रा 290–330 ppm तक बढ़ने का मुख्य कारण वनों का विनाश तथा जीवाश्म ईंधन का प्रयोग है।

(4) रेफ्रिजरेटर तथा एयर कन्डीशनर्स का प्रयोग : रेफ्रिजरेटर तथा एयर कन्डीशनर्स के निर्माण कार्य तथा प्रयोग से CFC (क्लोरोफ्लोरो कार्बन) गैस उत्पन्न होती है जो हरित गृह गैसों की मात्रा को बढ़ाती है।

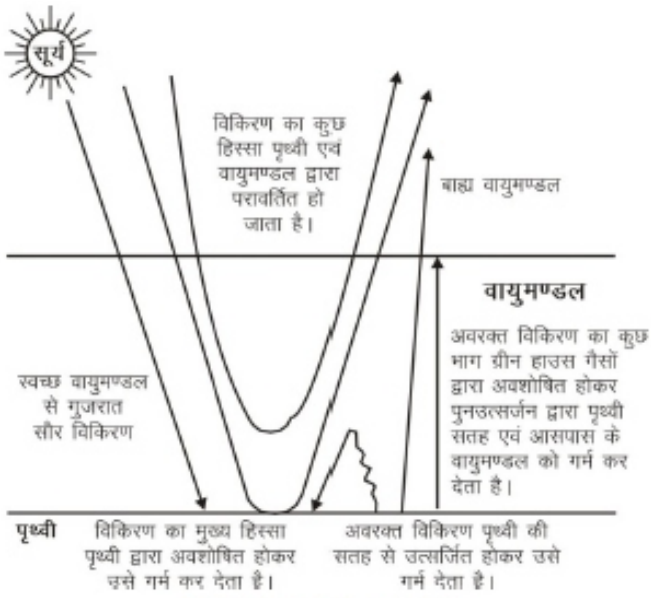

चित्र 12.6 : ग्रीन हाउस प्रभाव



चित्र 12.7 : तापीय विद्युत संयंत्र

दुष्परिणाम

मिथेन तथा नाइट्रस ऑक्साइड गैसों के स्तर में पिछले 100 वर्षों में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। CO_2 की सान्द्रता में 30% की बढ़ोतरी हुई है। मिथेन की मात्रा वायुमण्डल में औद्योगिक क्रान्ति के समय से अब तक लगभग 145% तक बढ़ चुकी है। इससे ग्रीन हाऊस प्रभाव बढ़ा है तथा पृथ्वी के ऊष्मायन में वृद्धि हुई है। इसके मुख्य प्रभाव है–

(1) तापमान में वृद्धि : पूरे विश्व के औसत तामान में वृद्धि दर्ज की गई है ऐसा माना जा रहा है कि यदि ग्रीन हाऊस गैसों के प्रभाव को कम नहीं किया गया तो सूरज की तीव्र रोशनी एवं ऑक्सीजन (O_2) के कमी से वृक्षों के बने रहने की संभावनाएँ कम हो जायेगी।

(2) वर्षा में वृद्धि : वर्षा का चक्रण बदल जाएगा, वर्षा में वृद्धि होगी, लेकिन कुछ देशों में विपरीत स्थिति के कारण मरूस्थलीकरण होगा।

(3) समुद्र सतह में वृद्धि : मात्र 0.5°C से 1.5°C ताप वृद्धि के परिणामस्वरूप हिमनद तथा ध्रुवीय हिम टोपियां पिघलेगी, समुद्रतटीय मैदानों में बाढ़ आयेगी। सम्भवतः कई द्वीप पानी में डूब जायेंगे। जल स्तर में वृद्धि होगी।

(4) वनस्पति क्षेत्रों में परिवर्तन : घास क्षेत्र, वन क्षेत्र की सीमाओं में परिवर्तन होगा, अफ्रीका के रेतीले क्षेत्रों में अकाल की संभावना हो सकती है।

(5) बीमारियों के स्तर में वृद्धि : वनस्पति क्षेत्रों में परिवर्तन होने से कीट पतंगों में भी परिवर्तन संभव है इससे बीमारियों में वृद्धि का अंदेशा रहेगा। 3–5°C ताप वृद्धि होने पर मलेरिया स्तर में 45 से 60% तक वृद्धि हो सकती है।

(6) जैव विविधता को खतरा : ताप वृद्धि के परिणामस्वरूप 80 प्रतिशत जैव विविधता को खतरा उत्पन्न हो जाएगा।

- वैश्विक तापमान से सर्वाधिक प्रभावित क्षेत्र : वैश्विक तापमान का सर्वाधिक प्रभाव भारत समेत 6 देशों पर पड़ रहा है। जिनमें नेपाल, मालद्वीव, बाग्लादेश, भूटान, पाकिस्तान और श्रीलंका है जिनकी लगभग 2 अरब जनसंख्या वैश्विक तापमान की चपेट में है।
- वैज्ञानिकों ने उन 9 क्षेत्रों को भी चिह्नित किया है जिनकी जलवायु में परिवर्तन देखा जा रहा है उनमें से ही एक भारत के मौसम चक्र पर भी प्रभाव पड़ेगा और उसमें बदलाव और परिणामस्वरूप खाद्यान्न की कमी के संकट का सामना करना

पड़ सकता है।

- ग्लोबल वार्मिंग का सबसे अधिक खतरा चीन और भारत जैसे देशों में होगा। भारत में ग्लोबल वार्मिंग के चलते गेहूँ उत्पादन में गिरावट देखी जा सकती है। अचानक गर्मी बढ़ने से गेहूँ की बालियों में अन्न विकसित नहीं हो पाता है। आशंका है कि इसमें 3 से 4% तक कमी हो सकती है।
- समुद्री जल स्तर में 1 मीटर ऊँचा होने से 576.40 हेक्टेयर जमीन जलमग्न हो जायेगी और करीब 71 लाख लोगों को विस्थापित होने का समाना करना पड़ सकता है। मुम्बई, कोलकाता, विशाखापट्टनम सहित कई द्वीप और बाँग्लादेश के 17 प्रतिशत क्षेत्र पानी में समा जाएंगे। जिससे विभिन्न तरह की समस्याएँ अनायास ही हो सकती है।
- 80 प्रतिशत जैव विविधता को खतरा है। प्रतिवर्ष हिमनद 1.7 मिलीमीटर की रफ्तार से पीछे हट रहे हैं भारत का गंगोत्री अपने मूल स्थान से 23 मीटर पीछे खिसक चुका है। विश्व का सबसे अधिक प्रदूषण करने वाला देश चीन है। ग्रीन हाऊस गैसों के उत्सर्जन के दृष्टिकोण से भारत का स्थान 4 चौथा है।

ग्रीन हाऊस प्रभाव कम करने के उपाय

संभावित समाधान

(1) जीवाश्म ईंधन का उपयोग कम करना।

(2) अधिकाधिक वृक्षारोपण करना क्योंकि पौधे प्रकाश संश्लेषण क्रिया द्वारा कार्बन डाईऑक्साइड को अपचयित कर ऑक्सीजन छोड़ते है व इस प्रकार वायुमण्डल के 'कार्बन डाइ ऑक्साइड' स्तर में सन्तुलन बनाए रखते हैं।

(3) क्लोरोफ्लोरो कार्बन्स के प्रयोग को रोकना : CFC एक बार वायुमण्डल में प्रवेश करने पर वर्षों तक नष्ट नहीं होती है अतः CFC उत्सर्जित करने वाले भौतिक साधनों के इस्तेमान को रोका जाए।

ओजोन परत में क्षरण (Ozone Layer Depletion)

समुद्र तल से 30 से 80 किमी. ऊँचाई के वायुमण्डलीय भाग को ओजोन मण्डल कहते हैं। इस मण्डल में ओजोन गैस पाई जाती है। यह गैस वस्तुतः एक रक्षा कवच के रूप में कार्य करती है और उच्च ऊर्जा युक्त पराबैंगनी किरणों को पृथ्वी पर आने से रोकती है।

ओजोन परत में ओजोन गैस की सान्द्रता में कमी के कारण विशालकाय क्षेत्र में ओजोन रहित छोटे–छोटे क्षेत्र को ओजोन छिद्र कहा जाता है।

1970 के दशक के बाद से पृथ्वी के समताप मण्डल में ओजोन की कुल मात्रा में प्रति दशक लगभग चार प्रतिशत (4 प्रतिशत) की धीमी कमी आ रही है और इसी समान अवधि के दौरान पृथ्वी के ध्रुवीय क्षेत्रों के उपर समताप की ओजान में अधिक लेकिन मौसमी कमी आ रही है इस घटना को ओजोन छिद्र के रूप में जाना जाता है। समताप मण्डलीय ओजोन रिक्तीकरण के अलावा, क्षोभ मण्डलीय ओजोन रिक्तीकरण की घटनाएँ भी पाई गई है जो बसन्त ऋतु के दौरान ध्रुवीय क्षेत्रों की सतह के पास होता है।



ओजोन परत क्षरण के कारण

ओजोन गैस की अल्पता तथा विनाश के मुख्य दोषी कारक हैलोजनिक गैसे है। क्लोरोफ्लोरोकार्बन, क्लोरीन, ब्रोमीन, मिथाइल क्लोरोफार्म, कार्बन टेट्राक्लोराइड इत्यादि।

समताप मण्डल में क्लोरीन परमाणु के विसरण से ओजोन की कमी होती है। क्लोरीन का एक परमाणु 100,000 ओजोन के

अणुओं को नष्ट करता है। ये क्लोरीन परमाणु क्लोरोफ्लोरो कार्बन के विघटन से बनते हैं–

सी.एफ.सी. और हेलोन की वृद्धि होने पर ओजोन रिक्तीकरण क्रियाविधि में वृद्धि होती है।

$$CFCl_3 + h\nu \longrightarrow CFCl_2 + Cl$$

क्लोरीन और ब्रोमीन के परमाणु ओजोन के अणुओं को कई अपघटनी क्रियाओं के द्वारा नष्ट कर देते हैं। इस तरह के एक चक्र के सरलतम उदाहरण में एक क्लोरीन परमाणु एक ओजोन अणु के साथ क्रिया करता है, इसके एक ऑक्सीजन परमाणु को लेकर ClO बना लेता है और एक ऑकसीजन अणु को मुक्त कर देता है क्लोरीन मोनो ऑक्साइड (ClO) ओजोन के दूसरे अणु के साथ क्रिया करके (अर्थात् O_3) एक अन्य क्लोरीन परमाणु और दो ऑक्सीजन अणु बना देती है।

$$Cl + O_3 \longrightarrow ClO + O_2$$

$$ClO + O_3 \longrightarrow Cl + 2O_2$$

समग्र प्रभाव ओजोन की मात्रा में कमी का कारण बन जाता है जो समताप मण्डल के नीचले भाग में ओजोन के विनाश का कारण है।

ओजोन परत क्षरण के प्रभाव

(i) ओजोन परत की क्षति से त्वचा का कैंसर, मोतिया बिन्द जैसे रोग होते हैं।

(ii) पराबैंगनी किरणों के कारण पादम प्लावक नष्ट हो रहे है, जिसके कारण समुद्री खाद्य श्रृंखला पर विपरित प्रभाव पड़ता है।

(iii) कई प्रकार की फसलों की मात्रा एवं गुणवत्ता में कमी आती है।

(iv) पराबैंगनी किरणों से रोग प्रतिरोधक क्षमता पर कुप्रभाव पड़ता है।

(v) भूमध्य रेखीय प्रदेशों में ओजोन क्षय के कारण तापमान में और अधिक वृद्धि होगी। इस कारण लोगों का शारीरिक एवं मानसिक विकास अवरूद्ध हो जाएगा।



ओजोन परत बचाने हेतु प्रयास

(i) 2 मार्च 1990 को लन्दन में 'ओजोन परत सुरक्षा'' नामक एक संगोष्ठी का आयोजन किया गया।

(ii) मॉन्ट्रियल प्रोटोकॉल को अपनाया गया है। जिसके अनुसार सीएफसी और हेलोन के उत्पादन तथा अन्य ओजोन रिक्तीकरण रसायनों जैसे कार्बन टेट्रा क्लोराइड, ट्राइक्लोरो इथेन के उत्पादन पर रोक लगा दी गई है।

(iii) फ्रेऑन सबसे अधिक घातक क्लोरोफ्लोरोकार्बन है, जिसका प्रयोग रेफ्रिजरेटर, एअर कण्डिशनर, गद्देदार सीट या सोफों में काम आने वाली फोम तथा ऐरोसोल स्प्रे में होता है, प्रतिबन्धित किया गया है।

(iv) अमेरिका द्वारा चलाये जाने वाले कान्कोर्ड वायुयान से ओजोन परत के विघटन की आशंका के चलते प्रतिबन्धित कर दिया गया क्योंकि इस वायुयान की गति एवं ध्वनि अत्यन्त तीव्र थी।

(v) प्रति वर्ष 16 सितम्बर को ''अन्तर्राष्ट्रीय ओजोन परत'' सुरक्षा दिवस राष्ट्रीय तथा राज्य स्तर पर मनाया जाता है, जिसके अन्तर्गत जनता को सेमिनार, कार्य गोष्ठियों के माध्यम से समस्या से अवगत कराया जाता है।

पर्यावरण एवं पृथ्वी की रक्षा के लिए किये गये वैश्विक प्रयास

वैश्विक पर्यावरण की गुणवत्ता के संरक्षण तथा पारिस्थिकी सन्तुलन एवं जैव विविधता को कायम रखने हेतु विभिन्न देशों एवं संयुक्त राष्ट्र संघ के सम्मिलित प्रयासों से कई सम्मेलनों का आयोजन किया गया।

- स्टॉक होम सम्मेलन : 1972 स्वीडन के स्टॉकहोम शहर में 5 जून, 1972 को शुरू हुआ। विश्व पर्यावरण को बचाना एक अहम् मुद्दा बन गया। उक्त सम्मेलन के बाद से ही 5 जून को विश्व पर्यावरण दिवस के रूप में मनाया जाता है। इस सम्मेलन में पर्यावरण संकट को दूर करने के लिए 25 सूत्रीय घोषणा पत्र तैयार किया गया।
- कोकोयोग घोषणा : मेक्सिको कोकोयोग शहर में 1974 में आयोजित किया गया और विकास के उद्देश्यों को पुनः परिभाषित करने पर जोर दिया गया।
- विश्व जलवायु सम्मेलन (1979) : प्रथम विश्व जलवायु सम्मेलन जिसका आयोजन स्वीटजरलैण्ड के जेनेवा में आयोजित हुआ।

- वियना सम्मेलन (1985) : वियना आष्ट्रिया आयोजित सम्मेलन में ओजोन परत के संरक्षण मुख्य पहलू रहा।
- मांट्रियल समझौता : 1987 में 33 देशों ने संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम के तत्वाधान में मांट्रियल समझौते पर हस्ताक्षर किये। जिसमें ओजोन परत के क्षरण को रोकने के लिए क्लोरोफ्लोरो कार्बन तथा अन्य ओजोन हानिकारक गैसों के उत्सर्जन पर बड़ी मात्रा में कमी और विकासशील देशों को इस हेतु 10वर्ष का अतिरिक्त समय दिया गया।
- टोरेन्टो वर्ल्ड क्रान्फ्रेंस (1988) : जून 1988 कनाडा के टोरन्टो शहर में हरित गृह प्रभाव को कम करके जलवायु के भयावह परिवर्तनों से विश्व को बचाने के लिए विश्व के विकसित देशों ने अपनी इच्छा से क्लोरोफ्लोरो कार्बन के उपयोग में 2005 तक 20 प्रतिशत उपयोग में कमी करने का आग्रह किया गया।
- हेलसिंकी सम्मेलन : 2 मई 1989 हेलसिंकी में क्लोरो फ्लोरो कार्बन के उपयोग में कमी कर ओजोन क्षरण को बचाने का प्रयास तेज करने के लिए कहा गया।
- पृथ्वी शिखर सम्मेलन : 3–14 जून, 1992 को ब्राजील के रियो डे जेनिरो में किया गया, जो कि प्रथम पृथ्वी शिखर सम्मेलन था इसका आयोजन संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वाधान में संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण एवं विकास सम्मेलन के रूप में किया गया, जिसमें 178 देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इस सम्मेलन में (अ) ग्लोबल वार्मिंग को रोकने, (ब) वन संरक्षण, (स) जैव विविधता कार्यक्रम तथा (द) रियो घोषणा पत्र समझौते किए गए जिसके अन्तर्गत धरती के पारिस्थितिकी तंत्र की अखण्डता और गुणवत्ता की बहाली, सुरक्षा और संरक्षण के लिए विभिन्न देश विश्व बन्धुत्व की भावना से आपस में सहयोग करेंगे। एक टिकाऊ विकास की बात कहीं गई जिसमें आर्थिक विकास का ऐसा तरीका सुझाया गया जिसमें पर्यावरण को नुकसान न पहुँचे। इसी सम्मेलन में वैश्विक पर्यावरण सुविधा कोष बनाया गया जो निम्न कार्य हेतु सहायता देगा– (1) ग्लोबल वार्मिंग को रोकना, (2) जैव विविधता संरक्षण को बढ़ाना, (3) ओजोन परत क्षरण रोकना/सुरक्षा प्रदान करना तथा (4) अन्तर्राष्ट्रीय जल संसाधनों का प्रदूषण नियन्त्रण करना। जैव विविधता कार्यक्रम का एक 400 पृष्ठों का दस्तावेज है जिस पर आने वाले खर्च को वहन करने के लिए ''विश्व पर्यावरण कोष'' की स्थापना पर जोर दिया गया।
- क्योटो सम्मेलन : 1 से 11 दिसम्बर, 1997 क्योटो जापान में आयोजित किया गया। जिसे विश्व पर्यावरण सम्मेलन, ग्रीन हाऊस सम्मेलन तथा क्योटो प्रोटोकोल भी कहते हैं। इसमें 159 देशों ने हिस्सा लिया था। भारत ने 2002 में हस्ताक्षर किए थे व अनुमोदन किया कि पृथ्वी के ग्लोबल वार्मिंग की समस्या से बचाने हेतु इसके लिए उत्तरदायी 6 ग्रीन हाउस गैसों (कार्बन डाईऑक्साइड, मिथेन, हाइड्रोक्लोरो कार्बन, नाइट्रस ऑक्साईड, क्लोरो फ्लूरो कार्बन एवं सल्फर हेक्सा क्लोराइड) के प्रभाव से 2008 से 2012 तक की अवधि में 1990 के उत्सर्जन स्तर में औसतन 5 प्रतिशत की कमी लाई जायेगी। समझौते के अनुसार यूरोपीय संघ 8%, अमेरिका 7%, जापान 6%, की कटौती करेगा।
- जोहान्सबर्ग सम्मेलन : दक्षिणी अफ्रीका के जोहन्सबर्ग में 26 अगस्त से 4 सितम्बर 2002 को आयोजित किया गया जिसे प्लस 10 सम्मेलन भी कहते हैं। यह भी पृथ्वी शिखर सम्मेलन था। सम्मेलन का मुख्य मुद्दा ग्लोबल वार्मिंग ही था। सम्मेलन में भारत के प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने कहा कि विकास करो लेकिन वो विकास सतत् पोषणीय या धारित विकास हो, आर्थिक विकास ऐसे करो की मानव सभ्यता नष्ट न हो जो जीवन जीने के लिए जरूरी हो।
- नासा दुआ (2007) : इण्डोनेशिया के बाली द्वीप के नासा दुआ शहर में 2007 में आयोजित हुआ। जिसमें IPCC की IV रिपोर्ट पेश की गई (इन्टर गवर्नमेन्ट पेनल ऑफ क्लाईमेन्ट चेंज) IPCC यू.एन. की सबसे बड़ी संस्था है। जिसके अध्यक्ष का चुनाव सभी 193 देश लोकतांत्रिक प्रक्रिया के तहत करते हैं। IPCC के अध्यक्ष पद के लिए भारतवंशी राजेन्द्र पचौरी चुने गये। पचौरी ने पर्यावरण अध्ययन पर एक रिपोर्ट तैयार की उसे ही IVth रिपोर्ट कहते हैं। 2007 में इस संस्था को नोबल पुरस्कार दिया गया जिसे राजेन्द्र पचोरी व अमेरिकी राष्ट्रपति ने लिया था।
- कानकून (मेक्सिको सम्मेलन) : 29 नवम्बर 2010 से 10 दिसम्बर 2010 तक यहाँ 16वाँ संयुक्त राष्ट्र जलवायु सम्मेलन था जिसमें विशेष हरित कोष बनाने के लिए 100 अरब डालर के निवेश की सहमति दी।
- नागोया प्रोटोकोल : जापान के नागोया शहर में 29 अक्टूबर 2010 भारत ने जैव विविधता एवं सतत् विकास हेतु इस प्रोटोकोल संधी पर हस्ताक्षर किये।
- दोहा सम्मेलन : नवम्बर 2012 जलवायु परिवर्तन को लेकर

हुआ। विकासशील देशों के लिए जलवायु परिवर्तन सम्बन्धी कार्यक्रम को बेहतरीन तरीके से संचालित करने के लिए संयुक्त राष्ट्र हरित जलवायु कोष का गठन 18 नवम्बर 2012 को किया गया जिसका मुख्यालय दक्षिण कोरिया के शहर इन्चियोन सिटी (सोंगड़ा) में है।

- वारसा सममेलन : पोलेण्ड के वरसा शहर में 11 से 22 नवम्बर 2013 में आयोजित किया गया। हरित जलवायु कोष बनाने एवं जलवायु परिवर्तन सम्बन्धी समझौते पर 2015 तक हस्ताक्षर कराने जैसे बिन्दुओं पर सहमति बनी।
- विश्व पृथ्वी सम्मेलन–2016 : 22 अप्रेल 2016 को सम्पूर्ण विश्व में 46वां विश्व पृथ्वी दिवस (World Earth Day) मनाया गया। इस बार पृथ्वी दिवस का मुख्य उद्देश्य पृथ्वी के लिए वृक्ष (Trees for the Earth) था।

प्रमुख दिवस

- विश्व धरोहर दिवस : 18 अप्रेल
- विश्व पृथ्वी दिवस : 22 अप्रेल, U.S.A. 20 मार्च को यूनाइटेड नेशन में मनाया जाता है।
- विश्व जैव–विविधता दिवस : 22 मई
- विश्व जनसंख्या दिवस : 11 जुलाई
- हिरोशिमा दिवस : 6 अगस्त
- विश्व ओजोन दिवस : 16 सितम्बर
- हरित उपभोक्ता दिवस : 28 दिसम्बर
- भोपाल गैस त्रासदी दिवस : 2 दिसम्बर
- विश्व मृदा दिवस : 5 दिसम्बर
- विश्व पर्यावरण दिवस : 5 जून
- राष्ट्रीय प्रदूषण रोकथाम दिवस : 2 दिसम्बर

अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरण संस्थाएँ

- UNEP संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम मुखलय नेरोबी।
- IUCN (International Union for Conservation of Nature & Natural Resources) मुख्यालय–स्वीटजरलेण्ड
- TRAFFIC (Trade Record Analysis of Flora and Fauna in Commerce) यह पादप एवं जन्तुओं के अवैध व्यापार पर नियन्त्रण रखता है।
- WWF (World Wild Fund for Nature) स्वीटजरलेण्ड के ग्लाइण्ड में मुख्यालय है प्रतिक चिन्ह लाला पाण्डा।
- IPCC (International Panel on Climate)
- पृथ्वी के संरक्षण हेतु विश्व भर में जागरूकता फैलाने हेतु यह दिवस 1970 से प्रति वर्ष मनाया जाता हैं। इस अवसर पर न्यूयार्क स्थित संयुक्त राष्ट्र मुख्यालय में 170 से अधिक देशों के प्रतिनिधियों जलवायु परिवर्तन पर दिसम्बर 2015 में हुए पेरिस समझौते पर हस्ताक्षर किए। यह ऐतिहासिक समझौता सतत विकास के लिए 2030 के ऐजेण्डे के साथ मिलकर हमारी दुनिया को बदलने की शक्ति रखता है।

भारतीय संस्थाएँ एवं संगठन

- बोटनिकल सर्वे ऑफ इण्डिया : कार्यालय कोलकाता–वनस्पति संसाधनों के सर्वेक्षण से सम्बन्धित है।
- द वाइल्ड लाइफ इन्स्टीट्यूट ऑफ इण्डिया (देहरादून) अनुसंधान प्रशिक्षण सम्बन्धित कार्य होते हैं।
- कल्पवृक्ष– गैर सरकारी संगठन 2003 से जैव विविधता व पर्यावरण संरक्षण का कार्य कर रही है।
- CAZRI (Central Arid Zone Research Institute) जोधपुर केन्द्र।
- FRI (Forest Research Institute) 1906 देहरादून।
- भारतीय वन्यजीव संस्थान, देहरादून–1985।
- NEERI (राष्ट्रीय पर्यावरण अभियांत्रिकी शोध संस्थान), नागपुर–1958।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. मानव जीवन व उसकी आवश्यकता पूर्ति पर्यावरण से ही संभव है।
2. मानव की अति उपयोगवादी (भोगवादी) दृष्टिकोण ने स्वयं के लिए विभिन्न समस्याएँ पैदा कर ली है, जिनका समय रहते निवारण नहीं किया गया तो मानव सभ्यता को समाप्त कर देगी।
3. मानव निर्मित विभिन्न समस्यायें, प्रदूषण, अम्लीय वर्षा, हरित गृह प्रभाव, ग्लोबल वार्मिंग, ओजोन क्षरण जैसी अनेक समस्याएँ हैं।
4. पर्यावरण के किसी भी तत्व में होने वाला अंवाछनीय परिवर्तन, जिसके द्वारा सजीव जगत पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, उसे प्रदूषण कहते हैं।
5. प्रदूषण के प्रकार वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, मृदा प्रदूषण व भूमि प्रदूषण आदि।
6. हरित गृह या ग्रीन हाउस को ग्लास हाउस भी कहा जाता है।

7. हरित गृह प्रभाव के कारण : उद्योगों में कोयले व पेट्रोल का उपयोग, वन विनाशीकरण, जीवाश्म ईंधन का दोहन, रेफ्रीजरेटर तथा एयर कण्डीश्नर (वातानुकुलित) का प्रयोग आदि।

अभ्यास प्रश्न

अतिलघूत्तरात्मक

1. अम्लीय वर्षा जल का ph मान होता है?
   (अ) 5 से 2.5 (ब) 5 से 7.5 के बीच
   (स) 7.5 से अधिक (द) 2.5 से कम
2. अम्लीय वर्षा का सूत्र है?
   (अ) $SO_2 + NO_2$ (ब) H_2SO_4
   (स) $NO_2 + SO_4$ (द) $HNO_3 + SO$
3. पराबैंगनी किरणों को रोकने का कार्य कौनसा मण्डल करता हैं?
   (अ) क्षोभ मण्डल (ब) ओजोन मण्डल
   (स) आयन मण्डल (द) ब्राह्यमण्डल
4. माट्रियल समझौता 1987 में बल दिया गया है?
   (अ) ओजोन परत पर (ब) जैव विविधता
   (स) हरित गृह (द) औद्योगिक प्रदूषण
5. प्रथम विश्व जलवायु सम्मेलन का आयोजन हुआ था?
   (अ) जापान (ब) वियना
   (स) जिनेवा (द) कनाडा
6. पृथ्वी शिखर सम्मेलन 1992 का आयोजन हुआ था?
   (अ) रियो–डी–जेनिरो (ब) जिनेवा
   (स) स्विटजरलैण्ड (द) कोपेन हेगन
7. विश्व जैव–विविधता दिवस मनाया जाता है?
   (अ) 5 जून (ब) 11 जुलाई
   (स) 22 मई (द) 16 सितम्बर

अतिलघूत्तरात्मक

8. क्योटो शहर किस देश में स्थित है?
9. सबसे गर्म दशक किस दशक को घोषित किया गया है।
10. नाशा दुआ में IPCC का अध्यक्ष किसे निर्वाचित किया गया?
11. द्वितीय पृथ्वी शिखर सम्मेलन का आयोजन कहाँ किया गया?
12. हरित कोष का निर्माण किस सम्मेलन में किया गया?

लघूत्तरात्मक

13. अम्लीय वर्षा के कोई 2 कारण लिखिए।
14. हरित गृह प्रभाव के दुष्परिणाम बताइये।
15. जल प्रदूषण से बचाव के उपाय लिखिए।
16. चीन रेड अलर्ट क्या है?

निबन्धात्मक

17. ग्रीन हाउस प्रभाव पर टिप्पणी लिखिए।
18. अम्लीय वर्षा के कारण, प्रभाव एवं संभावित समाधान को विस्तार से समझाइये।
19. विश्व पर्यावरण की रक्षा हेतु प्रसिद्ध सम्मेलनों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

खण्ड ''ब'' :
भारत जनसंख्या एवं अर्थ व्यवस्था

पाठ 13
भारत : जनसंख्या वितरण, घनत्व एवं वृद्धि
(INDIA : Population Distribution, Density and Growth)

किसी भी राष्ट्र का विकास उसके प्राकृतिक व मानवीय संसाधनों पर निर्भर करता है। देश की प्रगति प्राकृतिक तथा मानवीय संसाधनों के उचित अनुपात पर निर्भर करती है। भारत का क्षेत्रफल विश्व का लगभग 2.4 प्रतिशत है, परन्तु यहाँ विश्व की लगभग 17.5 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है। चीन के बाद भारत 121.01 करोड़ (2011) की जनसंख्या के साथ विश्व का दूसरा अधिकतम आबादी वाला देश है।

संसाधनों की अपेक्षा जनसंख्या का अधिक घनत्व होने पर प्रायः राष्ट्र के आर्थिक विकास की दर धीमी रहती है। भू–क्षेत्रीय संसाधनों की तुलना में भारत की जनसंख्या अनुकूलतम सीमा को पार कर विस्फोटक स्थिति तक पहुँच गयी है। भारत जैसे विकासोन्मुख देश के लिये बढ़ती हुई जनसंख्या, बेरोजगारी, भुखमरी, निम्नतर जीवन स्तर जैसी देश–व्यापी समस्याओं के लिए उत्तरदायी हैं। इस अध्याय में हम भारत की जनसंख्या के वितरण, घनत्व एवं वृद्धि की विवेचना करेंगे।

जनसंख्या वितरण

भारत की जनसंख्या की एक प्रमुख विशेषता उसका असमान वितरण है। देश के उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, बिहार, पश्चिम बंगाल तथा आन्ध्रप्रदेश जैसे पाँच राज्यों में देश के 30 प्रतिशत क्षेत्र पर राष्ट्र की 50 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है। वहीं उत्तरी तथा उत्तर–पूर्वी 10 पर्वतीय राज्यों में देश के 16 प्रतिशत क्षेत्र पर देश की 4 प्रतिशत से भी कम जनसंख्या निवास करती है।

किसी भी देश में जनसंख्या का वितरण वहाँ के भौगोलिक कारकों पर निर्भर करता है। सामान्य रूप से मानवीय संसाधन को जीविका चलाने के लिए रोजगार के साधनों की आवश्यकता होती है। यही कारण है कि समतल मैदान सघन बसे हुए क्षेत्र हैं, जो अन्य पठारी एवं पहाड़ी क्षेत्रों की तुलना में अधिक जनसंख्या को आकर्षित करते हैं। वितरण की दृष्टि से मैदानी क्षेत्र अपना प्रथम स्थान रखते है। सन् 2011 की जनगणना के अनुसार भारत के मध्यवर्ती मैदानी क्षेत्र में उत्तर प्रदेश (19.96 करोड़), पंजाब (27.7 करोड़), बिहार (10.38 करोड़), पं. बंगाल (9.13 करोड़), हरियाणा (2.54 करोड़, राजस्थान (6.86 करोड़) में जनसंख्या का वितरण सर्वाधिक है। देश की 42.7 प्रतिशत जनसंख्या इसी क्षेत्र में निवास करती है।

जनसंख्या के वितरण में दक्षिण के पठार वाले राज्य अपना द्वितीय स्थान रखते हैं। इस क्षेत्र में महाराष्ट्र (11.24 करोड़), मध्य प्रदेश (7.26 करोड़), कर्नाटक (6.11 करोड़), आन्ध्रप्रदेश (8.47 करोड़) में जनसंख्या का अधिकतम वितरण शहरी क्षेत्रों में है।

तीसरी श्रेणी में भारत के सभी समुद्री तटवर्ती क्षेत्र, उत्तरी पूर्वी पर्वतीय राज्य एवं राजस्थान का पश्चिमी मरुस्थली भाग सम्मिलित है। यातायात सुविधाओं का अभाव, प्राकृतिक एवं धरातलीय विषमता के कारण यहाँ जनसंख्या की कमी दृष्टिगोचर होती है।

भारत में जनसंख्या वितरण में विषमता तथा क्षेत्रीय भिन्नता पायी जाती है। वास्तव में जनसंख्या वितरण अनेक प्राकृतिक, सामाजिक, आर्थिक, जनांकिकीय, राजनीतिक तथा ऐतिहासिक कारकों द्वारा नियन्त्रित होता है। सारणी 13.1 में जनसंख्या के नवीनतम आँकड़े और पहलू वर्णित है जबकि मानचित्र 13.1 में जनसंख्या के वितरण को दर्शाया गया है।

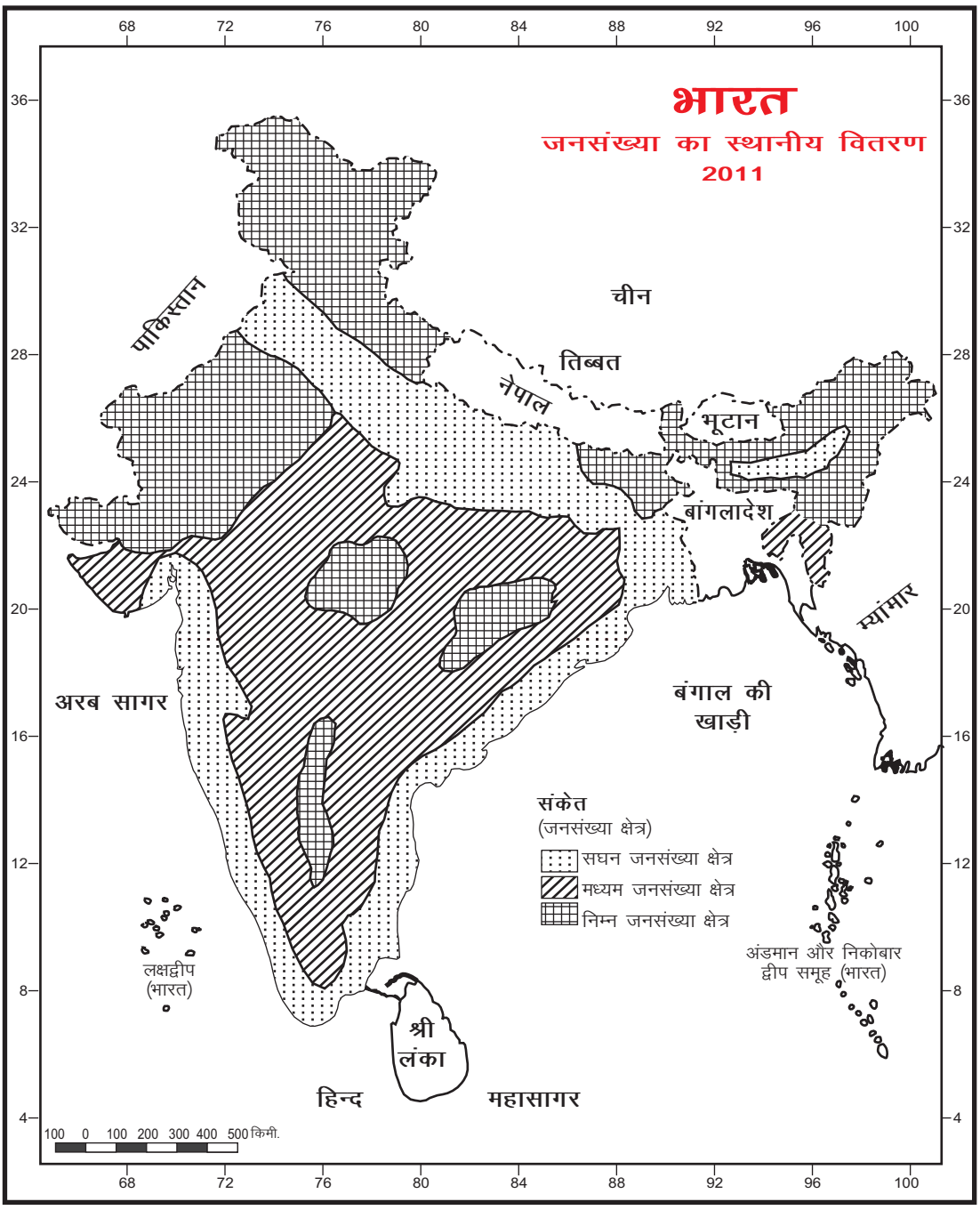

मानचित्र 13.1 : भारत : जनसंख्या का स्थानीय वितरण (2011)

ये कारक स्थान व काल के संदर्भ में परिवर्तनशील होते रहते हैं। यह भी निश्चित है कि इन कारकों का एकाकी रूप में नहीं अपितु सामूहिक रूप से प्रभाव पड़ता है। भारतीय अर्थव्यवस्था कृषिपरक है, अच्छी कृषि के विकास में सहायक तत्त्व भी जनसंख्या वितरण को नियन्त्रित करते हैं।

जनसंख्या वितरण को नियन्त्रित करने वाले कारक

किसी भी क्षेत्र में जनसंख्या वितरण अनेकों कारकों द्वारा नियन्त्रित होता है। कुछ विद्वान प्राकृतिक कारकों को अधिक महत्त्वपूर्ण मानते हैं। क्लार्क के मत में आर्थिक व्यवस्था, तकनीकी विकास, सामाजिक संगठन, सरकारी नीति, आदि कारक जनसंख्या वितरण में अधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जनसंख्या के वितरण को प्रभावित करने वाले कारकों का संक्षिप्त विवेचन अग्रलिखित है–

(1) जलवायु : मानव बसाव को नियन्त्रित करने में

जलवायु सबसे महत्त्वपूर्ण कारक है। अत्यधिक शीतल, अति ऊष्ण तथा अति आर्द्र जलवायु मानव निवास तथा उसके क्रिया–कलाप के लिये अनुपयुक्त होती है। इसी कारण हिमालय के पर्वतीय क्षेत्र, राजस्थान का शुष्क मरूस्थल एवं पूर्वी हिमालय बहुत कम आबाद है। तराई के क्षेत्र अस्वास्थ्यकर जलवायु के कारण कम आबाद रहे हैं।

(2) धरातल : जटिल भौम्याकृति वाले क्षेत्रों में अल्प जनसंख्या मिलती है। विषम धरातल वाले क्षेत्रों में कृषि योग्य भूमि की कमी, कृषि कार्यों में कठिनाई, परिवहन की बाधा तथा अलग–थलग स्थिति के कारण आबादी कम पायी जाती है।

(3) जल–प्राप्ति : मानव जीवन एवं क्रिया–कलापों का आधार जल ही है। उत्तरी भारत में वर्षा की मात्रा के साथ जनसंख्या का घनत्व पूर्व से पश्चिम की ओर घटता जाता है। राजस्थान के शुष्क उत्तर पश्चिमी भाग में नहर द्वारा जल पूर्ति होने के कारण अपेक्षाकृत घनी आबादी मिलती है। प्राचीनकाल से ही नदी घाटियों व डेल्टाओं में सघन जनसंख्या का जमाव रहा है। उदाहरणस्वरूप : सिंधु घाटी सभ्यता।

(4) खनिज–संसाधन : खनिज सम्पन्न क्षेत्रों में औद्योगिक एवं आर्थिक विकास की उत्तम संभावनायें मनुष्य के लिये आकर्षण होती है। इसी कारण दामोदर घाटी, छोटा नागपुर के पठार, कोलार क्षेत्र, आदि खनिज क्षेत्रों में जनसंख्या का जमाव सम्भव हुआ।

(5) परिवहन की सुविधा : मैदानी भागों में पर्वतों तथा पठारों की अपेक्षा परिवहन की सुविधाएँ अधिक मिलती है, इसलिये मैदान अधिक सघन आबाद होते हैं।

(6) सामाजिक–मनोवैज्ञानिक कारक : जनसंख्या के संकेन्द्रण में सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, धार्मिक तथा साँस्कृतिक कारकों की भी निश्चित भूमिका होती है।

इन कारकों में सामाजिक संगठन, सामाजिक संरचना, रीति–रिवाज, शिक्षा, चिकित्सा, जातिवाद, धार्मिक संरचना, सामाजिक व धार्मिक मूल्य सम्मिलित होते हैं। ये कारक प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से जनसंख्या के वितरण को प्रभावित करते हैं।

(7) राजनैतिक व आर्थिक कारक : राजनीतिक उथल–पुथल, असन्तोष, असुरक्षा, आदि राजनीतिक कारक तथा औद्योगीकरण, नगरीकरण आदि आर्थिक कारण भी जनसंख्या वितरण की क्षेत्रीय भिन्नताों के लिय उत्तरदायी हैं। उदाहरण के लिए भारत के सीमावर्ती राज्यों जम्मू– कश्मीर, पंजाब, आसम में आतंकवाद बढ़ने के कारण जनसंख्या स्थानान्तरण की दर तीव्र हुई है।

जनसंख्या का घनत्व

जनसंख्या घनत्व से तात्पर्य जनसंख्या एवं धरातल के एक निश्चित अनुपात से है। जिसमें जनसंख्या–जमाव की मात्रा का मापन होता है। घनत्व को प्रति इकाई–क्षेत्र व्यक्तियों की संख्या के रूप में व्यक्त किया जाता है। यह धरातल पर मानव के वितरण सम्बन्धी विभिन्नताओं के विश्लेषण के लिए उपयोगी है। जनसंख्या के आँकड़ों के संक्षेपण में जनसंख्या घनत्व से विशेष सहायता मिलती है। अतः जनसंख्या का घनत्व भूमि पर जनसंया के दबाव को दर्शाता है।

कुल जनसंख्या एवं कुल भौगोलिक क्षेत्र के अनुपात को जनसंख्या का गणितीय घनत्व कहा जाता है।

$$\text{गणितीय घनत्व} = \frac{\text{प्रदेश की कुल जनसंख्या}}{\text{प्रदेश का कुल क्षेत्रफल}}$$

किसी भी क्षेत्र में जनसंख्या की सामान्य वृद्धि और वितरण को भी घनत्व के माध्यम से समझा जा सकता है। जनसंख्या वृद्धि के साथ ही जनसंख्या घनत्व में भी सापेक्षित रूप में वृद्धि होती है।

सन् 1901 में भारत में जनसंख्या का औसत घनत्व 77 व्यक्ति (प्रति वर्ग किमी) था जो 1951 में बढ़कर 117 व्यक्ति, 1981 में 216 व्यक्ति, 2001 में 325 व्यक्ति तथा 2011 में 382 व्यक्ति प्रति वर्ग कि.मी. हो गया।

सारणी 13.1. एवं मानचित्र 13.2 से स्पष्ट है कि जनगणना वर्ष 2011 में बिहार (1102 व्यक्ति) सर्वाधिक, जन घनत्व वाला राज्य है। जबकि अरुणाचल प्रदेश (17 व्यक्ति) में न्यूनतम जनघनत्व पाया गया है।

केन्द्रशासित प्रदेशों में दिल्ली (11297) तथा अण्डमान निकोबार द्वीप (46) क्रमशः अधिकतम एवं न्यूनतम जन घनत्व दर्शाते हैं।

भारत में वर्तमान (2011) में जनसंख्या घनत्व 382 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी. है। औसत घनत्व से अधिक जनसंख्या घनत्व वाले राज्यों में बिहार (1102), पं. बंगाल (1029), केरल (859), उत्तर प्रदेश (828), हरियाणा (573), तमिलनाडु (555), पंजाब (550), झारखण्ड (414), असम (397), गोआ (394) आदि प्रमुख है। जबकि केन्द्र शासित प्रदेशों में दिल्ली (11297), चण्डीगढ़ (9.252), पण्डिचेरी (2598), दमन–दीव (2,169), लक्षद्वीप (2013) आदि प्रमुख है।

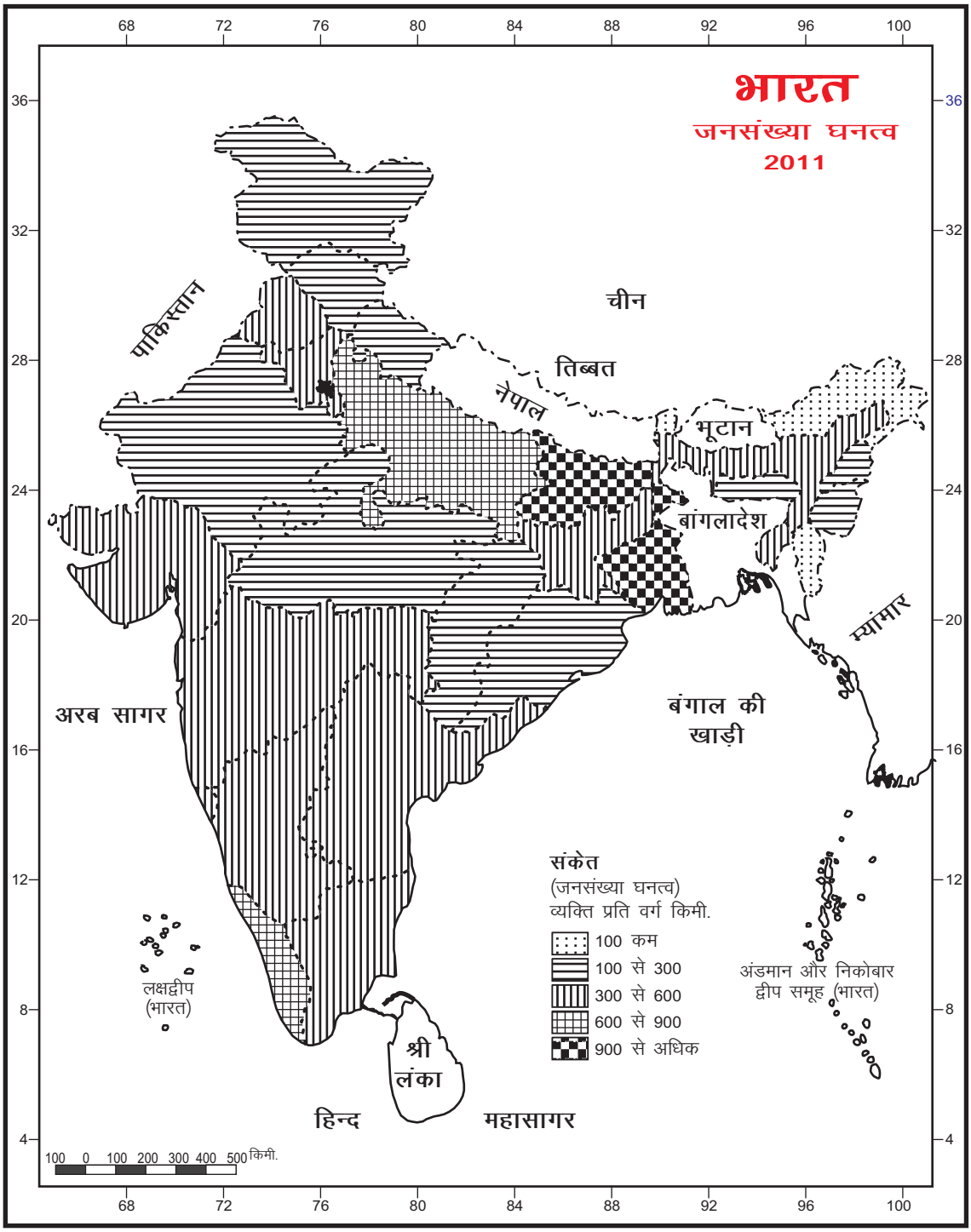

मानचित्र 13.1 : भारत : जनसंख्या का स्थानीय वितरण (2011)

औसत से कम घनत्व वाले राज्यों में महाराष्ट्र (365) कर्नाटक (319), आन्ध्रप्रदेश (308), राजस्थान (201), मेघालय (132), मणिपुर (122), सिक्किम (86), मिजोरम (52), अरुणाचलप्रदेश (17), आदि प्रमुख है। जबकि केन्द्र शासित प्रदेशों में अण्डमान निकोबार द्वीप (46) न्यूनतम घनत्व दर्शाता है। जनसंख्या घनत्व के विचार से भारत को तीन प्रदेशों में विभाजित किया जा सकता हैं।

1. उच्च घनत्व के क्षेत्र

इसका विस्तार पश्चिम बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश तथा हरियाणा में है। यहाँ जनसंख्या का घनत्व 500 से अधिक व्यक्ति प्रति वर्ग किमी पाया जाता है। यह देश का कृषि प्रधान, ग्रामीण–बहुल क्षेत्र है। समतल उर्वर मैदान, काँप मिट्टियाँ,

सिंचाई एवं पेयजल की उपलब्धता के कारण यहाँ सघन आबादी मिलती हैं।

दक्षिण भारत में मालाबार तट एवं तमिलनाडू उच्च प्रदेश में उच्च घनत्व मिलता है। तमिलनाडू के उच्च प्रदेशों में बागाती कृषि तथा कावेरी डेल्टा में गहन कृषि के साथ ही लघु गृह उद्योगों के विकसित होने के कारण घनी आबादी मिलती है।

2. मध्यम घनत्व के क्षेत्र

इस प्रकार के क्षेत्रों में 300–500 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी. घनत्व पाया जाता है। ये उच्च तथा निम्न घनत्व क्षेत्रों के मध्य संक्रमण क्षेत्र के रूप में अवस्थित है। उत्तरी भारत में उच्च घनत्व के निकटवर्ती क्षेत्रों में महाराष्ट्र, गुजरात के अधिकाँश भाग, तेलंगाना, आन्ध्रप्रदेश के तटवर्ती भागों एवं छोटा नागपुर के पठार आदि में मध्यम घनत्व पाया जाता है। धरातल की विषमता तथा जल की कमी के कारण यहाँ कृषि अधिक विकसित नहीं हो सकी।

3. निम्न घनत्व के क्षेत्र

यहाँ 300 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी से भी कम जनसंख्या का घनत्व पाया जाता है। ऐसे क्षेत्र उत्तरी–पूर्वी हिमालय में पर्वतीय धरातल के कारण, पश्चिमी राजस्थान में मरुस्थल के कारण जनसंख्या का अल्प घनत्व मिलता है। मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़ एवं उड़ीसा के पठारी एवं जनजातीय क्षेत्रों, कर्नाटक के पूर्वी भाग एवं आन्ध्र के मध्यवर्ती भाग में भौतिक अवरोधों के कारण कृषि अविकसित होने से विरल जनसंख्या पायी जाती है।

जनसंख्या वृद्धि

सन् 1871 के पूर्व भारत में जनसंख्या के विश्वसनीय आँकड़े प्राप्त नहीं है। भारत की प्रथम जनगणना सन् 1872 में सम्पूर्ण भारत में न होकर प्रयोगात्मक आधार पर देश के कुछ राज्यों तक ही सम्पन्न हुई थी। भारत में जनसंख्या की गणना की सर्वमान्य जानकारी सन् 1881 के उपरान्त मानी गई है। इससे पूर्व विधिवत् रूप से कोई जनगणना नहीं हुई है। सम्पूर्ण देश के लिए समान आधारों पर जनसंख्या की प्रथम पूर्ण गणना 1881 में सम्पन्न हुई। उसके उपरान्त भारत में जनगणना प्रत्येक 10 वर्षों के अन्तराल पर लगातार सम्पन्न की जा रही है। मोरलैण्ड के अनुसार 17वीं शताब्दी के आरम्भ में भारत में 10 करोड़ जनसंख्या का अनुमान है। सन् 1850 के आस–पास भारत में अनुमानित 15 करोड़ जनसंख्या थी।

सन् 1874–75 में से एक संसदीय प्रपत्र में भारतीय जनसंख्या 23.8 करोड़ उद्धृत है। 1881 ई के पूर्व जनगणना के अनुसार अविभाजित भारत की जनसंख्या 25 करोड़ थी। 1901 से 2011 तक की जनसंख्या की वृद्धि सारणी 13.2 से प्रस्तुत है। सन् 1901 से 2011 के मध्य जनसंख्या वृद्धि को चार अवस्थाओं में विभाजित किया जा सकता है।

तालिका 13.1 : भारत की दशकीय जनसंख्या वृद्धि दर (1901–2011)

वर्ष	कुल जनसंख्या	दशकगत अन्तर कुल संख्या	वृद्धि दर (%)	औसतन वार्षिक घातीय वृद्धि %
1901	238396327	–	–	–
1911	252093390	(+) 13697063	5.75	0.56
1921	251321213	(–) 772117	–0.31	–0.03
1931	278977238	(+) 27656025	11.60	1.64
1941	318660580	(+) 39683342	14.22	1.33
1951	361088090	(+) 42420485	13.31	1.25
1961	439234771	(+) 77682873	21.51	1.96
1971	548159652	(+) 108924881	24.80	2.22
1981	683329097	(+) 135169445	24.66	2.20
1991	846302688	(+) 162973591	23.85	2.14
2001	1028610328	(+) 182307640	21.54	1.95
2011	1210193422	(+) 181583094	17.64	1.64

सारणी 13.3 एवं आरेख 13.1 में भारत की 1911 से 2011 तक की जनसंख्या की प्राकृतिक वृद्धि दर को प्रकट किया गया है।

सारणी 13.2 : भारत में जन्म एवं मृत्यु दर एवं प्राकृतिक वृद्धि

वर्ष	जन्म दर (प्रति 1000)	मृत्यु दर (प्रति 1000)	प्राकृतिक वद्धि दर
1911	49	43	6
1921	48	47	1
1931	46	36	10
1941	45	31	14
1951	40	27	13
1961	42	23	19
1971	41	19	22
1981	38	15	23
1991	30	10	20
2001	25	8	17
2011	23	7	16

आरेख 13.1 : जन्म एवं मृत्यु दर एवं प्राकृतिक वृद्धि

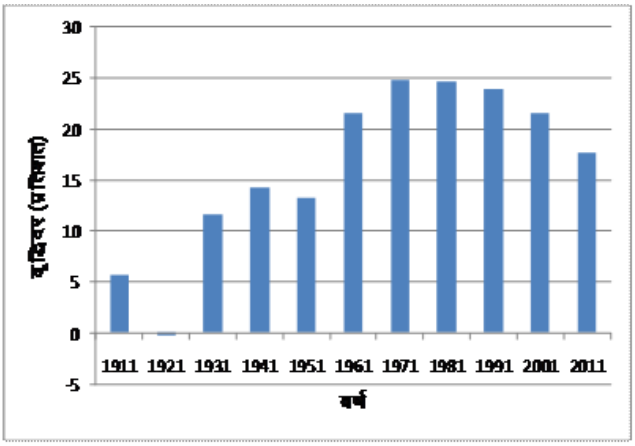

1. मन्द वृद्धि का काल (1901–1921)

इस अवधि में देश की जनसंख्या अति धीमी गति (0.27 प्रतिशत प्रति वर्ष) से बढ़ते हुए 23.84 करोड़ से बढ़कर 25.13 करोड़ हो गयी। 1911–21 दशक के दौरान देश में पड़ने वाले भीषण अकाल, महामारी तथा अन्नाभाव के कारण जनसंख्या में जन्म दर के साथ उच्च मृत्युदर होने से जनसंख्या में नकारात्मक वृद्धि रही।

2. स्थिर वृद्धि का काल (1921–1951)

वर्ष 1921 को भारतीय जनसंख्या विकास में एक महान् जनांकिकीय विभाजक कहा जाता है। इसके बाद जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि की प्रवृत्ति देखी गयी। 1921–51 के दौरान देश की जनसंख्या औसतन 1.45 प्रतिशत की दर से बढ़कर 25.13 करोड़ से 36.11 करोड़ हो गयी। तीन दशकों में केवल 11 करोड़ की वृद्धि हुई है। इसका प्रमुख कारण अकाल एवं महामारियों पर नियंत्रण होने से मृत्युदर में कमी एवं जन्मदर पूर्ववत् ही रही जिसके कारण जनसंख्या में वृद्धि होती रही।

3. तीव्र वृद्धि का काल (1951–1981)

वर्ष 1951 को द्वितीय जनांकिकीय विभाजक कहा जाता है। इसके बाद देश की जनसंख्या में तीव्र वृद्धि प्रारम्भ हुई। 1951 से 1981 के मध्य जनसंख्या वृद्धि 2.2 प्रतिशत की दर से हुई। जिससे देश की जनसंख्या 32 करोड़ से अधिक हो गयी। 1961–71 के मध्य सर्वाधिक वृद्धि (24.8 प्रतिशत प्रतिदशक) दर्ज हुई जो विकास कार्यों में तेजी तथा स्वास्थ्य सुविधाओं में सुधार के कारण थी। इस अवधि में मृत्यु दर 27 प्रति हजार से घटकर 15 प्रति हजार पहुँच गयी, जबकि जन्मदर में मात्र 4 प्रति हजार की गिरावट दर्ज की गयी। इसके परिणामस्वरूप जनसंख्या में उच्च वृद्धि दृष्टिगोचर हुई।

4. घटती वृद्धि का काल (1981–2011)

सन् 1981 के जनसंख्या में उच्च वृद्धि की प्रवृत्ति जारी रहते हुए भी वृद्धि दर में क्रमिक ह्रास दृष्टिगोचर हो रहा है। 1981–91 के दौरान जन्मदर में कमी आयी। इस दशक में जन्मदर प्रति हजार 38 शिशु (1981) से घटकर 1991 में 30 शिशु प्रति हजार हो गई। 1981–91 में जनसंख्या की औसत वार्षिक घातीय वृद्धि 2.14 प्रतिशत थी जो 1991–2001 में घटकर 1.95 प्रतिशत रही तथा 2001–2011 में 1.64 प्रतिशत रह गयी। इस दौरान जन्मदर 38 शिशु प्रति हजार (1981) से घटकर 26 शिशु प्रति हजार (2001) तथा मृत्युदर 15 प्रति हजार से घटकर 8 प्रति हजार रह गयी। जनसंख्या में ह्रास की यह प्रवृत्ति परिवार नियोजन कार्यक्रम की सफलता तथा छोटे परिवार अपनाने की प्रेरणा के कारण है।

जनसंख्या वृद्धि का स्थानिक प्रतिरूप

1991–2001 तथा 2001–2011 के दशक के दौरान राज्यों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों की दशकीय जनसंख्या वृद्धि दरों के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट होता है कि लगभग सभी राज्यों एवं केन्द्रशासित प्रदेशों में 1991–2001 की अपेक्षा 2001–2011 में ह्रास दर्ज हुआ है। छः सर्वाधिक संकुल राज्यों (उत्तरप्रदेश, महाराष्ट्र, बिहार, पश्चिम बंगाल, आन्ध्रप्रदेश एवं मध्यप्रदेश) में 1901–2001 की अपेक्षा 2001–2011 में दशकीय वृद्धि दर के प्रतिशत में गिरावट दर्ज हुई है। न्यूनतम ह्रास आन्ध्रप्रदेश में (3.49 अंक) दर्ज हुआ तथा महाराष्ट्र में अधिकतम (6.74 अंक) दर्ज हुआ। इसके विपरीत तमिलनाडु (3.34 अंक) तथा पाण्डिचेरी (7.10 प्रतिशत अंक) में वृद्धि दर्ज हुई है (सारणी 13.4)।

सन् 2001–2011 के दशक में छत्तीसगढ़, तमिलनाडु तथा पुडुचेरी के अपवाद सहित सभी राज्यों तथा केन्द्र शासित प्रदेशों में दशकीय वृद्धि दर में गिरावट दर्ज हुई है। सर्वाधिक ह्रास दर्ज करने वाले राज्य क्रमशः नागालैण्ड (–65.00 प्रतिशत) सिक्किम (–26.70 प्रतिशत), चण्डीगढ़ (–23.18 प्रतिशत) तथा अण्डमान एवं निकोबार द्वीप समूह (–20.22 प्रतिशत) में अवरोही क्रम में सर्वाधिक ह्रास दर्ज हुआ। देश में जनसंख्या वृद्धि के 2001 से 2011 के मध्य के आंकड़ों का विश्लेषण से तीन प्रकार के क्षेत्र स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं।

(1) तीव्र जनवृद्धि के क्षेत्र – भारत में इस अवधि में 30 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या वृद्धि के राज्यों के अन्तर्गत मुख्य रूप से केन्द्र शासित प्रदेश दादरा–नगर हवेली तथा दमनदीव आदि है।

(2) मध्यम जनवृद्धि क्षेत्र – ऐसे राज्य या प्रदेश जिनमें इस काल में 20–30 प्रतिशत के मध्य दशकीय वृद्धि दर रही थी उनमें बिहार, जम्मू–कश्मीर, झारखण्ड़, मध्य प्रदेश, मेघालय,

मिजोरम, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, दिल्ली तथा पुंडुचेरी आदि थे।

(3) कम जनसंख्या वृद्धि के क्षेत्र – ये वे राज्य एवं प्रदेश जिनकी दशकीय वृद्धि दर 20 प्रतिशत से कम रही थी– जैसे आन्ध्रप्रदेश, असम, गोआ, गुजरात, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, कर्नाटक, केरल, महाराष्ट्र, मणिपुर, नागालैण्ड, उड़ीसा, पंजाब, सिक्किम, तमिलनाडु, त्रिपुरा, उत्तराखण्ड, पं. बंगाल, अण्डमान–निकोबार द्वीप, चण्डीगढ़ तथा लक्षदीप आदि रहे।

जनसंख्या वृद्धि के प्रभाव

भारत में जनसंख्या की वृद्धि तीव्र गति से हो रही है। 1901 में भारत की जनसंख्या 23.8 करोड़ थी, जो 1991 में बढ़कर 84.64 करोड़, 2001 में 102.87 करोड़ तथा 2011 में 121.05 करोड़ हो गयी। पृथ्वी पर हर छठवाँ व्यक्ति भारतीय है। जनसंख्या में इस वृद्धि के परिणामस्वरूप नियोजत आर्थिक विकास के सारे प्रयास निष्फल सिद्ध हो रहे हैं।

भारत में शिक्षा का स्तर अभी भी बहुत नीचा है। देश में अभी भी लगभग 27 प्रतिशत जनसंख्या शिक्षित नहीं है। 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में साक्षरता का प्रतिशत 73.0 है। स्त्रियों का साक्षरता अनुपात पुरूषों की अपेक्षा बहुत कम है।

भारत में अधिकतर लोग रूढ़ियों तथा पुरानी परम्पराओं से प्रभावित है। नये विचार अपनाने में इस प्रकार के लागों को कठिनाई होती है। परम्पराओं एवं रूढ़ियों के प्रभाव में जब लोग जन्म निरोध के नए उपाय नहीं अपनाते और बच्चे पैदा होने के विरूद्ध कोई प्रयास नहीं करते तब जन्म दर ऊँचे स्तर की बने रहना स्वाभाविक है।

ग्रामीण भारतीय जीवन अभी भी धर्म की रूढ़ियों तथा अन्ध विश्वासों के वश में कहा जा सकता है। धार्मिक रूढ़ियों के विरूद्ध लोगों को समझाना कठिन होता है। परम्पराओं एवं रूढ़ियों के कारण सीधे–सीधे लोग अभी भी प्रकृति के विरूद्ध किया गया कोई प्रयास अच्छा नहीं समझते। प्रजनन के सम्बन्ध में भी लगभग यही भावना कार्य करती है।

भारत में संयुक्त परिवार प्रथा विद्यमान है। संयुक्त परिवार में पैदा होने वाले बच्चे के भरण–पोषण का दायित्व माता–पिता पर न होकर सम्पूर्ण परिवार पर होता है अतः बच्चा पैदा होने के विरूद्ध कोई विवशता नहीं होती। संयुक्त परिवार प्रथा विवाह की आयु के कम होने को भी प्रोत्साहित करती है।

समाज में स्त्रियों का कम सम्मान होना भी परिवार के बड़े आकार का कारण बनता है। समाज में स्त्रियों को बच्चा पैदा करने की मशीन समझ लिया जाता है तथा उसकी सुख–सुविधा तथा कल्याण पर ध्यान नहीं दिया जाता है।

भारतीय समाज अभी बहुत हद तक ग्रामीण समाज है। अन्य देशों की अपेक्षा यहाँ नगरीकरण कम हुआ है। 2011 की जनगणना के अनुसार देश की 68.84 प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में तथा शेष 31.16 प्रतिशत जनसंख्या नगरों में रहती है। गाँवों में लोग सादा जीवन बिताते हैं, कृषि करते हैं, परम्पराओं तथा रूढ़ियों में बंधे रहते हैं तथा संयुक्त परिवार से सम्बद्ध रहने के कारण कम आयु में ही विवाह कर लेते हैं। परिवार नियोजन की विधियों को अपनाने में कोई रूचि नहीं दिखाते इस कारण गाँवों में जन्म दर ऊँची रहती है।

जनंसख्या वृद्धि के सामाजिक–आर्थिक प्रभाव

अनियन्त्रित रूप से बढ़ रही आबादी हमारी विकासशील अर्थव्यवस्था के लिए सबसे बड़ी चुनौती बनी हुई है। यह देश की विकास गतिविधियों को लगातार सीमित, नाकाफी और अपर्याप्त साबित करने पर तुली हुई है। गाँव से शहरों की ओर पलायन, आवास, खाद्यान्न एवं जलापूर्ति की समस्या, परिस्थितिकीय असन्तुलन, आदि बढ़ी आबादी के परिणाम है।

- जनसंख्या वृद्धि से पर्यावरण की समस्या उत्पन्न हो गई है।
- व्यक्ति ने भौतिकवादी सुविधाओं के चलते प्राकृतिक सम्पदाओं का निर्मम एवं अवैधानिक तरीके से विदोहन किया है जिससे हमारी प्रकति असन्तुलित हो गई है।
- आधुनिक खेती के नाम पर कीटनाशक एवं रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग अत्यधिक किया जा रहा है जिससे लोगों के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है।
- आवासीय समस्या हल करने के लिए कृषि योग्य भूमि पर मकानों का निर्माण अव्यवस्थित रूप में किया गया है। यदि यही स्थिति रही तो कुछ समय पश्चात् खाद्यान्न की समस्या अपना विकराल रूप धारण कर लेगी।
- अनेक पशु पक्षियों एवं वन्य जीवों का अस्तित्व ही खतरे में हो गया है जो कि हमारे पर्यावरण को सन्तुलित करने में बहुत अधिक सहायक होते थे।
- देश में उपलब्ध जल का 70 प्रतिशत भाग प्रदूषित जल की श्रेणी में आ गया है और जिसमें 30 प्रतिशत विषाक्तता के स्तर पर पहुँच चुका है जो संक्रामक रोगों को फैलाने में बहुत सहायक होता है। इससे 15 लाख बच्चों की प्रतिवर्ष मृत्यु हो जाती है।
- जल का स्तर दो गुना तथा कहीं–कहीं तीन गुना तक नीचे चला गया है। यदि जनसंख्या वृद्धि इसी गति से होती रही तो भविष्य में जल की समस्या विकराल रूप धारण कर लेगी।
- लोगों द्वारा अनेक जगहों पर पर्यटन स्थल विकसित करने

से लोग उन जगहों पर एकत्रित होते हैं और गन्दगी एवं कूड़ा–करकट फैलाकर प्रकृति के साथ छेड़छाड़ करते हैं जिससे अनेक औषधियुक्त पौधे भी विलुप्त होने के कगार पर है।

- प्रकृति के साथ अनावश्यक छेड़छाड़ करने से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मौसम परिवर्तन, समुद्र व जीव जन्तुओं पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है और तापमान में वृद्धि होकर बर्फ सामान्य से अधिक मात्रा में पिघलने लगी है। साथ ही कार्बन डाइ–ऑक्साइड जैसी ग्रीन हाऊस प्रभाव वाली गैस की निरन्तर बढ़ी है जो मानव के जीवन पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है।
- वनों के कटान से कुछ इस रूप से भी पड़ा है कि कुछ क्षेत्रों में लगातार सुखा एवं कुछ क्षेत्रों में भयंकर बाढ़ की स्थित बन जाती है। सूखा पड़ने से वनों में प्रायः आगजनी की घटनाएँ देखने व सुनने को मिलती है।
- अधिक मात्रा में वाहनों का प्रयोग होने लगा है जिससे दुर्घटनाएँ एवं वाहनों से निकले धुएँ से वायु प्रदूषण एवं ध्वनि प्रदूषण निरन्तर बढ़ता जा रहा है। जो मानव के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है।
- सरकार विकास हेतु बनाई गई योजनाओं को लागू नहीं कर पाती, क्योंकि वह धन अन्य विकास कार्यक्रमों पर खर्च जो जाता है।
- अधिकतर लोग कुपोषण का शिकार हो रहे हैं। आए दिन भूख से मरने की घटनाएँ देखने और सुनने को मिलती है।
- देश का आर्थिक विकास एवं वृद्धि अवरूद्ध हो रही है।
- समाज में झगड़े, जातिवाद, धर्मवाद, क्षेत्रवाद, आदि को प्रोत्साहन मिलने से कानून व्यवस्था भी प्रभावित होती है।
- बेरोजगारी की समस्या का सामना भी लोगों को करना पड़ रहा है।
- जानलेवा बीमारियों जैसे एड्स, यौन रोग, पोलियो, खसरा, चेचक आदि के संक्रमण का खतरा बढ़ रहा है।

जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित करने के उपाय

(1) विवाह की आयु में वृद्धि : विवाह की निर्धारित न्यूनतम आयु लड़कों के लिये 21 वर्ष एवं लड़कियों के लिए 18 वर्ष में वृद्धि करना आवश्यक है। यदि लड़कियों की विवाह योग्य आयु बढ़ेगी तो वह न केवल शिक्षित होंगी बल्कि सामाजिक एवं साँस्कृतिक कार्यों में भाग लेने में भी उसकी रूचि जागृत होगी, जिसके कारण सन्तानोत्पत्ति पर नियंत्रण संभव होगा।

(2) आर्थिक समृद्धि : मानव की भौतिक रूचि उत्पादन में वृद्धि के प्रयास करने में बढ़ती है। अतः इसके कारण जीवन स्तर ऊँचा होने पर वह भविष्य के लिए अनेक योजनाओं का निर्माण करता है। इससे भी जनसंख्या नियंत्रण को बल मिलता है।

(3) परिवार कल्याण कार्यक्रमों का विस्तार : राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थानों द्वारा इस क्षेत्र में जन जागरण अभियान चलाकर इस सम्बन्ध में आम जन को अधिकाधिक जोड़ने का प्रयास करना चाहिए।

(4) शिक्षा : शिक्षा द्वारा सामाजिक–साँस्कृतिक समस्याओं का हल निकाला जा सकता है। अतः परिवार कल्याण कार्यक्रमों की उचित क्रियान्विति के लिये अधिकाधिक जनसंख्या को शिक्षित करना अति आवश्यक है। इसके माध्यम से लोग न केवल परिवार को छोटा रखने एवं जीवन स्तर को ऊँचा उठाने के लिए प्रयास करेंगे अपितु वे जीवन के प्रति बुद्धि–संगत दृष्टिकोण भी विकसित कर सकेंगे।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

1. भारत जनसंख्या की दृष्टि से चीन के पश्चात् विश्व में अपना दूसरा स्थान रखता है।
2. भारत का क्षेत्रफल विश्व का लगभग 2.4 प्रतिशत है।
3. भारत की कुल जनसंख्या 1210193422 (2011) है, जिनमें 623724248 पुरुष तथा 586469174 महिला है।
4. भारत जनसंख्या के वितरण एवं घनत्व में असमानता दृष्टि गोचर होती है।
5. भारत की जनसंख्या वृद्धि दर सन् 1921 में ऋणात्मक रही है।
6. भारत का औसत जनसंख्या घनत्व सन् 2011 की जनगणना के अनुसार 382 व्यक्ति प्रतिवर्ग किमी है।
7. राज्यानुसार भारत में पश्चिम बंगाल में सर्वाधिक जनसंख्या घनत्व (1029 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर) तथा केन्द्रशासित प्रदेश दिल्ली में (11297 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर) पाया गया।
8. भारत में जनसंख्या की वृद्धि दर 2001–2011 के काल में 17.64 प्रतिशत रही है।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक

1. निम्न में से किस जनगणना–दशक में लिंगानुपात में भारतवर्ष में सबसे अधिक गिरावट दर्ज की गयी
   (अ) 1911–21 (ब) 1921–31

(स) 1951–71 (द) 1961–71

2. न्यूनतम लिंगानुपात जिस जनगणना वर्ष में था, वह है–
(अ) 1991 (ब) 2001
(स) 1901 (द) 1951

3. भारत में जनसंख्या का वितरण किस फसल के वितरण प्रारूप के अनुरूप है, वह है–
(अ) चावल (ब) मक्का
(स) गेहूँ (द) कपास

4. 2011 में हुई जनगणना के अनुसार किस राज्य में जनसंख्या घनत्व सबसे कम था–
(अ) केरल (ब) अरूणाचल प्रदेश
(स) नागालैण्ड (द) गोवा

5. भारत में प्रथम जनगणना किस वर्ष की गई–
(अ) 1945 (ब) 1851
(स) 1872 (द) 1951

6. जनसंख्या के संदर्भ में किस वर्ष को 'महान जन विभाजन का वर्ष' कहा गया, जिसके पश्चात् भारतीय जनसंख्या में निरन्तर व त्वरित वृद्धि दर्ज की गई–
(अ) 1911 (ब) 1921
(स) 1941 (द) 1951

7. भारत में अन्तिम जनगणना किस वर्ष हुई थी।
(अ) 1981 (ब) 1991
(स) 2011 (द) 2004

8. 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में औसत जन घनत्व (व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है)–
(अ) 294 (ब) 321
(स) 382 (द) 390

9. भारत का सर्वाधिक जनसंख्या घनत्व वाला राज्य है–
(अ) पश्चिम बंगाल (ब) महाराष्ट्र
(स) उत्तर प्रदेश (द) बिहार

10. भारत में सर्वाधिक प्रतिशत जनसंख्या वृद्धि वाला राज्य है–
(अ) उत्तर प्रदेश (ब) बिहार
(स) मेघालय (द) मध्य प्रदेश

अतिलघूत्तरात्मक

11. वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या कितनी है?
12. भारत का कौनसा राज्य 2011 की जनगणनानुसार न्यूनतम घनत्व वाला रहा ?
13. 2011 की जनगणना के अनुसार जनसंख्या की दृष्टि से भारत का कौनसा राज्य बड़ा है?
14. भारत में जनसंख्या वृद्धि (2001–2011) सर्वाधिक किस राज्य की रही है ?
15. भारत का औसत जनसंख्या घनत्व (2011) कितना है?
16. सन् 2011 की जनगणना अनुसार जनसंख्या की दृष्टि से विश्व में भारत का कौनसा स्थान है ?

लघूत्तरात्मक

17. भारत की जनसंख्या को कौनसे भौगोलिक कारक प्रभावित करते हैं?
18. जनसंख्या वितरण एवं घनत्व में अन्तर स्पष्ट कीजिए?
19. जनसंख्या वृद्धि किसे कहते हैं।
20. भारत की औसत जनसंख्या वृद्धि दर 2001 से 2011 के दशक में कितनी थी ?
21. जनसंख्या घनत्व (2011) के अनुसार भारत का कौनसा राज्य सर्वाधिक घनत्व वाला है?

निबंधात्मक

22. भारत में जनसंख्या वितरण के असमानता के कारणों का विस्तार से वर्णन कीजिए।
23. जनसंख्या घनत्व के प्रकार की व्याख्या कीजिये।
24. भारत में जनसंख्या वृद्धि की व्याख्या कीजिए।

आंकिक

25. भारत के मानचित्र में उचित विधि द्वारा जनसंख्या वितरण (2011) को दर्शाइये।
26. भारत में जनसंख्या घनत्व के विरण को दर्शाइए।

पाठ 14
भारत : जनसंख्या संरचना
(INDIA : Composition of Population)

किसी भी देश की जनसंख्या संरचना, वहाँ की जनसंख्या की सामाजिक विशेषताओं को प्रकट करती है, जिसमें आयु व लिंग का विश्लेषण, निवास का स्थान, मानवजातीय लक्षण, जनजातियाँ, भाषा, धर्म, वैवाहिक स्थिति, साक्षरता और शिक्षा व्यावसायिक विशेषताएँ आदि का अध्ययन किया जाता है। यहाँ हम भारत की जनसंख्या संरचना ग्रामीण–नगरीय विशेषताओं, लिंगानुपात, आयु वर्ग के प्रतिरूपों, साक्षरता तथा जनसंख्या के प्रजातीय भाषायी और धार्मिक संघटन का अध्ययन करेंगे।

ग्रामीण–नगरीय जनसंख्या

भारत मूलतः ग्राम प्रधान देश है। 1921 में यहाँ 88.8 प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में निवास करती थी। किन्तु क्रमशः औद्योगिक विकास होने पर नगरीयकरण की प्रवृत्ति बढ़ी तथा नगरीय जनसंख्या में वृद्धि हुई।

ग्रामीण जनसंख्या

भारत की अधिकतर जनसंख्या गाँवों में निवास करती है। ग्रामीण जनसंख्या की सबसे बड़ी विशेषता कृषि और उससे जुड़े प्राथमिक कार्यों में निर्भरता है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार देश में कुल गाँवों की संख्या 6,40,867 है। गाँवों की संख्या की दृष्टि से उत्तरप्रदेश (106,704), मध्यप्रदेश (54,903), उड़ीसा (51,313), बिहार (44,874), राजस्थान (44,672), महाराष्ट्र (43663) तथा पश्चिम बंगाल (40,203) क्रमशः महत्त्वपूर्ण है। देश में ग्रामीण जनसंख्या का सर्वाधिक केन्द्रण निम्न राज्यों में है। हिमाचल प्रदेश (89.96%), बिहार (88.70%), असम (85.92%), उड़ीसा (83.32%), मेधालय (79.92%), उत्तर प्रदेश (77.72%) तथा अरुणाचल प्रदेश (77.33%) राज्यों में जनसंख्या गाँवों में निवास करती है।

नगरीय जनसंख्या

सन् 1981 की जनगणना के अनुसार भारत में विभिन्न आकार वाले 3245 नगर थे। जिनमें 19.50 करोड़ जनसंख्या निवास करती थी। इस प्रकार देश की कुल जनसंख्या में नगरीय जनसंख्या का अनुपात 23.4 प्रतिशत था। बीसवीं सदी के प्रारम्भ में नगरों में बसने वाली कुल जनसंख्या मात्र 1.99 करोड़ थी। आरेख 14.1 में भारत में नगरीय जनसंख्या में पिछले 100 वर्षों की वृद्धि को दर्शाया गया है।

आरेख 14.1 :भारत–नगरीय जनसंख्या में दशकीय वृद्धि (1901–2011)

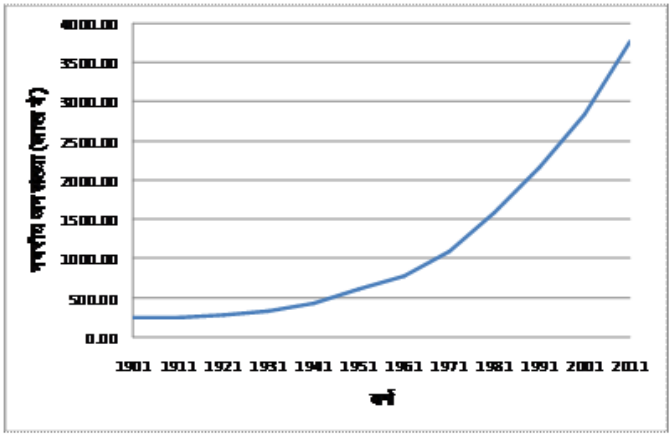

आरेख 14.1 से स्पष्ट है कि सन् 1931 तक नगरीय जनसंख्या की वृद्धि प्राकृतिक वृद्धि के समकक्ष थी। तदुपरान्त नगरीय वृद्धि के इतिहास में एक महत्वपूर्ण जनांकिकी विभाजन दृष्टिगत होता है। सन् 1951–61 के दशक को छोड़कर 1931 के बाद नगरीय जनसंख्या में सतत् वृद्धि अंकित की गई है।

नगरीय जनसंख्या : राज्यस्तर 2011

सन् 2011 में भारत में नगरों की कुल संख्या 7935 है। नगरों की संख्या की दृष्टि से तमिलनाडु (721), उत्तर प्रदेश (648), मध्यप्रदेश (364), महाराष्ट्र (256), कर्नाटक (220), गुजरात (195) तथा राजस्थान (185) राज्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है। 2011 की जनसंख्या की संरचना में नगरीय जनसंख्या का उच्च प्रतिशत दर्ज करने वाले राज्य इस प्रकार रहे हैं– मिजोरम (51.51%) तथा न्यूनतम हिमाचल प्रदेश (10.04%) में मिलता है।

देश के तमिलनाडु (48.45%), केरल (47.72%), महाराष्ट्र (45.23%), गुजरात (42.58%), कर्नाटक (38.57%) तथा पंजाब (37.49%) राज्य में जनसंख्या नगरों में निवास कर रही है।

भारत में नगरीय जनसंख्या वृद्धि के कारण

भारत में आर्थिक प्रगति के साथ–साथ जनसंख्या में नगरीयकरण की प्रवृत्ति बढ़ रही है। देश में जहाँ सन् 1911 में नगरीय जनसंख्या कुल जनसंख्या की केवल 10 प्रतिशत था जो अब सन् 2011 में बढ़कर 31.20 प्रतिशत हो गया। भारत में नगरीकरण की प्रवृत्ति के बढ़ने के निम्न कारण है–

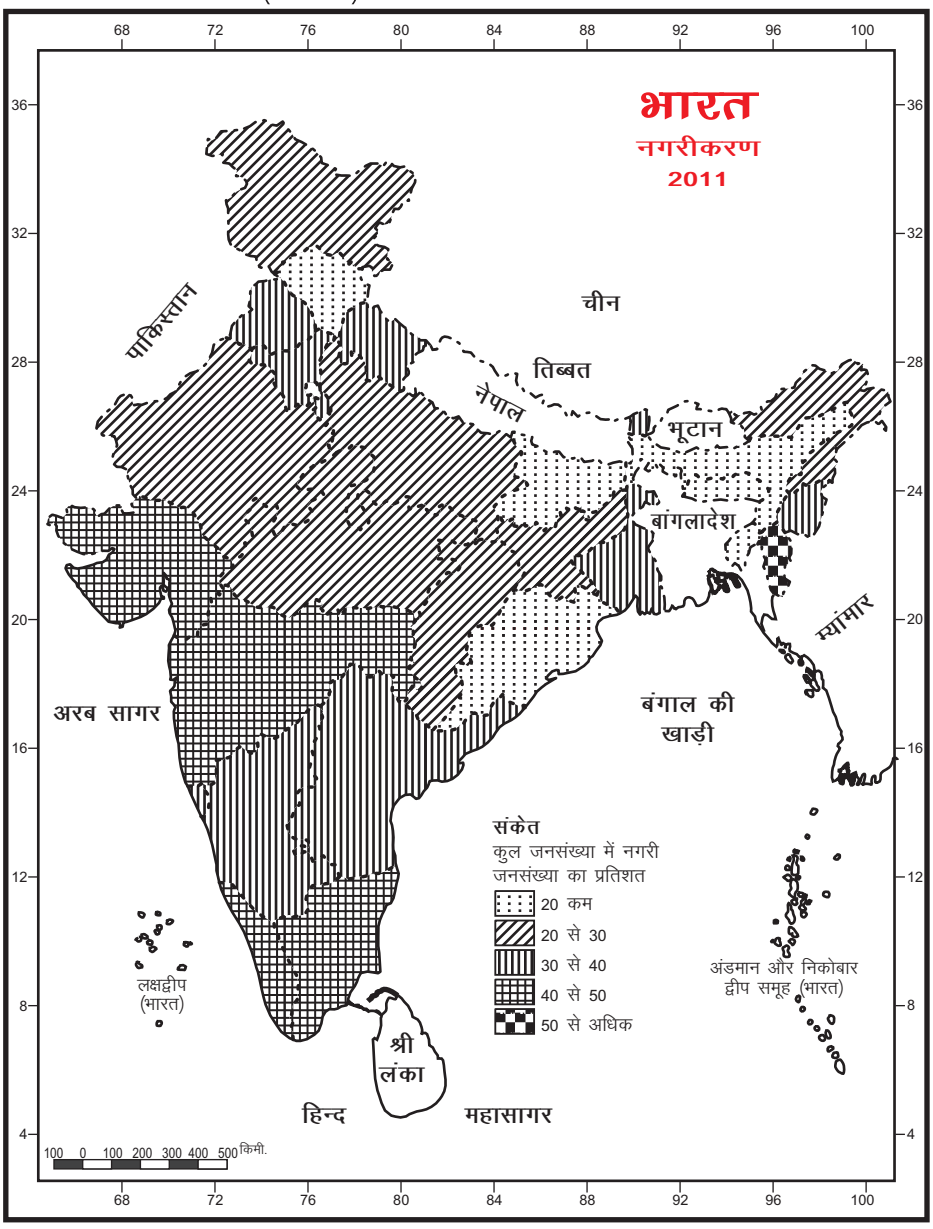

मानचित्र 14.1 : भारत में नगरीकरण 2011

(1) ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार का अभाव

(2) नगरों में गाँवों की अपेक्षा अधिक सुविधाएँ

(3) नगरीय आकर्षण

(4) शिक्षा का प्रसार

(5) औद्योगिकीकरण

(6) परिवहन एवं संचार साधनों का विकास

(7) कृषि का अलाभकारी होना।

(8) लघु एवं कुटीर उद्योगों की समाप्ति।

इन कारणों से ग्रामीण क्षेत्र की जनसंख्या नगरों की ओर स्थानान्तरित हुई है। नगरों के बढ़ते आकार के कारण नगरीय पर्यावरण, लिंगानुपात, नगरीय समस्याओं, सामुदायिक सुविधाओं पर विपरित प्रभाव दिखायी दे रहा है।

लिंगानुपात

जनसंख्या में स्त्री–पुरुष की संख्या के अनुपात को लिंगानुपात कहते हैं। इसमें प्रति 1000 पुरुषों पर स्त्रियों की संख्या की गणना की जाती है। अर्थव्यवस्था और समाज के विकास में यह (स्त्री–पुरुष) अनुपात एक महत्त्वपूर्ण कारक है।

$$\text{लिंगानुपात} = \frac{\text{कुल स्त्रियों की जनसंख्या}}{\text{कुल पुरूषों की जनसंख्या}} \times 1000$$

भारत में लिंगानुपात

भारत में सन् 1901 में 972, सन् 1931 में 950 तथा सन् 1981 में 934 लिंगानुपात था। 1991 में यह अब तक का न्यूनतम 927 रह गया, जो सारणी 14.3 से स्पष्ट है। भारत में प्रति हजार पुरुषों पर स्त्रियों की संख्या क्रमशः कम होती गयी। भारत में प्रायः सभी विकसित देशों की तुलना में स्त्रियों की संख्या कम है।

सारणी 14.1 : भारत में लिंगानुपात (1901–2011)

जनगणना वर्ष	प्रति हजार पुरुषों पर स्त्रियाँ
1901	972
1911	964
1921	955
1931	950
1941	945
1951	946
1961	941
1971	930
1981	934
1991	927
2001	933
2011	940

आरेख 14.2 : भारत में लिंगानुपात (1901–2011)

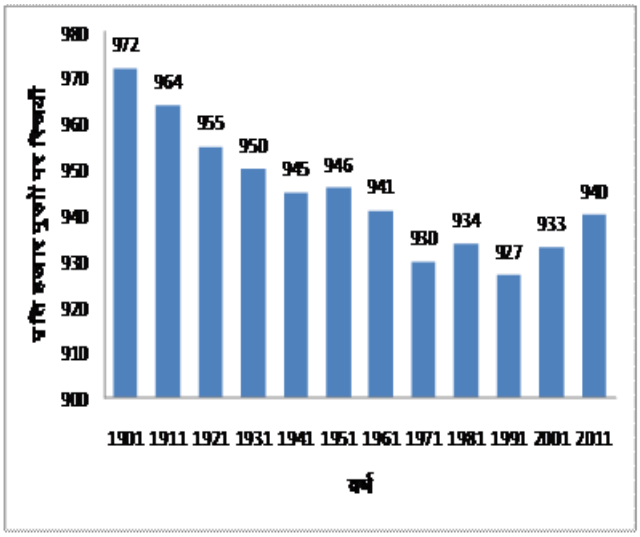

भारत में लिंगानुपात विश्व के औसत (984) से बहुत कम है। वस्तुतः भारत में यौन अनुपात बीसवीं सदी के प्रारम्भ से ही नकारात्मक रहा है। सारणी 14.3 एवं आरेख 14.2 से स्पष्ट है कि स्वतंत्रता के पूर्व 1901–1941 के जनगणना के दौरान यौन अनुपात में निरन्तर गिरावट दर्ज हुयी है। जो 1971 में घटकर मात्र 930 रह गया। 2011 में जनगणना वर्ष की अपेक्षा 7 अंको की वृद्धि के साथ देश में लिंगानुपात 940 दर्ज हुआ है। लिंगानुपात का कम होना कई सामाजिक समस्याओं का कारण बनता है।

राज्य स्तर पर लिंगानुपात

2011 के अनुसार भारत में औसत लिंगानुपात (940) है। इसके द्वारा एक औसत स्थिति का आंकलन होता है। परन्तु एक राज्य से दूसरे राज्य में लिंगानुपात में बहुत विषमताएं दिखाई देती है। सन् 2011 की जनगणना के अनुसार औसत लिंगानुपात 940 को आधार मानकर राज्यों को दो भागों विभक्त किया जा सकता है–

(1) राष्ट्रीय औसत से अधिक लिंगानुपात वाले राज्य : केरल (1084), तमिलनाडु (995), आन्ध्रप्रदेश (992), राज्यों तथा पाण्डीचेरी (1031), लक्षद्वीप (945) आदि केन्द्रशासित प्रदेशों में अवरोही क्रम में उच्च लिंगानुपात दर्ज किया गया है।

(2) राष्ट्रीय औसत से कम लिंगानुपात वाले राज्य : 2011 में राज्यों में न्यूनतम यौन अनुपात हरियाणा (877) जम्मू कश्मीर (883) एवं सिक्किम (889) तथा केन्द्रशासित प्रदेशों में दमन एवं द्वीप (618), दादरा एवं नगर हवेली (775) तथा चण्डीगढ़ (818) में पाया गया है।

2001 एवं 2011 की अवधि में तीन बड़े राज्यों (बिहार, जम्मू–कश्मीर तथा गुजरात) तथा तीन केन्द्रशासित प्रदेशों (दमन एवं द्वीव, दादरा एवं नगर हवेली तथा लक्षद्वीप) में लिंगानुपात के अनुपात में कमी आई है। सर्वाधिक गिरावट दमन एवं द्वीव (92) दर्ज हुयी है। एक दशक में सर्वाधिक वृद्धि मिजोरम में व सबसे कम वृद्धि उत्तराखण्ड में हुई है। राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली में लिंगानुपात में भी वृद्धि हुई है।

भारत में लिंगानुपात कम होने के कारण

(1) बालिकाओं की अपेक्षा बालकों को प्राथमिकता देना : भारत में अनेक सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक कारणों से लड़कों को वरीयता दी जाती रही है। पुत्र की इच्छा के कारण जन्म से पूर्व ही लिंग जाँच करवाकर कन्या–भ्रूण की हत्या करवाना प्रमुख कारण रहा है।

(2) बाल–विवाह के कारण प्रसव काल में मृत्यु : भारत में बाल–विवाह के कारण बहुत सी बालिकाओं का कम उम्र में ही मातृत्व भार तथा दाम्पत्य जीवन में संतानोत्पत्ति के कारण स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। असामायिक मृत्यु से स्त्रियों की संख्या में कमी आती है।

(3) स्त्रियों की आर्थिक परतन्त्रता : भारत में स्त्रियाँ

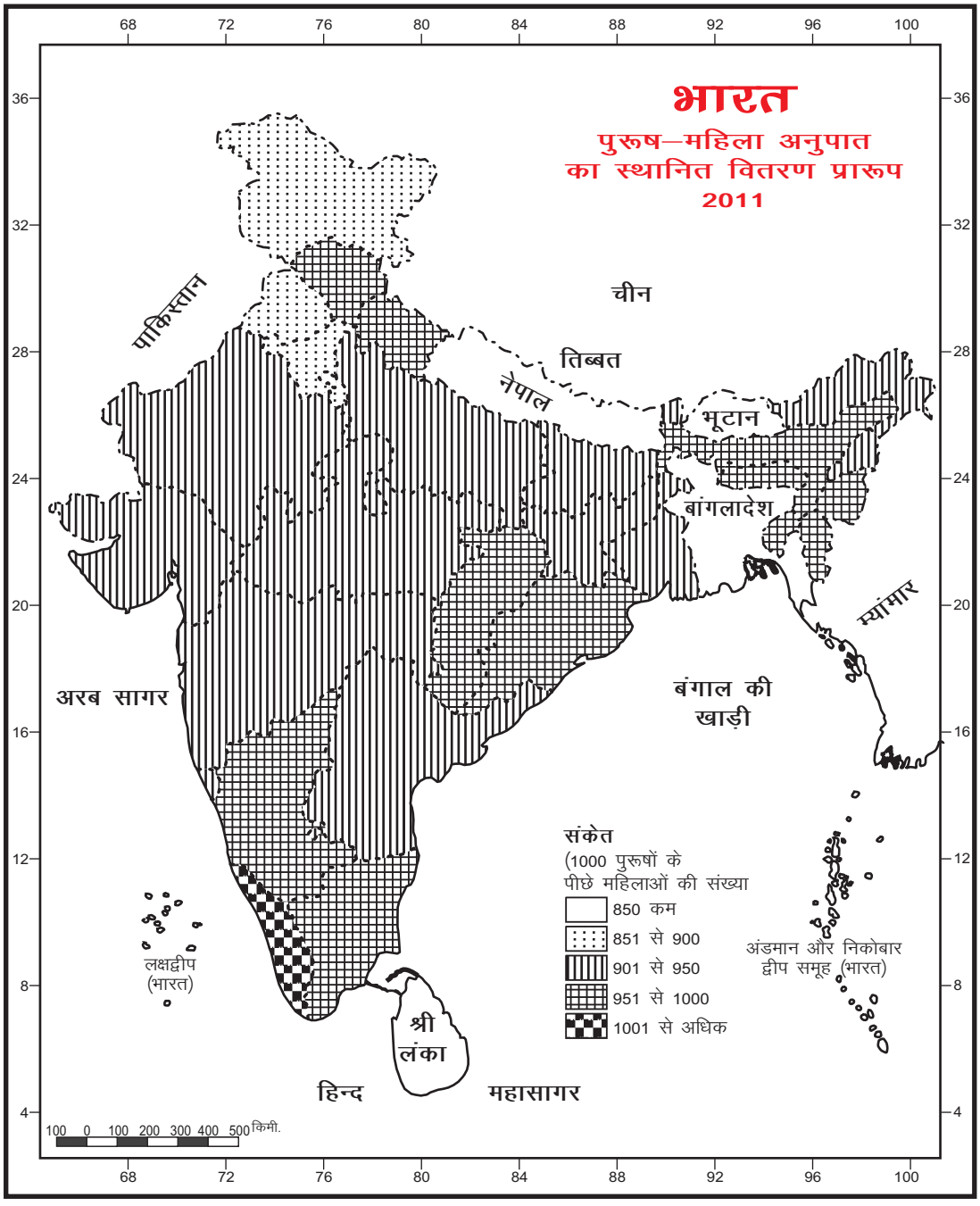

आर्थिक दृष्टि से पुरुषों पर निर्भर रहती हैं। उनको गरीबी में आर्थिक संकटों से जूझना, चिन्ताग्रस्त रहना और पर्याप्त स्वास्थ्य एवं चिकित्सा के अभाव में कम अवस्था में ही मृत्यु हो जाने के कारण स्त्रियों की संख्या घट रही है।

(4) बालिका शिक्षा का अभाव : देश में बालिका शिक्षा की कमी के कारण वे आर्थिक रूप से आत्म निर्भर नहीं है। अपने स्वयं के साथ हुए मानसिक, शारीरिक व सामाजिक अन्याय का प्रतिरोध नहीं कर सकती है।

(5) बढ़ता नगरीकरण : नगरीयकरण की प्रवृत्ति से ग्रामीण व नगरीय दोनों क्षेत्रों में लिंगानुपात बिगड़ रहा है।

आयु संरचना

जनसंख्या के आयुवर्ग के अध्ययन से श्रम–शक्ति, आश्रित जनसंख्या, दीर्घ आयु आदि के बारे में जानकारी प्राप्त होती है। आयु वर्ग की दृष्टि से जनसंख्या को तीन प्रमुख वर्गों में रखा जा सकता है–

(अ) बाल (0–14 वर्ष आयु)

(ब) वयस्क (15–64 वर्ष आयु)

(स) वृद्ध (65 वर्ष से अधिक आयु)

2011 की जनगणना के अनुसार देश की 29.5 प्रतिशत जनसंख्या किशोर वर्ग, 62.5 प्रतिशत प्रौढ़ वर्ग तथा 8.4 प्रतिशत वृद्ध वर्ग में समाहित है। इससे एक और भारत की अधिक कार्यशील जनसंख्या तथा उच्च निर्भरता अनुपात का बोध होता है, वहीं दूसरी ओर, किशोर वर्ग के ऊँचे प्रतिशत से भविष्य में तीव्र जनसंख्या वृद्धि का भी संकेत मिलता है। आर्थिक दृष्टि से यह एक आश्रित तथा अनुत्पाद वर्ग है, जिसकी भोजन, वस्त्र, शिक्षा, चिकित्सा आदि पर सर्वाधिक खर्च होता है।

भारत जनांकिकीय संक्रमण की तृतीय अवस्था में है क्योंकि यहाँ प्राकृतिक वृद्धिदर उच्चतम है। उच्च जन्मदर के कारण 0–14 आयुवर्ग में 29 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या पाई जाती है। भारत का आयु पिरामिड चौड़े आधार तथा नुकीले शिखर वाला है, जो जनसंख्या की गतिशीलता का द्योतक है। भारतीय जनसंख्या की आयु संरचना का विवेचन यदि आयुवर्ग के अनुसार किया जाता है तो निम्न प्रकार चारों वर्गों की विशेषताएं दृष्टिगत होती है।

(अ) बाल आयुवर्ग (0–14 आयु समूह) – वर्ष 1991 की जनसंख्या के अनुसार 36.5%, 2001 में 35.6% तथा 2011 में 29.5% प्रतिशत जनसंख्या किशोर आयु वर्ग की है।

(ब) वयस्क आयुवर्ग (15–64 आयु समूह) – इस आयु वर्ग में 2001 में 58.1 प्रतिशत तथा 2011 में 62.5 प्रतिशत लोग पाये गये जो जनसंख्या के अधिकाँश भाग को प्रकट करती है। यह कार्यशील जनसंख्या है। इसमें दो उपवर्ग हो सकते हैं– युवा वर्ग (15–34 वर्ष), प्रौढ़ (35–59 वर्ष)

(स) वृद्ध आयुवर्ग (65 से अधिक आयु समूह) – वर्ष 2001 में इस आयुवर्ग का प्रतिशत 6.3 जो 2011 में बढ़कर 8.0 प्रतिशत हो गया। जो पाश्चात्य देशों की तुलना में अभी भी बहुत ही कम है।

भारत की लगभग 33 प्रतिशत जनसंख्या युवा है। जनगणना – 2011 में बाल जनसंख्या (0–6 वर्ष आयु) की विशेषतः गणना की गयी। देश में कुल बाल जनसंख्या 15,87,89,287 दर्ज हुई जो देश की कुल जनसंख्या का 13.12 प्रतिशत है। देश में 2001–2011 के दौरान बाल जनसंख्या में 3. 08 प्रतिशत की नकारात्मक वृद्धि दर्ज की गयी।

कुल बाल जनसंख्या की दृष्टि से उत्तर प्रदेश (2 करोड़ 97 लाख) तथा बिहार (एक करोड़ 85 लाख) राज्य क्रमशः प्रथम व द्वितीय, स्थान पर रहे। किन्तु कुल जनसंख्या में बाल जनसंख्या के प्रतिशत की दृष्टि से क्रमशः मेघालय (18.75), बिहार (17.90), जम्मू एवं कश्मीर (16.01), झारखण्ड (15.89), राजस्थान (15.31), मिजोरम (15.17) तथा उत्तरप्रदेश (14.90) राज्यों का स्थान रहा। तमिनाडु (9.56), गोआ (9.57) तथा केरल (9.95) राज्यों में न्यूनतम बाल जनसंख्या प्रतिशत दर्ज हुआ।

भारत में साक्षरता का प्रतिरूप

साक्षरता किसी भी सभ्य समाज के विकास का मापदण्ड है। इसका प्रभाव जनता के मानसिक, शारीरिक तथा आर्थिक स्थिति पर पड़ता है। दूसरी ओर यह देश की अर्थव्यवस्था, नगरीकरण, जीवन स्तर, जातीय संरचना, समाज में स्त्रियों की स्थिति, शैक्षणिक सुविधाएं, यातायात एवं परिवहन साधनों, तकनीकी विकास आदि का भी सूचक है।

मानव शास्त्रीय दृष्टिकोण से साक्षरता जनसंख्या का एक ऐसा सामाजिक पक्ष है, जिसके आधार पर सामाजिक विकास का मापदण्ड निश्चित किया जा सकता है। वस्तुतः साक्षरता के विकास से मनुष्य सीमित परिवेश से बाहर निकलकर अपने क्षेत्र की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक प्रवृत्तियों से अन्योन्याश्रित संबंध स्थापित कर लेता है, जिसे एक इकाई के रूप में मानव ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण समाज विकास–क्रम में आगे आ जाता है।

साक्षरता को प्रभावित करने वाले कारक

साक्षरता की वृद्धि और प्रसार, क्षेत्र में सम्पूर्ण सामाजिक–आर्थिक अन्तप्रक्रिया का परिणाम है जिनमें मुख्य है– (i) अर्थव्यवस्था का प्रसार, (ii) नगरीकरण का स्तर (iii) जीवन स्तर, (iv) जातीय संरचना, (v) समाज में स्त्रियों की स्थिति, (vi) मूल्य प्रणाली, (vii) शैक्षणिक सुविधाओं की उपलब्धता, (viii) यातायात व संचार साधनों का विकास, (ix) तकनीकी विकास का स्तर एवं (x) सार्वजनिक नीति आदि।

सारणी 14.2 : भारत में साक्षरता (प्रतिशत में)

जनगणना वर्ष	साक्षरता (प्रतिशत में)		
	कुल	पुरुष	महिला
1901	5.35	9.83	0.60
1911	5.92	10.56	1.05
1921	7.16	12.21	1.83
1931	9.50	15.59	2.93
1941	16.10	24.90	7.30
1951	18.33	24.16	8.96
1961	28.30	40.40	15.35
1971	34.45	45.96	21.97
1981	43.57	56.38	29.76
1991	52.21	64.13	39.29
2001	64.83	75.26	53.67
2011	74.04	82.14	65.46

आरेख 14.3 : भारत : साक्षरता (प्रतिशत) 2011

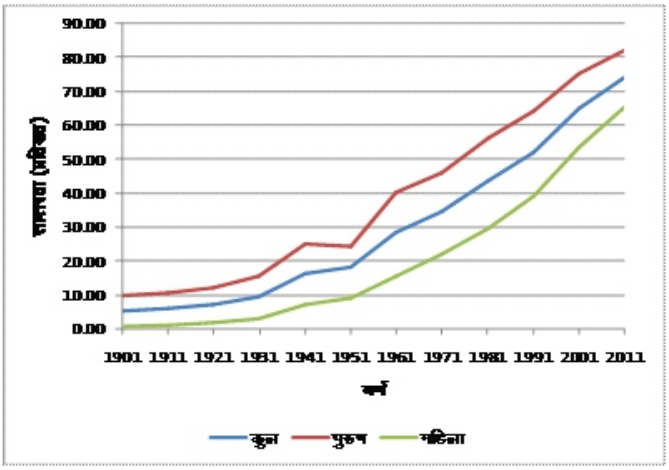

सारणी 14.6 एवं आरेख 14.4 से स्पष्ट है कि सन् 1961 के पश्चात् साक्षरता में तीव्र गति से वृद्धि हुई है। कुल साक्षरता सन् 1961 में 28.30 प्रतिशत थी, जो सन् 2011 में 74.04 हो गई है। इस प्रकार लगभग 50 वर्षों में साक्षरता में तीन गुनी वृद्धि हुई है। यह विभिन्न क्षेत्रों में विद्यालयों के विकास, साक्षरता सम्बन्धी सरकारी नीतियों और सामान्य जनसंख्या में जागरूकता आने जैसे कारणों से सम्भव हुआ है। पुरुष साक्षरता जो सन् 1961 में 40.40 प्रतिशत थी, 2011 में बढ़कर 82.14 प्रतिशत हो गई। इसी प्रकार महिला साक्षरता दर 1961 में 15.35 प्रतिशत थी जो बढ़कर 2011 में 65.46 प्रतिशत बढ़कर लगभग चार गुना हो गयी।

इससे स्पष्ट होता है कि देश में पुरुष साक्षरता की अपेक्षा महिला साक्षरता में तीव्र गति से वृद्धि हुई है। सन् 1981 के बाद तो साक्षरता वृद्धि की गति और तेज हो गई। महिला साक्षरता में तीव्र वृद्धि सामाजिक जागरूकता, सरकारी प्रोत्साहन, लैंगिक विभेदीकरण में कमी होना आदि कारणों का परिणाम है।

राज्यों के अनुसार साक्षरता

भारत में औसत साक्षरता (74.04 प्रतिशत) के आधार पर राज्यों को दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है।

(1) राष्ट्रीय औसत से अधिक साक्षरता वाले राज्य : इनमें केरल सर्वोच्च साक्षरता 93.91 प्रतिशत के साथ प्रथम स्थान पर। लक्षद्वीप (92.2 प्रतिशत) तथा मिजोरम (91.58 प्रतिशत) क्रमशः द्वितीय एवं तृतीय स्थान पर है। पुरुष साक्षरता दर में लक्षद्वीप (96.11) प्रतिशत प्रथम स्थान पर तथा केरल (96.10 प्रतिशत) द्वितीय स्थान पर रहे। महिला साक्षरता की सर्वोच्च दर केरल में (92.00 प्रतिशत) में दर्ज हुई है।

(2) राष्ट्रीय औसत से कम साक्षरता वाले राज्य : बिहार राज्य में साक्षरता 63.82 प्रतिशत है, जो सभी राज्यों से न्यूनतम है। राष्ट्रीय औसत से कम साक्षरता वाले राज्य जम्मू–कश्मीर (68.74 प्रतिशत), राजस्थान (67.06), मध्य प्रदेश (70.63), उत्तर प्रदेश (69.72), झारखण्ड (67.63), उड़ीसा (73.45), अरुणाचल प्रदेश (67.00) तथा असम (73.18) आदि मुख्य है।

राष्ट्रीय औसत से कम पुरुष साक्षरता दर भी न्यूनतम बिहार (73.5%) तथा अरुणाचल प्रदेश (73.69%) जबकि महिला साक्षरता दर का न्यूनतम प्रतिशत राजस्थान (52.70%) तथा बिहार (53.30%) में दर्ज हुआ है।

साक्षरता का क्षेत्रीय प्रतिरूप

देश में साक्षरता दर में सन् 1961 के बाद तेजी से वृद्धि हुई है। लेकिन इस बढ़ती साक्षरता दर का भौगोलिक रूप में क्षेत्रीय विश्लेषण किया जाए तो स्पष्ट होता है कि साक्षरता में तीव्र वृद्धि का क्षेत्रीय स्वरूप बहुत ही असमान है। साक्षरता के क्षेत्रीय प्रतिरूपक का विश्लेषण इसके भौगोलिक कारणों को उभारने में और अधिक सहायक हो सकता है।

मानचित्र 14.3 से स्पष्ट है कि सम्पूर्ण देश में साक्षरता के निम्नलिखित क्षेत्रीय प्रतिरूप उभरते हैं।

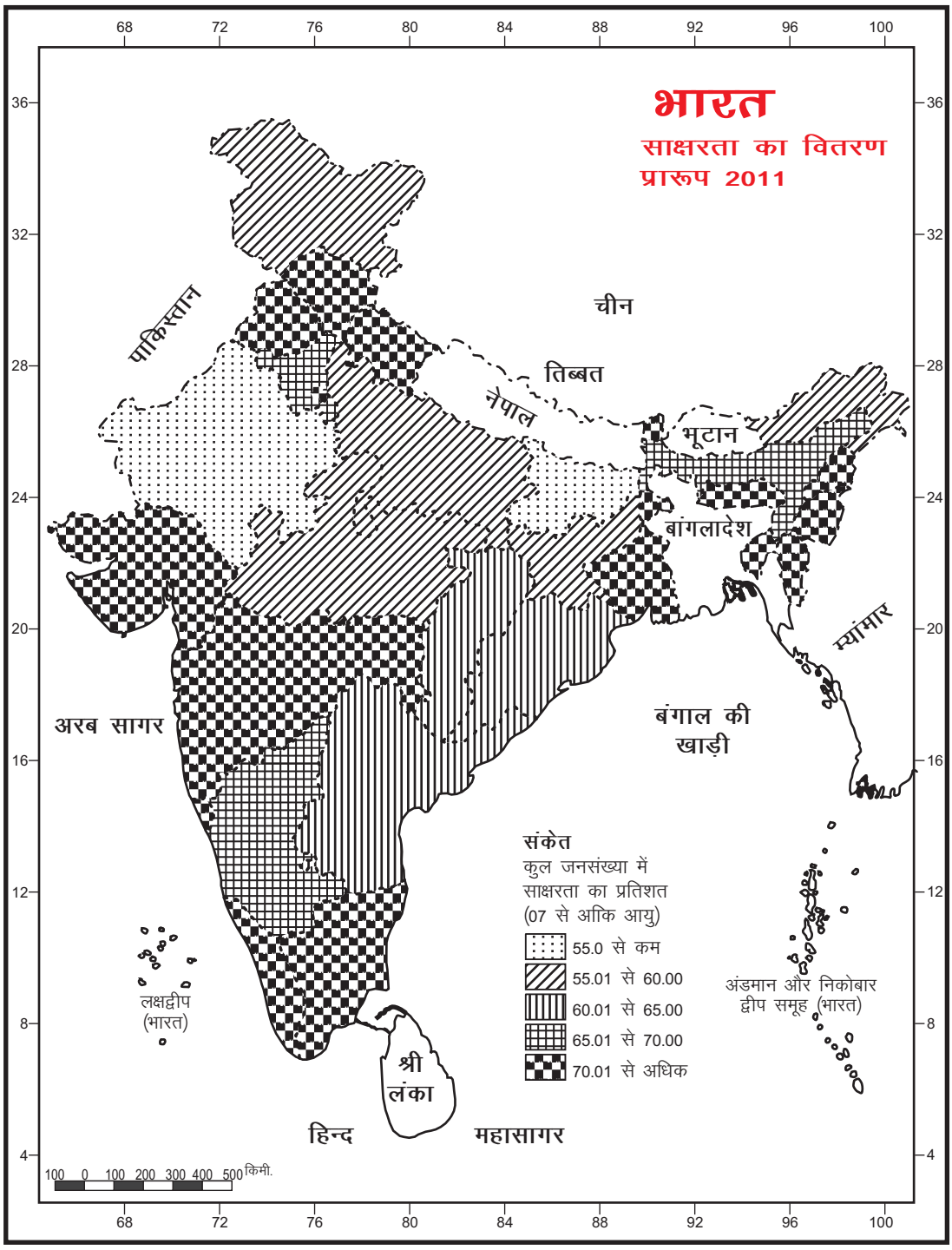

मानचित्र 14.3 : भारत साक्षरता का स्थानिक प्रारूप 2011

साक्षरता के प्रादेशिक प्रतिरूप को देखने से स्पष्ट होता है कि उत्तर की अपेक्षा दक्षिण में तथा आन्तरिक भागों की अपेक्षा तटीय क्षेत्रों में उच्च साक्षरता दर है मानचित्र 14.3 एवं सारणी 14.7 से स्पष्टतः तटीय स्थिति, इकाई जनसंख्या का उच्च अनुपात अपेक्षाकृत उच्च नगरीकरण, अधिक विशेषीकृत अर्थव्यवस्था, उच्च कृषि सम्पन्नता तथा ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत शिक्षा व्यवस्था को सर्वप्रथम प्रारम्भ किया जाना आदि कारकों से सम्बन्धित क्षेत्रों में साक्षरता दर उच्च थी, इसके विपरीत पिछड़ी कृषि– अर्थव्यवस्था एवं अल्प नगरीय औद्योगिक विकास वाले क्षेत्रों में साक्षरता दर निम्न थी।

भाषायी वर्ग

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में भाषाओं को प्रधानता देते हुए विभिन्न राज्यों का गठन किया गया। इससे विभिन्न भाषाओं के भौगालिक वितरण को एक नया प्रारूप मिला है। भारत एक भाषाई विविधता का देश है। विदेशी विद्वान ग्रीयर्सन के अनुसार ''देश में 1903 से 1928 तक हुए सर्वेक्षण के अनुसार भारत में 197 भाषाएँ एवं 544 के लगभग बोलियाँ बोली जाती थी।'' 1961 में भारतीय जनगणना विभाग ने 1018 विभिन्न भाषाओं एवं बोलियों के बारे में पता लगाया था। भारतीय संविधान में 22 भाषाएँ अनुसूचित है।

भारतीय भाषाओं को उनकी बोली एवं उत्पत्ति के आधार पर चार समूहों में वर्गीकृत किया गया है।

(1) इण्डो यूरोपीयन
(2) द्राविडियन
(3) साइनो–तिब्बतन्
(4) आस्ट्रो–एशियाटिक

देश की 98 प्रतिशत भाषाएँ प्रथम दो समूहों से सम्बन्ध रखती है। समय के साथ–साथ इन सभी भाषाओं के सापेक्षिक महत्त्व में परिवर्तन होता रहा है।

नवीं शताब्दी तक संस्कृत भाषा को प्रशासकीय भाषा का पद प्राप्त था, परन्तु आज यह भाषा उत्तर भारत में तो न के बराबर व्यवहार में आती है। यद्यपि यह सत्य है कि संस्कृत ही सभी भारतीय भाषाओं की जननी है। मुस्लिम काल में उर्दू एवं फारसी भाषाओं को महत्त्व प्राप्त हुआ। 18वीं शताब्दी में ब्रिटिश काल में फारसी व उर्दू भाषा के स्थान पर सरकारी कार्यों में अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया जाने लगा। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् हिन्दी भारत की लोकप्रिय भाषा के रूप में एवं राष्ट्र भाषा के रूप में देश के अधिकांश भागों में बोली एवं समझी जाती है। विश्व में अंग्रेजी व चीनी मन्दरित भाषा के बाद हिन्दी तीसरी भाषा है जो 337.3 मिलियन जनसंख्या की भाषा है। देश की अन्य प्रमुख भाषाएँ में बंगाली (8.3 प्रतिशत), तेलगू (7.87 प्रतिशत), मराठी (7.45 प्रतिशत), तमिल (6.32 प्रतिशत), उर्दू (5.18 प्रतिशत), गुजराती (4.85 प्रतिशत) लोगों द्वारा बोली जाती है। देश में अन्य प्रमुख भाषाओं में कन्नड़ (3.91 प्रतिशत), मलयालम (3.62 प्रतिशत), उड़ीया (3.35 प्रतिशत), पंजाबी (2.79 प्रतिशत), असमी (1.56 प्रतिशत) जनसंख्या की भाषा है। देश में 1 प्रतिशत से भी जनसंख्या वाली भाषाओं में सिन्धी, कोंकणी, मणिपुरी, कश्मीरी, संस्कृत व नेपाली है।

भाषाओं की प्रधानता के आधार पर गठित राज्यों में हालांकि एक प्रमुख भाषा की जनसंख्या की बहुलता है लेकिन उन राज्यों में भी अन्य भाषाओं के लोग अपनी प्रभावी उपस्थिति रखते हैं। जैसे– केरल में तमिल, तमिलनाडु में तेलगू, आन्ध्र प्रदेश में उर्दू, राज्यों में अन्य भाषाओं के लोग भी उल्लेखनीय उपस्थिति रखते हैं। वर्तमान में हिन्दी के साथ–साथ अंग्रेजी भाषा को सरकारी कार्यों में विशेष महत्त्व दिया जाता है। हिन्दी अभाषी राज्यों के लिये विशेष कर दक्षिणी भारत में अंग्रेजी अपना विशेष महत्त्व रखती है। भाषा किसी भी नृजातीय समूह की पहचान का प्रमुख संकेतक है। 2011 की जनगणना के अनुसार हिन्दी (48.69 करोड़ लोगों) (40.22 प्रतिशत) की मातृ भाषा है। प्रमुख भाषाओं के आधार पर भारत को 12 भाषायी प्रदेशों में विभाजित किया जा सकता है।

धार्मिक संरचना

भारतीय जनजीवन और जनसंख्या की प्रमुख विशेषता धार्मिक संरचना का होना है। इसका समाज की सामाजिक आर्थिक व राजनैतिक पहलूओं पर भी प्रभाव दिखाई देता है। भारत विश्व के चार प्रमुख धर्मों की जन्मस्थली है। हिन्दू, बौद्व, जैन एवं सिक्ख धर्म इसी भूमि पर विकसित और पल्लवित होकर विश्व के विभिन्न देशों में फैले हैं। आज भी भारत में सबसे प्रमुख धर्म हिन्दू है। जिसका जन्म वैदिक काल से पूर्व का माना जाता है। इसी आधार पर भारत को हिन्दुस्तान का नाम भी दिया जाता है।

भारत में जनसंख्या के धार्मिक संगठन में बड़े स्तर पर परिवर्तन हुए हैं। 1947 में भारत–पाकिस्तान विभाजन के कारण जनसंख्या का बड़े पैमाने पर स्थानान्तरण हुआ और इसका प्रभाव यहाँ की जनसंख्या की धार्मिक संरचना पर पड़ा।

विभाजन से पहले इस उपमहाद्वीप में कुल जनसंख्या का 66.5 प्रतिशत हिन्दू एवं 23.7 प्रतिशत मुस्लिम जनसंख्या थी। विभाजन के बाद यह अनुपात क्रमशः 84.1 व 9.8 रह गया। 1951 की जनगणना से स्पष्ट होता है कि इस वर्ष के पश्चात् हिन्दु जनसंख्या का अनुपात कुल जनसंख्या में घटा है और मुस्लिम जनसंख्या का अनुपात बढ़ा है। 1961 में हिन्दू जनसंख्या 83.4 प्रतिशत थी जो 2001 में घटकर 80.5 प्रतिशत रह गई जबकि इसी अवधि में मुस्लिम जनसंख्या प्रतिशत 10.7 से बढ़कर 13.4 पहुँच गया। सारणी 14.8 में भारत की जनसंख्या की धार्मिक संरचना प्रदर्शित की गई है–

सारणी 14.3 : भारत : धार्मिक संरचना (प्रतिशत)

समुदाय	1961	1971	1981	1991	2001	2011
हिन्दू	83.50	82.70	82.60	82.41	80.45	79.56
मुस्लिम	10.7	11.2	11.4	11.67	13.43	14.31
ईसाई	2.4	2.6	2.4	2.32	2.34	2.36
सिक्ख	1.8	1.9	2.0	1.99	1.87	1.74
बौद्ध	0.7	0.7	0.7	0.77	0.77	0.77
जैन	0.5	0.5	0.5	0.41	0.41	0.41
अन्य	0.4	0.4	0.4	0.43	0.73	0.85

भारत में वर्ष 2011 की कुल जनसंख्या का 79.56 प्रतिशत भाग हिन्दू धर्मावलम्बी है। देश में हिमाचल प्रदेश (95.43 प्रतिशत) में सर्वाधिक हिन्दू जनसंख्या तथा मिजोरम (3.55 प्रतिशत) अल्प हिन्दू जनसंख्या वाला राज्य है। जबकि 2011 के अनुसार कुल जनसंख्या में 14.31 प्रतिशत मुस्लिम धर्मावलम्बी है। इसका सर्वाधिक केन्द्रण लक्ष्यद्वीप (94.92 प्रतिशत), जम्मू–कश्मीर (66.97 प्रतिशत) तथा सबसे कम प्रतिशम मिजोरम में (1.14 प्रतिशत) है। जनसंख्या की दृष्टि से उत्तर प्रदेश में सबसे अधिक मुस्लिम जनसंख्या का निवास है। पश्चिमी बंगाल और बिहार का स्थान आता है।

प्रजातीय (नृतात्वीय) संगठन

भारतीय जनसंख्या में उन मानव प्रजातियों का सम्मिश्रण पाया जाता है जो प्रायः ऐतिहासिक काल के पूर्व से लेकर बाद के अनेक युगों में भारत में प्रवेश करती रही है। इसी कारण वर्तमान जनसंख्या उन लोगों का समूह है, जो विभिन्न प्रजातीय पृष्ठभूमि के कारण विभिन्नताएँ रखते हैं। वास्तव में भारत विभिन्न प्रजातियों का संगम स्थान है।

प्रो. पंचानन मित्रा के अनुसार निग्रोइट, आस्ट्रेलाइट प्रजातियों का मूल प्रदेश भारत था। नई खोजों के आधार पर यह निश्चित है कि मानव के पूर्वजों का आदि उदगम क्षेत्र शिवालिक का दक्षिणी प्रदेश था और बाद में यह उद्गम क्षेत्र उत्तर में तिब्बत–ऑक्सस प्रदेश तक फैल गया। भारत वर्ष में हिमालय के दक्षिण में स्थित शिवालिक पहाड़ियों की खुदाई के दौरान बहुत बड़ी संख्या में पशुओं और मानवों के जीवाश्म प्राप्त हुए हैं। इस तथ्य से यह प्रमाणित होता है कि मानव के मूल पूर्वजों का उद्गम क्षेत्र शिवालिक का दक्षिणी प्रदेश रहा है। यही कारण है कि विश्व की अधिकांश प्रजातियाँ भारत में निवास करती हुई पायी जाती है।

अनेक विद्वानों ने भारत की मानव प्रजातियों के बारे में अपने विचार प्रकट किये हैं। जिनमें प्रो. हेडन, डी.एन. मजूमदार, बी.एस. गुहा, हरबंट रिजले, ए.सी. हेडन, मुख्य है। इनमें भारतीय नृतत्वशास्त्री बी.एस. गुहा ने 1944 में भारत के पुरातात्विक सर्वेक्षण विभाग के निदेशक रहते हुए भारतीय प्रजातियों का वैज्ञानिक वर्गीकरण प्रस्तुत किया। वह इस प्रकार है–

(1) निग्रिटो : यह भारत के प्रथम मूल आदिवासी के रूप में जाने जाते हैं, परन्तु कुछ पश्चिमी विद्वानों के अनुसार यह प्रजाति अफ्रीका से भारत आकर दक्षिणी प्रायद्वीपीय भू–भाग के घने जंगलों में रहने लगी। ये लोग कद में बहुत छोटे होते हैं। इनका सिर छोटा किन्तु ललाट उभरा हुआ होता है। इनके बाल सुन्दर और ऊन जैसे होते हैं। ये लोग रंग में काले होते हैं। सिर की बनावट गोल एवं मध्यम होती है। चेहरा छोटा, नाक चपटी और चौड़ी होती है। होंठ मोटे और मुड़े हुए होते हैं। वर्तमान में इनकी उपस्थित भारत में बिखरे हुए रूप में मिलती है। विशेषकर उत्तर पूर्व के अंगामी नागा और झारखण्ड के बाडगिश जनजाति इस प्रकार की विशेषता रखती है।

(2) प्रोटो–आस्ट्रेलाइट : गुहा के अनुसार यह भारत की मूल प्रजाति है, परन्तु प्रो. हटन इन लोगों को भूमध्य सागरीय प्रदेश से आया हुआ बताते हैं। वर्तमान में इनकी उपस्थिति मध्य व दक्षिण भारत के पहाड़ी वनों में मिलती है। इनके बाल गुंगराले, होंठ मुड़े होते हैं। नाटे कद के ये लोग गहरे भूरे रंग के होते हैं। इस प्रजाति ने भारतीय संस्कृति को विकसित करने में विशेष योग दिया है। मलयालम, मुण्डा, संथाल, कौल, भील इन्हीं के वंशज है।

(3) मंगोलाइड : इनका आगमन चीन व मंगोलिया से माना जाता है। इन्हीं क्षेत्रों से आकर यह प्रजाति लद्दाख, सिक्किम, लाहौल, स्पीती, अरूणाचल प्रदेश, नागालैण्ड, मणिपुर, मिजोरम में मिलती है। इनका मुँह चपटा, गाल की हड्डिया उभरी

हुई और आंखें बदाम के आकृति की होती है। इस समूह के दो उप–विभाग है (1) पूर्व मंगोलाइड, (2) तिब्बती मंगोलाइड।

(4) भूमध्य सागरीय : इस प्रजाति का भारतीय संस्कृति में विशेष योगदान रहा है। पश्चिमी विद्वान इसे पूर्वी भूमध्य सागरीय क्षेत्र अथवा दक्षिणी पश्चिमी एशिया से भारत में आया हुआ मानते हैं। इस प्रजाति समूह के भी तीन उपसमूह है। (1) पूर्व भूमध्य सागरीय, (2) भूमध्य सागरीय प्रजाति, (3) पूर्वी भूमध्य सागरीय।

(5) चौड़े सिर वाली पश्चिमी प्रजातियाँ : भारत में पश्चिम से आकर इस प्रजाति के तीन समूह (1) एलपीनोइड, (2) डिनारिक, (3) आर्मिनोइड समूह के लोग भारत के विभिन्न हिस्सों में आकर बसे गये।

(6) नार्डिक : यह प्रजाति भारत में सबसे अन्त में आई और ईसा के दूसरी शताब्दी में देश के उत्तरी पश्चिमी भागों में बस गई।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

1. जनसंख्या की संरचना के अन्तर्गत ग्रामीण, नगरीय जनसंख्या, लिंगानुपात, आयवर्ग एवं साक्षरता आदि पक्षों का अध्ययन किया जाता है।
2. भारत में आर्थिक प्रगति के साथ–साथ जनसंख्या में नगरीकरण की प्रवृत्ति बढ़ रही है।
3. सन् 2011 की जनगणना के अनुसार भारत की 68.80 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण तथा 31.20 प्रतिशत जनसंख्या नगरीय है।
4. भारत का औसत लिंगानुपात 940 स्त्रियाँ प्रति हजार पुरुष (2011) है।
5. जनसंख्या में स्त्री–पुरुष की संख्या के अनुपात को लिंगानुपात कहते है। इसमें प्रति हजार पुरुषों पर स्त्रियों की संख्या की गणना की जाती है।
6. सन् 1951 एवं 1981 को छोड़कर भारत में सन् 1901 से लेकर सन् 1991 तक लिंगानुपात घटता रहा है। लेकिन सन् 2011 के बाद कुछ वृद्धि हुयी है।
7. जनगणना 2011 के अनुसार सर्वाधिक लिंगानुपात केरल (1084) तथा न्यूनतम लिंगानुपात वाला राज्य हरियाणा (877) है।
8. किसी देश की जनसंख्या में विभिन्न अवस्थाओं के मनुष्यों की प्रतिशत संख्या का अध्ययन आयु वर्ग संरचना के अन्तर्गत किया जाता है।
9. सन् 2011 में देश की कुल साक्षरता 74.04 प्रतिशत रही है तथा भारत की पुरुष साक्षरता 82.14 प्रतिशत एवं महिला साक्षरता 65.46 प्रतिशत रही।
10. राज्य स्तर पर केरल में सर्वोच्च साक्षरता 93.91 प्रतिशत (2011) तथा बिहार में न्यूनतम साक्षरता 63.82 प्रतिशत रही है।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक

1. भारत की संथाल जनजातियाँ सम्बन्धित है–
   (अ) निग्रिटों से
   (ब) आद्य–ऑस्ट्रेलियाइड से
   (स) पुरा–मंगोलाइड से
   (द) पूर्व भूमध्य सागरीय प्रजाति से
2. निम्नांकित में से वह प्रजाति जो भारत में अन्त में आकर बसी है, वह है–
   (अ) नीग्रोटो (ब) मंगोलॉयड
   (स) नॉर्डिक (द) एल्पों–डिनेरिक
3. निम्नलिखित में से कौन–सा एक समूह भारत में विशालतम भाषाई समूह है–
   (अ) चीनी–तिब्बती (ब) ऑस्ट्रिक
   (स) भारतीय–आर्य (द) द्रविड़
4. कुल भारतीय जनसंख्या में से कितनी प्रतिशत भारतीय जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है–
   (अ) 717 मिलियन (ब) 833 मिलियन
   (स) 847 मिलियन (द) 853 मिलियन
5. 2011 की जनगणना के अनुसार सबसे अधिक महिला जनसंख्या वाला राज्य है–
   (अ) केरल (ब) हिमाचल प्रदेश
   (स) उत्तराखण्ड (द) नागालैण्ड
6. 2011 की जनगणना के अनुसार सबसे कम महिला जनसंख्या वाला राज्य है–
   (अ) पंजाब (ब) हिमाचल प्रदेश
   (स) उत्तराखण्ड (द) हरियाणा
7. वर्ष 2011 में हुई जनगणना के अनुसार भारत में साक्षरता दर क्या है–
   (अ) 49.5 प्रतिशत (ब) 74.04 प्रतिशत
   (स) 42.5 प्रतिशत (द) 65.38 प्रतिशत

8. हिन्दुओं का सर्वाधिक अनुपात किस राज्य में है–
   (अ) उत्तर प्रदेश (ब) मध्य प्रदेश
   (स) ओडिशा (द) आन्ध्र प्रदेश
9. मंगोल प्रजाति की जन्म भूमि है–
   (अ) भारत (ब) इण्डोनेशिया
   (स) चीन (द) मध्य–पश्चिमी एशिया
10. देश में किस राज्य में साक्षरता दर सर्वाधिक है–
   (अ) गोवा (ब) केरल
   (स) तमिलनाडु (द) कर्नाटक
11. 2011 की जनगणना के अनुसार भारत की ग्रामीण जनसंख्या का प्रतिशत है–
   (अ) 50 प्रतिशत (ब) 67 प्रतिशत
   (स) 68.84 प्रतिशत (द) 80 प्रतिशत

अति लघूत्तरात्मक

12. सन् 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में सर्वाधिक लिंगानुपात वाला राज्य कौनसा है?
13. सन् 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में नगरीय जनसंख्या का राष्ट्रीय औसत क्या है ?
14. सन् 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में न्यूनतम साक्षरता वाला राज्य कौनसा है।
15. सन् 2011 की जनगणना के अनुसार ग्रामीण जनसंख्या का सर्वाधिक प्रतिशत भारत में किस राज्य में है ?

लघूत्तरात्मक

16. जनसंख्या संरचना से क्या तात्पर्य है ?
17. लिंगानुपात को परिभाषित करते हुए इसका महत्त्व बताइये?
18. भारत में लिंगानुपात कम होने के क्या कारण है?
19. भारत में स्वतंत्रता के पश्चात् साक्षरता में वृद्धि होने के मुख्य क्या कारण रहे है?
20. सन् 2011 के अनुसार भारत के किन राज्यों में विशाल ग्रामीण जनसंख्या पायी जाती है?

निबंधात्मक

21. भारत की जनसंख्या की संरचना का विश्लेषण कीजिये।
22. भारत में ग्रामीण व नगरीय जनसंख्या के बदलते स्वरूप का विश्लेषण कीजिये। नगरीय जनसंख्या में वृद्धि के कारणों को विस्तार से समझाइये।
23. भारत में साक्षरता के प्रतिरूप का विस्तार से वर्णन कीजिए।

आंकिक

24. भारत के मानचित्र में साक्षरता प्रतिशत (2011) को प्रदर्शित कीजिए।
25. भारत में 1901 से 2011 तक की साक्षरता को रेखाचित्र द्वारा प्रदर्शित कीजिए।

पाठ 15
संसाधनों का वर्गीकरण, संरक्षण एवं पोषणीय विकास
(Classification of Resources, Conservation and Sustainable Development)

संसाधन संकल्पना

संसाधन एक ऐसी प्राकृतिक और मानवीय सम्पदा है, जिसका उपयोग हम अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति में करते हैं। दूसरे शब्दों में मानवीय जीवन की प्रगति, विकास तथा अस्तित्व संसाधनों पर निर्भर करता है। प्रत्येक प्राकृतिक संसाधन मानव–जीवन के लिए उपयोगी है, किन्तु उसका उपयोग उपयुक्त तकनीकी विकास द्वारा ही सम्भव है। जिम्मरमेन ने लिखा है कि ''संसाधन का अर्थ किसी उद्देश्य की प्राप्ति करना है, यह उद्देश्य व्यक्ति आवश्यकताओं तथा सामाजिक लक्ष्यों की पूर्ति करना है।''

इस पृथ्वी पर कोई भी वस्तु संसाधन की श्रेणी में तभी आती है जब वह निम्नलिखित दशाओं में खरी उतरती है–

(i) वस्तु का उपयोग सम्भव हो।

(ii) इसका रूपान्तरण अधिक मूल्यवान तथा उपयोगी वस्तु के रूप में किया जा सके।

(iii) जिसमें निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति की क्षमता हो।

(iv) इन वस्तुओं के दोहन की योग्यता रखने वाला मानव संसाधन उपलब्ध हो।

(v) संसाधनों के रूप में पोषणीय विकास करने के लिए आवश्यक पूँजी हो।

उपर्युक्त दशाओं के आधार पर ही हम किसी भी जैविक, अजैविक घटक को संसाधन की श्रेणी में सम्मिलित करेंगे।

मानव स्वयं संसाधन होने के साथ–साथ संसाधनों का जनक भी है। मानव ही अपने श्रम एवं तकनीकी ज्ञान द्वारा किसी पदार्थ को मानव उपयोगी बनाकर संसाधन का निर्माण करता है। इसीलिये कहा जाता है कि संसाधन होते नहीं है, बनाये जाते हैं। वस्तुतः मानव ही संसाधनों का निर्माण करता है। इसीलिये मानव को संसाधनों का जनक कहा जाता है।

संसाधनों का वर्गीकरण

संसाधनों के विस्तृत अध्ययन के लिये इनका वर्गीकरण करना आवश्यक है, जो निम्न प्रकार है। रेखाचित्र 15.1 में संसाधनों का वर्गीकरण प्रस्तुत है।

उत्पत्ति के आधार पर

(अ) जैविक संसाधन : सभी प्रकार के जैविक घटकों से सम्बन्धित संसाधन कहलाते हैं। जैसे– मानव, पशु–जीव जन्तु, चारागाह, वनस्पति आदि। सभी जैविक संसाधन अपनी प्रजनन क्षमता से वंश वृद्धि कर नव्यकरणीय होने के कारण असमाप्य हैं। इनके नवीनीकरण की क्षमता व दर प्राकृतिक वातावरण के अनुसार अलग–अलग हो सकती है।

मानव व जीव–जन्तु गतिशील होने के कारण चल जैविक संसाधन तथा वनस्पति स्थिर होने के कारण अचल जैविक संसाधन है।

(ब) अजैविक संसाधन : सभी प्रकार के जड़ तथा निजीव घटकों से सम्बन्धित संसाधन अजैविक संसाधन कहलाते हैं। जैसे– समस्त खनिज, भूमि, मिट्टी, पवन, जल, सौर, ज्वारीय तथा भूतापीय ऊर्जा आदि अजैविक संसाधन है। अजैविक संसाधन प्रजजन क्षमता के अभाव में अनव्यकरणीय होने से समाप्य है। एक

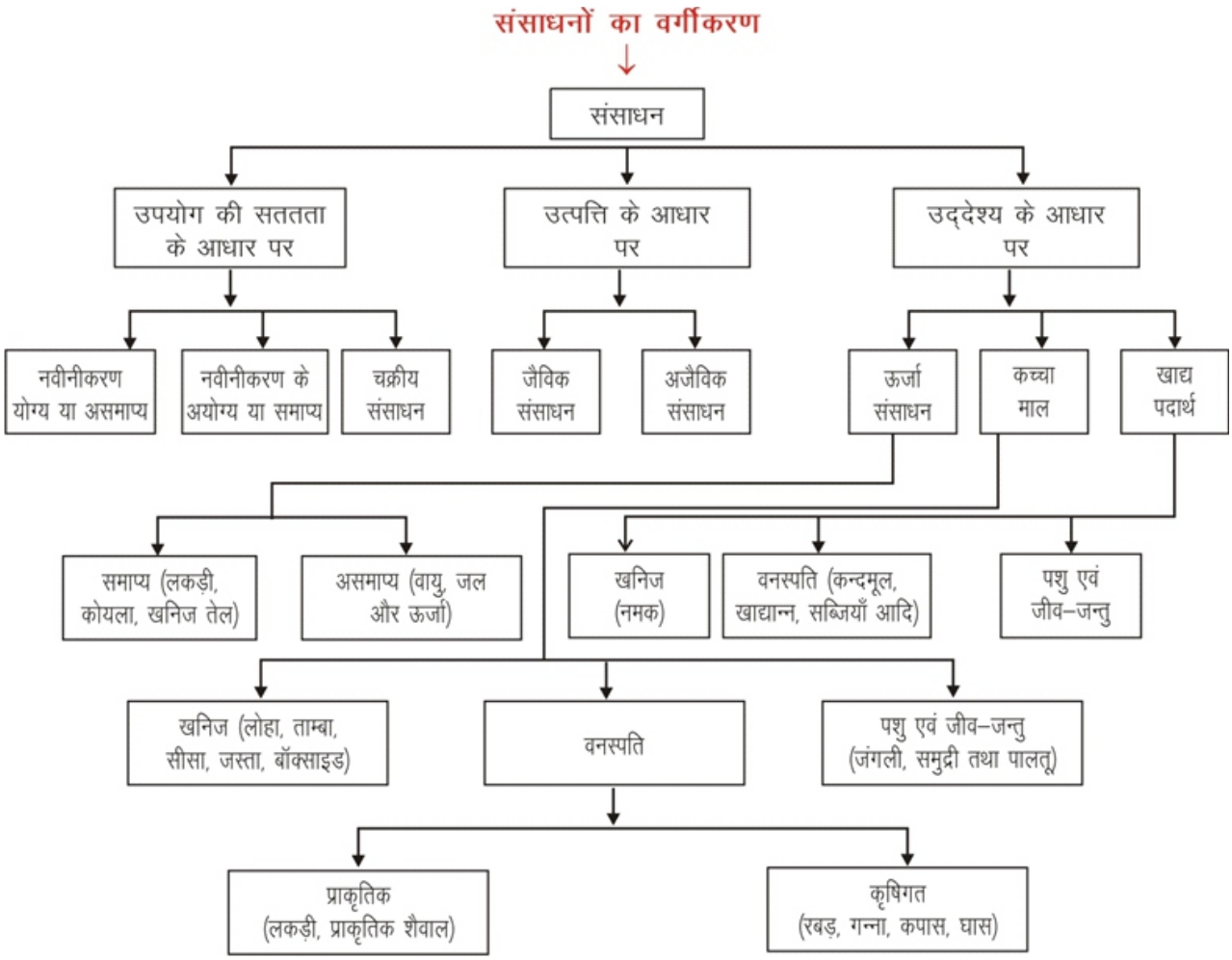

बार उपयोग करने के बाद में, हमेशा के लिए समाप्त हो जाते हैं।

अजैविक संसाधनों की निर्माण प्रक्रिया अत्यन्त धीमी होने के कारण शीघ्र ही नवीनीकरण की सम्भावना नहीं होती है। समस्त जैविक पदार्थ निश्चित मात्रा में और निश्चित स्थानों पर ही उपलब्ध होते हैं।

उद्देश्य के आधार पर

(अ) ऊर्जा शक्ति संसाधन : जिन संसाधनों के उपयोग से ऊर्जा (शक्ति) प्राप्त होती है, ऊर्जा संसाधन कहलाते हैं। जैसे पेट्रोलियम, कोयला, परमाणु ऊर्जा, पवन ऊर्जा, सौर ऊर्जा, ज्वारीय ऊर्जा, भूतापीय ऊर्जा, मानव शक्ति और पशु शक्ति आदि।

(i) परम्परागत : जिन संसाधनों का प्राचीन काल से उपयोग किया जा रहा है, परम्परागत संसाधन कहलाते हैं। जैसे कोयला, पेट्रोलियम, जल विद्युत, परमाणु ऊर्जा आदि का प्राचीन काल से उपयोग किया जा रहा है।

(ii) गैर–परम्परागत संसाधन : जिन संसाधनों का उपयोग अभी–अभी किया जाने लगा है, गैर परम्परागत संसाधन कहलाते हैं। जैसे– सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, ज्वारीय ऊर्जा और भूतापीय ऊर्जा आदि का उपयोग वर्तमान युग में किया जाने लगा है।

(ब) गैर ऊर्जा संसाधन : जिन संसाधनों का उपयोग कच्चे माल और निर्माण उद्योगों में किया जाता है, गैर ऊर्जा संसाधन कहलाते हैं। जैसे लोहा, सोना, चाँदी, टंगस्टन, एल्यूमिनियम, जस्ता, ताम्बा आदि।

उपयोग की सतता के आधार पर

(i) अनव्यकरणीय या समाप्य संसाधन : जिन संसाधनों का एक बार उपयोग होने के बाद पुनर्स्थापन नहीं किया जा सकता, उन्हें सीमित संसाधन कहते हैं। इन संसाधनों का लगातार उपयोग होने से पुनर्स्थापन नहीं होने के कारण ये शीघ्र समाप्त हो जायेंगे। इसलिए इन्हें अनव्यकरणीय या समाप्य संसाधन भी कहते हैं। जैसे– लोहा, कोयला, पेट्रोलियम आदि।

(ii) नव्यकरणीय या असमाप्य संसाधन : जिन संसाधनों का एक बार उपयोग होने के बाद मानव या प्रकृति द्वारा पुनर्स्थापन या नवीनीकरण किया जा सकता है, उन्हें असीमित संसाधन कहते हैं। पुनर्स्थापन होने के कारण इनके भण्डार कभी समाप्त नहीं होंगे। इसलिये इन्हें नव्यकरणीय या असमाप्य संसाधन भी कहते हैं। जैसे– मानव, पशु, वन, जल, पवन, सौर, भूतापीय एवं ज्वारीय ऊर्जा आदि।

स्वामित्व के आधार पर

(अ) व्यक्तिगत संसाधन : जिन संसाधनों पर किसी व्यक्ति परिवार या संस्था का अधिकार होता है, व्यक्तिगत संसाधन कहलाते हैं। जैसे– मकान, भूमि, नकदी, स्वर्णाभूषण, शारीरिक–मानसिक क्षमता, उत्तम स्वास्थ्य आदि।

(ब) राष्ट्रीय संसाधन : जिन संसाधनों पर पूरे राष्ट्र का अधिकार होता है। इन्हें राष्ट्रीय संसाधन कहते हैं। जैसे जनसंख्या, खनिज, वन, जल, पवन, सौर ऊर्जा, सैन्य शक्ति, तकनीकी ज्ञान, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध आदि।

(स) अन्तर्राष्ट्रीय या विश्व संसाधन : जिन संसाधनों पर पूरे विश्व का अधिकार हो, उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय संसाधन कहते हैं। जो मानव की समृद्धि, उन्नति और कल्याण के लिये उपयोगी है। जैसे– समस्त भौतिक और जैविक संसाधन।

संसाधन संरक्षण

संरक्षण का अभिप्राय : संसाधन संरक्षण का अभिप्राय संसाधनों के नियोजित, विवेकपूर्ण मितव्ययतापूर्ण, पुनर्भरण क्षमतानुसार विनाश रहित उपयोग से है। संसाधनों का उपयोग जनसंख्या एवं उसकी आवश्कताओं के अनुरूप विवेकपूर्ण ढ़ंग से होना चाहिए। ऐसा करने से भावी पीढ़ी के लिए संसाधनों को सुरक्षित रखा जा सकता है।

संसाधन संरक्षण से अभिप्राय संसाधनों का बिल्कुल उपयोग नहीं करने अथवा कंजूसीपूर्ण उपयोग करने से कदापि नहीं है। जिन संसाधनों का उत्पादन एवं उपलब्धता कम है, उनका उपयोग परमावश्यक कार्यों में किया जाना चाहिये। जैसे विश्व में ताम्बे की उपलब्धता एवं उत्पादन कम है, इसलिये इसका औचित्यपूर्ण उपयोग विद्युत उपकरणों या मशीनों में अधिक किया जाये। अन्य कार्यों में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध एल्युमिनियम को इसके प्रतिस्थापक के रूप में उपयोग किया जा सकता है।

अतः सभी संसाधनों का नियोजित, विवेकपूर्ण, मितव्ययतापूर्ण, विनाश रहित जनसंख्या एवं उसकी आवश्यकतानुसार लम्बे समय तक उपयोग ही संसाधन संरक्षण है।

संरक्षण की आवश्यकता

मानव के सतत् विकास के लिए विभिन्न प्रकार के संसाधनों का उपयोग आवश्यक है और संसाधनों का लम्बे समय तक उपयोग करने के लिए इनका संरक्षण भी आवश्यक है। विकास की कीमत पर संसाधनों का विनाशपूर्ण उपयोग घातक है। हमारी आने वाली पीढ़ियों के लिए संसाधन बचाये रखना हमारा कर्त्तव्य है। अतः संसाधन संरक्षण आवश्यक है। जनसंख्या की तीव्र वृद्धि से नगरीयकरण, औद्योगीकरण और वृक्षों की अन्धाधुन्ध कटाई से पर्यावरण प्रदूषण के साथ–साथ संसाधन भी समाप्त होते जा रहे हैं। पर्यावरण प्रदूषण से भूमि, जल, वायु आदि ने अपनी गुणवत्ता खो दी है। आज पारिस्थितिकी तंत्र में असन्तुलन के कारण ओजोन परत में छिद्र, ग्लोबल वार्मिंग में वृद्धि, जीव विनाश और मानव की कार्य क्षमता में कमी हुई है।

अतः सभी विपरीत परिस्थितियों पर विजय पाकर सतत् विकास करने और मानव सहित सभी जीवों के लिये जीवनदायी वातावरण बनाये रखने के लिए संसाधन संरक्षण आवश्यक है।

संसाधन संरक्षण की समस्या

मानव की आवश्यकताओं की पूर्ति एवं विकास के लिये संसाधनों का उपयोग अनिवार्य है। तीव्र विकास की प्रतिस्पर्धा में मानव संसाधनों का शोषण करने लग गया है। नव्यकरणीय संसाधनों के पुनर्स्थापन की भी एक सीमा है, तत्काल उनको भी पुनर्स्थापित नहीं किया नहीं किया जा सकता। अनव्यकरणीय संसाधनों के नवीनीकरण की गति अतिमन्द होने से ये संसाधन निकट भविष्य में समाप्त हो जायेंगे। ऐसी स्थिति में संसाधनों के अभाव में हमारी आने वाली पीढ़ियाँ आवश्यकतानुसार विकास नहीं कर पायेगी। यदि कोयला, पेट्रोलियम आदि का उपयोग इसी तरह होता रहा तो आने वाले कुछ समय में ही हमेशा–हमेशा के लिये समाप्त हो जायेंगे। संसाधन संरक्षण में समस्या उत्पन्न करने वाले चार कारक संयुक्त रूप से उत्तरदायी है–

(1) जनसंख्या विस्फोट के कारण बढ़ती मानवीय आवश्यकताएँ।

(2) वैज्ञानिक आविष्कारों से औद्योगीकरण, नगरीयकरण एवं परिवहन में द्रुत वृद्धि।

(3) पश्चिमी उपभोगतावादी संस्कृति के व्यापक प्रसार से संसाधनों के अधिकतम उपभोग की प्रवृत्ति।

(4) अधिकतम विकास की प्रवृत्ति।

संसाधनों के भण्डार लगातार समाप्त होते जा रहे हैं और जनसंख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है। इससे संसाधन संरक्षण एक

प्रबल समस्या बनती जा रही है कि किस प्रकार सीमित संसाधनों का उपयोग कर विकास किया जाये और लम्बे समय तक इनकी उपलब्धता भी बनी रहे।

संसाधन संरक्षण के उपाय

संसाधनों की आवश्यकता व संरक्षण की समस्या से यह तथ्य प्रमुख रूप से उभरकर आता है कि कुछ ऐसी विधियाँ अपनायी जानी चाहिये जो संसाधन संरक्षण में सहायता प्रदान कर सके। संसाधन संरक्षण में निम्नलिखित विधियाँ सहायता प्रदान कर सकती है।

(1) जनसंख्या वृद्धि पर प्रभावी नियन्त्रण : जनसंख्या किसी देश का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण व आवश्यक संसाधन है। मानव आर्थिक विकास व अपने जीवन को उच्च से उच्चतर बनाने के लिये संसाधनों का उपयोग करता है। संसाधनों के अनुपात में जनसंख्या की अनुकूलतम अवस्था में बिना किसी अवरोध के आर्थिक विकास होता रहेगा, किन्तु संसाधनों की तुलना में जैसे ही जनसंख्या बढ़ती जाती है वैसे ही संसाधनों का शोषण प्रारम्भ होने लगता है। इससे अनव्यकरणीय संसाधन शीघ्र समाप्त होने लगते हैं। तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये संसाधनों की अधिक आवश्यकता होगी। अतः देश में संसाधन संरक्षण के लिये जनसंख्या पर नियन्त्रण करना आवश्यक है।

(2) नियोजन में समग्र दृष्टिकोण : नियोजन में समग्र दृष्टिकोण से तात्पर्य पर्यावरण के विभिनन अवयवों (घटकों) के समुचित उपयोग और उनके संरक्षण से है। पर्यावरण के समस्त अवयव अन्तर्सम्बन्धित है। अतः देश के विकास की योजनायें बनाने और उनके क्रियान्वयन में सम्पूर्ण पर्यावरण को एक इकाई मानना आवश्यक है। किसी भी अवयव (तत्व) की कमी या क्षरण से सम्पूर्ण पर्यावरण का सन्तुलन बिगड़ सकता है। जैसे तीव्र औद्योगिकीकरण एवं शहरीकरण से उपजाऊ कृषि योग्य भूमि की कमी, वन विनाश से मृदा अपरदन, उत्पादकता में कमी, चारागाहों का नष्ट होना, पर्यावरण प्रदूषण और वर्षा की कमी से जलस्तर घटने जैसी गंभीर समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं। पर्यावरण प्रदूषण से ऑक्सीजन–कार्बन–डाई ऑक्साइड चक्र में असन्तुलन के कारण जीव–जन्तु विलुप्त और समाप्त हो रहे हैं। अतः मानव कल्याण के लिये नियोजन में समग्र दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहियें।

(3) जैविक सन्तुलन बनाये रखना : औद्योगिक एवं आर्थिक विकास का उद्देश्य मानव जीवन को समुन्नत एवं सुविधाजनक बनाना है। मानव के अस्तित्व के लिये जल, वायु, मृदा वनस्पति, जीव–जन्तु आदि प्रमुख जैविक आधार हैं। अतः जैविक सन्तुलन को ध्यान में रखकर आर्थिक नियोजन से मानव पर्यावरण सन्तुलन और संसाधनों की उपलब्धता बनी रहेगी और मानव उत्तरोत्तर प्रगति करता रहेगा। जैविक असन्तुलन पर्यावरण प्रदूषण से उत्पन्न पारिस्थितिकी असन्तुलन के कारण मानव के विकास के स्थान पर विनाश होने लगेगा।

(4) ऊर्जा के गैर–पारम्परिक संसाधनों का अधिक उपयोग : ऊर्जा के गैर पारम्परिक संसाधन नव्यकरणीय हैं। जैसे– सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, ज्वारीय ऊर्जा, भूतापीय ऊर्जा आदि असमाप्य संसाधन है। ये सभी संसाधन प्रदूषण रहित और स्थापना लागत के बाद बहुत सस्ती ऊर्जा प्रदान करते हैं। गैर परम्परागत ऊर्जा संसाधनों का उपयोग कर पेट्रोलियम, कोयला और परमाणु खनिजों के संरक्षण के साथ ही पर्यावरण प्रदूषण से भी बचा जा सकता है।

(5) वैकल्पिक संसाधनों की खोज : विश्व में अनव्यकरणीय संसाधनों के भण्डार सीमित होने से विकल्पों की खोज कर उनका उपयोग करना आवश्यक है। जिससे आने वाली पीढ़ियों को संसाधन उपलब्ध हो सकते हैं। जैसे ताम्बे की उपलब्धता व उत्पादन कम होने से इसके प्रतिस्थापक एल्यूमिनियम का उपयोग अधिक किया जाना चाहिये।

ऊर्जा प्राप्ति के लिये पेट्रोलियम व कोयला के स्थान पर सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, जल विद्युत, परमाणु ऊर्जा, ज्वारीय ऊर्जा व भूतापीय ऊर्जा का अधिक उपयोग किया जाना चाहिये। उद्योगों व रेल परिवहन में अधिक ऊर्जा की आवश्यकता है। इसलिये इनमें तापीय ऊर्जा, परमाणु ऊर्जा और जल विद्युत का उपयोग किया जायें। कम खपत के कारण सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा और भूतापीय ऊर्जा का उपयोग घरेलू कार्यों में किया जाना चाहिये।

(6) प्राथमिकता के आधार पर उपयोग : सीमित और समाप्य संसाधनों का उपयोग अति आवश्यक एवं राष्ट्रीय महत्त्व के कार्यों में ही किया जाये। अन्य कार्यों में विकल्पों का उपयोग किया जाना हितकर होगा। जैसे– भारत में टंगस्टन की उपलब्धता कम है। अतः टंगस्टन का उपयोग आयुध क्षेत्र में वरीयता के साथ कर इसका संरक्षण कर सकते हैं।

(7) पुनर्चक्रण : धातुओं के स्क्रेप, कतरन या उपयोग के बाद खराब होने पर गलाकर पुनः उपयोग में लाना पुनर्चक्रण कहलाता है। यह विधि संसाधन संरक्षण की बहुत उपयोगी आवश्यक व महत्त्वपूर्ण विधि है। इस विधि द्वारा किसी भी धातु का एक बार उपयोग करने के बाद भी कई बार पुनः उपयोग किया जा सकता है। जैसे– ताम्बा, सीसा, जस्ता, एल्युमिनियम और लोहा

आदि धातुओं को गलाकर पुनः उपयोग कर संरक्षण किया जा सकता है। एल्यूमिनियम 80 प्रतिशत तक, सीसा 75–80 प्रतिशत तक और ताम्बा 65–75 प्रतिशत तक, पुनः उपयोग में लाया जा सकता है। हमारे देश में सोना, चाँदी, ताम्बा, पीतल आदि धातुओं का प्राचीन काल से पुनर्चक्रण किया जाता रहा है।

(8) कृत्रिम वस्तुओं का उपयोग : प्राकृतिक संसाधनों की बचत कर लम्बे समय तक उपलब्धता बनाये रखने के लिये कृत्रिम पदार्थों का उपयोग किया जाना चाहिये। जैसे लकड़ी के स्थान पर प्लास्टिक तथा रेल्वे लाइनों में लोहे या लकड़ी के स्लीपर के स्थान पर लोहे के सरिये, सीमेन्ट व कंकरीट से बने स्लीपर लगाकर लकड़ी व लोहे की बचत कर सकते हैं।

(9) उन्नत व परिष्कृत तकनीक का उपयोग : उन्नत व परिष्कृत तकनीक का उपयोग कर ऊर्जा और अन्य संसाधनों की बचत की जा सकती है। बहुमंजिला इमारतों का निर्माण कर भू संसाधनों की बचत की गई है। आज पाँच सितारा होटलों में विद्युत उपकरणों व अधिक ईंधन औसत देने वाले साधनों के उपयोग से ऊर्जा की बचत हुई है। चार लेन व रेल लाइनों में सुधार कर गाड़ियों की गति बढ़ाकर ऊर्जा व मानव शक्ति के समय को बचा सकते हें। आज इवाई यात्रा करने से मानव के समय की बचत हुई है। उन्नत तकनीक से अधिक उत्पादन कर उत्पादन लागत व संसाधनों और अनेक अपशिष्ट पदार्थों का उपयोग ऊर्जा व उर्वरक में किया जा सकता है।

(10) संसाधनों का बहुद्देशीय उपयोग : जब एक ही योजना से कई उद्देश्य पूरे होते हैं तो उन्हें बहुद्देशीय योजनाएँ कहते हैं। इनसे संसाधनों का संरक्षण किया जा सकता है। जैसे नदियों पर बाँध बाँधने के तीन मुख्य उद्देश्यों के साथ ही कई गौण उद्देश्य होते हैं, जैसे–

- सिंचाई के लिए जल, पेयजल, विद्युत उत्पादन।
- मत्स्य पालन, बाढ़ नियंत्रण, वन विकास, मृदा अपरदन की रोकथाम, भू–जलस्तर बढ़ाना, जल परिवहन आदि।
- पेट्रोलियम (कच्चा तेल/क्रूड ऑयल) के मुख्य दो ऊर्जा उत्पाद है– पेट्रोल एवं डीजल। उनके गौण उत्पाद में मिट्टी का तेल, ऑयल, ग्रीस, वेसलीन, सिन्थेटिक पदार्थ, मोम, गोंद, कोलतार आदि का उत्पादन पेट्रोलियम के बहुद्देश्यीय उपयोग का उदाहरण है।

पोषणीय विकास

पोषणीय विकास का अभिप्राय पर्यावरण के साथ सन्तुलित, विवेकपूर्ण, मितव्ययतापूर्ण, पुनर्भरण, क्षमतानुसार, विनाशरहित उपयोग से है। जिससे वर्तमान एवं भावी पीढ़ियों की आवश्यकताओं की पूर्ति सतत् विकास के साथ की जा सके। पोषणीय विकास एक ऐसी सतत् प्रक्रिया है, जिसे केवल विकासशील देश ही नहीं, अपितु औद्योगिक दृष्टि से विकसित देश भी अपनाना चाहते हैं। सतत् विकास की इस प्रक्रिया में मानव की वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ ही भावी पीढ़ियों की आवश्यकताओं की पूर्ति को ध्यान में रखते हुए संसाधनों का उपयोग किया जाता है। जिससे संसाधनों के मितव्ययतापूर्ण व पुनर्भरण क्षमतानुसार उपयोग एवं संरक्षण पर विशेष बल दिया जाता है।

मानव ने प्राचीन काल में आखेट युग से वर्तमान उन्नत औद्योगिक युग तक की विकास यात्रा में संसाधनों का अत्यधिक उपयोग किया है। संसाधनों के अत्यधिक विदोहन से पर्यावरण के प्राकृतिक एवं जैविक अन्तर्सम्बन्धों के मध्य सन्तुलन पर प्रभाव पड़ा है। पर्यावरण और विकास के मध्य असन्तुलन के कारण पर्यावरण प्रदूषण के दुष्परिणाम स्वरूप आज जीव–जगत का अस्तित्व संकट में पड़ गया है। पर्यावरण को हानि पहुँचाने तथा संसाधनों के लगातार समाप्ति की ओर बढ़ने से विकास की सतत् गति बनाये रखना कठिन है। इसलिये भविष्य में पर्यावरणीय दुष्परिणामों से बचने के लिये अस्थाई विकास की विचारधारा के स्थान पर स्थाई और सतत् विकास का मार्ग अपनाना होगा। जिससे हमारी वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए भावी पीढ़ियों के लिये भी संसाधनों का संरक्षण किया जा सकेगा, निरन्तर विकास की संकल्पना के कारण ही पोषणीय विकास को सतत् विकास भी कहा जाता है।

जनसंख्या वृद्धि और पोषणीय विकास

संसाधनों और मानव विकास का चोली दामन का सम्बन्ध है। विकास से तात्पर्य प्रति व्यक्ति आय, औद्योगिक एवं कृषि उत्पादन में वृद्धि, समृद्ध परिवहन, उन्नत सूचना प्रौद्योगिकी, स्वच्छ पेयजल, शुद्ध वायु, आरामदेह आवास, आवश्यक वस्त्र, स्वादिष्ट और पौष्टिक भोजन, आधुनिक चिकित्सा, शिक्षा, मनोरंजन के साधनों की प्रचुर मात्रा में उपलब्धता से है। उपर्युक्त सुविधा सम्पन्न देशों का मानच विकास सूचकांक क्रमशः (1) नार्वे (0.944), (2) आस्ट्रेलिया (0.935), (3) स्वीटजरलैण्ड (0.930) देशों का है। भारत का 0.609 HDI के साथ 138 वाँ स्थान है। निम्नतम स्थान क्रमशः (1) नाइजर (0.348), सेन्ट्रल अफ्रीकन रिपब्लिक (0.350) देशों का है। विश्व का मानव विकास सूचकांक 0.711 है। इन देशों के नागरिकों ने प्राकृतिक व जैविक संसाधनों का विवेकपूर्ण विदोहन कर राष्ट्रीय सम्पत्ति की वृद्धि कर जीवन समृद्ध बनाया है।

जनसंख्या वृद्धि और आर्थिक विकास का स्तर बनाये रखने के लिये उन्नत प्रौद्योगिकी युक्त मध्यम आकार की औद्योगिक इकाइयों द्वारा स्थानीय स्तर पर उत्पादन आवश्यक है। कच्चे माल के स्थानीय उपयोग से रोजगार के अवसरों में वृद्धि कम उत्पादन लागत तथा समाज और राष्ट्र आत्म निर्भर बनते हैं। विकासशील देशों के पास उन्नत तकनीक द्वारा वृहत् उद्योगों हेतु पूँजी की कमी है। इसलिये मध्यम आकार की औद्यागिक इकाईयाँ उपयोगी सिद्ध होगी। भारत जैसे मानव शक्ति आधिक्य वाले देश में श्रम आधारित प्रौद्योगिकी अपनाना लाभप्रद होगा।

विकसित देशों में कम जनसंख्या से निर्यात वृद्धि और विकासशील व अविकसित देशों में जनाधिक्य व निर्यात व्यापार में कमी से जीवन स्तर का अन्तर बढ़ता जा रहा है। विकसित देश अधिक उन्नत एवं समृद्ध होते जा रहे हैं और विकासशील और अविकसित देश निरन्तर गरीबी व भूखमरी के शिकार होते जा रहे हैं।

भारत में नदियों पर बाँध बाँधकर पेयजल आपूर्ति, जल विद्युत तथा सिंचाई सुविधाओं से उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है। बाँध बनाकर, वृक्षारोपन अपरदन पर नियन्त्रण, बाढ़ नियन्त्रण, मत्स्य पालन किया जा सकता है। पंजाब के हरिके बैराज से निकली इन्दिरा गाँधी नहर से पश्चिमी राजस्थान का कायाकल्प हो गया है। खनिज संसाधन सम्पन्न प्रदेशों में औद्योगिकीकरण द्वारा अधिक विकास सम्भव है। जैसे जमशेदपुर, राऊरकेला, भिलाई, दुर्गापुर आदि विश्व प्रसिद्ध स्थान बन गये है। इन प्रयासों द्वारा स्थानीय लोगों का जीवन स्तर उच्च हुआ है।

साथ ही तकनीकी एवं प्रौद्योगिकी के सघन और व्यापक अनुसंधानों के पर्यावरण पर होने वाले प्रभावों का समुचित ज्ञान भी आवश्यक है।

उक्त प्रयासों के साथ ही संसाधन संरक्षण की विधियाँ, जनसंख्या पर प्रभावी नियन्त्रण, नियोजन में समग्र दृष्टिकोण, जैविक सन्तुलन, नव्यकरणीय संसाधनों का अधिक उपयोग, वैकल्पिक संसाधनों की खोज, प्राथमिकता के आधार पर उपयोग, कृत्रिम वस्तुओं का उपयोग, उन्नत एवं परिष्कृत तकनीक का उपयोग, पुनर्चक्रण, संसाधनों का बहुउपयोग और अधिकतम विकास के स्थान पर आवश्यक विकास पर बल देना आवश्यक है। इसमें ही मानव का कल्याण निहित है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दू

1. वे पदार्थ जिनका उपयोग कर मानव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है, संसाधन कहलाते हैं।
2. मानव संसाधनों का निर्माण करता है। इसलिये मानव संसाधनों का जनक कहलाता है।
3. संसाधनों का नियोजित, विवेकपूर्ण मितव्ययतापूर्ण, पुनर्भरण क्षमतानुसार, विनाश रहित उपयोग संसाधन संरक्षण कहलाता है। संसाधनों का बिल्कुल ही उपयोग नहीं करने अथवा उनके कंजूसीपूर्ण उपयोग से कदापि नहीं है।
4. विनाश रहित सतत् विकास के लिए संसाधनों का संरक्षण आवश्यक है।
5. जनसंख्या विस्फोट, वैज्ञानिक आविष्कारों से औद्योगिकरण, नगरीकरण एवं परिवहन में द्रुत वृद्धि, पश्चिमी उपभोगवादी संस्कृति के व्यापक प्रसार से संसाधनों के अधिकतम उपभोग की प्रवृत्ति, अधिकतम विकास की प्रवृत्ति के प्रभाव के कारण संसाधन संरक्षण की समस्या उत्पन्न हुई है।
6. संसाधनों के संरक्षण की निम्न विधियाँ है– (i) जनसंख्या पर प्रभावी नियन्त्रण, (ii) नियोजन में समग्र दृष्टिकोण, (iii) जैविक सन्तुलन बनाये रखना, (iv) ऊर्जा के गैर पारम्परिक संसाधनों का अधिक उपयोग, (v) वैकल्पिक संसाधनों की खोज, (vi) प्राथमिकता के आधार पर उपयोग, (vii) पुनर्चक्रण, (viii) कृत्रिम वस्तुओं का उपयोग, (ix) उन्नत व परिष्कृत तकनीक का उपयोग, (x) संसाधनों का बहुउद्देश्यीय उपयोग।
7. पोषणीय विकास का अभिप्राय : पर्यावरण के साथ संसाधनों के सन्तुलित, विवकेपूर्ण, मिव्ययतापूर्ण, पुनर्भरण क्षमतानुसार, विनाश रहित उपयोग से है। जिससे वर्तमान और भावी पीढ़ियों की आवश्यकताओं की पूर्ति सतत् विकास के साथ की जा सके।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक

1. निम्न में से जैविक संसाधन कौनसा है?
   (अ) खनिज (ब) पशु
   (स) पेट्रोल (द) हवा
2. अजैविक संसाधन का उदाहरण है?
   (अ) कोयला (ब) वन
   (स) मनुष्य (द) समुद्रीजीव
3. निम्न में ऊर्जा का परम्परागत संसाधन कौनसा है
   (अ) भूतापीय ऊर्जा (ब) पवन ऊर्जा
   (स) सौर ऊर्जा (द) पेट्रोलियम
4. ऊर्जा के गैर परम्परागत संसाधन कौनसा है–

(अ) सौर ऊर्जा (ब) कोयला
(स) प्राकृतिक गैस (द) डीजल

5. संसाधन संरक्षण में बाधक तत्त्व है
   (अ) धरातल का ऊबड़–खाबड़ होना
   (ब) तीव्र औद्योगिक एवं नगरीयकरण
   (स) अल्प विकास की दर होना
   (द) सतत विकास को अपनाना
6. पोषणीय विकास से आश्रय है
   (अ) संसाधनों का दुरूपयोग
   (ब) संसाधनों का अत्यधिक उपयोग
   (स) संसाधनों का सतत् उपयोग
   (द) संसाधनों के उपयोग को रोकना

अतिलघूत्तरात्मक

7. संसाधन से आप क्या समझते हैं।
8. मानव को संसाधन का जनक क्यों कहा जाता है।
9. संसाधन संरक्षण क्यों आवश्यक हैं।
10. संसाधन संरक्षण में बाधक चार कारणों का उल्लेख कीजिए।
11. जैविक संसाधनों के चार उदाहरण लिखिये।
12. पुनर्चक्रण विधि द्वारा किस प्रकार संसाधन संरक्षण किया जा सकता है।

लघूत्तरात्मक

13. संसाधन संरक्षण से क्या अभिप्राय है।
14. संसाधनों का वर्गीकरण प्रस्तुत कीजिए।
15. जैविक व अजैविक संसाधनों में अन्तर कीजिए।
16. पोषणीय विकास किसे कहते हैं।
17. नव्यकरणीय और अनव्यकरणीय संसाधनों में अन्तर कीजिए।

निबन्धात्मक

18. संसाधन अर्थ, संरक्षण की आवश्यकता, समस्या और प्रकारों का विस्तृत वर्णन कीजिए।
19. संसाधन संरक्षण की विधियों पर एक लेख लिखिए।
20. संसाधनों के पोषणीय विकास पर आपके विचार लिखिए।

पाठ 16
जैविक एवं अजैविक संसाधन
(Biotic and Non-Biotic Resources)

पिछले अध्याय में संसाधनों के वर्गीकरण से ध्यान में आता है, कि संसाधनों को उत्पत्ति के आधार पर (अ) जैविक, (ब) अजैविक संसाधनों में वर्गीकृत किया जाता है। जैविक संसाधनों के अन्तर्गत सम्पूर्ण धरातल का जैव जगत सम्मिलित होता है। इसी प्रकार अजैविक संसाधनों में भूमि, जल, खनिज संसाधन सम्मिलित होते हैं। अध्ययन और महत्त्व की दृष्टि से इस अध्याय में हम पशु सम्पदा, वन एवं मत्स्य जैसे जैविक संसाधनों का एवं जल एवं खनिज जैसे अजैविक संसाधनों का भारत के सन्दर्भ में विशेष अध्ययन करेंगे।

पशु संसाधन

भारत आदिकाल से ही ग्रामीण एवं कृषि प्रधान देश रहा है। अतः कृषि और सहायक कार्यों में पशुओं का विशेष स्थान रहा है। खेती करने, बोझा ढोने, यातायात साधन के रूप में एवं दूध, दही, मक्खन, घी, पनीर, छाछ, खोया (मावा), ऊन और चमड़ा, कम्पोस्ट खाद आदि की प्राप्ति में पशुओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। पशुओं के विशेष महत्त्व के कारण पशुओं को पशुधन के स्थान पर पशु संसाधन कहना सर्वथा उचित है।

महत्व : भारत में पशु संसाधन का महत्त्व स्पष्ट करते हुए डॉ. डार्लिंग ने लिखा है कि ''इसके बिना खेत बिना जुते–बोये पड़े रहते हैं, खलिहान खाद्यान्नों के अभाव में खाली पड़े रहते हैं तथा एक शाकाहारी देश में इससे अधिक दुखदायी बात क्या हो सकती है कि यहाँ पशुओं के अभाव में घी, दूध, मक्खन, पनीर एवं अन्य पशु उत्पादों और पौष्टिक पदार्थों की प्राप्ति का ही अकाल पड़ सकता है।

लेकिन वर्तमान में ट्रेक्टर, हार्वेस्टर, पम्पों, नहरों, विद्युत की अधिक आपूर्ति और परिवहन के साधनों के कारण धीरे–धीरे पशुओं पर निर्भरता कम होने के कारण इनका महत्त्व तेजी से घटता जा रहा है। भारत में पशु संसाधन का महत्त्व निम्नानुसार समझा जा सकता है–

(1) कृषि कार्यों जैसे हल व पटेला चलाने, रहँट, चड़स, द्वारा कुँओं से पानी खींचने, कृषि फसलें एवं चारा ढोने, गन्ना पेरने आदि में बैंल, ऊँट और भैंसों का उपयोग किया जाता है।

(2) पशुओं से दूध और दूध से खोया (मावा), पनीर, दही, मक्खन, घी, छाछ, दूध का पाउडर आदि पौष्टिक आहार प्राप्त होते हैं।

(3) पशुओं के गोबर, मल–मूत्र तथा हड्डियों से खाद बनाई जाती है।

(4) पशुओं से चमड़ा व खालें प्राप्त होती हैं। भारत में 2013 में कपड़ा, कम्बल, नमदा तथा हल्के किस्म के गलीचे बनाने के लिय 3.5 करोड़ किग्रा ऊन की प्राप्ति हुई है।

(5) भारत में पशु यातायात के साधन के रूप में काम में लिये जाते हैं। रेगिस्तान में ऊँट, पर्वतीय क्षेत्रों में टट्टू, गधों और घोड़ों का कोई पूर्ण विकल्प नहीं है।

(6) भारत में इस समय लगभग 4000 पशु वध–घर (बूचड़ खाने) हैं। वर्ष 2015–16 में 30137 करोड़ रूपये का माँस व माँस पदार्थों का निर्यात किया गया है।

(7) भारत में विश्व का लगभग 20 प्रतिशत पशु संसाधन

पाया जाता है।

(8) भारत में विश्व की 12.7% गायें, 56.7% भैंसे, 14.5% बकरियाँ, 5.9% भेड़ें, 2.4% ऊँट, 1.5% सूअर, 3.1% मुर्गियाँ, 1.4% घोड़े, टट्टू, गधे और 42 हजार याक पाले जाते हैं।

(9) पशुओं के सीगों से विभिन्न प्रकार की कलात्मक वस्तुएँ एवं कंघे बनाये जाते हैं।

(10) भारत में सकल कृषि उत्पादन मूल्य का 30% पशु संसाधन से प्राप्त होता है। जिसका मूल्य लगभग 4.5 खरब रूपये हैं।

भारत में पशुपालन क्षेत्र

भारत वर्ष के सभी ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि के साथ पशु पालन करना सामान्य तथ्य है परन्तु कुछ क्षेत्र ऐसे हैं जिसमें पशुपालन जनसंख्या का महत्त्वपूर्ण व्यवसाय है आज भी अनेकों जातियाँ अपना जीवन पशुओं के चारण, पालन के आधार पर चला रही है भारत के पशुपालन के महत्त्वपूर्ण क्षेत्र निम्न हैं–

(1) हिमालय पर्वतीय प्रदेश : यहाँ उत्तराखण्ड (कुमाँऊ व गढ़वाल), हिमाचल प्रदेश (कांगड़ा, कुल्लु घाटी एवं शिमला, जम्मू और कश्मीर), हिमालय की तराई, असम व पूर्वोत्तर भारत के राज्य आदि राज्य सम्मिलित है। यहाँ पहाड़ी भाग के कारण भेड़–बकरियाँ मुख्य पालतू पशु हैं। जिनसे उत्तम किस्म की श्वेत रंग की ऊन प्राप्त होती है। इन क्षेत्रों में पर्यटनों की निरन्तर वृद्धि से दूध की माँग बढ़ने से दुग्ध पशुपालन व्यवसाय में वृद्धि हुई है।

(2) उत्तरी पश्चिमी जलवायु क्षेत्र : यह प्रमुख पशु मेखला थार मरूस्थल व इसके चारों ओर शुष्क व अर्द्ध शुष्क भागों में फैली है। अल्प वृष्टि के कारण कृषि के स्थान पर पशुपालन प्रमुख व्यवसाय है। इसमें पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, राजस्थान व मध्य प्रदेश गुजरात के पश्चिमी भाग सम्मिलित है। सिंचित क्षेत्रों में गेहूँ उत्पादन होता है और गेहूँ का भूसा चारे के लिये काम में लिया जाता है। वर्षा ऋतु में बोये गये ज्वार–बाजरा और प्राकृतिक चारे से पशु पाले जाते हैं। यहाँ मुख्यतः ऊँट, भेड़, बकरियाँ, गायें, घोड़े, खच्चर, गधे पाले जाते हैं।

(3) पूर्वी एवं पश्चिमी तट क्षेत्र : इसमें पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल, असम, उड़ीसा, आन्ध्र प्रदेश, पूर्वी तमिलनाडु, केरल की पश्चिमी समुद्र तटीय पेटी सम्मिलित है। पर्याप्त वर्षा और आवश्यक तापमान के कारण चावल प्रमुख फसल हैं। चावल की पुआल (डण्ठल) और चरी मुख्य चारा है। भैंस से दूध प्राप्ति तथा भैंसों से कृषि कार्य किया जता है।

(4) मध्यम वर्षा वाले क्षेत्र : इसमें दक्षिणी उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, पश्चिमी आन्ध्र प्रदेश, पश्चिमी तमिलनाडु, कर्नाटक एवं पूर्वी महाराष्ट्र सम्मिलित है। कम वर्षा के कारण ज्वार–बाजरा मुख्य फसल है। यह भारत का प्रमुख भेड़ पालन क्षेत्र है। किन्तु घटिया किस्म की ऊन प्राप्त होती है। नलकूप और सिंचाई सुविधा वाले क्षेत्रों में उन्नत नस्ल की गायें व भैंसे पाली जाती हैं।

प्रमुख पालतू पशु

किसी समय पशु सम्पदा में समृद्ध भारत में कई कारणों से यहाँ पालतू पशुओं की संख्या लगातार घट रही है। 2007 में 52.97 कुल पशु संख्या करोड़ थी, वह घटकर पाँच साल बाद 2012 में 51. 21 करोड़ रह गई है।

(1) गाय–बैल : मानव आदिमकाल से गाय–बैल पालन कार्य करता रहा है। भारत में गाय और बैल को समाज–जीवन एवं धार्मिक कार्य में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त होने का कारण, इनकी कृषि एवं मानव के लिए उपयोगिता है। वैज्ञानिक अनुसंधानों से यह प्रमाणित हो चुका है कि भारतीय नस्ल की गायों का दूध सर्वश्रेष्ठ एवं A_2 वर्ग का है। भारत का विश्व में गाय–बैल पालन में ब्राजील के बाद द्वितीय स्थान है, जिनकी संख्या लगभग 19.09 करोड़ है, जो विश्व की कुल संख्या का 12.7 प्रतिशत है। यहाँ सर्वत्र गाय, बैल पाले जाते हैं। जिनकी कई नस्लें है। विविध और उत्तम स्वास्थ्यवर्धक पदार्थों की प्राप्ति, पौष्टिक एवं कम वसायुक्त होने से गाय का दूध स्वास्थ्य के लिये अमृत तुल्य पेय पदार्थ है।

(2) भैंस : गाय की तुलना में भैंस अधिक दूध देती है। यह अधिक वसायुक्त, पौष्टिक और गाढ़ा होता है। विश्व में भारत का भैस पालन में प्रथम स्थान है। भारत में 10.89 करोड़ भैंसें पाली जाती है, जो विश्व की 56.7 प्रतिशत है। ठण्डक एवं अधिक जल की आवश्यकता के कारण अधिकाँश भैंसे आर्द्र प्रदेशों में पाली जाती हैं। उत्तर प्रदेश, आंध्र प्रदेश और महाराष्ट्र प्रमुख भैंस पालक राज्य हैं। पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, बिहार, झारखण्ड और तमिलनाडु में भी भैंसे पाली जाती है। मुर्रा, जाफरावादी, भदावरी, सूरती नीली, मेहसाना, देशी आदि प्रमुख नस्लें है।

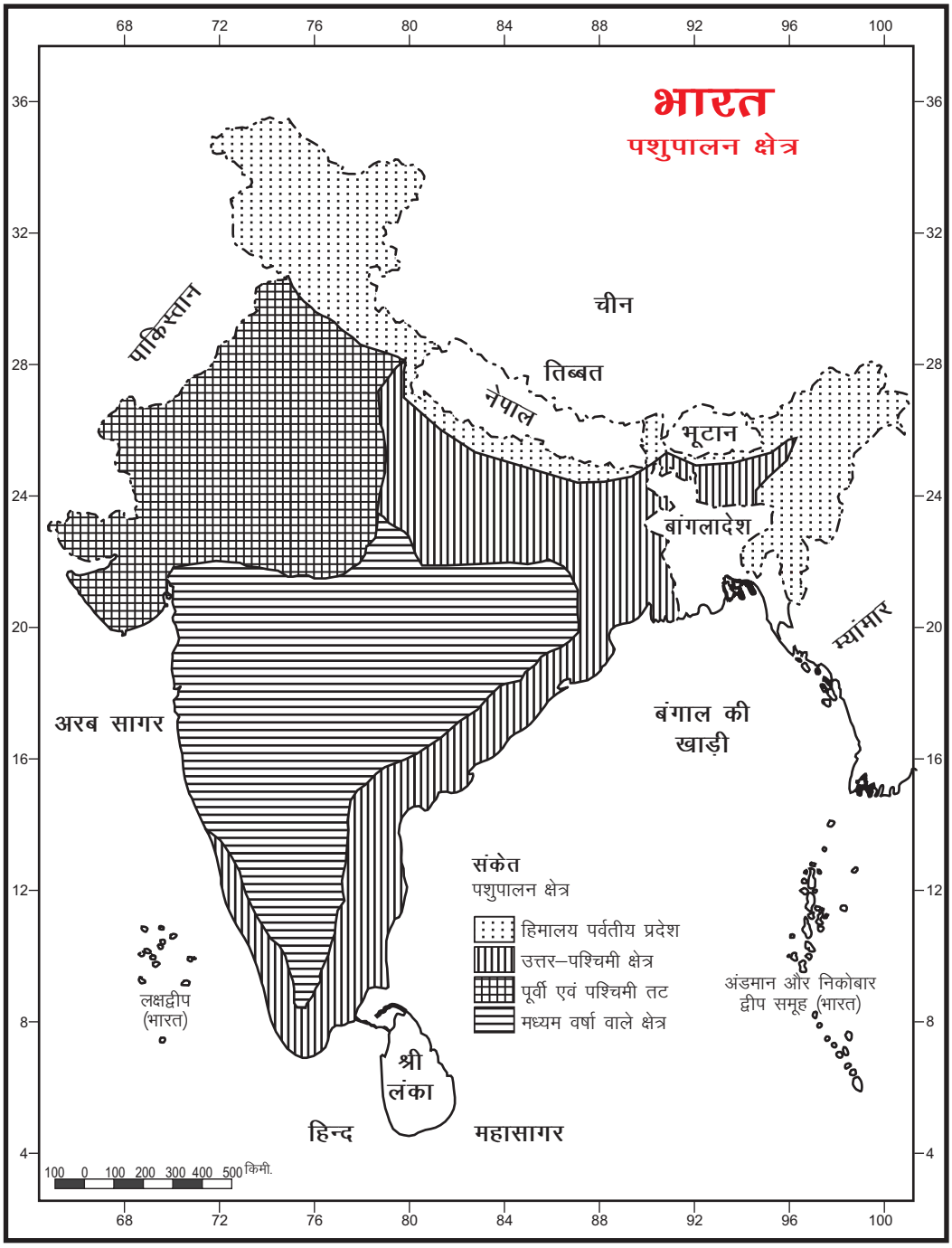

मानचित्र 16.1 : भारत के पशुपालन क्षेत्र

(3) बकरी : भारत में बकरी को गरीब की गाय कहा जाता है। बकरियाँ दूध व माँस के लिये पाली जाती है। बकरी प्रतिदिन एक से तीन लीटर तक दूध दे देती हैं। बकरी का रख–रखाव खर्च कम व वंश वृद्धि बहुत शीघ्र होती है। इसकी मैंगनी उत्तम प्राकृतिक खाद है। भारत में 13.52 करोड़ से अधिक बकरियाँ पाली जाती है, जो विश्व की 14.5 प्रतिशत हैं। राजस्थान, उत्तर प्रदेश, पंजाब, गुजरात, मध्य प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश और झारखण्ड प्रमुख बकरी पालन राज्य हैं। बकरी पालन माँस के उद्देश्य से अधिक किया जाता है।

(4) भेड़ : भेड़ें शुष्क, अर्द्ध शुष्क और पहाड़ी भागों में जीविकोपार्जन का प्रमुख साधन है। भेड़ को ऊन व माँस दोनों के लिये पाला जाता है। भेड़ से कुछ मात्रा में दूध भी प्राप्त किया जाता है। विश्व में भेड़ पालन में भारत का चीन के बाद द्वितीय स्थान है। यहाँ लगभग 6.51 करोड़ भेड़ें पाली जाती हैं। भारत की

60 प्रतिशत भेंड़े राजस्थान, आन्ध्र प्रदेश और तमिलनाडु में पाली जाती है। शेष मध्यप्रदेश, कर्नाटक, हिमाचल प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, उत्तराखण्ड और उत्तर प्रदेश में पाली जाती है। भारतीय भेड़ों की ऊन घटिया किस्म की होने से इसे गलीचा ऊन कहा जाता है। अच्छी किस्म की ऊन, ईरान, अफगानिस्तान, मध्य एशिया, नेपाल व आस्ट्रेलिया से आयात की जाती है।

(5) ऊँट : ऊँट रेगिस्तान का एक अति महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी पशु है। गद्दीदार पैर रेत में नहीं धँसते के कारण ऊँट रेगिस्तान में तेज गति से दौड़ सकता है। पेड़ों के पत्ते व झाड़ियाँ खाकर अपना पेट भर लेता है। मलमूत्र गाढ़ा व चमड़ी मोटी होने के कारण पसीना कम आने से ऊँट को जल की आवश्यकता कम होती है। ऊँट के कूबड़ में एकत्रित चर्बी से जल पूर्ति कर लेने से यह सात दिन बिना पानी पिये रह सकता है। इसलिये गर्म व शुष्क भागों में आसानी से पाला जा सकता है। यह भारी बोझ ढो सकता है और एक दिन में 50 किमी तक चल सकता है। ऊँट में वर्षों बाद भी मार्ग याद रखने की अद्भुत क्षमता होती है। रेतीले मरूस्थल में परिवहन के साधन के रूप में ऊँट का कोई विकल्प नहीं है। इसलिये ऊँट को 'रेगिस्तान का जहाज' कहा जाता है।

रेगिस्तान में ऊँट की उपयोगिता के कारण ही सैनिक टुकड़ियाँ सवारी व बोझा ढोने के लिये ऊँट का उपयोग करती है। ऊँट सवारी करने के अतिरिक्त हल जोतने, बोझा ढोने, कुओं से पानी खींचने व गाड़ी खींचने में काम आता है। ऊँट के बालों से रस्सियाँ, कम्बल, दरियाँ व चमड़े से काठी, थैले, तेल रखने की कुप्पियाँ और जूतियाँ बनाई जाती है। इसका दूध पीने के काम आता है। भारत में ऊँटों की संख्या लगातार घट रही है। भारत में विश्व के 2.4 प्रतिशत ऊँट पाले जाते हैं। यहाँ कुल 4 लाख ऊँटों में से 50 प्रतिशत से अधिक अकेले राजस्थान में पाले जाते हैं। शेष पंजाब, हरियाणा, गुजरात, उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेश में पाले जाते हैं। भारत में एक कूबड़वाला और अरब देशों में दो कूबड़ वाला ऊँट पाया जाता है।

(6) अन्य : भारत का घोड़े, खच्चर, टट्टू, गधे, सूअर, मुर्गी, याक पालन में भी महत्त्वपूर्ण स्थान है।

भारत में पशुधन की कमजोर स्थिति के कारण

भारत में विश्व के 20 प्रतिशत पशु पाले जाते हैं और विश्व में दूध उत्पादन में भारत का प्रथम स्थान है। यहाँ विश्व का 18 प्रतिशत दूध उत्पाद होता है। यहाँ के पशु कम दूध देने वाले व कमजोर होने से प्रति पशु दूध व माँस कम प्राप्त होता है। यहाँ पशुओं की कमजोर स्थिति के निम्नलिखित कारण है–

(1) पौष्टिक आहार व हरे चारे की कमी : अधिक जनसंख्या के भरण–पोषण के लिये अन्न उत्पादन मुख्य कार्य है। अतः पशुपालन गौण व्यवसाय है। व्यवस्थित और उत्तम चारागाहों के अभाव में हरा चारा वर्ष भर न मिलने से फसलों के डंठल व भूसा खिलाया जाता है। उचित पौष्टिक तथा पेट भर चारे के अभाव में पशु कमजोर होने से दूध और माँस कम प्राप्त होता है।

(2) अच्छी पशु नस्लों का अभाव : यहाँ कम दूध देने वाले पशुओं की संख्या अधिक है। इसलिये भारत सरकार पशु नस्ल सुधार हेतु कृत्रिम गर्भाधान केन्द्रों व पशु चिकित्सालयों का विस्तार धीरे–धीरे ग्रामीण क्षेत्रों में कर रही है। ग्रामीण क्षेत्रों में केन्द्रों की कमी, पूर्ण सुविधा का अभाव तथा ग्रामीण कृषक पशुपालकों की उदासीनता से पूर्ण सफलता नहीं मिली है।

(3) पशुओं की बीमारियाँ : सभी पशुओं को एक साथ चराने, एक ही बाड़े में बाँधने, सड़ी गली चीजें खिलाने, गन्दा जल पिलाने से अनेक पशु सम्पर्क जन्य रोगों से ग्रस्त हो जाते हैं। वर्षा काल में खुरपका, मुँहपका, जहरवाद, जहरी बुखार, गलघोटूं, आदि रोगों से कई पशुओं की मृत्यु हो जाती है।

(4) पशुपालकों की अज्ञानता व लापरवाही : परम्परागत पशुपालन से पशुओं को एक ही बाड़े में बाँधना, एक साथ चराना, पौष्टिक व पूर्ण आहार नहीं देना, मक्खी, मच्छरों से और सर्दी–गर्मी से बचाव नहीं कर पाना और स्वच्छ जल के अभाव में कमजोर होने से कम दूध देते हैं। दुधारू पशुओं को भी हरे चारे के अभाव में फसलों के डण्ठल, भूसा खिलाने से दूध उत्पादन कम होता है। भारत में अब कई दुग्ध शालाओं में वैज्ञानिक विधि से पशु पालन किया जाने लगा है। जिससे पशु स्वस्थ्य, हष्ट, पुष्ट होने से दूध व माँस दोनों ही अधिक देने लगे हैं।

भारत में पशु संसाधन विकास के उपाय

भारत में विश्व के सर्वाधिक पशु 20 प्रतिशत होते हुए भी दूध व माँस का तुलनात्मक उत्पादन बहुत कम है। अतः भारत में पशु संसाधन विकास हेतु निम्नलिखित उपयों को अपना कर सार्थक परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं –

(i) पशुओं के पौष्टिक व पूर्ण आहार के लिये उत्तम चरागाहों का विकास किया जाना चाहिये। सिंचाई द्वारा वर्ष भर हरा चारा उगाकर पशुओं को खिलाया जाना चाहिये। सरकार द्वारा पशु पालकों को कम कीमत पर पौष्टिक पशु आहार उपलब्ध कराया जाना चाहिये।

(ii) भारत में अधिकाँश जनसंख्या (69 प्रतिशत) गाँवों में निवास करती है। यहाँ किसी भी योजना की सफलता के लिये उसे ग्रामीण स्तर तक पहुँचाना नितान्त आवश्यक है। अतः गाँवों के पशु चिकित्सालय व कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र खोलकर संकर प्रजनन द्वारा

पशुओं की नस्ल सुधारना आवश्यक है।

(iii) बीमार पशु चिकित्सा के लिये अधिक दूर नहीं ले जाया जा सकता, इसलिये ग्राम पंचायत स्तर पर पशु चिकित्सालय खोले जाने चाहिए। इन चिकित्सालयों में कृत्रिम गर्भाधान और पशु रोगों की रोकथाम के टीके तथा बीमारियों की दवाईयाँ भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होनी चाहिये।

(iv) वैज्ञानिक ढंग से पशुपालन के तरीकों का गाँव–गाँव में प्रचार–प्रसार किया जाये। जिससे कम पशुओं से ही अधिक दूध, माँस तथा ऊन प्राप्त की जा सके। इस प्रकार कम परिश्रम से अधिक आय प्राप्त कर पशुपालन को लाभप्रद व्यवसाय बनाया जा सकता है।

वन संसाधन

प्राकृतिक संसाधनों में वन महत्त्वपूर्ण संसाधन है। मानव आदिकाल से ही वनों पर आश्रित रहा है। भारत में वृक्षों का देवता मानकर पूजा की जाती रही है। वृक्षारोपण एक पुनीत कार्य माना जाता था। इसलिये लोग अपने घर के आंगन में नीम और जामुन आदि के पेड़ लगाते थे।

1952 में घोषित वन नीति के अनुसार देश की कुल भूमि के 33 प्रतिशत भाग पर वन होने चाहिए। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद वनों की अन्धाधुन्ध कटाई और पुनः उतनी मात्रा में वन विकसित नहीं कर सकने के कारण वन क्षेत्र घटकर 2001 में 19.40 प्रतिशत रह गया था। सरकार के प्रयासों और जन चेतना से इसमें वृद्धि होकर यह सन् 2015 में 21.34 प्रतिशत (7,01,673 वर्ग किमी.) हो गया।

वन विनाश के कारण

भारत में घटते वन क्षेत्र के लिये निम्न कारण उत्तरदायी रहे हैं–

(1) कृषि हेतु भूमि की माँग में निरन्तर वृद्धि : देश की जनसंख्या 1981 में 63.33 करोड़, सन् 2001 में 102.7 करोड़ तथा 2011 में 121.01 करोड़ हो गई। इस प्रकार द्रुत गति से बढ़ती हुई जनसंख्या के भरण–पोषण के लिये अधिक अन्न उत्पादन की आवश्यकता अनुभव की गई। इससे कृषि क्षेत्र में विस्तार के लिये वनों की अन्धाधुन्ध कटाई की गई और वन क्षेत्र लगातार घटता गया।

(2) तीव्र औद्योगिकीकरण व शहरीकरण : स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश में तीव्र गति से औद्योगिकीकरण एवं शहरीकरण हुआ। इसलिये औद्योगिक इमारतों, आवासीय कॉलोनियों, व्यापारिक केन्द्रों, मकानों, कार्यालयों, संस्थाओं, सड़कों और मनोरंजन क्षेत्र स्थापित करने के लिये वनों की अंधाधुन्ध कटाई की गई।

(3) घरेलू आवश्यकताओं के लिये वनों की कटाई : रेलमार्ग निकालने रेल के डिब्बों, स्लीपरों, राजमार्गों, जहाज बनाने, फर्नीचर, भवन निर्माण, ईंधन आदि की पूर्ति के लिये वनों को शीघ्र नष्ट किया गया।

(4) अनियंत्रित चराई : प्राकृतिक हरे चारे की कमी आने पर पशु वृक्षों की नीची टहनियों को खा जाते हैं और अधिक ऊँचाई वाली टहनियों को पशुपालन काटकर पशुओं को खिलाते हैं। पशुओं के खुरों से नये छोटे पौधे दबकर टूट जाते हैं। इस प्रकार अनियन्त्रित और बेरोक–टोक चराई से वन धीरे–धीरे कम होते गये।

(5) स्थानान्तरित कृषि प्रणाली : नागा जनजाति द्वारा झूमिंग कृषि तथा भीलों द्वारा दाहदिया कृषि की जाती है जो स्थानान्तति कृषि है। इसमें 3–4 वर्ष बाद स्थान बदलकर कृषि करने के लिये वृक्षों की कटाई करने से तीव्र गति से वन विनाश हुआ है।

(6) अन्य कारण : बड़ी व बहुद्देशीय सिंचाई परियोजनाओं का विकास, सरकारी नियमों की अवहेलना, नगरीय जनसंख्या में वृद्धि, सत्ता का दुरूपयोग, बढ़ता खनन क्षेत्र, वृक्षों में कीड़े व बीमारियाँ लगना, दावाग्नि (जंगल में आग लगना) आदि कारणों से वन नष्ट होने से वन क्षेत्र तीव्रता से घटता गया।

वितरण

भारत की विशालता के कारण यहाँ जलवायु, उच्चावच और मिट्टी की भिन्नता पाई जाती है। अतः देश में विभिन्न प्रकार के वन पाये जाते हैं, जो निम्न प्रकार है–

(1) उष्ण कटिबन्धीय सदाबहार वन : जहाँ 200 सेमी या इससे अधिक वार्षिक वर्षा और 28°C वार्षिक तापमान रहता है वहाँ इस प्रकार के हमेशा हरे भरे रहने वाले वन पाये जाते हैं। इन वनों के तीन प्रमुख क्षेत्र है। (अ) उत्तरी–पूर्वी भारत हिमालय के तराई प्रदेश, असम, मेघालय, त्रिपुरा, नागालैण्ड, मिजोरम और अरूणाचल प्रदेश के दक्षिणी भाग, (ब) पश्चिमी घाट के पश्चिमी ढाल तट पर महाराष्ट्र से केरल तक, (स) अण्डमान और निकोबार द्वीप समूह।

पर्याप्त वर्षा और उच्चताप के कारण लम्बे और शीघ्र बढ़ने वाले होते हैं। इनकी लकड़ी कठोर और काले रंग की होती है। वृक्षों की लम्बाई सामान्यतः 40 से 60 मीटर तक होती है। वृक्षों के बीच में विभिन्न प्रकार की लताओं, झाड़ियों और छोटे पौधों की अधिकता दलदल और धरती पर सूर्य का प्रकाश नहीं पहुँचने से इन वनों का विदोहन करना अत्यधिक कठिन और व्यय साध्य है। इन वनों में एक स्थान पर एक जैसे वृक्ष नहीं मिलकर कई प्रकार के वृक्ष मिलते

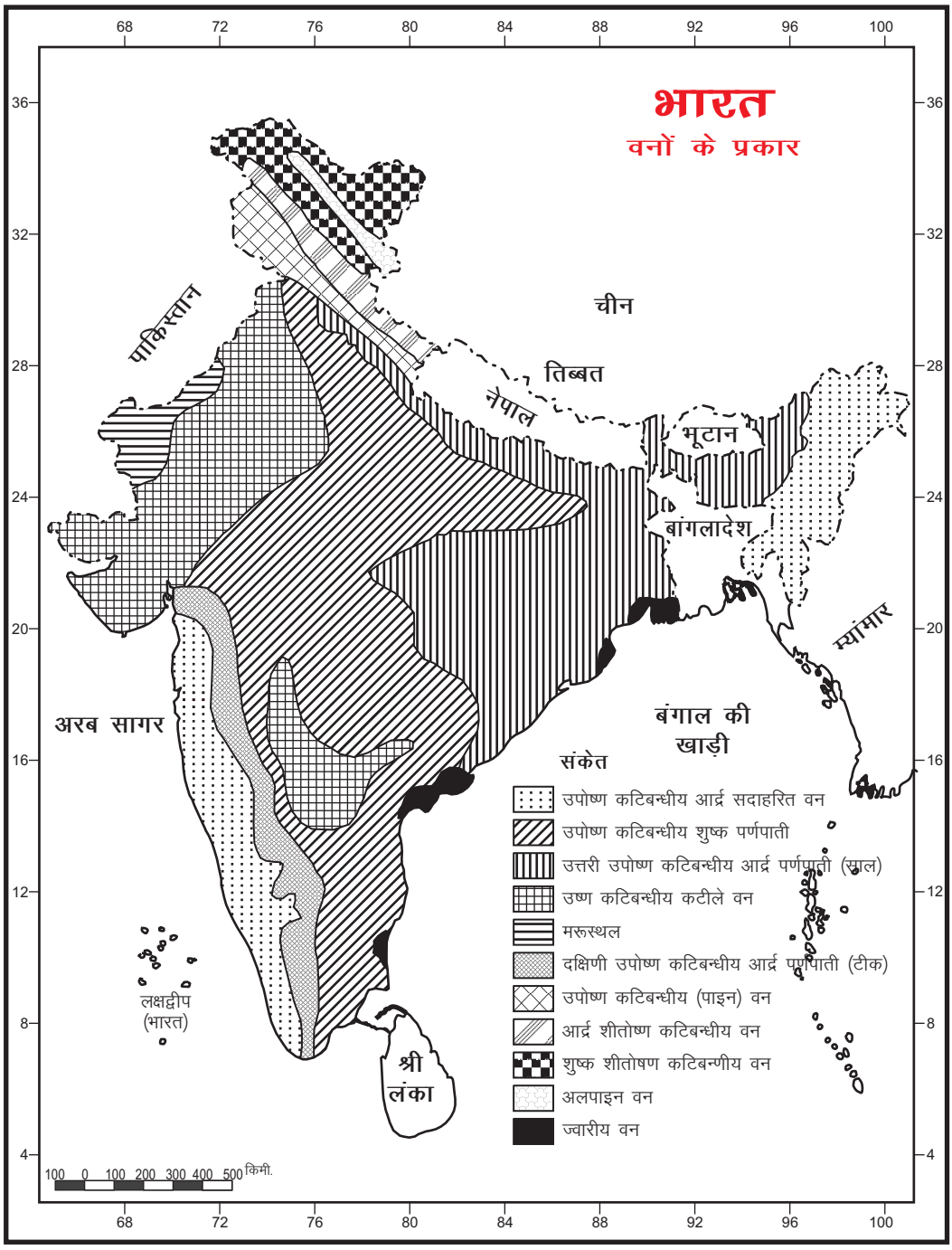

मानचित्र 16.2 : भारत वनों के प्रकार

मुख्य वृक्ष : लौह काष्ठ, महागनी, गटापार्चा, इबोनी, तून, नारियल, ताड़, रबड़, सिनकोना, बाँस, साल, जंगली आम, गुरजन, तुलसर, बैंत, चपलास आदि वृक्ष और कई तरह की लताएँ पाई जाती हैं।

(2) मानसूनी या पतझड़ वन : ये वन 100 सेमी से 200 सेमी तक औसत वार्षिक वर्षा तथा 26°C से 30°C तक औसत वार्षिक तापमान वाले क्षेत्रों में पाये जाते हैं। वर्ष में एक बार ग्रीष्म ऋतु के प्रारम्भ में इन वनों की पत्तियाँ झड़ जाने के कारण इन्हें पर्णपाती या पतझड़ वन भी कहते हैं। इनमें वृक्षों की ऊँचाई सामान्यतः 20 से 45 मीटर होती है। वृक्षों की कम सघनता से इनके बीच घास उग जाती है। वन क्षेत्रों तक यातायात के साधनों का विकास हो गया है। इनकी लकड़ी

अधिक कठोर नहीं होती है। इन वन संसाधनों का विदोहन सरलता से किया जा सकने के कारण इनका अत्यधिक महत्त्व है।

मानसूनी वनों के चार प्रमुख क्षेत्र है– (अ) हिमालय के बाहरी व निचले ढालों पर (हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड, उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल, असम), (ब) मध्य भारत (मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, उड़ीसा), (स) पश्चिमी घाट के पूर्वी ढाल (महाराष्ट्र, कर्नाटक का आर्द्र पठारी भाग, केरल के पूर्वी शुष्क भागों में कुमारी अन्तरीप तक), (द) पूर्वी घाट के दक्षिणी भाग (आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु)।

मुख्य वृक्ष : सागवान, साल, शीशम, चन्दन, रोजवुड, कुसुम, बाँस, पलाश, हरड़, बहेडा, आँवला, हल्दू, इबोनी, आम, जामुन, सिरस, महुआ, पीपल, बरगद, खैर, सेमल और गूलर आदि।

(3) उष्ण कटिबन्धीय वन : ये वन 50 सेमी से 100 सेमी औसत वार्षिक वर्षा तथा 20°C से 35°C तक औसत वार्षिक तापमान वाले क्षेत्रों में पाये जाते हैं। इन वनों के दो प्रमुख क्षेत्र है– (अ) उत्तरीय पश्चिमी भारत (द.प. पंजाब, हरियाणा, राजस्थान के पूर्वी भाग व अरावली पर्वत, द.पं. उत्तर प्रदेश)। (ब) दक्षिणी प्रायद्वीप के शुष्क भाग (आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, गुजरात और आन्ध्र प्रदेश के आन्तरिक भाग)। इन वनों में पाये जाने वाले वृक्षों की जड़े लम्बी, पत्तियाँ मोटी व तना खुरदरा होता है। वर्षा की कमी के कारण वृक्षों की ऊँचाई 6 से 9 मीटर तक होती है।

मुख्य वृक्ष : बबूल, खेजड़ा, आम, जामुन, नीम, महुआ, बरगद, आँवला, रीठा व कीकर आदि। इन वनों का स्थानीय महत्त्व है।

(4) मरूस्थलीय वन : ये वन 50 सेमी से कम औसत वार्षिक वर्षा तथा 25°C से 35°C तक औसत वार्षिक तापमान वाले क्षेत्रों में पाये जाते हैं। इसप्रकार के वन द.प. पंजाब, पश्चिमी राजस्थान, गुजरात और मध्य प्रदेश के कम वर्षा वाले भागों में पाये जाते हैं। इन वनों में वृक्षों की जड़े लम्बी मोटी होती है। जिससे शुष्क मौसम में गहराई से पानी प्राप्त कर वृक्ष जीवित रहते हैं। पत्ते छोटे–मोटे और काँटेदार तथा अत्यधिक खुरदरा या काँटेदार होता है। इससे वारूपोत्सर्जन क्रिया में जल कम उड़ता है। इन वनों में वृक्षों की तुलना में झाड़ियों की संख्या अधिक होती है। वृक्ष दूर–दूर तथा कम संख्या में होते हैं। खजूर को छोड़कर अन्य वृक्षों की लम्बाई कम होती है।

मुख्य वृक्ष : नागफनी, कैर, खैर, खेजड़ा, खजूर, बबूल, बेर, नीम, पीपल, बरगद, राम बाँस, थूअर आदि।

(5) पर्वतीय वन या शीतोष्ण सदाबहार वन : ये वन पूर्वीय पश्चिमी हिमालय प्रदेश, असम की पहाड़ियों, मध्य प्रदेश के पंचमढ़ी तथा महाराष्ट्र के महाबलेश्वर के पहाड़ी भागों में पाये जाते हैं। इनमें वृक्षों की पत्तियाँ घनी और सदाबहार व तना मोटा होता है। पेड़ों के तनों पर लताएँ लिपटी रहती हैं और नीचे सघन झाड़ियाँ पाई जाती है। वृक्षों की ऊँचाई 15 से 18 मीटर तक होती है। इन वृक्षों की लकड़ी मुलायम होने से कागज की लुग्दी, पेकिंग, प्लाई और प्लाई बोर्ड बनाने में काम आती है।

मुख्य वृक्ष : चीड़, सनोवर, देवदार, फर, स्प्रूस, लार्च, बर्च, मेपिल, एल्म और चेस्टनट आदि। अधिक ऊँचाई पर यूजेनिया, मिचोलिया, रोडेनड्रोस आदि वृक्ष पाये जाते हैं। ये सदा हरे–भरे रहते हैं।

(6) ज्वारीय या दलदली वन : ये वन मुख्यतः गंगा–ब्रह्मपुत्र व हुगली नदियों के डेल्टा तथा कृष्णा, कावेरी, महानदी और गोदावरी नदियों के मुहानों पर कीचड़ व दलदली भागों में पाये जाते हैं। समुद्र तट पर ज्वार भाटा के कारण वृक्षों की जड़ें खारे पानी में डूबी रहती है तथा जड़ों से शाखायें निकलकर चारों तरफ फैल जाती है। वृक्ष ऊँचे तथा हरे–भरे रहते हैं और लकड़ी मुलायम होती है।

मुख्य वृक्ष : गंगा–ब्रह्मपुत्र के डेल्टा में सुन्दरी वृक्ष तथा हुगली नदी के डेल्टा में मेन्ग्राव वृक्ष अधिक पाये जाते हैं। अन्य वृक्षों में बाँस, ताज, बेंत, ताड़, नारियल, रोजीफोरा, सोनरीटा, हेरोटीरिया, फोनिक्स आदि है।

वनों से प्राप्त उपजें

भारतीय वनों से विभिन्न प्रकार की महत्त्वपूर्ण उपजें प्राप्त होती है। इनमें से कुछ उपजें विदेशों में प्राप्त नहीं होने से उनका विशेष महत्त्व है। जैसे चन्दन की लकड़ी, बीड़ी पत्ता (तेन्दू), साखू, वेलेडोना, सर्पगंधा आदि। वनों से प्राप्त उपजों को दो भागों में बांटा जा सकता है।

(1) मुख्य उपजें : वनों से प्राप्त होने वाली उपजों में लकड़ियाँ प्रमुख उपजें हैं। देवदार, चीड़, मेपिल, फर, स्प्रूस, श्वेत सरोवर, साल, सागवान, शीशम, महुवा, चन्दन, सेमल, हल्दू, अर्जुन, आम, खैर, बबूल, बाँस, नीम आदि प्रमुख और महत्त्वपूर्ण लकड़ियाँ हैं।

(2) गौण उपजें : वनों से अनेक प्रकार की गौण उपजों में लाख, कत्था, गोंद, महुआ, तुंग, बैत, रबर, फल, शहद, जड़ी–बूटियाँ, औषधियाँ, कच, चमड़ा बनाने व रंगने के पदार्थ, तारपीन का तेल, विरोजा, प्राकृतिक रेशम, धांगे आदि प्रमुख व महत्त्वपूर्ण है।

वन संसाधन का महत्व

वनों से ही सभ्यता का जन्म, विकास और फलना– फूलना हुआ है। जहाँ कहीं वनों का विकास रूक जाता है। वहाँ शुष्कता बढ़ते–बढ़ते मरूस्थलों की उत्पत्ति हो जाती है। वन संसाधन

प्रत्यक्ष और प्रत्यक्ष रूप से सकल जीव– जगत को विभिन्न रूप, प्रकार और व्यवस्था से भोजन, रोजगार व आश्रय प्रदान कर पोषण देते हैं। वनों के महत्त्व के बारे में लिखा है कि ''वन राष्ट्रीय सम्पत्ति'' है। आधुनिक सभ्यता को इनकी बड़ी आवश्यकता है। भारत में वन संसाधन के महत्त्व को उनके द्वारा होने वाले लाभों द्वारा सहज ही समझा जा सकता है।

वनों से प्रत्यक्ष लाभ

(1) भारत की राष्ट्रीय आय का 2 प्रतिशत वन संसाधन से प्राप्त होता है।

(2) भारत में वन संसाधन से लाखों व्यक्तियों को रोजगार प्राप्त होता है।

(3) देश के 2.5 करोड़ आदिवासी वनों में निवास करते हैं। वन उनकी आजीविका के मुख्य साधन है।

(4) वन क्षेत्र 5.5 करोड़ पशुओं को चराने की सुविधा प्रदान करते हैं।

(5) वनों से इमारती उपयोग, फर्नीचर, कृषि उपकरणों, रेल के डिब्बों, जहाज, वाहनों व ईंधन आदि के लिये लकड़ी प्राप्त होती है। साल, सागवान, शीशम, देवदार, बबूल, चीड़ प्रमुख इमारती लकड़ियाँ हैं।

(6) वनों से कागज, माचिस, रेशम, लाख, फर्नीचर, प्लाईवुड, पेकिंग, रबर, रंग, खिलौनो के सामान बनाने वाले उद्योगों के लिये कच्चा माल मिलता है।

(7) वनों से फल–फूल, कत्था, तारपीन का तेल, गोंद, बाँस, बैंत, बिरौजा, चमड़ा कमाने व रंगने के पदार्थ प्राप्त होते हैं।

(8) वनों से हरड, बहेड़ा, आंवला आदि औषधियाँ व जड़ी–बूटियाँ प्राप्त होती है।

(9) वन वन्य जीवों के भोजन व आश्रयदाता होते हैं। भारतीय वनों में 500 प्रकार के वन्य जीव पाये जाते हैं। इसलिये वन मनोरंजन स्थल होते हैं।

वनों से अप्रत्यक्ष लाभ

(1) वन वाष्पोत्सर्जन क्रिया द्वारा वायु को आर्द्र बनाकर वर्षा करने में सहायक होते हैं।

(2) वन जलवायु को सम बनाते हैं और अधिक वर्षा में सहायक होते हैं।

(3) वनों से जल रूककर धीमी गति से बहता है, जिससे भूमि अपरदन और बाढ़ का प्रकोप कम हो जाता है।

(4) वन पवन के मार्ग में अवरोध उत्पन्न कर, आँधी तूफान की प्रचण्डता और मरूस्थल के प्रसार को रोकते हैं।

(5) वन भूजल स्तर को ऊँचा उठाते हैं।

(6) वनों के भूमि में दब जाने से दीर्घ काल में खनिज कोयले का निर्माण होता है।

(7) वृक्षों की पत्तियों से ह्यूमस तथा जीवांश मिलने से मृदा की उर्वरकता बढ़ जाती है।

(8) वन जैविक सन्तुलन, सौन्दर्य एवं उत्तम स्वास्थ्य के प्रतीक होते हैं।

(9) वन वायु व ध्वनि प्रदूषण को रोकते हैं। वृक्ष वायुमण्डल की कार्बन डाई ऑक्साइड को भोजन के रूप में ग्रहण कर शुद्ध ऑक्सीजन छोड़ते हैं।

(10) वन हरित गृह प्रभाव को रोकते हैं।

वन विनाश के दुष्प्रभाव

(1) वन विनाश से वर्षा की मात्रा कम होकर जलवायु शुष्क होने लगती है।

(2) वन विनाश से वनों पर आश्रित उद्योग नष्ट होने लगते हैं और लोगों के बेरोजगार होने से राष्ट्रीय आय में ह्रास होने लगता है।

(3) वनों की कटाई से नदियों का प्रवाह तेज होता है जिससे बाढ़ का खतरा बढ़ जाता है तथा भूमि का अपरदन तीव्र होता है।

(4) वन विनाश से भूमिगत जल स्तर कम होता है और चारों की कमी होने लगती है।

(5) आँधी–तूफानों की प्रचण्डता बढ़ती है और मरूस्थलों का प्रसार होने लगता है।

(6) वन विनाश से इमारती व ईंधन लकड़ी कम होने लगती है।

(7) वन विनाश से कार्बन डाई ऑक्साइड का स्तर बढ़ेगा, जिससे पृथ्वी पर तापमान बढ़ेगा।

(8) वन विनाश से वायु प्रदूषण बढ़ेगा जिससे श्वासरोग, मानसिक तनाव, उच्च रक्त चाप, खुजली, एलर्जी, थकान आदि से मानव की कार्यक्षमता धीरे–धीरे कम होने लगती है।

(9) वन विनाश से पारिस्थितिकी असन्तुलन पैदा होगा।

(10) वन विनाश से वन्य जीव जन्तुओं की प्रजातियाँ नष्ट होने लगती है।

वनों का संरक्षण

भारतीय संस्कृति में वनों का महत्त्व सदैव से रहा है। यहाँ वृक्ष काटना तो दूर कोई उनका पत्ता भी नहीं तोड़े, इसलिये सभी जाति समूहों के अपने–अपने पारम्परिक वृक्ष को देवता माना है, उनमें ईश्वर का निवास बताया गया है। जैसे किसी समाज का वृक्ष देवता पीपल है तो किसी का अशोक, बरगद और नीम आदि। इस प्रकार व्यक्तियों की भावनाओं को वृक्षरूपी ईश्वर से जोड़कर बिना किसी सरकारी आदेश के वनों का संरक्षण हो जाता था।

प्राचीनकाल में सम्पूर्ण देश में तपोवन पाये जाते थे। इनमें ऋषि–मुनि, तपस्वी साधना, आराधना चिन्तन और मनन किया करते थे। महाभारत जैसे महान ग्रन्थ की रचना की नैमिषारण्य वन में वेद व्यास जी द्वारा की गई। नैमिषारण्य वन, अशोक वन, पंचवटी, नन्दन–कानन, दण्डकारण्य का आज भी विशेष महत्त्व है। वर्तमान में अशोक भारत का राष्ट्रीय वृक्ष है। भारतीय जन–जीवन में वनों के महत्त्व को अग्नि पुराण के इस कथन से समझा जा सकता है। ''एक वृक्ष दस पुत्रों के बराबर होता है।'' देश की बढ़ती जनसंख्या, नगरीकरण, औद्योगीकरण के कारण वन क्षेत्र निरन्तर कम होते जा रहे हैं इसलिए भी वनों का संरक्षण आवश्यक है। भारत के कुल वन क्षेत्र 21.34 प्रतिशत है।

वनों का संरक्षण सम्पूर्ण मानव जनसंख्या के कितना आवश्यक है। प्राणी जगत प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से वनस्पति पर निर्भर करता है। स्वयं मानव उपभोक्ता की श्रेणी में आता है। इसी अध्याय में दिये गये वनों से लाभ द्वारा वनों का महत्त्व स्पष्ट हो जाता है। इसलिये वन संसाधन का संरक्षण परम आवश्यक है। भारत में वन संरक्षण व वन विकास के साथ बेटी बचाओ का निम्न दृष्टान्त अनुकरणीय है।

- बिहार के भागलपुर जिले में मुख्यालय से 5 किमी दूर धरहरा नामक एक छोटा सा गाँव है। इस गाँव ने बेटी और वृक्ष बचाकर पूरी दुनिया के समक्ष एक बेजोड़ और अनुकरणीय दृष्टान्त प्रस्तुत किया है। इस अभियान से राज्य के मुख्यमंत्री भी जुड़ चुके हैं। गाँव के अमीर–गरीब सब लोग बेटी के जन्म पर पेड़ लगाना अपने जीवन का परम कर्त्तव्य मानते हैं। लोग अपनी क्षमता एवं सामर्थ्य के अनुसार कोई 1 तो कोई 10 तो कोई 25 से 50 तक पेड़ लगता है। पेड़ों के बड़ा होने तक नियमित देखभाल और पानी की समुचित प्रबन्ध भी करते हैं। जिस व्यक्ति के पास पेड़ लगाने के लिये स्वयं की जमीन नहीं है वह गाँव की ठाकुरवाड़ी की जमीन पर पेड़ लगाता है। बेटी और पेड़ के संवारने के कारण इस गाँव की महक दूर–दराज तक फैलने लगी है।
- राजस्थान के जोधपुर में अमृता देवी ने अपने प्राण देकर भी वृक्षों की रक्षा की। वन संरक्षण का इससे बड़ा उदाहरण विश्व में दूसरा कोई नहीं है।

मत्स्य संसाधन

भारत में अनेक नदियाँ, नहरें, झीलें, बाँध, तालाब, जलाशय और सदा खुले रहने वाले विशाल समुद्र एवं एवं भौगोलिक कारकों के कारण मत्स्य संसाधन के विकास की प्रबल संभावनाएँ हैं। देश के विभिन्न भागों में लगभग 1800 प्रजातियों की मछलियाँ पाई जाती है। इनमें से कुछ किस्मों की मछलियाँ व्यावसायिक स्तर पर पकड़ी जाती है।

भारत में मत्स्य उत्पादन योग्य सम्भावित क्षेत्र के केवल 25 प्रतिशत भाग पर ही मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। यहाँ कुल मत्स्य उत्पादन का 60 प्रतिशत महासागरों से तथा 40 प्रतिशत आन्तरिक जलाशयों से प्राप्त किया जाता है। महासागरों से प्राप्त होने वाली कुल मछलियों का 70 प्रतिशत पश्चिमी समुद्री तट तथा 30 प्रतिशत पूर्वी समुद्री तट से प्राप्त होता है। भारत में मछली की खपत और बढ़ते निर्यात से डेयरी विकास एवं मुर्गी पालन की तरह मत्स्य व्यवसाय भी वैज्ञानिक पद्धतियों से किया जाने लगा है।

भारत में मत्स्य उद्योग का महत्त्व

कृषि प्रधान भारतीय अर्थ व्यवस्था में मत्स्य संसाधन का पर्याप्त महत्त्व हैं।

(1) मछलियाँ प्रोटीन युक्त आहार होने से आहार को सन्तुलित बनाकर कुपोषण से रक्षा करती हैं।

(2) मत्स्य व्यवसाय से लगभग 1.14 करोड़ लोगों को रोजगार मिला हुआ है। इससे राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है और जीवन स्तर ऊँचा उठता है।

(3) मछलियाँ के निर्यात से विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है जो व्यापार के सन्तुलन में सहायक है।

(4) मत्स्य व्यवसाय में 1.50 लाख नावें व 8 लाख परिवार लगे हुए हैं।

(5) मत्स्य व्यवसाय से नाव बनाना, मछली पकड़ने के जाल, औजार, रस्सियाँ, पकड़ी गई मछलियों को सुखाने, डिब्बा बन्द करने, उनका तेल निकालने, खाद बनाने, मत्स्य गोदाम आदि सहायक व्यवसायों का सृजन हुआ है।

मत्स्य उपलब्धता की अनुकल दशाएँ

(1) छिछले समुद्र – 100 फैदम (600 फुट) तक गहरे छिछले समुद्र तट मछलियों के लिये अनुकूल होते हैं। इस गहराई तक सूर्य की किरणें आसानी से पहुँच जाती है। जिससे मछलियों की वृद्धि तथा विकास होता है। छिछले समुद्र तटों पर प्लैकंटन व काई पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होता है। इनको खाने के लिये तथा अण्डे देने के लिये यहाँ मछलियाँ अधिक मात्रा में आती है।

(2) नदियों के मुहाने : यहाँ प्लैकंटन नामक छोटे जीव के लिये भोजन के आवश्यक तत्व पर्याप्त मात्रा में मिल जाते हैं। इसलिये नदियों के मुहानों पर प्लैकंटन अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। नदियों द्वारा कई प्रकार के सड़े–गले पदार्थ भी प्रवाहित कर यहाँ लाये जाते हैं। अतः प्लैकंटन व सड़े–गले पदार्थों को खाने के

लिए मछलियाँ नदियों के मुहानों पर आती हैं।

मत्स्य प्राप्ति के प्रमुख क्षेत्र

(1) समुद्र तटीय मत्स्य क्षेत्र : यह क्षेत्र समुद्रतटीय रेखा से 100 किमी दूर तक खुले समुद्रों की सीमा तक सीमित है। इनमें भी अधिक मछलियाँ 40 किमी तक ही पकड़ी जाती हैं। यहाँ मुख्यतः शार्क, मेकरेल, एंकाकी, ओल, सारडाइन, फाम्फ्रेट, केटफिश, टूना, ईल, हेरिंग, झींगा, पर्न्त, मुलैट, बाम्बे इक मछलियाँ पकड़ी जाती है।

(2) नदी मुख मत्स्य क्षेत्र : गंगा, ब्रह्मपुत्र, हुगली, महानदी, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी, नर्मदा और ताप्ती नदियों के मुहानों पर 6 से 9 माह तक मछलियाँ पकड़ी जाती है। यहाँ पकड़ी जाने वाली मछलियों में पर्च, अप, कार्क, कटला, केटफिश, राहू, हिल्ला, फाम्फ्रेट, पर्लस्पाट आदि मुख्य है।

(3) मीठे जल के मत्स्य क्षेत्र : भारत में मीठे जल की मछलियाँ नदियों, सिंचाई बांधों, तालाबों, झीलों, नहरों नालों और पोखरों आदि में पकड़ी जाती है। गंगा, ब्रह्मपुत्र, दामोदर, महानदी, नर्मदा, ताप्ती, कृष्णा और कावेरी नदियाँ इनकी सहायक नदियों में मुख्यतः मछलियाँ पकड़ी जाती है।



मानचित्र 16.3 : भारत मत्स्य पकड़ने के केन्द्र

(4) मोती मत्स्य क्षेत्र : भारतीय समुद्री क्षेत्रों में कच्छ की खाड़ी, सौराष्ट्र तट, मन्नार की खाड़ी और तमिलनाडु में कुमारी अन्तरीप व पाम्बन द्वीप) में आयस्टार मछलियाँ पाई जाती है। इन मछलियों से बहुमूल्य मोती प्राप्त होते हैं। इन मछलियों को एक विशेष प्रकार के रसायन का इन्जेक्शन लगाया जाता है। इससे कुछ समय पश्चात् इनके शरीर में मोती बन जाता है। जापानी विशेषज्ञों की सहायता से कच्छ व सौराष्ट्र तट पर आयस्टर कल्चर का विकास कर व्यावसायिक मोती फार्मिंग का विस्तार करने की योजना है।

(5) शंख मत्स्य क्षेत्र : भारतीय समुद्र तटों के दलदली तथा बलुई क्षेत्रों में 13 मीटर की गहराई तक विभिन्न आकार–प्रकार की शंख मछलियाँ मिलती है। तमिलनाडु, केरल व गुजरात के सौराष्ट्र में पश्चिमी तट पर अक्टूबर से मई तक शंख मछलियाँ अधिक पकड़ी जाती है। इनके आवरण का उपयोग पूजा–आरती के समय मन्दिरों में बजाये जाने वाले शंखों व अन्य सजावटी सामग्री में किया जाता है।

विकास के प्रयास

(1) मछलियाँ पकड़ने और उत्पादन बढ़ाने के लिये विशेष प्रकार के मत्स्य क्षेत्र पोताश्रय बनाये गये हैं।

(2) भारत में मत्स्य उद्योग के विकास के लिये अपनाये गये उपाय, मछली पकड़ने के लिये आधुनिक बड़ी नौकाओं को काम में लिया जा रहा है।

(3) पकड़ी हुई मछलियों को सुरक्षित रखने के लिए शीत भण्डार तथा परिष्करण व सुखाने की इकाइयाँ स्थापित की गई है।

(4) दक्षिण भारत के प्रमुख रेलमार्गों पर द्रुतगामी मालगाड़ियों में शीत भण्डार युक्त डिब्बे लगाये गये हैं।

(5) मछुआरों को मछली पकड़ने के आधुनिक तरीकों का प्रशिक्षण देने के लिए कोजन, तुतुकुण्डी (तमिलनाडु), सतपारी (महाराष्ट्र), कोच्चि (केरल), विशाखापट्टनम (आन्ध्र प्रदेश) और वेरावल (गुजरात) में प्रशिक्षण केन्द्र खोले गये हैं।

(6) मछलियों के नये उत्पादों की खोज के लिये भारत सरकार ने मुम्बई, बैरकपुर (कोलकात्ता), मण्डपम (तमिलनाडु) में अनुसंधान शालायें स्थापित की है।

(7) ट्रालरों की सहायता से गहरे समुद्रों मेंनये मत्स्य क्षेत्रों का पता लगाकर मछलियाँ पकड़ी जाती है।

(8) मछुआरों की दशा सुधारने के लिये महाराष्ट्र, कर्नाटक, केरल, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु, उड़ीसा, गुजरात व पंजाब में सहकारी समितियाँ स्थापित कर मछलियों का विक्रय और अनुदान की व्यवस्था की जाती है।

मत्स्य बन्दरगाह

भारत सरकार ने मत्स्य विकास के लिये समुद्र तटों पर मत्स्य बन्दरगाह व पोताश्रय स्थापित किये हैं। यहाँ मछलियाँ पकड़ने, छाँटने, संग्रह हेतु शीत भण्डार निर्यात करने, मौसम व तूफानों की सूचना देने तथा मत्स्य व्यवसाय में काम आने वाली नावों एवं जहाजों को सुरक्षित आश्रय देने का कार्य किया जाता है। पूर्वी तट पर कोलकाता, कटक, पुरी, गोपालपुर, गंजम, कलिंगपट्टनम, विमलीपट्टनम, काकीनाड़ा, मछलीपट्टनम, नैल्लोर, चेन्नई, पाण्डिचेरी, नागपट्टनम, तूतीकोस आदि बन्दरगाह एवं पोताश्रय है। पश्चिमी तट पर पोरबन्दर, मांगरोल, सूरत, माहिम, मुम्बई, जयगढ़, रत्नागिरी, देवगढ़, मालवन, मंगलोर, तेल्लिचेरी, कोजीखोड़, कोचीन (कोच्चि), एलेप्पी, तिरूवनन्तपुरम आदि प्रमुख बन्दरगाह व पोताश्रय है।

उत्पादन व व्यापार

भारत में मछली एवं समुद्री उत्पाद में निरन्तर वृद्धि हो रही है। भारत का मत्स्य उत्पादन में चीन (2012–13 में 570 लाख टन) के बाद दूसरा स्थान है, किन्तु देश में जल संसाधनों के अनुपात में मछली उत्पादन बहुत कम है। सामुद्रिक मछली का सर्वाधिक उत्पादन आन्ध्र प्रदेश (18.08 लाख टन), पश्चिमी बंगाल (14.09 लाख टन), गुजरात (7.86 लाख टन), केरल (6.33 लाख टन), तमिलनाडु (6.20 लाख टन), महाराष्ट्र (5.79 लाख टन), कर्नाटक (5.75 लाख टन), उड़ीसा (4.10 लाख टन) मछली उत्पादक राज्य है। भारत में 2001–02 में 59.60 लाख टन, 2012–13 में 90.4 लाख टन तथा 2013–14 में 95.80 लाख टन मछलियाँ पकड़ी गई।

जल संसाधन

मानव जल का उपयोग पेयजल, दैनिक कार्यों, निर्माण कार्यों, सिंचाई, उद्योग और परिवहन आदि कार्यों में करता है।

जल का महत्त्व इस बात से और अधिक बढ़ जाता है कि यह एक अनिवार्य, सीमित और अति संवेदनशील संसाधन है। मानव का कोई भी कार्य, पर्यावरण की कोई भी प्रक्रिया जल के बिना संभव नहीं है। जल का कोई भी किसी भी प्रकार का विकल्प नहीं है।

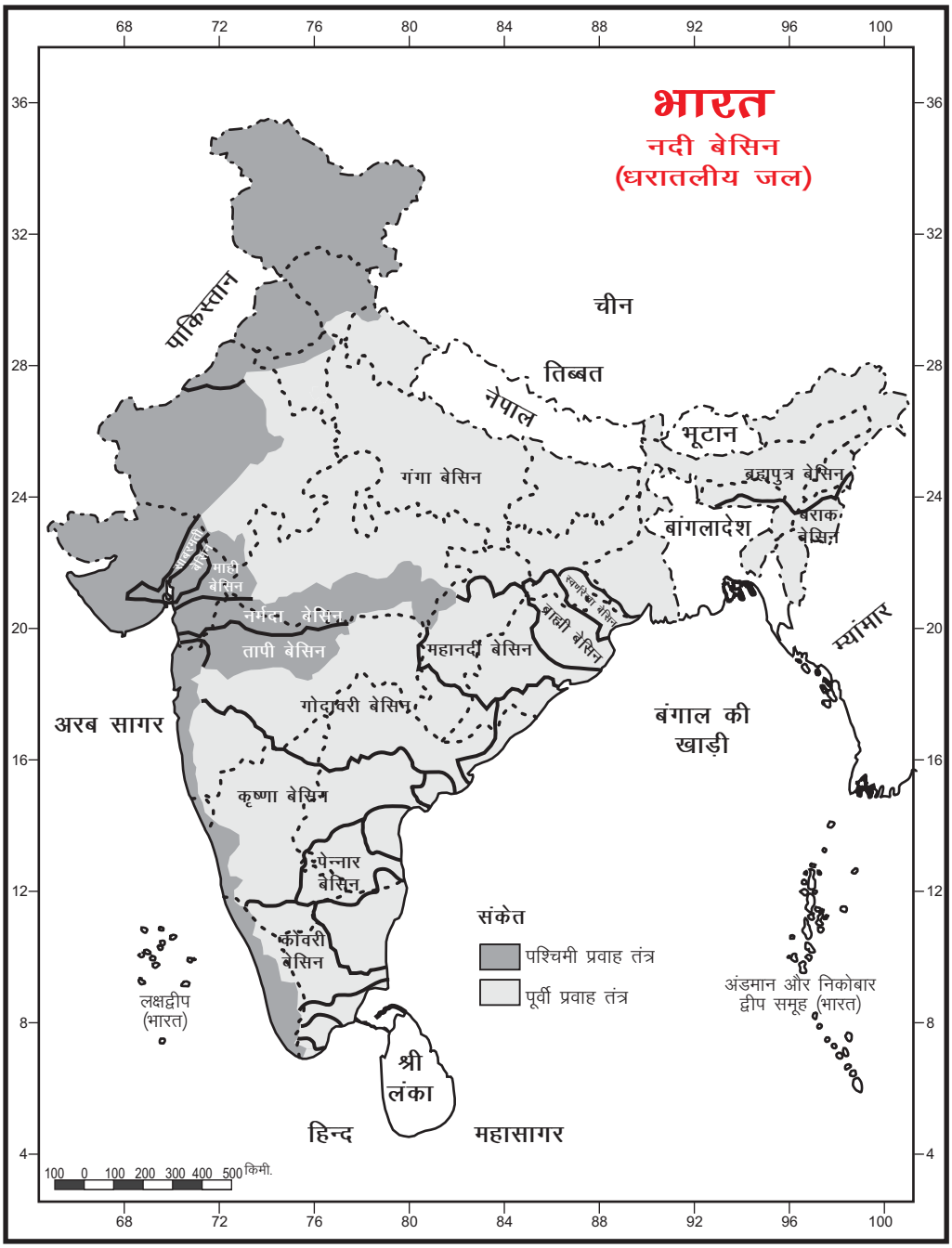

मानचित्र 16.3 : भारत नदी जल बेसिन

मानव के लिए आवश्यक जीवनदायी संसाधनों में वायु के बाद जल का द्वितीय स्थान है। जो प्रकृति का बहुमूल्य उपहार है। जल बिना जीवन असंभव है। जल प्राप्ति का मुख्य स्रोत वर्षा ही है। जो धरातलीय एवं भूमिगत जल के रूप में प्राप्त किया जाता है। भारत में मुख्यतः दक्षिणी– पश्चिमी मानसून द्वारा जून से सितम्बर 3–4 माह में ही ये वर्षा होती है। उत्तर–पूर्वी मानसून द्वारा केवल तमिलनाडू और आन्ध्र प्रदेश के कुछ भागों में ही वर्षा होती है। वर्षा की मात्रा, वितरण और अवधि अनिश्चित होने से प्रति वर्ष वर्षा की अनिश्चितता बनी रहती है।

भारत में जल संसाधन की उपलब्धता

जल एक चक्रीय संसाधन है। जो पृथ्वी पर प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। पृथ्वी का लगभग 71% धरातल पानी से ढका है। जो मुख्यतः लवणीय है। कुल जल का केवल 3% भाग ही अलवणीय है, जिसमें से भी बहुत छोटा भाग ही मानव उपयोग के लिए उपलब्ध है। अलवणीय जल की उपलब्धता स्थान और समयानुसार भिन्न–2 है।

भारत में विश्व के 2.45% भू–भाग पर 4% जल संसाधन एवं 17.5% मानव संसाधन पाया जाता है। भारत की विशालता और स्थलाकृतिक भिन्नता के कारण जल की उपलब्धता में अत्यधिक अन्तर दृष्टिगोचर होता है।

भारत में जल के दो स्रोत है (1) धरातलीय जल एवं (2) भूमिगत जल।

(1) धरातलीय जल

(अ) वर्षा : वर्षा जल का मूल स्रोत है। भारत में 32.87 लाख वर्ग किमी भूमि क्षेत्र पर प्रति वर्ष औसतन 108 सेमी वर्षा होती है। वर्षण (वर्षा + हिम वर्षा) से भारत को 4000 घन किमी जल प्राप्त होता है। इसमें से 1869 घन किमी जल नदियों, झीलों, तालाबों, बाँधों और अन्य जलाशयों द्वारा धरातलीय जल के रूप में प्राप्त होता है। 1341 घन किमी जल वाष्पीकरण और मिट्टी में नमी के रूप में चला जाता है। असिंचित क्षेत्रों में इसी नमी से ही कृषि की जाती है। शेष 790 घन किमी जल भूमि द्वारा सोख लिया जाता है। जो मिट्टी के रन्ध्रों और चट्टानों की दरारों में संचित हो जाता है।

(ब) धरातलीय जल : वह जल जो वर्षण द्वारा नदियों, झीलों, तालाबों, बाँधों और नालों से प्राप्त होता है। धरातलीय जल कहलाता है।

भारत के जल स्रोतों में नदियाँ सर्व प्रमुख है। भारतीय नदियों, झीलों, तालाबों, बाँधों और नालों से लगभग 1869 घन किमी जल राशि प्राप्त होती है। उच्चावच, मिट्टी की प्रकृति और जलवायु की असमानता के कारण यह सम्पूर्ण जल राशि सिंचाई के लिए प्राप्त नहीं हो सकती। इसमें से 690 घन किमी नदी जल सिंचाई के काम आ सकता है। किन्तु संसाधनों के अभाव में कुल क्षमता का लगभग 60% जल ही प्राप्त किया जा रहा है।

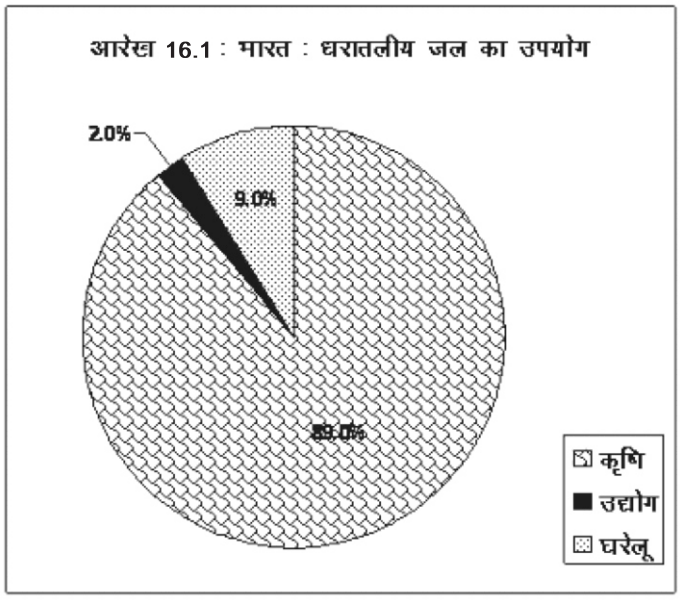

भारतीय नदियों में कुल प्राप्त जल का 60% हिमालय क्रम की नदियों (सिन्धु, गंगा, ब्रह्मपुत्र) में 16% मध्य भारत की नदियों (नर्मदा, ताप्ती और महानदी) में तथा शेष 24% भाग दक्षिणी भारत की नदियों (गोदावरी, कृष्णा, कावेरी) में प्रवाहित होता है। यहाँ भारत की प्रमुख 10 नदियों, उनकी लम्बाई और उनके अपवाह क्षेत्र का विस्तार सारणी 16.1 द्वारा दर्शाया गया है।

सारणी 16.1 : भारत की प्रमुख नदियाँ

क्र.सं.	नदी का नाम	लम्बाई (किमी)	अपवाह क्षेत्र (वर्ग किमी)
1	गंगा (भारत की सबसे लम्बी नदी)	2525	100,062 861452 भारत में
2	यमुना	1376	366,223
3	ब्रह्मपुत्र	2880	580,080 194,413 भारत में
4	सिन्धु	2900 1134 भारत में	11,65,000 453,000 भारत में
5	नर्मदा	1313	98,796
6	ताप्ती	724	65,145
7	महानदी	851	141,589
8	गोदावरी	1465	312,812
9	कृष्णा	1400	258,948
10	कावेरी	800	81,155

धरातलीय जल का उपयोग

धरातलीय जल का सर्वाधिक उपयोग 89% कृषि कार्यों, 9% घरेलू कार्यों एवं 2% औद्योगिक कार्यों में होता है। जो नदियों, झीलों, तालाबों और नहरों द्वारा प्राप्त किया जाता है।

भारत की समुद्री तट रेखा विशाल व आंशिक कटी फटी है। इसलिए केरल, उड़ीसा और पश्चिम बंगाल में बहुत सी लेगून झीलें बन गई हैं। यद्यपि उन जलाशयों का जल खारा है, किन्तु मत्स्य पालन, नारियल और चावल की कुछ किस्मों की सिंचाई में इस जल का उपयोग किया जाता है।

(2) भूमिगत जल

भारत में वर्षण से प्राप्त कुल 4000 घन किमी जल में से

केवल 790 घन किमी जल ही भूमिगत जल के रूप में प्राप्त होता है। इसमें 430 घन किमी जल भूमि की ऊपरी सतह तक पहुँचता है।

प्रत्यक्ष रूप से यहीं जल कृषि उत्पादन के लिए उपयोगी है। शेष 360 घन किमी जल धरातल के नीचे प्रवेश्य स्तर तक पहुँचकर कठोर और अभेदन चट्टानों पर एकत्रित होता है। यही जल (बावड़ी), कुएँ व नलकूप खोदकर प्राप्त किया जाता है।

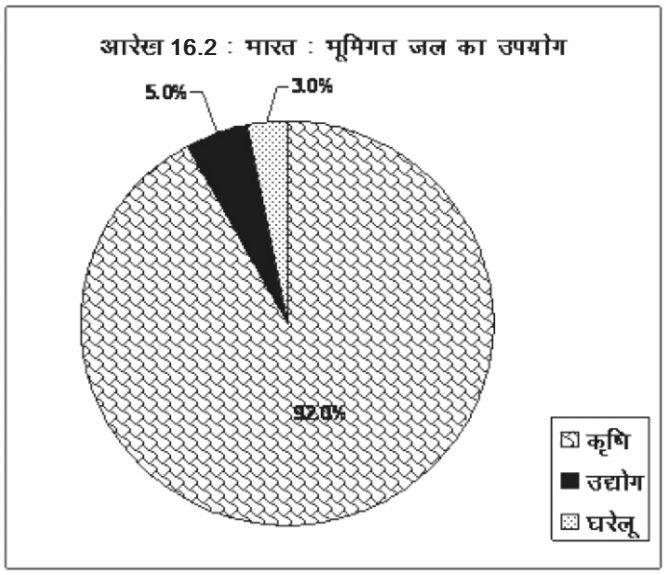

कुल भूमिगत जल 790 घन किमी में से 225 घन किमी जल का ही आर्थिक दृष्टि से उपयोग किया जा सकता है। सिंचाई के लिए अभी तक लगभग 78 घन किमी भूमिगत जल संसाधन का ही उपयोग किया जा सका है।

भूमिगत जल की प्राप्ति सामान्यतः आग्नेय व कायान्तरित कठोर शैलों से नहीं होती है। इसलिए भूमिगत जल की मात्रा प्रदेशानुसार भिन्न है। जैसे तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश, दक्षिण–पूर्वी मध्य प्रदेश, कर्नाटक, झारखण्ड के छोटा नागपुर एवं हजारी बाग प्रदेश, उत्तर प्रदेश के झांसी, बांदा और हमीरपुर जिले, राजस्थान के अधिकाँश पूर्वी भागों में जहाँ कठोर चट्टानें मिलती है। इन क्षेत्रों में जल चट्टानों की सन्धियों में मिलता है, इसलिए नलकूप एवं कुएँ, बावड़ी, नदियों, तालाबों के किनारे एवं भराव क्षेत्र के आस–पास ही खोदे जाते हैं।

सतलज–गंगा–ब्रह्मपुत्र बेसिन में रन्ध्र युक्त कोमल चट्टानें होने से 44 प्रतिशत भूगर्भिक जल उपलब्ध होता है इसलिए पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, बिहार एवं पश्चिमी बंगाल में भूमिगत जल के प्रचुर भण्डार होने से कुएँ व नलकूप अधिक संख्या में पाये जाते हैं।

भूमिगत या भूगर्भिक जल का उपयोग

भूमिगत जल का सर्वाधिक उपयोग 92% कृषि कार्यों, 3% घरेलू कार्यों एवं 5% औद्योगिक कार्यों में होता है।

सिंचाई

वर्षा की कमी या अभाव के कारण शुष्क मौसम में खेतों में कृत्रिम ढंग से जल की आपूर्ति की क्रिया को सिंचाई कहते हैं।

जिन यंत्रों (उपकरणों) द्वारा नदियों, नहरों, झीलों, बाँधों, तालाबों, नालों, नलकूपों, कुओं आदि से पानी बाहर निकाल कर सिंचाई की जाती है, सिंचाई के उपकरण कहलाते हैं। जैसे– रहंट, चड़स, ढेकुली, डीजल पम्प, विद्युत पम्प आदि।

सिंचाई की आवश्यकता

भारत में निम्नलिखित कारणों से सिंचाई की आवश्यकता है।

- जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि से उत्पादन की अधिक आवश्यकता।
- वर्षा की अनिश्चितता, अनयिमितता एवं बौछार के रूप में होने के करीएर।
- वर्षा का असमान वितरण एवं मौसमी होने से।
- गहन कृषि एवं बहुफसलीकरण व्यवस्था के लिए।
- कुछ फसलों के लिए अधिक जल की आवश्यकता होती है।
- सूखे की समस्या के समाधान के लिए।
- नये व संकर बीजों के लिए अधिक एवं समय पर जल की आवश्यकता होती है।
- व्यावसायिक फसलों के उत्पादन में वृद्धि के लिए सिंचाई एक मात्र साधन है।
- शुष्क क्षेत्रों में फसलोत्पादन के लिए।
- मिट्टी की प्रकृति व चारागाह के विकास के लिएभी सिंचाई उपयोगी ।

इतिहास : भारत में प्राचीन काल से ही सिंचाई के विभिन्न साधन काम में लिए जाते रहे हैं। वैदिक काल में नहर के लिए कुल्या और कुएँ के लिए अवर शब्द प्रयुक्त किया गया है। मेग्स्थनीज के विवरणानुसार चन्द्रगुप्त के राज्यपाल पुष्प गुप्त ने पर्वतीय नदी पर गिरनार (गुजरात) में बाँध बनाकर सुदर्शन नामक झील बनवाई थी। कालान्तर में सम्राट अशोक महान् ने

इस झील से नहरें भी बनवाई थी। चाणक्य ने ईसा पूर्व गुप्त काल में कहा था कि सेतुबन्ध कृषि के आधार होते हैं। इनके नहीं होने से बाढ़े आ जाती है तथा वे गाँवों को बहा कर ले जाती है। इससे जनधन की बड़ी हानि होती है।

भारत में कावेरी नदी पर ईसा की दूसरी शताब्दी में सिंचाई के लिए 300 मीटर लम्बा, 12 से 18 मीटर चौड़ा तथा 5 से 6 मीटर ऊँचा बाँच बनाया गया था। जो संसार के प्राचीनतम बाँधों में से एक है।

देश के वर्तमान में सही अर्थों में कुल कृषि भूमि के लगभग 60 प्रतिशत भाग पर सिंचाई की सुविधाएँ उपलब्ध है। उत्तरी भारत में नहरों, कुओं और नलकूपों से तथा दक्षिणी भारत में तालाबों और नहरों द्वारा सिंचाई की जाती है।

सिंचाई के साधन

जो साधन सिंचाई के लिए खेतों में जल उपलब्ध करवाते हैं, सिंचाई के साधन कहलाते हैं। जैसे नदियाँ, नहरें, झीलें, तालाब, कुएँ, नलकूप आदि।

भारत में सिंचाई के धरातलीय एवं भूमिगत जल संसाधनों का निम्न प्रकार वर्गीकरण किया जा सकता है।

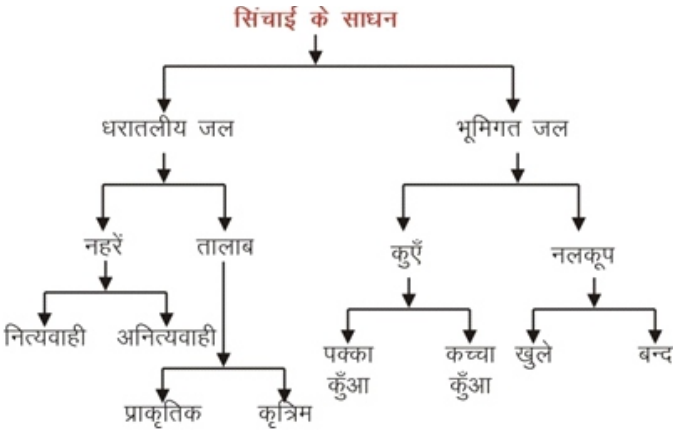

रेखाचित्र 16.11 : सिंचाई के साधन

जल समस्या

निरन्तर जनसंख्या वृद्धि से जल की प्रति व्यक्ति उपलब्धता दिन–प्रतिदिन कम होती जा रही है। उपलब्ध जल संसाधन औद्योगिक, कृषि और घरेलू अपशिष्ट पदार्थों के निस्सरण से प्रदूषित होता जा रहा है। जल प्रदूषण से उपयोगी जल संसाधनों की उपलब्धता निरन्तर सीमित होती जा रही है।

जल की उपलब्धता का ह्रास

अवांछित पदार्थों से रहित जल शुद्ध जल कहलाता है। विषैले पदार्थों, सूक्ष्म जीवों, रासायनिक पदार्थों और अन्य अपशिष्ट पदार्थों के मिलने से जल अपनी स्वाभाविक गुणवत्ता खोकर प्रदूषित होने से मानव के लिए अनुपयोगी हो जाता है। इसे जल प्रदूषण अथवा जल की गुणवता में ह्रास कहते हैं। विषैले पदार्थों के निरन्तर नदियों, नालों, झीलों, तालाबों और समुद्रों में मिलने से जल–प्रदूषण बढ़ता जा रहा है। जल के गुणों में कमी आने से जलीय तंत्र प्रभावित होता है। अत्यधिक प्रदूषक भीतर तक पहुँचकर भूमिगत जल को भी प्रदूषित करते हैं। भारत में गंगा–यमुना जैसी पावन नदियाँ भी अत्यधिक प्रदूषित नदियों का रूप ले चुकी है।

जल संरक्षण और प्रबन्धन

अलवणीय जल की बढ़ती माँग और घटती आपूर्ति से सतत् पोषणीय विकास के लिए इस महत्त्वपूर्ण जीवनदायी संसाधन के संरक्षण और प्रबन्धक की आवश्यकता बढ़ गई है। सागरों महासागरों का लवणीय जल अत्यधिक लागत के कारण विलवणीय कर प्राप्त करना अत्यधिक कठिन कार्य है। भारत को प्रभावशाली नीतियाँ और कानून बनाकर जल संरक्षण हेतु प्रभावशाली कदम उठाने है। अतः जल की बचत, जल प्रदूषण से बचाव, जल संभरण विकास, वर्षा जल संग्रहण, जल के पुनर्चक्रण और पुनः उपयोग, सिंचाई की नई पद्धति, कम जल चाहने वाली फसलें तथा लम्बे समय तक जल की आपूर्ति के लिए जल के संयुक्त उपयोग को बढ़ाने की आवश्यकता है। जल संरक्षण हेतु सुझावों का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है–

(1) जल प्रदूषण का निवारण : पृथ्वी पर उपलब्ध जल संसाधन की गुणवता निरन्तर तीव्र गति से घट रही है। कृषि कार्यों में जैविक कीटनाशकों व उर्वरकों का अधिक उपयोग, रासायनिक कीटनाशकों व उर्वरकों का कम उपयोग, प्रदूषित जल का शोधन कर जल स्रोतों में निकासी, उद्योगों के प्रदूषित जल का उप उत्पादकों में उपयोग, उन्नत व परिष्कृत तकनीक आदि का उपयोग कर जल प्रदूषकों में बहुत प्रभावशाली ढंग से कमी लाई जा सकती है।

(2) जल का पुनर्चक्रण और पुनः उपयोग : इस तकनीक द्वारा अलवणीय जल की उपलब्धता और गुणवत्ता को सुधारा जा सकता है। कम गुणवत्ता वाले शोधित अपशिष्ट जल का उपयोग शीतलन व अग्निशमन के लिए किया जा सकता है। नगरीय क्षेत्रों में स्नान, बर्तन धोने तथा वाहन धोने में प्रयुक्त जल का उपयोग बागवानी में किया जा सकता है। इससे अच्छी गुणवत्ता वाले जल का पेयजल के रूप में संरक्षण होगा। पुनर्चक्रण विधि

द्वारा प्राप्त सीमित किन्तु पुनः पूर्ति योग्य जल की उपादेयता व्यापक है।

(3) जल संभरण प्रबन्धन : जल संभर प्रबन्धन का आशय मुख्य रूप से वर्षा, धरातलीय व भौम जल संसाधनों के दक्ष प्रबन्धन से है। इसके अन्तर्गत बहते जल को रोकना बाँधों, झीलों, तालाबों और पुनर्भरण कुओं आदि के द्वारा भौम जल का संचयन और पुनर्भरण सम्मिलित है। जल प्रबन्धन के अन्तर्गत जल संभरण और मानव सहित समस्त संसाधनों के संरक्षण पुर्नउत्पादन और विवेकपूर्ण विदोहन को सम्मिलित किया गया है।

केन्द्रीय, राज्य सरकारों और गैर सरकारी संगठनों द्वारा बहुत से जल संभरण विकास और प्रबन्धन कार्यक्रम चलाये आ रहे हैं। ग्रामीण जनसंख्या को पेयजल, सिंचाई, मत्स्यपालन और वनरोपण के लिए संरक्षण हेतु केन्द्र सरकार द्वारा 'हरियाली' जल संभरण विकास परियोजना संचालित की गई है।

राजस्थान के अलवर में अखारी पानी संसद और आन्ध्र प्रदेश में नीरू–मीरू (जल और आप) कार्यक्रम द्वारा जन–सहयोग से अन्तःस्त्रवण तालाब व ताल (जोहड़) की खुदाई और बाँध बना कर जल संग्रहण संरचना बनाई गई है। ऐसे ही तमिलनाडु में घरों में जल संग्रहण संरचना बनाये बिना इमारत निर्माण नहीं किया जा सकता है।

कुछ क्षेत्रों में जल संभरण विकास परियोजनाएँ पर्यावरण व अर्थ व्यवस्था का कायाकल्प करने में सफल हुई है। अतः एकीकृत जल संसाधन प्रबन्धन उपागम द्वारा जल की सतत् उपलब्धता निश्चित की जा सकती है।

(4) वर्षा जल संचयन : वर्षा जल संचयन विभिन्न उपयोगों के लिए वर्षा के जल को रोकने और संग्रहण करने की विधि है। इसका उपयोग भूमिगत जल स्रोतों के पुनर्भरण के लिए किया जाता है। इसमें पानी की प्रत्येक बूंद संरक्षित करने के लिए वर्षा जल को नलकूपों, गढ्ढों और कुओं में एकत्र किया जाता है। इससे पानी की उपलब्धता बढ़ने से भूमिगत जलस्तर ऊँचा बना रहता है।

जल संचयन भूमिगत जल में उपलब्ध अलवणीयता कम कर उसकी गुणवत्ता बढ़ाता है, मृदा अपरदन और बाढ़ को रोकता है। भारत में ग्रामीण क्षेत्रों में परम्परागत रूप से वर्षा जल झीलों, तालाबों, ताल–तलैया, कुण्डों और टांकों में संचित किया जाता रहा है। यह कम मूल्य आधारित परिस्थितिकी विधि है। राज्य सरकार द्वारा चलाई जा रही जल स्वावलम्बन योजना के अन्तर्गत कई ग्रामीण क्षेत्रों में जल संचयन, संरक्षण के उल्लेखनीय कार्य संपादित हुए हैं।

खनिज संसाधन

वे सभी प्राकृतिक पदार्थ जो भूमि को खोदकर (खनन द्वारा) प्राप्त किये जाते हैं खनिज कहलाते हैं। जैसे– लोहा, ताँबा, चाँदी, संगमरमर, कोटा स्टोन, कोयला, पेट्रोलियम आदि। खनिज प्राकृतिक रवेदार (क्रिस्टलीय) निश्चित रासायनिक संगठन और विशिष्ट संरचना वाले पदार्थ हैं। कुछ खनिज एक ही तत्व से निर्मित सामान्य संगठन वाले होते हैं। जैसे– कार्बन, हीरा, आदि तो अधिकाँश खनिज दो तत्वों के संघटन वाले होते हैं। जैसे सल्फर, लोहा, खनिजों की विशेषताएँ होती है। जैसे रंग, आभा, घनत्व, रवेदार (क्रिस्टलीय), कठोरता, पारदर्शिता, संरचना, भार, रासायनिक संगठन आदि।

खनिज पदार्थ संसार के सर्वाधिक मूल्यवान एवं प्राकृतिक संसाधनों में महत्त्वपूर्ण निःशुल्क उपहार है। धात्विक खनिजों से मशीनों का निर्माण, धात्विक और अधात्विक खनिजों से आवासों का निर्माण, खनिज ईंधन से मशीनों को चलाने के लिए शक्ति प्राप्त होती है। अतः किसी देश की सामाजिक, आर्थिक, औद्योगिक, वैज्ञानिक, प्रगति के मुख्य आधार स्तम्भ खनिज ही है।

भारतीयों को प्राचीन काल से ही खनिजों का ज्ञान था। ताम्र युग और काँस्य युग इसके प्रमाण है। भारत में आज़ादी में 1947 तक 22 प्रकार के खनिजों का खनन किया जाता था। आज इनकी संख्या बढ़कर 125 हो गई है। इनमें 35 खनिज आर्थिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। अभी तक मानव को लगभग 1600 प्रकार के खनिजों का ज्ञान है। खनिजों की आत्म निर्भरता में संयुक्त राज्य अमेरिका प्रथम, भारत द्वितीय एवं रूस तृतीय स्थान पर है।

भारत में खनिजों का वितरण

भारत में खनिज प्रमुखतः 6 मेखलाओं में पाये जाते हैं।

(1) झारखण्ड–उड़ीसा–पश्चिमी बंगाल मेखला : यह मेखला भारत के उत्तरी पूर्वी पठारी प्रदेश में छोटा नागपुर, उड़ीसा पठार, पं. बंगाल और छत्तीसगढ़ के कुछ भाग में विस्तृत है। यहाँ लौहा, अयस्क, कोयला, मैंगनीज, अभ्रक, ताँबा, इल्मेनाइट, बाक्साइड, क्रोमाइट, फास्फेट व चूना पत्थर आदि के विशाल भण्डार है।

(2) मध्य प्रदेश–छत्तीसगढ़–आन्ध्र प्रदेश–महाराष्ट्र मेखला : इस मेखला में लौह अयस्क, मैंगनीज, बॉक्साइट, चूना पत्थर, अभ्रक, ताम्बा, ग्रेनाइट व हीरे के विशाल भण्डार है।

(3) कर्नाटक–तमिलनाडु–मेखला : इस मेखला में सोना, लौहा, अयस्क, मैंगनीज, ताँम्बा, बॉक्साइट, लिग्नाइट, कोयला, चूना पत्थर, जिप्सम, क्रोमाइट आदि के विशाल भण्डार है।

(4) राजस्थान–गुजरात मेखला : इस मेखला में चाँदी, सीसा, जस्ता, अभ्रक, मैंगनीज, ताम्बा, लिग्नाइट, कोयला, पन्ना, संगमरमर, जिप्सम, एस्बेस्टौस, नमक, मुल्तानी मिट्टी, येरेनियम, बेरेलियन, पेट्रोलियम, प्राकृतिक गैस के भण्डार हैं।

(5) केरल मेखला : इस मेखला में मोनोजाइट, जिरकन, इल्मेनाइट, गारनेट, चिकनी मिट्टी आदि खनिज पाये जाते हैं।

(6) हिमालय–मेखला : इस मेखला में ताँबा, सीसा, जस्ता, निकिल, सुरमा, कोबाल्ट, टंगस्टन, सोना, चाँदी, क्रोमाइट और बेरेलियम आदि खनिज पाये जाने की पर्याप्त संभावनाएँ है।

खनिजों का वर्गीकरण

खनिजों के वर्गीकरण का विस्तृत अध्ययन आप इसी पुस्तक के खण्ड ''अ'' के अध्याय सात में कर चुके हैं, यहाँ केवल उनकी संक्षिप्त जानकारी दी जा रही है।

1. धात्विक खनिज

(अ) लौह खनिज – लौहा, मैंगनीज, टंगस्टन, क्रोमाइट, निकिल, आदि।

(ब) अलौह खनिज – ताम्बा, सीसा, जस्ता, चाँदी, सोना, बॉक्साइट, इल्मेनाइट, बेराइट, मेग्नेसाइट, एज्युमिनियम, रांगा (टिन) आदि।

2. अधात्विक खनिज : अभ्रक, एस्बेस्टोस, पाइराइट, नमक, जिप्सम, हीरा, पत्थर, रॉक फास्फेट, चूना पत्थर, डोलोमाइट, काँच बनाने की बालू और विभिन्न प्रकार की मिट्टियाँ।

(3) खनिज ईंधन या शक्ति संसाधन : कोयला, खनिज तेल, और अणुशक्ति वाले खनिज जैसे– यूरेनियम, थोरियम, इल्मेनाइट, बेरिलियम, जिरकन, सुरमा और ग्रेफाइट आदि।

यहाँ धात्विक व अधात्विक खनिजों का विवरण दिया जा रहा है।

(1) लौह अयस्क (Iron Ore) : वर्तमान यांत्रिक युग में लोहा किसी देश के आर्थिक विकास की धुरी है। सुई व कील से लेकर फर्नीचर, विशालकाय इंजिन, वाहन, मशीनें, जलपोत विभिन्न संयन्त्र और भवन निर्माण सामग्री आदि लोहे से बनाई जाती है। लोहे के अत्यधिक उपयोग के कारण ही वर्तमान युग को लौह–इस्पात युग कहा जाता है। लौहे की कच्ची धातु लौह अयस्क कहलाती है। भारत में यह काले या गेरू रंग में धारवाड़ युग की जलज और आग्नेय चट्टानों से प्राप्त होती है। लौह अयस्क अशुद्ध अवस्था में मिलता है, जिसे धमन भट्टियों में पिघलाकर साफ किया जाता है। साफ की हुई लोहे की ठण्डी धातु को कच्चा लोहा कहते हैं। लोहे में मैंगनीज, टंगस्टन और निकिल आदि मिलाकर विभिन्न प्रकार का इस्पात तैयार किया जाता है।

लौह अयस्क के प्रकार : लौह अयस्क में लोहे की मात्रा अलग–अलग होती है। जो 25 से 72 प्रतिशत तक होती है। लौह अयस्क में लोहे की मात्रा के अनुसार इसके चार प्रकार हैं, किन्तु 25 प्रतिशत से अधिक लौह अयस्क की मात्रा वाली धातु का खनन ही लाभप्रद होता है।

(अ) मैग्नेटाइट अयस्क : इसमें लोहे की मात्रा 72 प्रतिशत तक होती है। लौह धातु की अधिकता के कारण इसका रंग काला या गहरा भूरा होता है। यह सर्वोत्तम किस्म का लौह अयस्क है। जो आग्नेय शैलों में पाया जाता है। भारत में मैग्नेटाइट लौह अयस्क के अनुमानित भण्डार लगभग 340.8 करोड़ टन है।

(ब) हेमेटाइट अयस्क : इसमें लोहे की मात्रा 60 से 70 प्रतिशत तक होती है। इसका रंग लाल या भूरा होता है। इसमें लोह धातु ठोस कणों या चूर्ण के रूप में पाई जाती है। यह लौह अयस्क धारवाड़ या कुडप्पा समूह से प्राप्त होती है। भारत में हेमेटाइट लौह अयस्क के अनुमानित भण्डार 10.05 अरब टन है।

(स) लिमोनाइट अयस्क : इसमें लोहे की मात्रा 30 से 60 प्रतिशत तक होती है। इसका रंग कुछ पीलापन लिए होता है। यह निम्न कोटि का अयस्क है और परतदार चट्टानों में पाया जाता है।

(द) सिडेराइट अयस्क : इसमें लोहे की मात्रा 10 से 48 प्रतिशत तक होती है। इसका रंग राख जैसा या हल्का भूरा होता है। लौह अंश की कमी के कारण यह घटिया किस्म की लौह अयस्क है। इसलिए इसका खनन अनार्थिक माना जाता है।

लौह अयस्क प्राप्ति क्षेत्र

(1) कर्नाटक : यह राज्य भारत के लौह अयस्क उत्पादन में 24.80 प्रतिशत के साथ प्रथम स्थान है। यहाँ पर कादर (बाबाबदून की पहाड़ियाँ), बेलारी, हास्पेट, शिमोगा, धारवाड़, तुमकुर, चिकमंगलूर, चित्रदुर्ग आदि प्रमुख लौह अयस्क उत्पादक जिले हैं। राज्य में हेमेटाइट किस्म की 55 से 65 प्रतिशत लौह अयस्क वाली धातु निकाली जाती है। यहाँ लौह अयस्क के अनुमानित भण्डार 1.45 अरब टन है।

(2) उड़ीसा : देश में लौह अयस्क उत्पादन में 22.13 प्रतिशत के साथ देश में दूसरा स्थान है। यहाँ पर मयूर भंज (गुरूम हिसानी, सुलेमात और बादाम पहाड़), सुन्दरगढ़, बोनाई, सम्बलपुर व कटक महत्त्वपूर्ण लौह अयस्क उत्पादन जिले हैं। यहाँ हेमेटाईट किस्म की 58 से 60 प्रतिशत तक अयस्क वाली धातु पाई जाती है।

(3) छत्तीसगढ़ : यह राज्य 19.97 प्रतिशत उत्पादन करके तीसरा स्थान रखता है। यहाँ बस्तर और दुर्ग सबसे महत्त्वपूर्ण लौह अयस्क उत्पादक जिले हैं। जबलपुर, राजगढ़, बिलासपुर, सरगुजा, बालासर आदि अन्य उत्पादक जिले हैं। यहाँ हेमेटाइट किस्म की 50 से 66 प्रतिशत तह लौह अयस्क वाली धातु निकाली जाती है।

(4) गोवा : देश में 18.05 प्रतिशत लौह अयस्क उत्पादन कर चौथे स्थान पर है। यहाँ मिरना, अदोल पाले ओनडा, कुडनम, प्रिंससलेम, आदि प्रमुख उत्पादक जिले हैं। लोहे को साफ करके मारमगोवा बन्दरगाह से जापान को निर्यात कर दिया जाता है। यहाँ घटिया किस्म का लोहा निकाला जाता है जिसमें लौह अंश की मात्रा 50 प्रतिशत तक होती है।

(5) झारखण्ड : देश में लौह अयस्क उत्पादन में इसका 14.11 प्रतिशत के साथ पाँचवाँ स्थान है। यहाँ सिंह भूमि (नोआमण्डी) मातभूमि, हजारी बाग आदि प्रमुख लौह अयस्क उत्पादन जिले हैं।

(6) महाराष्ट्र : यहाँ चन्द्रपुर जिले में पीपलगाँव, लौहार, देवलगाँव तथा रत्नागिरी जिले में लौहा अयस्क पाया जाता है।

(7) आन्ध्र प्रदेश : यहाँ आदिलाबाद, करीमनगर, निजामाबाद, कृष्णा, कुर्नून, कुडप्पा, गुन्टूर, नैलोर, चित्तूर, बारगंल आदि प्रमुख लौह उत्पादक जिले हैं। यहाँ मैग्नेटाइट किस्म की 65 से 72 प्रतिशत अंश वाली लौह अयस्क निकाली जाती है।

(8) तमिलनाडु : यहाँ सलेम चिरूचनापल्ली, अकार्ट, नीलगिरी, धर्मपुरी प्रमुख लौह अयस्क उत्पादक जिले हैं। यहाँ 65 से 70 प्रतिशत अंश वाली हेमेटाइट प्रकार की धातु निकाली जाती है।

(9) अन्य राज्य : बिहार, पं. बंगाल, जम्मू और कश्मीर, उत्तराखण्ड, हिमाचल प्रदेश, गुजरात, राजस्थान और उत्तर प्रदेश राज्य में भी लौह अयस्क निकाला जाता है।

उत्पादन एवं व्यापार

भारत में एशिया के विशालतम लौह अयस्क के संचित भण्डार हैं। भारत में निर्यात के लिए लौह अयस्क उड़ीसा, कर्नाटक और गोवा से निकाला जाता है। भारत में 2013–14 में 15.24 करोड़ टन लौह अयस्क का उत्पादन किया गया। मारमांगोवा, कोलकाता (हल्दिया), विशाखापट्टनम, पारद्वीप, चेन्नई, मंगलोर आदि बन्दरगाहों से लौह अयस्क का निर्यात किया जाता है।

ताँबा

मानव सभ्यता के विकास में ताँबे का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। वर्तमान में ताँबे का उपयोग तारों, विद्युत उपकरणों (विद्युत मोटरें, ट्रान्सफर व जेनरेटर आदि), नलियाँ (पाईप) और बर्तन बनाने में होता है। ताँबा शुद्ध रूप से बहुत लचीला होने से आयात वर्धनीय एवं तन्यता युक्त धातु है। आभूषणों को सुदृढ़ता प्रदान करने के लिए ताँबा स्वर्ण के साथ मिलाया जाता है। यह अन्य धातुओं के साथ मिलकर अनेक मिश्र धातुएँ बनाता है। जैसे ताँबा और एल्यूमिनियम से पीतल, ताम्बा और राँगा से काँसा, ताँबा और निकिल से जर्मन सिल्वर, ताँबा और सोना से रोल्ड गोल्ड बनाया जाता है।

वर्तमान में विश्व में 60 प्रतिशत ताँबे का उपयोग विद्युत निर्माण एवं सम्बन्धित उद्योगों में होता है। विश्व में ताँबा कम मात्रा में पाया जाता है। इसलिए इसके प्रति स्थापक के रूप में एल्यूमिनियम का उपयोग बढ़ने से अलौह धातुओं में ताँबे का स्थान एल्यूमिनियम के बाद दूसरा हो गया है। भारत में ताँबे के भण्डार बहुत कम है। जो अनुमानतः 71.25 करोड़ टन है। इसमें लगभग 94 लाख टन ताँबा धातु संचित होने का अनुमान है। यहाँ ताँबा अयस्क में धातु की मात्रा 0.8 प्रतिशत से 8 प्रतिशत तक पाई जाती है।

प्राप्ति क्षेत्र : भारत के प्रमुख ताँबा उत्पादक राज्य निम्नलिखित है।

(1) मध्य प्रदेश : राज्य का भारत में ताँबा उत्पादन में प्रथम स्थान है। यहाँ 56.86 प्रतिशत ताँबे का उत्पादन होता है। मुख्य ताँबा उत्पादक जिले बालाघाट (मल जखण्ड) तथा तारे गाँव तथा बेतूल हैं। यहाँ 848 लाख टन ताँबे के भण्डार है, जिनमें 10.06 लाख टन शुद्ध ताँबा उपस्थित है।

(2) राजस्थान : यह भारत में दूसरा बड़ा ताँबा उत्पादक राज्य है। यहाँ झुंझुंनू (खेतड़ी, सिंघाना), मुख्य उत्पादक जिला है। यहाँ हिन्दुस्तान कॉपर कॉरपोरेशन खेतड़ी द्वारा ताँबा अयस्क निकालने व ताँबा शोधन का कार्य किया जाता है। कारखाने की ताँबा संद्रावक क्षमता 40 हजार टन वार्षिक है। सीकर, उदयपुर,

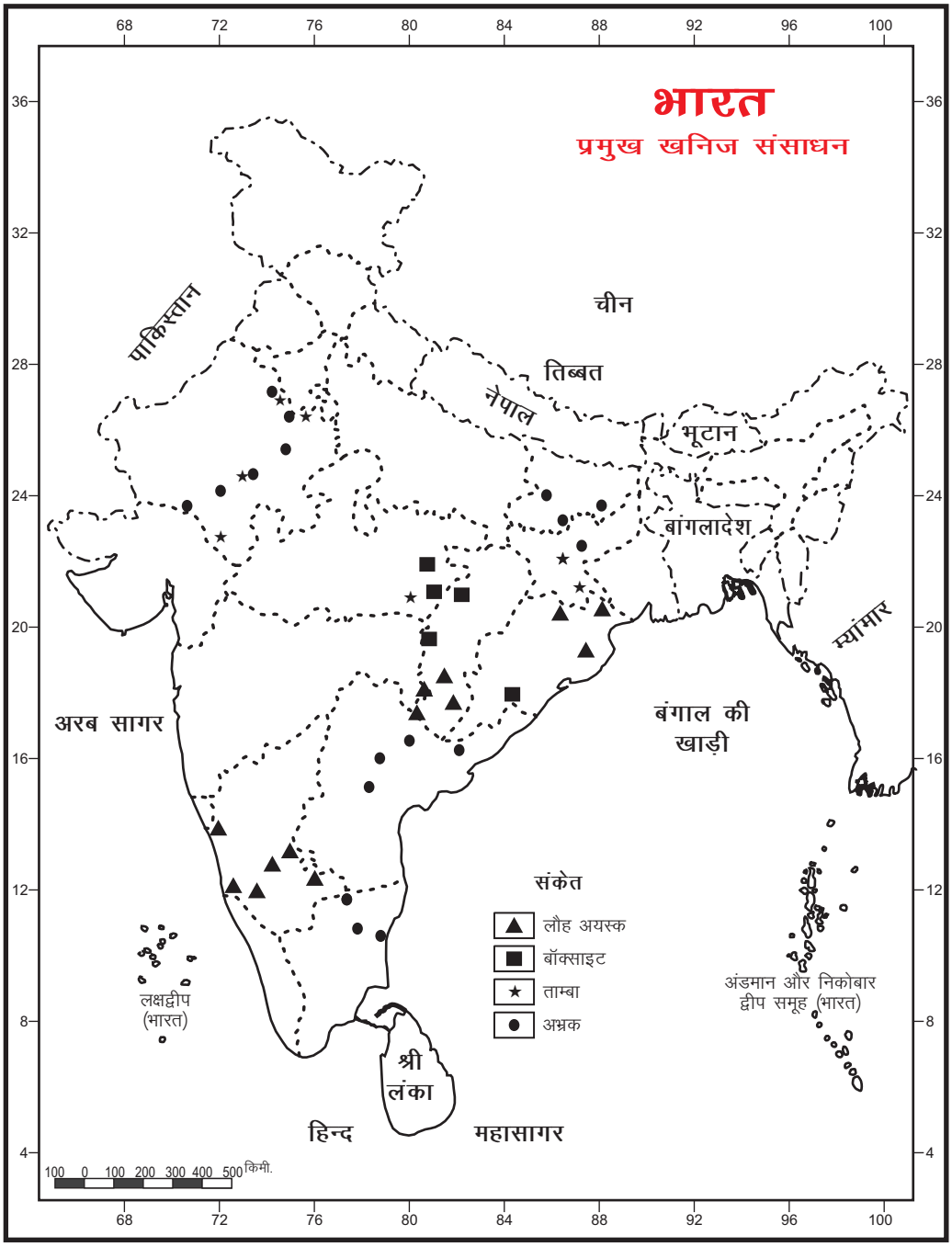

मानचित्र 16.4 : भारत प्रमुख खनिज संसाधन

बाँसवाड़ा, दौसा, भीलवाड़ा में नये भण्डारों का पता चला है।

3) झारखण्ड : यह राज्य भारत का 4.0 लाख टन ताँबा अयस्क उत्पादन करता है। यहाँ सिंहभूमि, हजारी बाग, संथाल, परगना, मानभूमि आदि प्रमुख उत्पादक जिले हैं। यहाँ भारत का लगभग 4 प्रतिशत ताँबा निकला जाता है। झारखण्ड में ताम्बा अयस्क निकालने का कार्य इण्डियन कॉपर कॉरपोरेशन 1924 से कर रहा है। इसी संस्था द्वारा 1930 में ताँबा निकाला जाता है तथा ताम्बे की चादरें बनाई जाती है।

अन्य क्षेत्र : सिक्किम, आन्ध्र प्रदेश, छत्तीसगढ़, गुजरात, कर्नाटक, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, पं. बंगाल, मणिपुर, जम्मू और कश्मीर आदि राज्यों में भी ताँबे के भण्डार पाये जाते हैं।

उत्पादन एवं व्यापार

भारत की ताँबे की घरेलू औद्योगिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, जापान, पूर्वी अफ्रीका

तथा जाम्बिया से ताँबे का आयात करता है। भारत में ताँबा अयस्क का उत्पादन 2009–10 में 32.38 लाख टन हो गया।

एल्यूमिनियम

बॉक्साइट एल्यूमिनियम का मुख्य स्रोत है। बॉक्साइट से एल्यूमिना औनर एल्यूमिना से एल्यूमिनियम बनाया जाता है। बॉक्साइड विशिष्ट खनिज (गुलाबी रंग) है, जो मिट्टी जैसा दिखता है। बॉक्साइड में धातु का अंश 84 प्रतिशत तक होता है। एल्युमिनियम एक बहु उपयोगी हल्की लचीली मुलायम और श्रेष्ठ विद्युत चालक है। इनमें जंग नहीं लगता।

उपयोग : एल्यूमिनियम का उपयोग बिजली के तार प्रक्षेपात्र, वायुयान, मिशाइल, जहाजों के पेदों की चादर, कलपुर्जे, घरेलू बर्तन, इमारतों के दरवाजें, खिड़कियाँ और शटर आदि बनाने में किया जाता है।

प्राप्ति क्षेत्र

(1) उड़ीसा : भारत में बॉक्साइड उत्पादन में 50.16 प्रतिशत (49.04 लाख टन) उत्पादन के साथ–साथ प्रथम स्थान पर है। कालाहाण्डी, सम्बलपुर आदि अग्रणी उत्पादक जिले हैं। यहाँ बोलनगीर और कोरापुर जिलों के गंधमदन पठार पर पाये गये नये क्षेत्रों में उत्पादन बढ़ रहा है। यहाँ बॉक्साइट की मात्रा 62.5 प्रतिशत तक मिलती है।

(3) गुजरात : यहाँ हाल्डार, खेड़ा, सांबरकाँटा, सूरत, जामनगर, भावनगर, पोरबन्दर आदि मुख्य उत्पादक जिले हैं। राज्य में बॉक्साइट के कुल अनुमानित भण्डार 5 करोड़ टन है। यहाँ बॉक्साइट की मात्रा 58 से 60 प्रतिशत पायी जाती है।

(4) झारखण्ड : भारत में बॉक्साइट उत्पादन में 11.87 प्रतिशत (11.61 लाख) टन के साथ द्वितीय स्थान पर है। यहाँ राँची, पालामऊ, गिरहिड, सुमला, शाहबाद, लोहारदगा आदि प्रमुख उत्पादक जिले हैं। झारखण्ड में 8 करोड़ टन उत्तम किस्म में बॉक्साइड के भण्डार है। यहाँ धातु की मात्रा 50 से 63 प्रतिशत तक है।

(4) महाराष्ट्र : भारत में बॉक्साइट उत्पादन में यहाँ कोल्हापुर, कोलाबा, थाणे, रत्नागिरी, सतारा, पुणे, आदि प्रमुख उत्पादक जिले हैं। महाराष्ट्र में बॉक्साइट के अनुमानित भण्डार 8. 05 करोड़ टन हैं। भारत में बॉक्साइट उत्पादन में 9.64 लाख टन के साथ चौथा स्थान है।

(5) छत्तीसगढ़ : यह राज्य भारत में बॉक्साइट उत्पादन में 6.18 प्रतिशत (6.40 लाख टन) के साथ पाँचवें स्थान पर है। यहाँ भारत के सर्वाधिक बॉक्साइट खनिज के निक्षेप पाये जाते हैं। यहाँ उत्तम कोटि के 30–35 करोड़ टन भण्डार हैं। सरगुजा, रायगढ़, महासमंर, कोरबा, राजनन्द गाँव तथा विलासपुर प्रमुख उत्पादक जिले हैं। यहाँ धातु की मात्रा 62 प्रतिशत तक है।

(6) तमिलनाडु : यह राज्य भारत में 2.74 प्रतिशत (2.64 लाख टन) बॉक्साइट उत्पादन के साथ छठा स्थान है। यहाँ सलेम, मदुरै, नीलगिरि और कोयम्बटूर जिलों में बॉक्साइट प्राप्त होता है जिसमें बॉक्साइट की मात्रा 45 से 60 प्रतिशत तक पायी जाती है।

(7) मध्य प्रदेश : भारत में 2.35 प्रतिशत (2.30 लाख टन) उत्पादन के साथ सातवाँ स्थान है। शाहडोल, माण्डला, बालाघाट, कटनी, जबलपुर, सिओनी प्रमुख जिले हैं।

(8) कर्नाटक : बेलगाँव, बाबाबूदन की पहाड़ियों और दक्षिणी कनारा जिलों से बॉक्साइट प्राप्त होता है। यहाँ अनुमानित भण्डार 50 लाख टन हैं।

(9) आन्ध्र प्रदेश–तेलगाँना : यहाँ विशाखापट्टनम, विजयनगर, श्रीकाकुकुलम आदि जिलों में बॉक्साइट प्राप्त होता है। अनुमानित नये भण्डार 3.5 करोड़ टन है।

(10) अन्य राज्य : जम्मु के उधमपुर के पुँछ जिलें में एवं गोवा में बॉक्साइट पाया जाता है।

उत्पादन एवं व्यापार

भारत में 62 प्रतिशत बॉक्साइट का उत्पादन उड़ीसा एवं झारखण्ड से ही प्राप्त होता है। नये संद्रावकों के लगने से भारत की वर्तमान एल्युमिनियम उत्पादन क्षमता 6.40 लाख टन हो गई। भारत में बॉक्साइट का उत्पादन 2013–14 में 217 लाख टन है। इसलिए भारत अब यूरोपीय देशों और रूस को उत्तम किस्म की अर्द्ध निर्मित धातु एल्यूमिना का 15 से 20 लाख टन निर्यात करने लगा है। बॉक्साइट के उत्पादन का 80 प्रतिशत भाग अकेले एल्यूमिनियम में लिया जाता है।

अभ्रक

अभ्रक आग्नेय एवं कायान्तरित शैलों में सफेद गुलाबी और गहरे हरे रंगों में प्राप्त होता है। यह कुछ लम्बी और 3 सेमी से 1 मीटर मोटी शिराओं में छोटे–छोटे टुकड़ों के रूप में पाया जाता है। अभ्रक नम्य, हल्का, चमकीला, पारदर्शी, परतदार, विद्युतरोधी, कठोर और उच्च द्रवणांक क्षमता वाला होता है। विद्युतरोधी एवं उच्च वॉल्टेज, सहन क्षमता होने से इसका सर्वाधिक उपयोग विद्युत एवं इलेक्ट्रोनिक उद्योगों में होता है। इसके अतिरिक्त औषधि निर्माण, वायुयान, टेलीफोन, रेडियो, दूरदर्शन मोटर, वायर लेस, सजावट के सामान, चश्में और भट्टियों की ईंटें बनाने में किया जाता है।

प्राप्ति स्थान

(1) आन्ध्र प्रदेश : देश के कुल अभ्रक उत्पादन में राज्य का 72.56 प्रतिशत (883 टन) उत्पादन के साथ प्रथम स्थान है।

विशाखापट्टनम्, कृष्णा, पूर्वी और पं. गोदावरी, खम्माम और अनन्तपुर प्रमुख उत्पादक जिले हैं। यहाँ हरे रंग का अभ्रक प्राप्त होता है। नैल्लौर की अभ्रक अपनी गुणवत्ता के लिए विश्व विख्यात है।

(2) राजस्थान : देश के कुल अभ्रक उत्पादन में 15.61 प्रतिशत (190 टन) योगदान के साथ दूसरे स्थान पर है। भीलवाड़ा, उदयपुर, अजमेर, राजसमन्द मुख्य उत्पादक जिले हैं। कुछ अभ्रक टोंक, अलवर, भरतपुर, डूंगरपुर आदि जिलों से भी प्राप्त होता है। राजस्थान में उत्तम किस्म का हल्के हरे व गुलाबी रंग का अभ्रक प्राप्त होता है।

(3) झारखण्ड व बिहार : देश के उत्पादन में 11.83 प्रतिशत (144 टन) के साथ तीसरा स्थान है। हजारी बाग, गया, कोडरमा, भागलपुर, मुंगेर, संथाल, परगना प्रमुख उत्पादक जिले हैं। यहाँ हल्के लाल रंग वाला उत्तम किस्म का अभ्रक निकाला जाता है जिसे बंगाल मणिक कहा जाता है। कुछ अभ्रक सिंहभूमि और पालामऊ जिलों में भी निकाला जाता है।

(4) तमिलनाडु : यहाँ तिरूनलवेली, कोयम्बटूर, तिरूचरापल्ली और मदुरै प्रमुख उत्पादक जिले हैं।

(5) अन्य राज्य : केरल में नय्यूर, पुन्नालूर, अलप्पी और क्विलोन उड़ीसा में ढ़ेकनाल, सम्बलपुर, कोरापुट, कटक, गंजाम, कर्नाटक में हसन और मैसूर, छत्तीसगढ़ के बस्तर, पं. बंगाल में बाँकुड़ा और मिदनापुर तथा हरियाणा में गुडगाँव जिले में अभ्रक निकाला जाता है।

उत्पादन एवं व्यापार

भारत में विश्व का 80 प्रतिशत अभ्रक निकाला जाता है। इसलिए अभ्रक उत्पादन में भारत का एकाधिकार है। विद्युत उद्योगों में अभ्रक के प्रतिस्थापक के रूप में प्लास्टिक जैसे पदार्थों का उपयोग बढ़ने से विश्व स्तर पर इसकी माँग में कमी से उत्पादन में कमी आई है। 2013–14 में 1610 टन अभ्रक का उत्पादन हुआ।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

1. भारत में पशु संसाधन का उपयोग विविध कृषि कार्यों और यातायात के साधन के रूप में किया जाता है।
2. पशुओं से दूध, दूध से पनीर, खोया (मावा), दही, मक्खन, घी, छाछ, आदि पौष्टिक पदार्थ एवं माँस, ऊन आदि पदार्थ प्राप्त होते हैं।
3. पशुओं से खालें व चमड़ा प्राप्त होता है। इनसे गोबर, खून एवं हड्डी से खाद बनाई जाती है।
4. भारत में विश्व का 20 प्रतिशत पशुधन पाया जाता है।
5. भारत में पौष्टिक आहार व हरे चारे की कमी, उत्तम पशुधन का अभाव, पशुओं की मारियाँ, पशुपालकों की लापरवाही व अज्ञानता के कारण पशु संसाधन की स्थिति कमजोर है।
6. भारतीय राष्ट्रीय आय का 2 प्रतिशत वनों से प्राप्त होता है।
7. भारत में 1952 की वन नीति के अनुसार 33% भाग पर वन होने चाहिए किन्तु अथक प्रयासों के बाद भी 2001 में 19. 49% से बढ़कर 2011 में 21.34% भाग पर ही वन क्षेत्र का फैलाव हो सका है।
8. कृषि हेतु भूमि की माँग के निरन्तर वृद्धि, तीव्र औद्योगिकरण एवं शहरीकरण, घरेलू आवश्यकताओं के लिए वनों की कटाई, अनियंत्रित चराई, घरेलू आवश्यकताओं के लिए वनों की कटाई, स्थानान्तरित कृषि प्रणाली, बढ़ता खनन क्षेत्र बड़ी व बहुउद्देशीय योजना आदि जैसे कारक भारत में घटते वन क्षेत्र के लिए उत्तरदायी है।
10. भारतीय वनों से कई प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष लाभ है।
11. वनों की मुख्य उपजों में विभिन्न प्रकार की लकड़ियाँ और गौण उपजों में लाख, कत्था, गोंद, कच, घाँसे, चमड़ा रंगने व कमाने के पदार्थ, फल, शहद, मोम, जड़ी–बूटियाँ, महुआ, बेंत, बाँस व तुंग आदि।
12. भारत में मत्स्य व्यवसाय में 1.14 करोड़ लोगों को रोजगार मिल हुआ हैं।
13. मत्स्य प्राप्ति हेतु छिछले समुद्र, नदियों के मुहानें, ठण्डी व गर्म जलधाराओं के मिलन स्थल एवं शीतोष्ण जलवायु आदि उत्तम अनुकूल दशाएँ हैं।
14. भारत में मत्स्य प्राप्ति के तीन प्रमुख क्षेत्र है– समुद्र तटीय क्षेत्र, नदीमुख मत्स्य क्षेत्र एवं अन्तर्राष्ट्रीय मीठे जल के क्षेत्र।
15. भारत में वर्षा का 90 प्रतिशत भाग दक्षिणी पश्चिमी मानसून द्वारा ग्रीष्म ऋतु में प्राप्त होता है।
16. भारत में वर्षण से 4000 घन किमी जल प्राप्त होता है।
17. भारत में वर्षा का वार्षिक औसत लगभग 108 सेमी है।
18. वर्षा की कमी या अभाव के कारण शुष्क मौसम में खेतों को कृत्रिम ढंग से जल पिलाने की क्रिया को सिंचाई कहते हैं।
19. भारत में नलकूप, नहरें, कुएँ, तालाब और बाँध सिंचाई के प्रमुख साधन है।
20. वे सभी प्राकृतिक पदार्थ जो भूमि से खोदकर निकाले जाते हैं। खनिज संसाधन कहलाते हैं।

21. भारत में प्रमुख छः मेखलाओं में खनिज पाये जाते हैं।

22. भारत में 2014–15 में 17.80 खरब रूपये के खनिजों का निर्यात किया गया।

23. कुल निर्यात में खनिजों का योगदान 9.4 प्रतिशत है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुचयनात्मक

1. गाय पालन में विश्व में भारत का कौनसा स्थान है?
   (अ) दूसरा (ब) पहला
   (स) तीसरा (द) चौथा

2. भारत में विश्व की कितने प्रतिशत भैंसे पाली जाती है?
   (अ) 40 प्रतिशत (ब) 56 प्रतिशत
   (स) 48 प्रतिशत (द) 42 प्रतिशत

3. भारत में सर्वाधिक ऊँट कौनसे राज्य में पाले जाते हैं।
   (अ) गुजरात (ब) पंजाब
   (स) हरियाणा (द) राजस्थान

4. भारत में वनों का विस्तार कितने भौगोलिक क्षेत्र पर है–
   (अ) 22 प्रतिशत (ब) 21.05 प्रतिशत
   (स) 14 प्रतिशत (स) 19 प्रतिशत

5. वनों के अन्तर्गत सर्वाधिक प्रतिशत भूमि किस राज्य में है–
   (अ) मिजोरम (ब) मेघालस
   (स) अरूणाचल प्रदेश (द) हिमाचल प्रदेश

6. 50 सेमी से कम वर्षा वाले क्षेत्रों में पाये जाने वाले वन है–
   (अ) शुष्क (ब) मरूस्थलीय
   (स) मानसूनी (द) सदाबहार

7. पश्चिमी घाट पर पाई जाने वाली वनस्पति का प्रकार है–
   (अ) सदाहरित (ब) अल्पाइन
   (स) सवाना (द) पर्णपाती

8. उष्णकटिबंधीय आर्द्र सहाबहार वन पाए जाते हैं–
   (अ) अरावली पर्वतमाला (ब) शिलांग पठार पर
   (स) प्रायद्वीपीय पठार पर (द) शिवालिक श्रेणी पर

9. आयस्टर कलचर का विकास किया जा रहा है–
   (अ) सौराष्ट्र तट पर (ब) मुम्बई तट पर
   (स) कोचीन तट पर (द) चेन्नई तट पर

10. भारत की सबसे लम्बी नदी है–
    (अ) ब्रह्मपुत्र (ब) गंगा
    (स) यमुना (द) कृष्णा

11. धरातलीय जल का सर्वाधिक उपयोग किस क्षेत्र में होता है।
    (अ) कृषि (ब) उद्योग
    (स) घरेलू (द) अन्स

12. नीरू–मीरू कार्यक्रम चलाया जा रहा है–
    (अ) राजस्थान (ब) आन्ध्र प्रदेश
    (स) गुजरात (द) कर्नाटक

13. ताँबा का उत्पादन होता है–
    (अ) राजस्थान तथा बिहार
    (ब) उत्तर प्रदेश एवं राजस्थान
    (स) बिहार, उत्तर प्रदेश एवं राजस्थान
    (द) ओडिशा, राजस्थान, बिहार एवं उत्तर प्रदेश

14. भारत के कर्नाटक राज्य में स्थित बाबाबूदान की पहाड़ियों से कौनसा खनिज पदार्थ निकाला जाता है–
    (अ) लौह–अयस्क (ब) मैंगनीज
    (स) निकेल (द) पेट्रोलियम

15. भारत में अभ्रक का सर्वाधिक उत्पादन करने वाला राज्य कौनसा है–
    (अ) आन्ध्र प्रदेश (ब) बिहार
    (स) झारखण्ड (द) राजस्थान

16. भारत में अभ्रक खनन का केन्द्र है–
    (अ) खेतड़ी (ब) कोडरमा
    (स) कालाहांडी (द) गुरूमहिसानी

17. वैलाडीला में पाया जाने वाला लौह–अयस्क प्रायः है–
    (अ) हैमेटाइट (ब) सिडेराइट
    (स) लिमोनाइट (द) मैग्नेटाइट

18. भारत में सर्वाधिक लौह–अयस्क किस राज्य में मिलता है–
    (अ) गोआ (ब) छत्तीसगढ़
    (स) ओडिशा (द) मध्य प्रदेश

19. बाल्को किस खनिज उत्पादन से सम्बन्धित है–
    (अ) एल्युमिनियम (ब) सोना
    (स) ताम्बा (द) जस्ता

20. ताँबा उत्पादन में अग्रणी राज्य है–

(अ) झारखण्ड (ब) राजस्थान

(स) मध्य प्रदेश (द) कर्नाटक

21. निम्नांकित में से बॉक्साइड की प्रमुख खदान है–

(अ) जावर (ब) खेतड़ी

(स) लोहारदगा (द) कलोल

अतिलघूत्तरात्मक

22. भारत में विश्व का कितने प्रतिशत पशुधन पाया जाता हैं?
23. ऊन व माँस के लिए कौनसा पशु पाला जाता है।
24. मानसूनी वनों की सबसे महत्त्वपूर्ण इमारती लकड़ी का नाम बताइये।
25. मत्स्य व्यवसाय से भारत में कितने व्यक्तियों को रोजगार मिला हुआ हैं?
26. भारत में वर्तमान में कितने प्रतिशत भाग पर वन पाये जाते हें।
28. भारत में मछली पकड़ने के प्रमुख क्षेत्र कौन–कौनसे हैं।
29. भारत में वर्षा का वार्षिक औसत कितने सेमी हैं?
30. भारत में सिंचाई के प्रमुख साधन कौन–2 से हैं?
31. खनिज से क्या अभिप्राय हैं?

लघूत्तरात्मक

32. ऊँट को रेगिस्तान का जहाज क्यों कहा जाता हैं?
33. भारत में पाये जाने वाले प्रमुख पालतू पशुओं के नाम लिखिए।
34. भारत में पशु संसाधन का क्या महत्त्व हैं?
35. अधात्विक खनिज से क्या अभिप्राय हैं?
36. भारत में प्रमुख सिंचाई के साधनों का वर्णन कीजिए।
37. भारत में ताम्बा उत्पादन क्षेत्रों का वर्णन कीजिए।

निबन्धात्मक

38. भारत में पशुओं से प्राप्त होने वाले पदार्थों का वर्णन करते हुए इनकी कमजोर स्थिति के कारणों का वर्णन कीजिए?
39. भारत में घटते वन क्षेत्र के कारणों का उल्लेख करते हुए वन विनाश से होने वाली हानियों का वर्णन कीजिए।
40. भारत में वन संसाधन का महत्त्व स्पष्ट करते हुए वन संसाधन के प्रकारों का वर्णन कीजिए।
41. भारत के मत्स्य संसाधन पर एक लेख लिखिए।
42. भारत में जल संसाधन की उपलब्धता एवं उपयोग पर लेख लिखिए।
43. आधुनिक युग में लोहे का क्या महत्त्व हैं। भारत में लोहे के वितरण, उत्पादन एवं व्यापार का सचित्र वर्णन कीजिए।
44. एल्युमिनियम की उपयोगिता स्पष्ट करते हुए भारत में बॉक्साइट के वितरण एवं व्यापार का सचित्र वर्णन कीजिए।

पाठ 17
ऊर्जा संसाधन
(Energy Resources)

ऊर्जा संसाधन

ऊर्जा (शक्ति) संसाधन किसी देश के सर्वांगीण विकास की महत्त्वपूर्ण कड़ी होते हैं। मानव सभ्यता और उसका आर्थिक विकास ऊर्जा संसाधनों के उपयोग से जुड़ा हुआ है। किसी भी देश के औद्योगिक विकास हेतु ऊर्जा या शक्ति के संसाधन एक आवश्यक तत्त्व है। आधुनिक औद्योगिक युग में शक्ति के साधन ही किसी भी देश की आर्थिक प्रगति का सूचक और आधार है। ऊर्जा के विभिन्न स्रोतों को रेखाचित्र संख्या 17.1 में प्रदर्शित किया गया है।

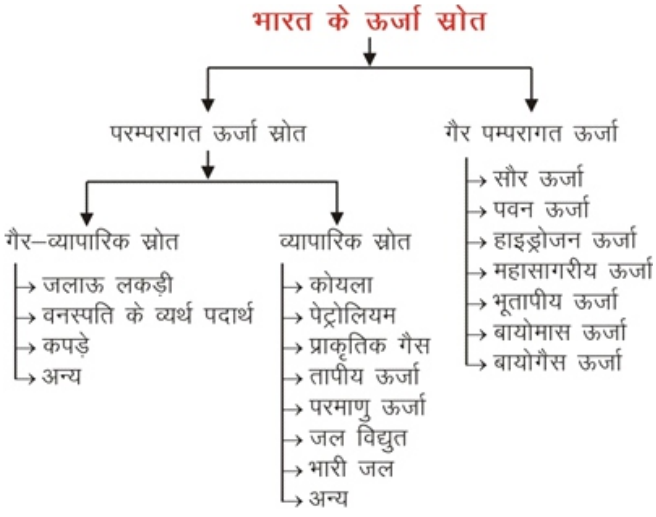

रेखाचित्र 17.1 : भारत के ऊर्जा स्रोत

भारत में ऊर्जा संसाधनों की स्थिति कई हद तक संतोषप्रद नहीं है। भारत में परम्परागत ऊर्जा स्रोतों में कोयला, पेट्रोल, प्राकृतिक गैस, ताप ऊर्जा, परमाणु ऊर्जा और जल विद्युत का प्रयोग किया जाता है। औद्योगिक विकास और उनके संचालन के लिये विद्युत एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। देश में अधिकाँश विद्युत शक्ति का उत्पादन आज भी परम्परागत ऊर्जा के संसाधनों के आधार पर किया जा रहा है। वर्ष 2011 में उत्पादित विद्युत शक्ति का 64.08 प्रतिशत तापीय विद्युत (कोयला), 32.24 प्रतिशत जल विद्युत व 3. 68 प्रतिशत अणु शक्ति से प्राप्त हुआ है। कोयला आज भी तापीय विद्युत का सबसे बड़ा साधन है। इस अध्याय में हम कुछ महत्त्वपूर्ण ऊर्जा संसाधनों का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

कोयला

ब्रिटेन में हुई औद्योगिक क्रान्ति के आधार कोयले को उद्योगों की जननी, काला सोना और शक्ति का प्रतीक कहा जाता है। देश में आज भी कोयला शक्ति का सबसे महत्त्वपूर्ण साधन है। विश्व में आधुनिक औद्योगिकरण का सूत्रपात करने का श्रेय कोयले को ही है।

भारत में कोयले का उपयोग प्राचीनकाल से होता आया है, परन्तु वर्तमान कोयला खनन उद्योग का विकास 1774 में आरम्भ हुआ, जब अंग्रेजों द्वारा रानीगंज में कोयले का पता लगाया गया। भारत विश्व में कोयला उत्पादन की दृष्टि से चीन व अमेरिका के

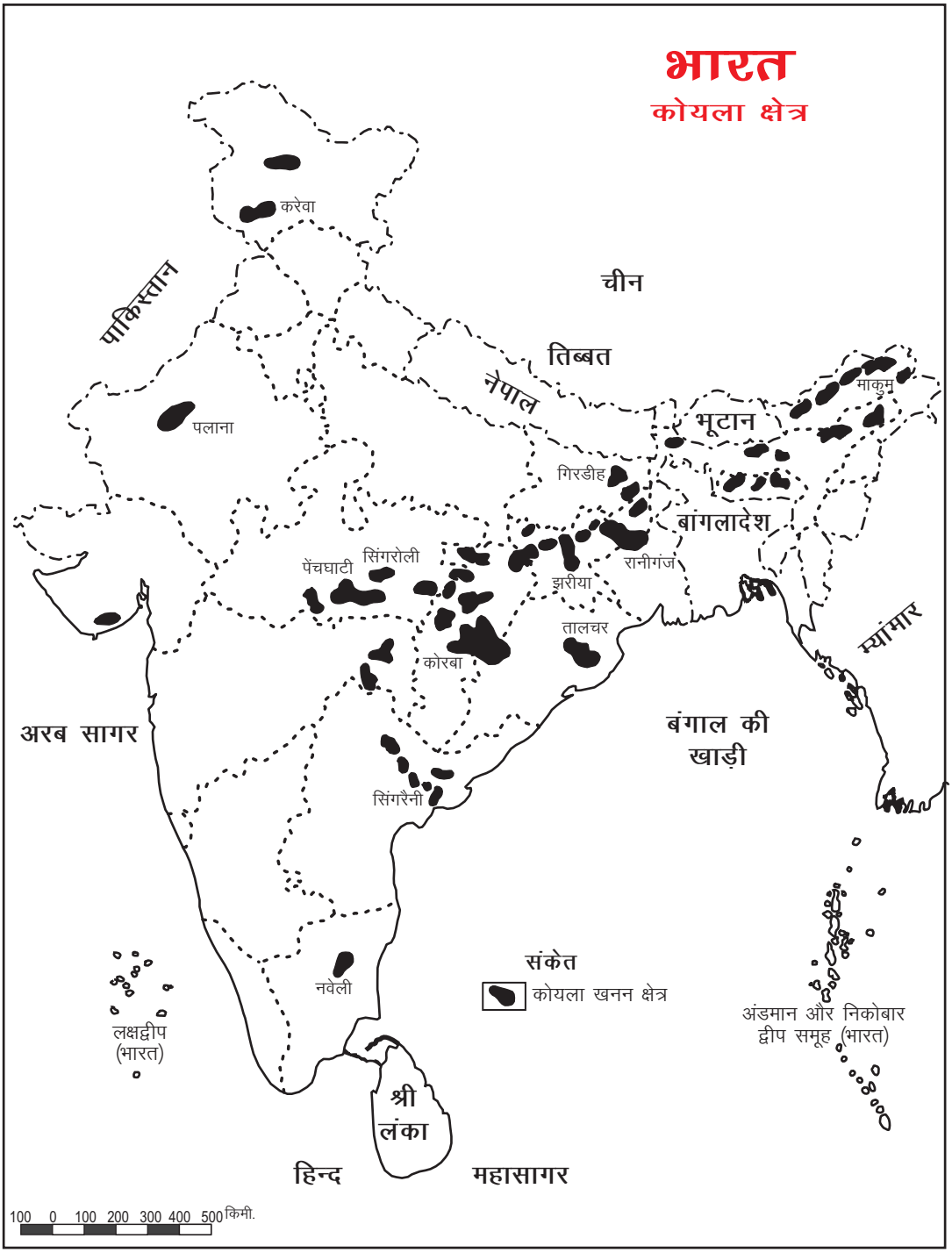

मानचित्र 17.1 : भारत में कोयला क्षेत्र

बाद तीसरे स्थान पर है। भारत विश्व का 4.7 प्रतिशत कोयला उत्पादित करता है। भारत की ऊर्जा का लगभग 60.0 प्रतिशत भाग कोयले से प्राप्त होता है।

कार्बन की मात्रा के आधार पर विश्व स्तर पर कोयले को चार प्रकारों में विभाजित किया जाता है।

(1) एन्थ्रेसाइट : कार्बन की मात्रा 80 से 90 प्रतिशत तक।

(2) बिटुमिनस : कार्बन की मात्रा 75 से 80 प्रतिशत तक।

(3) लिग्नाइट : कार्बन की मात्रा 50 प्रतिशत तक।

(4) पीट : कार्बन की मात्रा 50 प्रतिशत से कम।

कोयला उत्पादन क्षेत्र

भारत में उपलब्ध कोयला दो भू–वैज्ञानिक काल खण्डों (अ) गौंडवाना युगीन, (ब) टर्शयरी काल से सम्बन्धित है।

(अ) गौंडवाना युगीन : उत्पादन व उपभोग की दृष्टि से गौंडवाना युगीन कोयले का सर्वाधिक महत्त्व है। भारत वर्ष में इस प्रकार का कोयला विभिन्न नदियों की घाटियों में पाया जाता है।

(i) गोदावरी घाटी क्षेत्र : आन्ध्र प्रदेश राज्य में विस्तृत गोदावरी नदी की घाटी में देश के लगभग 7.5 प्रतिशत कोयले के भण्डार हैं। आदिलाबाद, करीमनगर, खम्माम, वारंगल और पश्चिमी गोदावरी मुख्य उत्पादक जिले हैं। गोदावरी और तन्दूर नदियों के बीच के 250 वर्ग किमी क्षेत्र में प्रसिद्ध कोयला क्षेत्र फैला हुआ है। राज्य में सिंगरेनी कोयले का बड़ा उत्पादक क्षेत्र है। यहाँ बाराकर श्रेणी की चट्टानें 54 वर्ग किमी में फैली हुई है। यहाँ कोयले की परतें दो मीटर से भी अधिक मोटी है। आन्ध्र प्रदेश का वार्षिक कोयला उत्पादन 332 लाख टन है।

(ii) महानदी घाटी क्षेत्र : उड़ीसा राज्य में देश के लगभग 25 प्रतिशत कोयले के भण्डार मिलते हैं। कुल उत्पादन का 15.3 प्रतिशत भाग यहाँ से प्राप्त होता है। राज्य में ढेंकनाल जिले में तालचर कोयला क्षेत्र 548 वर्ग किमी में फैला है। यहाँ का कोयला विद्युत उत्पादन, उर्वरक तथा गैस उत्पादन में प्रयुक्त होता है। उड़ीसा प्रतिवर्ष 523 लाख टन कोयले का उत्पादन करता है।

(iii) दामोदर घाटी क्षेत्र : देश का सबसे बड़ा कोयला उत्पादक क्षेत्र है। यहाँ से देश का 50 प्रतिशत से भी अधिक कोयला प्राप्त होता है। यह झारखण्ड एवं पश्चिमी बंगाल राज्य में फैला हुआ है। पश्चिमी बंगाल के बर्दवान, बाकुडा और पुरूलिया जिलों में विस्तृत रानीगंज कोयला क्षेत्र (1092 वर्ग किमी) भारत का सबसे महत्त्वपूर्ण और बड़ा उत्पादक क्षेत्र है। अकेले इस क्षेत्र से देश का 29 प्रतिशत कोयला प्राप्त होता है। झारखण्ड में झरिया सबसे बड़ा कोयला क्षेत्र है जो 436 वर्ग किमी. में फैला है। यहाँ उत्तम किस्म के बिटुमिनस कोयले के भण्डार है। हजारीबाग, बोकारो, गिरडीह, उत्तरी व दक्षिणी करणपुर और रामगढ़ प्रमुख कोयला उत्पादक क्षेत्र है।

(iv) पश्चिमी दामोदर घाटी क्षेत्र : यह झारखण्ड राज्य के पलामू जिले में फैला हुआ है। यहाँ पर औंरगा (240 वर्ग किमी.), डाल्टनगंज (80 वर्ग किमी.) एवं हुतार प्रमुख कोयला उत्पादक क्षेत्र है। इसी घाटी में राजमहल पहाड़ियों के पश्चिम में राजमहल कोयला क्षेत्र 182 वर्ग किमी. में फैला हुआ है।

(v) सोन नदी घाटी क्षेत्र : इस क्षेत्र के अन्तर्गत मध्य प्रदेश के उमरिया, सोहागपुर और सिंगरोली कोयला क्षेत्र सम्मिलित होते हैं। राज्य के शहडोल व सिधी जिलों में स्थित सिंगरोली 2037 वर्ग किमी. में फैला मुख्य कोयला उत्पादक क्षेत्र है।

(vi) छत्तीसगढ़ कोयला क्षेत्र : कोयले के उत्पादन में इसका तीसरा स्थान है। यहाँ पर 16 प्रतिशत कोयले का उत्पादन होता है। प्रमुख कोयला क्षेत्रों में रामकोला, तातापानी, कोरबा, झिलमिल, विश्रामपुर, लखनपुर, चीरीमिरी मुख्य क्षेत्र है। रामकोला, तातापानी क्षेत्र 250 वर्ग किमी. क्षेत्र में फैला है। हालाँकि यहाँ का कोयला घटिया किस्म का है। कोरबा क्षेत्र के निकट विलासपुर में 515 वर्ग किमी. क्षेत्र में कोयले के भण्डार है। यहाँ पर कोयले की खानें महानदी व उसकी सहायक अहराम व बुराँग नदियों के आर–पार फैली हुई है।

(vii) सतपुड़ा कोयला क्षेत्र : नर्मदा नदी की घाटी के दक्षिण में सतपुड़ा के उत्तरी ढालों के तल में नरसिंहपुर जिले में मोहपानी कोयला क्षेत्र स्थित है। यहाँ 4 करोड़ टन कोयले के भण्डार अनुमानित किये गये हैं। इसी के निकट कान्हन घाटी क्षेत्र में 7 करोड़ टन कोयले के भण्डार है। मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र के अधिकाँश कोयला क्षेत्र इसी सतपुड़ा में फैले हैं। बेतुल जिले में भी पाथरखेड़ा कोयला क्षेत्र का कोयला यहीं के तापीय विद्युत गृह में काम में आता है।

(viii) महाराष्ट्र–वर्धा घाटी : महाराष्ट्र के इस क्षेत्र के अन्तर्गत चन्द्रपुर, वल्लारपुर, यवतमाल, बरोरा और नागपुर के कोयला क्षेत्र सम्मिलित होते हैं। यहाँ देश के कुल कोयला भण्डारों का 3 प्रतिशत है, कुल भण्डार 50 करोड़ टन कोयले के आकंलित किये गये हैं। यहाँ का कोयला हल्की किस्म और चूरे के रूप में मिलता है। इसका प्रयोग ताप विद्युत गृहों में ही किया जा रहा है।

(ix) पश्चिमी बंगाल : राज्य में वर्धमान, बाकुडा, पुरूलिया, वीरभूम, दार्जलिंग और जलपाईगुड़ी में देश के 11 प्रतिशत कोयले के भण्डार है। पश्चिमी बंगाल देश का 6 प्रतिशत कोयला उत्पादित करता है।

(ब) टर्शयरी काल : भारत का 2 प्रतिशत कोयला टर्शयरी काल की एवं मेसोजाइक काल की चट्टानों में प्राप्त होता है। इस प्रकार के कोयले के 225 करोड़ टन के भण्डार आंकलित किये गये हैं। इन श्रेणी के कोयले के प्राप्ति के मुख्य क्षेत्रों में असम, मेघालय, जम्मू–कश्मीर, तमिलनाडू, राजस्थान, अरूणाचल प्रदेश और पश्चिमी बंगाल राज्य है।

पश्चिमी बंगाल में पनकाबाड़ी प्रमुख कोयला उत्पादक क्षेत्र

है, यहाँ का कोयला बनावट में गौंडवाना युगीन कोयले से मिलता है। अरूणाचल प्रदेश में डफाला पहाड़ियों में डीगरॉक प्रमुख कोयला उत्पादक क्षेत्र है। असम राज्य में लखीमपुर, शिवसागर जिलों में माकूम क्षेत्र 80 किमी लम्बाई में फैला है। यहाँ का कोयला गैस बनाने के लिये अधिक उपयोगी है। मेघालय राज्य में गारोखाासी जयन्तियां पहाड़ियों में टर्शयरी काल के कोयले के भण्डार है।

(स) लिगनाइट कोयला : हालांकि कार्बन की मात्रा के अनुसार लिगनाइट कोयला घटिया माना जाता है परन्तु ताप विद्युत की दृष्टि से यह कोयला भी महत्त्वपूर्ण है। इस प्रकार के कोयले के भण्डार तमिलनाडु में तिरूवनालोर व वेल्लोर जिले में फैला नवेली लिगनाइट कोयला भण्डार प्रसिद्ध है। जहाँ 330 करोड़ टन लिगनाइट कोयले के भण्डार है। यहाँ पर 1956 से नवेली लिगनाइट लिमिटेड द्वारा कोयला खनन किया जा रहा है।

राजस्थान के बीकानेर जिले में पलाना नामक स्थान पर लिगनाइट किस्म का कोयला मिलता है। यह तीन वर्ग किमी क्षेत्र में फैला कोयला उत्पादन का क्षेत्र है जहाँ 50 प्रतिशत की कार्बन मात्रा वाला कोयला उपलब्ध है। यह कोयला रेलों के लिये उपयोगी है।

बाड़मेर जिले में भी वर्ष 2003 में लिगनाइट के भण्डारों का पता लगा है। यहाँ पर बीकानेर में स्थित तापीय विद्युत गृह में इस कोयले का प्रयोग किया जाता है।

(द) अन्य : देश में कोयले के कई अन्य उत्पादक क्षेत्रों में पाण्डीचेरी, गुजरात के कच्छ, जम्मू कश्मीर के पूँछ, रियासी और उधमपुर जिलों में तथा उत्तर प्रदेश के तराई क्षेत्रों में भी कोयला खनन किया जा रहा है।

देश में कोयला के उत्पादन को राज्य अनुसार सारणी 17.1 में दर्शाया गया है।

व्यापार

घरेलू माँग की पूर्ति के बाद भारत द्वारा कोयले का निर्यात अपने पड़ौसी देशों बाँग्लादेश, नेपाल, भूटान, म्यांनमार एवं श्रीलंका को किया जाता है। वर्ष 2010 में 521 करोड़ रूपये के कोयले का निर्यात किया गया। भारत में उच्च कोटि का कोकिंग कोयला आस्ट्रेलिया, कनाड़ा व अन्य यूरोपीय देशों से आयात किया जाता है। वर्ष 2012– 13 में 83,998.35 करोड़ रूपये के कोयले का आयात किया गया है।

पेट्रोलियम

पेट्रोलियम शब्द का शाब्दिक अर्थ चट्टानों से प्राप्त तेल से है। भारत में लगभग 30 लाख वर्ष पुरानी अवसादी चट्टानों में इसके भण्डार उपलब्ध है। एक अनुमान के अनुसार भारत में विश्व का कुल संचित तेल का 0.5 प्रतिशत खनिज तेल उपलब्ध है।

इतिहास

कच्चा पेट्रोल भारत में टर्शयरी काल की चट्टानों की अपनतियों और भ्रंशों में पाया जाता है। भारत में तेल की प्राप्ति अकस्मात हुई है। जब 1860 में असम रेलवे कम्पनी ने रेलवे लाइन बिछाने के लिए मार्गरिटा क्षेत्र में खुदाई की जा रही थी। विधिवत रूप से तेल के कुँओं की खुदाई आसाम राज्य में ही 1866 में माकूम नामक स्थान पर 36 मीटर की गहराई पर तेल प्राप्त किया गया है। 1890 में डिगबोई में 202 मीटर की गहराई पर तेल प्राप्त हुआ। 1899 में असम ऑयल कम्पनी का गठन किया गया। 1915 में बर्मा ऑयल कम्पनी ने सिलचर के निकट सूरमा घाटी में तेल खनन का कार्य प्रारम्भ किया। 1938 में नाहरकटिया क्षेत्र में तेल की खोज हुई। 1956 में शिवसागर जिले में तेल उपलब्ध हुआ। 1959 में बर्मा ऑयल कम्पनी और भारत सरकार के सांझे में ऑयल इण्डिया लिमिटेड की स्थापना हुई।

तेल एवं प्राकृति गैस आयोग (**ONGC**) : 1953 से भारतीय भू वैज्ञानिक सर्वेक्षण विभाग ने देश के विभिन्न हिस्सों में प्राकृतिक तेल की खोज का कार्य प्रारम्भ किया। 1956 में तेल एवं प्राकृतिक गैस आयोग का गठन किया गया। यह आयोग समुद्र के भीतर एवं स्थल भागों पर खनिज तेल की खोज का कार्य करता है।

भारत पेट्रोलियम कारर्पोशन : जनवरी 1976 से भारत सरकार ने बर्मा शैल रिफाइनरी और बर्मा शैल ऑयल कम्पनी पर अधिकार करके भारत पेट्रोलियम कारर्पोशन बनाया गया।

ऑयल इण्डिया लिमिटेड : खनिज तेल एवं प्राकृतिक गैस की खोज, खुदाई और उत्पादन करके उन्हें तेल शोधन कारखानों और उपभोक्ताओं तक पहुँचाने का कार्य ऑयल इण्डिया लिमिटेड करता है।

उत्पादन एवं व्यापार

भारत में खनिज तेल की माँग निरन्तर बढ़ती जा रही है। देश की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये विदेशों से खनिज तेल आयात करना पड़ता है।

उत्पादन क्षेत्र

वर्तमान में देश के निम्नलिखित क्षेत्रों में खनिज तेल का खनन किया जा रहा है।

(1) आसाम : राज्य में डिगबोई, सुरमा घाटी और नवीन क्षेत्रों में खनिज तेल के भण्डार उपलब्ध है। लखीमपुर जिले में डिगबोई, बधापुंग, हंसापुंग स्थानों पर खनिज तेल की प्राप्ति 2000 मीटर की गहराई पर होती है। यहाँ पर डिगबोई में तेल शोधन कारखाना स्थापित है। जो वर्ष में लगभग 4.0 मैट्रिक टन तेल का शोधन करता है। आसाम के सुरमा घाटी क्षेत्र में बदरपुर, मशीनपुर और पथरिया स्थानों पर 1971 से तेल का खनन किया जा रहा है। इस क्षेत्र का खनिज तेल लगभग समाप्त हो चुका है।

ब्रह्मपुत्र घाटी के नवीन तेल क्षेत्रों में नहरकटिया, हुगरीजन और मोरन स्थानों पर 1953 से उत्पादन प्रारम्भ हुआ। प्रति वर्ष लगभग 25 लाख मैट्रिक टन खनिज तेल प्राप्त किया जा रहा है। यहाँ पर रूद्र सागर, लकवा, गालेकी, अमगरी में तेल का खनन किया जाता है। इन क्षेत्रों का तेल नूनमती व बरौनी की तेल शोधन शालाओं में शुद्ध किया जाता है।

(2) गुजरात : राज्य में लगभग 15,500 वर्ग किमी क्षेत्र में कच्छ की खाड़ी, सूरत, बड़ौदा, भड़ूँच, मेहसाना और खेड़ा जिलों में तेल के भण्डार है। यहाँ पर अकंलेश्वर क्षेत्र में 1200 मीटर की गहराई पर खनिज तेल प्राप्त होता है। यहाँ का वार्षिक उत्पादन 30 लाख टन है। अंकलेश्वर का पेट्रोल ट्राम्बे और कोयली शोधन शालाओं में भेजा जाता है। गुजरात में खम्भात की खाड़ी में 15 लाख टन तेल और 5 लाख घन मीटर गैस प्रति वर्ष प्राप्त हो रही है। अहमदाबाद के पश्चिम में कलोल के निकट नवगांव, मेहसाणा, सानन्द, कोथाना स्थानों पर भी तेल प्राप्त हुआ है।

(3) उत्तरी क्षेत्र : पंजाब के लुधियाना, होशियारपुर और दासूजा क्षेत्र, हिमाचल प्रदेश के ज्वालामुखी, धर्मशाला और नूरपुर तथा जम्मू कश्मीर के मुसलगढ़ में खनिज तेल प्राप्ति की भरपूर संभावनाएं है। अभी इन स्थानों पर प्राकृतिक गैस प्राप्त हुई है।

(4) अपतटीय क्षेत्र : भारत का समुद्री मग्नतट क्षेत्र 385 हजार वर्ग किमी. में फैला हुआ है। तेल एवं प्राकृतिक गैस आयोग ने कच्छ व खम्भात की खाड़ी, अरब सागर, कोरोमण्डल तट, कृष्णा व गोदावरी डेल्टा, सुन्दर वन के क्षेत्रों में सर्वेक्षण किये है। उसके पश्चात् कई क्षेत्रों में पेट्रोलियम का व्यावसायिक उत्पादन प्रारम्भ किया गया। जिनमें से (i) गुजरात के सौराष्ट्र में भावनगर से 45 किमी दूर अरब सागर में स्थित अलीयाबेट द्वीप में तेल के भण्डारों का पता चला है। रूस की सहायता से यहाँ पर तेल की खोज की गई। (ii) मुम्बई से 176 किमी. उत्तर पश्चिम में अरब सागर में स्थित मुम्बई हाई नामक क्षेत्र में तेल व गैस प्राप्त की गई। सागर सम्राट नामक जलयान के प्लेटफार्म की सहायता 1416 मीटर की गहराई पर तेल एवं प्राकृतिक गैस का व्यावसायिक उत्पादन 1976 से किया जा रहा है। यहाँ से देश का अधिकतम पेट्रोल प्राप्त होता है। (ii) मुम्बई हाई के दक्षिण में वसाई नामक स्थान पर तेल के भण्डार मिले हैं। 1900 मीटर की गहराई पर स्थित वसाई के तेल भण्डार मुम्बई हाई से अधिक समृद्ध है। (iv) 1980 के दशक में ओएनजीसी के प्रयासों से देश में कई नये तेल क्षेत्रों व भण्डारों का पता लगाया गया है। इनमें कावेरी व कृष्णा तथा गोदावरी बेसिनों के अपतटीय क्षेत्रों में तेल प्राप्त हुआ है। यहाँ 1981 से रानयम तट पर कुओं से 1500 बेरल प्रतिदिन की दर से तथा 1988 से मदनम तट पर 4300 बेरल प्रतिदिन, 1986 में नागपट्टीनम में 200 बेरल प्रतिदिन की दर से, कोविलकल्लपल में 206 बेरल प्रतिदिन की दर से तेल प्राप्त हुआ है। (v) आन्ध्र प्रदेश के कृष्णा और गोदावरी बेसिन में तेल की खोज में 49 तेल के कुओं का खनन किया गया। इनमें से अधिकाँश कम उत्पादक सिद्ध हुए। (vi) राजस्थान के बाड़मेर जिले में क्रेनयर्स एनर्जी लिमिटेड द्वारा खनिज तेल का खनन किया जा रहा है।

तेल शोधन शालाएँ

देश में कुल 22 तेल शोधन कारखाने कार्यरत है। इनमें से 17 सार्वजनिक क्षेत्र में 2 संयुक्त क्षेत्र तथा 3 निजी क्षेत्र में कार्यरत है। तेल शोधन शालाओं की संक्षिप्त जानकारी सारणी 17.3 में दी गई है।

सारणी 17.1 : तेल शोधन कारखानें

क्र.सं.	तेल शोधक कारखानें	शोधन का स्थान	वर्तमान क्षमता
I	सार्वजनिक क्षेत्र		
1	इण्डियन ऑयल कार्पो. लि.	गुहावटी	1.00
2	इण्डियन ऑयल कार्पो. लि.	बरौनी	6.00
3	इण्डियन ऑयल कार्पो. लि.	कोयली	13.70
4	इण्डियन ऑयल कार्पो. लि.	हल्दिया	7.50
5	इण्डियन ऑयल कार्पो. लि.	मथुरा	8.00
6	इण्डियन ऑयल कार्पो. लि.	डिगबोई	0.65
7	इण्डियन ऑयल कार्पो. लि.	पानीपत	15.00
8	इण्डियन ऑयल कार्पो. लि.	बोंगाई गांव	2.35
9	हिन्दुस्तान पेट्रोलियम कार्पो. लि.	मुम्बई	6.50
10	हिन्दुस्तान पेट्रोलियम कार्पो. लि.	विशाखापट्टम	8.30
11	भारत पेट्रोलियम कार्पो. लि.	मुम्बई	12.00
12	भारत पेट्रोलियम कार्पो. लि.	कोच्चि	9.50
13	चेन्नई पेट्रोलियम कार्पो. लि.	मनाली	10.50
14	चेन्नई पेट्रोलियम कार्पो. लि.	नागपट्टीनम	1.00
15	नुसालीगढ़ रिफानरी लि0	नुमालीगढऋ	3.00
16	मंगलौर रिफानरी एण्ड पेट्रो केमिकल्स लि.	मंगलौर	15.00
17	ऑयल एण्ड नेचुरल गैस कार्पो. लि.	तातीपाका	0.66
	कुल (**I**)		120.66
II	संयुक्त उद्यम क्षेत्र		
18	भारत ओमान रिफाइनरी लि.	बीना	6.00
19	एचपीसीएल लि.	भटिण्डा	9.00
	कुल (**II**)		15.00
III	निजी क्षेत्र		
20	रिलायन्स इण्डस्ट्रीज लि.	मोती खावड़ी, जामनगर	33.00
21	रिलायन्स पेट्रोलियम लि.	एस.ई.जेड, जामनगर	27.00
22	एस्सार ऑयल लि.	वादीनार	18.00
	कुल (**III**)		78.00
	कुल योग (**I + II + III**)		213.66

Source : Statistical Abstract India, 2014

पाइप लाइनें

कच्चे तेल को साफ करने के लिए उत्पादक क्षेत्रों से तेल शोधन शालाओं तक पहुँचाना पड़ता है। देश में कुल 13000 किमी लम्बी तथा पेट्रोलियम उत्पादों की 7700 किमी लम्बी पाइप लाइनें है। उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

(1) देश में सर्वप्रथम पाइप लाइन असम में नाहरकटिया से नूरमती होकर बरौनी (बिहार) तक 1152 किमी लम्बाई में बिछायी गयी। इसकी वार्षिक परिवहन क्षमता 40 लाख टन है। यह 78 छोटी–बड़ी नदियों को पार करती है। इसके मार्ग में 9 पम्पिग स्टेशन स्थापित है। यह रूद सागर, लचाया तेल क्षेत्रों से भी जुड़ी है।इसकी सहायक लाइनें नूनमती से सिलीगुड़ी, बरौनी से कानपुर, बरौनी से हल्दिया व मोरीग्राम, नूनमती से बोंगाई गांव हैं।

(2) द्वितीय प्रमुख पाइप लाइन मुम्बई हाई व गुजरात के तेल उत्पादन क्षेत्रों को कोयली तेल शोधनशाला से जोड़ती है। मुम्बई हाई से मुम्बई तट पर 210 किमी लम्बी दो पाइप लाइनें (तेल व गैस के लिये पृथक) बिछायी गई हैं।

(3) एक अन्य पाइप लाइन कच्छ की खाड़ी के तट पर स्थित सलाया स्थान से मथुरा तक 1075 किमी लम्बाई में विस्तृत है। यह भी कोयली से जुड़ी है। यह पाइप लाइन मुम्बई हाई से अशुद्ध तेल को मथुरा शोधनशाला तक पहुँचाती है।

(4) मथुरा से परिष्कृत तेल दिल्ली–अम्बाला होकर जालन्धर तक पाइप लाइन द्वारा भेजा जाता है।

(5) कर्नाटक तथा आन्ध्र प्रदेश में पेट्रोलियम पदार्थों के परिवहन के लिये एक अन्य पाइप लाइन मुम्बई से पुणे तक बिछायी गयी है।

(6) विशाखापट्टनम–विजयवाड़ा–सिकन्दराबाद पाइप लाइन 572 किमी लम्बी है।

(7) हाजिरा (गुजरात)–विजयपुर–जगदीशपुर (HBJ) गैस पाइप लाइन 1750 किमी लम्बी है।

(8) काँदला (गुजरात)–भटिण्डा (पंजाब) पाइप लाइन 1331 किमी लम्बी है।

(9) चेन्नई–त्रिची–मदुरे पाइप लाइन (683 किमी लम्बी) IOC द्वारा निर्माणाधीन है।

जल विद्युत

ऊर्जा के सभी रूपों में विद्युत शक्ति सबसे व्यापक और सहज है। इसकी माँग देश के उद्योग, परिवहन, कृषि एवं घरेलू क्षेत्रों में तेजी से बढ़ रही है। विद्युत शक्ति के अनेक विशिष्ट गुण

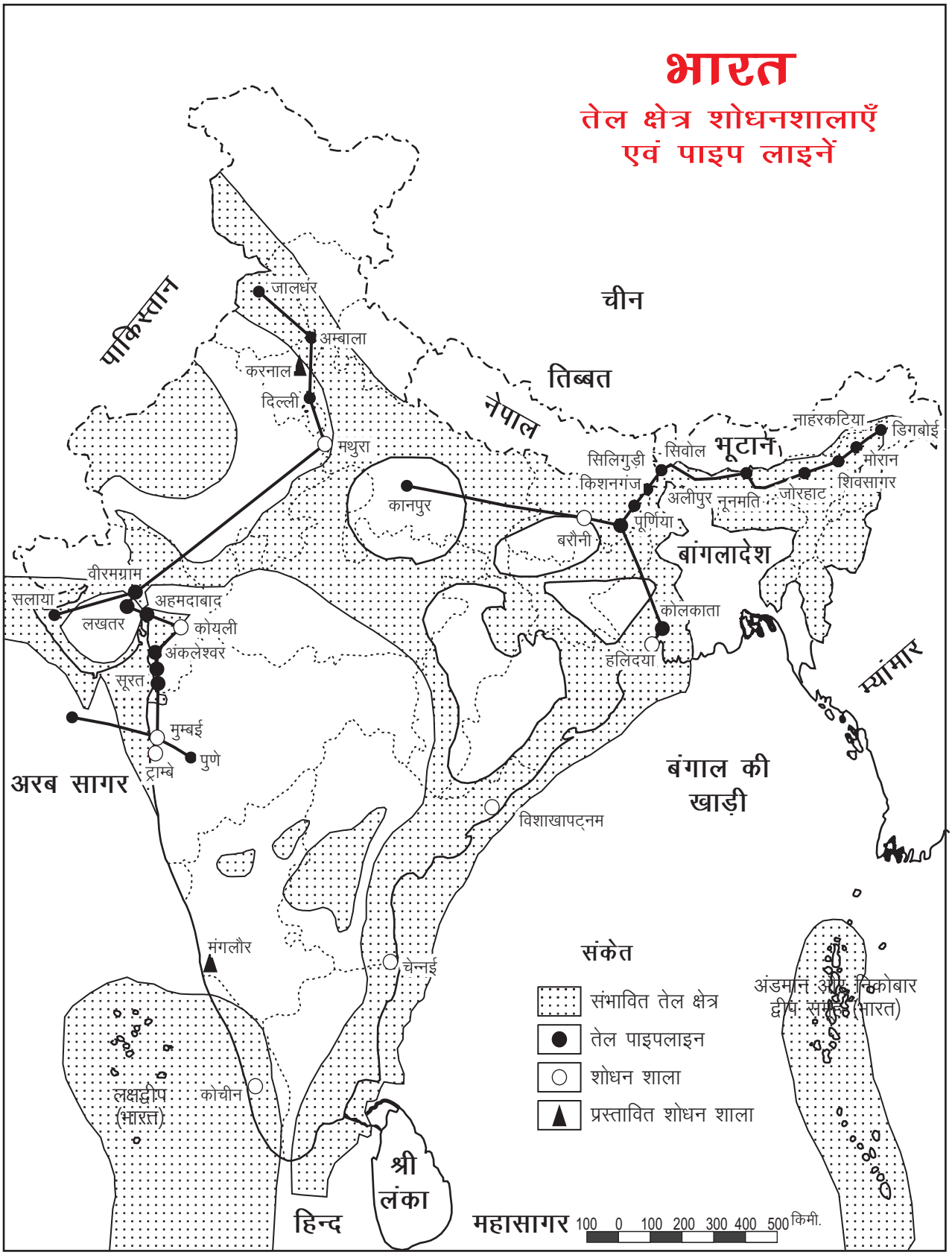

मानचित्र 17.2 : तेल क्षेत्र, शोधनशालाएँ एवं पाइप लाइनें



चित्र 17.1 : पेट्रोलियम पाइपलाइनें



चित्र 17.2 : तेल शोधन कारखाना

है। इसलिये इसकी मांग भी अधिक है।

विकास

भारत में जल विद्युत शक्ति का विकास 1897 में दार्जलिंग में विद्युत आपूर्ति के साथ प्रारम्भ हुआ। बाद में कर्नाटन में शिव समुन्द्रम में जल विद्युत शक्ति गृह की स्थापना की गई। 1947 तक देश में जल विद्युत शक्ति का विशेष विकास नहीं हुआ, परन्तु पंचवर्षीय योजना के दौरान तेजी से विद्युत का विकास हुआ। इसके लिए देश के विभिन्न हिस्सों में जल विद्युत योजनाओं में भारी पूँजी का निवेश किया गया।

देश में सन् 2010 में विद्युत उत्पादन 163.6 हजार मेगावाट था। विद्युत के विकास के लिये केन्द्रीय विद्युत प्राधिकरण की स्थापना की गई। 1975 में जल विद्युत के विकास के लिये राष्ट्रीय जल विद्युत शक्ति निगम की स्थापना की गई। वर्तमान में 18 राज्यों में राज्य विद्युत बोर्ड स्थापित है।

देश में लघु जल विद्युत परियोजनाओं की कुल अनुमानित क्षमता 15000 मेगावाट है। 31 दिसम्बर 2007 तक 611 जल विद्युत की परियोजनाएँ पूरी कर ली गई है तथा 225 परियोजनाएँ निर्माणाधीन है। विभिन्न राज्यों की प्रमुख जल विद्युत परियोजनाएँ इस प्रकार है–

आन्ध्र प्रदेश : नागार्जुन सागर, सिलेरू, श्रीशैलम, मचकुण्ड, तुंगभ्रदा तथा निजाम सागर।

हिमाचल प्रदेश : बैरासिउल, नापचा, झाखड़ी, रामपुर, लुहरी, खाद्य, चमेरा, परावती, चिरचिन्द–चम्बा।

पंजाब : देहर (व्यास), भाखड़ा, पोंग, गंगवान, कोटला, सनाम, भोरूका।

उत्तराखण्ड : खटीमा, टिहरी, देवसारी, विष्णुगाद पिपलकोटी।

झारखण्ड : सुवर्णरेखा, मैथान।

राजस्थान : राणा प्रताप सागर, जवाहर सागर, माही बजाज सागर।

उड़ीसा : हीराकुण्ड, बालीमेला।

महाराष्ट्र : जल विद्युत उत्पादन में अग्रणी है। यहाँ जल विद्युत के विकास की उत्तम भौगोलिक दशाएँ मौजूद है। टाटा जलविद्युत (तीन शक्ति गृह), भिवपुरी, खोपोली, मीरा, कोयना, पूर्णा, वेतरणा, भटनागर–बीड़ मुख्य जल विद्युत केन्द्र है।

कर्नाटक : विद्युत शक्ति का उत्पादन सर्वप्रथम इसी राज्य में हुआ था। कावेरी पर शिवसमुद्रम, शिमला, जोग, तुंगभ्रदा, भद्रा, शरावति, आदि प्रमुख जल विद्युत योजनाएँ हैं।

सारणी 17.2 : जल विद्युत उत्पादन क्षेत्र (2013–14)

क्र.सं.	राज्य	विद्युत क्षमता (प्रतिशत)	उत्पादन का प्रतिशत	प्रमुख जल विद्युत परियोजनाएँ
1	आन्ध्र प्रदेश–तेलंगाना	12.15	11.18	नागार्जुन, सिलेरू, श्रीशैलम, मचकुण्ड, तुंगभद्रा, निजाम सागर
2	कर्नाटक	10.08	11.08	शरातवी, काली नदी, जोग, लिंगन मक्की, शिवासमुद्रम, भदा, मुनीराबाद, शिम्मापुरा
3	महाराष्ट्र	9.78	10.16	कोयना, टाटा, वैतरणी
4	पंजाब	8.14	8.19	देहर, भाखडा, पौंग, मंगवाल, कोटला, सनाम
5	तमिलनाडु	6.78	6.59	पापानाशम, सरकरपाठी, सुरूलियार, मोयार, अलियार, पाइकारा, शोलियार, कोडियार, पेरियार, मैटूर कुण्डा
6	ओडिशा	6.36	6.31	हीराकुण्ड, बालीमेला
7	केरल	6.13	6.04	इडुकी, सबरीगिरी, कुतियाडी शैलावार, सेगुलम, नरिया, मंगलम, पल्ली वासल, पानियार, परम्बिकुलन
8	मध्य प्रदेश	6.04	5.96	गांधी सागर, नर्मदा सागर, हंसदेव बांगों, बन सागर
9	हिमाचल प्रदेश	5.86	5.14	बेरा सिऊल, गिरीबारा, रानपुर, लुहरी, खाब, बस्सी, चमेरा, देवर
10	पूर्वोत्तर राज्य	9.12	10.14	उमियाज (असोम), कर्दनकुलाई (मेघालय), निचला लाग्याप (सिक्किम), लोकटल (मणिपुर), दोयांग (नगालैण्ड), रांगानदी (अरूणाचल प्रदेश)
11	अन्य राज्य	19.62	19.23	राजस्थान, बिहार, झारखण्ड, जम्मू–कश्मीर, उत्तर प्रदेश

Source : Statistical Abstract India, 2014



चित्र 17.3 : जल विद्युत शक्ति गृह

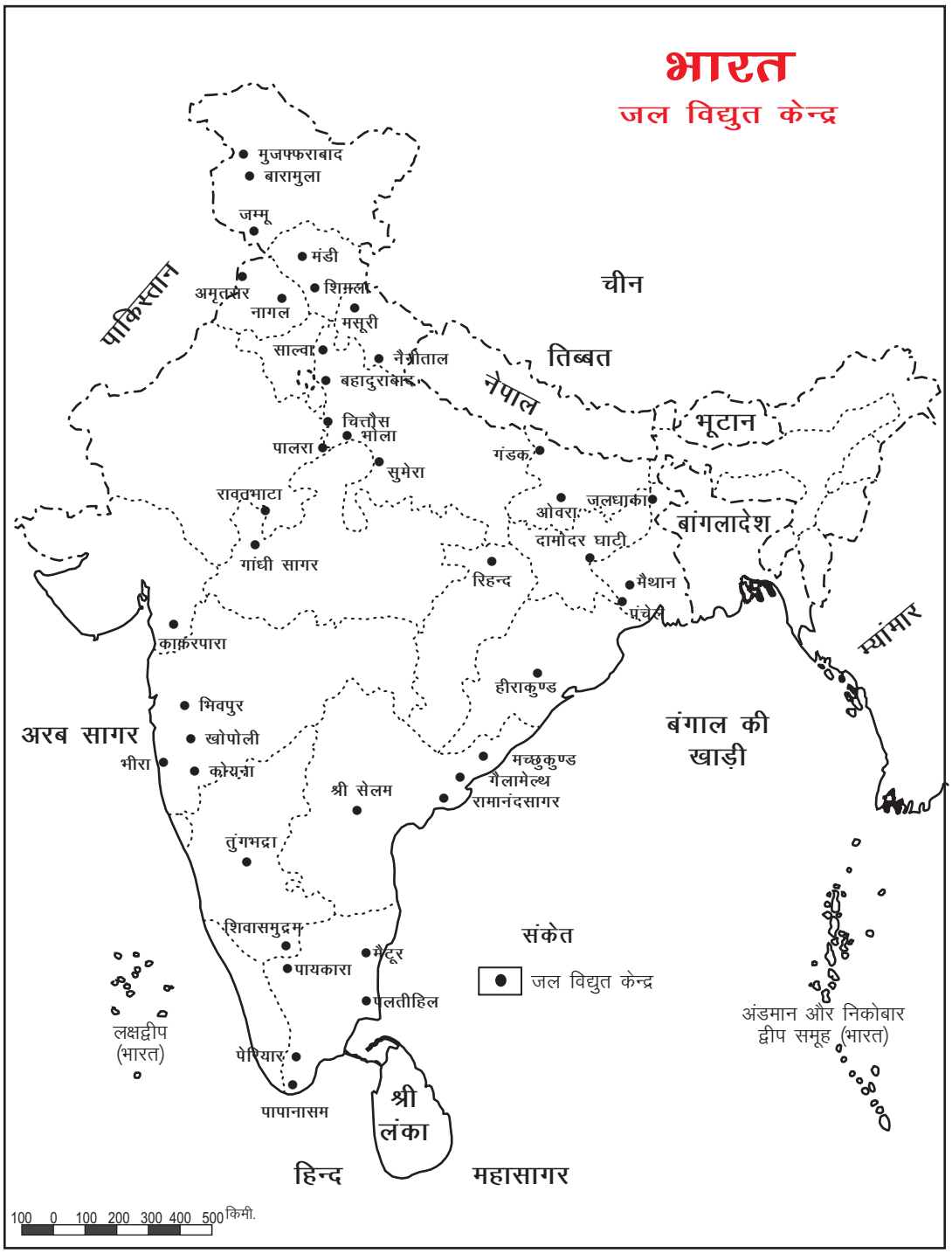

मानचित्र 17.3 : जल विद्युत केन्द्र

तमिलनाडु : पायकारा, कावेरी, पर मैटूर, ताम्रपणी पर पापानासम, मोदार, कुण्डा, पेरियार, परम्बिकुलम, अलियार प्रमुख योजनाएँ हैं।

केरल : पश्चिमी घाट की सदावाहिनी तीव्रगामी नदियों के कारण यहाँ जलविद्युत का पर्याप्त विकास हुआ है। पल्लीवासर, सेंगुतम, शीलयार, पोरिंगतकुथु, नेरियामंगर, पोन्नियार, शबरिगिरी, इटुक्की, कडियाडी आदि प्रमुख जल विद्युत योजनाएँ हैं।

उत्तर प्रदेश : ऊपरी गंग नगर पर गंगा इलेक्ट्रिक ग्रिड महत्त्वपूर्ण है। जिसके अन्तर्गत पधरी, मुहम्मदपुर, निरगाजनी, चितौरा, सलावा, भोला, पालेडा, सुमेरा आदि स्थानों पर कृत्रिम बाँध बनाकर जलविद्युत का विकास किया गया है। रिहन्द, माताटीला, यमुना हाइड्रिल, रामगंगा तथा माताटीला जलविद्युत योजनाएँ भी उल्लेखनीय है।

जम्मू–कश्मीर : सिन्ध, झेलम, सलाल, चेनानी, आदि मुख्य जल विद्युत योजनाएँ हैं।

सारणी 17.4 में भारत में विभिन्न राज्यों की जल विद्युत उत्पादन क्षमता का विवरण दर्शाया गया है।

आणविक ऊर्जा

देश में ऊर्जा की बढ़ती हुई माँग और सीमित संसाधनों को देखते हुए परमाणु ऊर्जा का विकास किया गया है। यह ऊर्जा रेडियोधर्मी परमाणुओं के विखण्डन से प्राप्त की जाती है। प्राकृतिक विखण्डन जटिल एवं खर्चीला होता है। परन्तु इससे प्राप्त विद्युत पर्याप्त सस्ती पड़ती है। इसका कारण है कि एक किलोग्राम यूरेनियम से जितनी विद्युत पैदा की जा सकती है उसने के लिये 20 से 25 लाख किलोग्राम कोयले की आवश्यकता होती है। भारत में परमाणु ऊर्जा का विकास अन्य देशों की तुलना में अभी कम है। यहाँ देश के कुल ऊर्जा का तीन प्रतिशत भाग परमाणु ऊर्जा से सम्बन्धित है। देश में परमाणु ऊर्जा के विकास करने के लिये 1954 में परमाणु ऊर्जा विभाग स्थापित किया गया है।



मानचित्र 17.5 : आणविक ऊर्जा केन्द्र



परमाणु शक्ति के स्रोत

परमाणु शक्ति के लिये रेडियोधर्मिता युक्त विशिष्ट प्रकार के खनिजों, यूरेनियम, थोरियम, बेरेलियम, ऐल्मेनाइट, जिरकन, ग्रेफाइट और एन्टीमनी का प्रयोग किया जाता है। भारत में इस प्रकार के खनिजों की उपलब्धि का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है।

सारणी 17.3 : परमाणु विद्युत गृह

क्र.सं.	विद्युत गृह	प्रारम्भ होने का समय	क्षमता (MW)
1	तारापुर (महाराष्ट्र)	1969, 1970	160×2
2	रावतभाटा–I (राजस्थान)	1973, 1981	200×2
3	कलपक्कम (तमिलनाडु)	1984, 1986	235×2
4	नरौरा (उत्तर प्रदेश)	1991, 1992	235×2
5	काकरापार (गुजरात)	1993, 1995	235×2
6	कैगा (कर्नाटक)	2000, 2000	235×2
7	रावतभाटा–II (राजस्थान)	2000, 2000	235×2
8	तारापुर (महाराष्ट्र)	2006, 2006	500×2
9	कैगा (कर्नाटक)	2007	235×4
10	रावतभाटा–III (राजस्थान)	2008	500×4
11	कुदानकुलम (तमिलनाडु)	2007, 2008	1000×2
12	कलपक्कम (तमिलनाडु)	2010	500

(1) यूरेनियम : बिहार के सिंहभूम और राजस्थान की धारवाड़ एवं आर्कियन चट्टानों, उत्तरी बिहार, आन्ध्र प्रदेश के नैल्लौर, राजस्थान के अभ्रक के क्षेत्रों में पैग्मेटाइट चट्टानें में, केरल के समुद्र तटीय भागों में मोनोजाइट निक्षेपों में, हिमाचल प्रदेश के कुल्लु, चमोली जिलों की चट्टानें में यूरेनियम प्राप्त किया जाता है।

(2) थोरियम : केरल की समुद्र तटीय रेत में 8–10 प्रतिशत तथा बिहार के रेत में 10 प्रतिशत तक मोनोजाइट खनिज प्राप्त होता है। जिससे थोरियम प्राप्त किया जाता है।

(3) इल्मेनाइट : भारत के पश्चिमी तट पर कुमारी अन्तरीप, नर्बदा नदी के एस्चूरी, महानदी की रेत से प्राप्त किया जाता है। केरल की रेत में इल्मेनाइट के 93 प्रतिशत भण्डार उपलब्ध है।

(4) बेरिलियम : राजस्थान, बिहार, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडू के अभ्रक खनन क्षेत्रों से बेरिलियम प्राप्त किया जाता है।

(5) जिरकन : केरल की बालू रेत से जिरकन प्राप्त किया जाता है।

(6) ग्रेफाइट : उड़ीसा में कालाहाण्डी, गंजाम, कोरापुट जिलों, आन्ध्र प्रदेश में वारंगल, विशाखापट्टनम, पश्चिमी गोदावरी, तमिलनाडु में तीरूनवेली, कर्नाटक में मैसूर, राजस्थान में जयपुर, अजमेर, मध्य प्रदेश में बेतूल, बिहार में भागलपुर, सिक्किम में सूंचताग्ग जिलों से प्राप्त किया जाता है। ग्रेफाइट के कुल उत्पादन का 50 प्रतिशत उड़ीसा, 20 प्रतिशत बिहार, 18 प्रतिशत आन्ध्र प्रदेश से प्राप्त होता है।

परमाणु शक्ति का विकास

भारत में परमाणु कार्यक्रम के शुभारम्भ कर्ता डॉ. होमी जँहागीर भाभा थे। 1948 में परमाणु ऊर्जा आयोग की स्थापना हुई। 1954 में परमाणु ऊर्जा संस्थान ट्रॉम्बे में स्थापित किया गया। जिसे 1967 में भाभा अनुसंधान केन्द्र नाम दिया गया। 1987 में भारतीय परमाणु विद्युत निगम की स्थापना की गई। जिसके अधीन दस परमाणु शक्ति गृह है। जिनकी कुल स्थापित विद्युत क्षमता 2770 मेगावाट है। वर्तमान में देश में 17 परमाणु रियेक्टर संचालित हो रहे है जिनकी कुल विद्युत उत्पादन क्षमता 4800 मेगावाट है। भारत में स्थापित परमाणु ऊर्जा केन्द्रों का विवरण इस प्रकार है–

गैर पम्परागत ऊर्जा संसाधन

भारत में परम्परागत ऊर्जा के संसाधनों के बारे में विस्तृत इस करने के पश्चात् अध्याय के इस भाग में गैर परम्परागत संसाधनों का संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है। परम्परागत ऊर्जा के सभी संसाधन सीमित और समाप्त प्राय है। पर्यावरण की दृष्टि से भी वे अधिक प्रदूषणकारी होते हैं। इसलिए सम्पूर्ण विश्व और भारत में ऊर्जा के नव्यकरणीय और गैर परम्परागत संसाधनों के उपयोग पर बल दिया जा रहा है। 1982 में ऊर्जा मंत्रालय के अधीन गैर परम्परागत ऊर्जा विभाग स्थापित किया गया। 1987 में विश्व बैंक की सहायता से भारतीय नव्यकरणीय विकास एजेन्सी (IRDA) की स्थापना की गई है। इस संस्था द्वारा भारत में सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, जैविक ऊर्जा, महासागरीय ऊर्जा, हाइड्रोजन ऊर्जा के विकास, उपयोग पर जोर दिया जा रहा है।

1. पवन ऊर्जा

भारत जैसे विशाल देश में पवन ऊर्जा की कुल क्षमता 45000 मेगावाट है। एशिया महाद्वीप की विशालतम पवन ऊर्जा द्वारा विद्युत उत्पादन की 150 मेगावाट उत्पादन क्षमता की परियोजना मुप्पडाल, तमिलनाडु में स्थित है।

देश में पवन ऊर्जा के उत्पादन के क्षेत्र में तमिलनाडू राज्य का स्थान प्रथम है। सारणी 17.6 पवन ऊर्जा के उत्पादन राज्य और उत्पादन का विवरण दिया गया है।

चित्र 17.6 : तमिलनाडु में पवन ऊर्जा उत्पादन



सारणी 17.4 : पवन ऊर्जा के शीर्ष उत्पादक राज्य

क्र.सं.	राज्य	उत्पादन मेगावाट
1	तमिलनाडु	6007
2	महाराष्ट्र	2310
3	गुजरात	2884
4	कर्नाटक	1730
5	राजस्थान	1524.

2. सौर ऊर्जा

भारत एक उष्ण कटिबंधीय देश है। जहाँ पर सौर ऊर्जा के उत्पादन की अपार संभावनाएँ उपलब्ध है। देश के अधिकाँश भागों में 300 से भी अधिक दिन खुली और स्वच्छ धूप प्राप्त होती है। यहाँ प्रति वर्ष 5000 ट्रीलियन किलोवाट/प्रति घण्टा सूर्य विकिरण प्राप्त होता है।



चित्र 17.7 : कृषि में सौर ऊर्जा का उपयोग



चित्र 17.8 : घरेलू उपयोग में सौर ऊर्जा

सौर ऊर्जा से पानी गरम करने, फसलें पकानें, भोजन बनाने, विद्युत पम्प चलाने जैसे एवं औद्योगिक एवं घरेलू विद्युत उत्पादन का कार्य किया जाने लगा है। ऊर्जा मंत्रालय द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर सौर तापीय ऊर्जा कार्यक्रम एवं सौर फोटोवोल्टीक कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं। भारत में आंध्रप्रदेश के तिरूपति बालाजी देवस्थान द्वारा विश्व की सबसे बड़ी सौर ऊर्जा संचालित भोजन बनाने की प्रणाली अक्टूबर 2002 में शुरू की गई। जिसमें 15000 लोगों का प्रतिदिन भोजन तैयार किया जा रहा है। इसी प्रकार राजस्थान में बिडला इस्ट्टूट ऑफ टेक्नोलॉजी एण्ड सांइन्स पिलानी में राजस्थान का सबसे बड़ा सौर ऊर्जा वाटर हीटर लगाया गया है। जहाँ 55 हजार लीटर पानी को गर्म किया जा रहा है।

सौर ऊर्जा का अब वाणिज्यिक स्तर पर भी प्रयोग किया जाने लगा है। वर्ष 2010 तक देश में 15 लाख वर्ग मीटर सौर ऊर्जा संग्राहक क्षेत्र स्थापित किया जा चुका है। जिसकी 66.5 मेगावाट क्षमता की 10,38,000 से अधिक फोटोवोल्टिक प्रणालियाँ विकसित की गई है। देश में 6 लाख घरेलू प्रकाश उपकरण, 8 लाख सोलर लालटेन, 90 हजार सौर ऊर्जा की संचालित सड़क लाइटें और 141 सौलर पावर पेक स्थापित किये जा चुके हैं।

वर्तमान में देश में 60 शहरों को सौर ऊर्जा नगरों के रूप में विकसित करने की योजना है। इस योजना के तहत 50 हजार से 5 लाख तक की जनसंख्या वाले नगरों को सम्मिलित किया गया है। देश में सौर ऊर्जा के विकास के लिये 11 जनवरी, 2010 को जवाहर लाल नेहरू सोलर मिशन प्रारम्भ किया गया। इस मिशन में 13वीं पंचवर्षीय योजना के तहत 2022 तक 20000 मेगावाट सौर ऊर्जा के उत्पादन का लक्ष्य रखा गया है। देश में सौर ऊर्जा उत्पादन को सारणी संख्या 17.7 में दर्शाया गया है।

सारणी 17.5 : सौर ऊर्जा के शीर्ष उत्पादक राज्य

क्र.सं.	राज्य	उत्पादन मेगावाट	प्रतिशत
1	तमिलनाडु	15.0	1.5
2	महाराष्ट्र	20.0	2.0
3	गुजरात	654.8	66.9
4	आन्ध्र प्रदेश	21.9	2.2
5	राजस्थान	197.5	20.2

3. जैविक ऊर्जा

जैविक ऊर्जा के विकास के लिये राष्ट्रीय कार्यक्रम संचालित किया जा रहा है। जिसका उद्देश्य विभिन्न प्रकार की बायोमास सामग्री का अधिकतम उपयोग करना है। इसमें वन और कृषि अपशिष्टों से ऊर्जा उत्पादन सम्मिलित है। भारत सरकार ने 2015 तक 16.5 मिलियन हेक्टर पर जेट्रोफा नामक फसल के रोपण का लक्ष्य रखा गया है। जिससे बायो डीजल बनाने की महत्वाकांक्षी परियोजना संचालित हो सकेगी। 11वीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत 620 मेगावाट बायोमास ऊर्जा विकसित करने का लक्ष्य रखा गया है। अक्टूबर 2013 तक 1248 मेगावाट विद्युत क्षमता प्राप्त की गई है।

ग्रामीण क्षेत्रों में गोबर, कूड़ा–करकट और मानव मल से बायोगैस का विकास किया गया है। इसका उद्देश्य गांवों में सस्ते एवं वैकल्पिक ऊर्जा स्रोत उपलब्ध कराना है। नगरों एवं उद्योगों से निकलने वाले कूड़े–कचरे का उपयोग ऊर्जा के उत्पादन में किया जाने लगा है। महानगरों में इस कार्यक्रम को संचालित कर पर्यावरण की रक्षा के साथ साथ ऊर्जा के वैकल्पिक साधनों का भी विकास किया जा रहा है। इस प्रकार के संयंत्र तानूकू (आंध्र प्रदेश), फैजाबाद (उत्तर प्रदेश), अंकलेश्वर (गुजरात), मुक्तसर (पंजाब), बेलगाम (कर्नाटक) में स्थापित किये गये हैं। बायोगैस बिजली उत्पादन के लिये कचरे से ऊर्जा प्राप्त करने की 20 परियोजनाएँ प्रारम्भ की गई है। जिनकी कुल स्थापित क्षमता 25.27 मेगावाट है।

नगर निगमों के द्वारा ठोस कचरे से ऊर्जा प्राप्त करने के लिये हैदराबाद, विजयवाड़ा और लखनऊ में 17.6 मेगवाट क्षमता वाली तीन परियोजनाएँ स्थापित की गई है। लुधियाना में पशुओं के अपशिष्टों पर आधारित परियोजना, सूरत में गन्दे जल की सफाई संयंत्र में बायोगैस से ऊर्जा उत्पादन, विजयवाड़ा में सब्जी बाजार के कचरे से 150 किलोवाट का संयंत्र स्थापित किया गया है। चेन्नई में 250 किलोवाट की क्षमता वाला संयंत्र सब्जी बाजार के कचरे का उपयोग कर रहा है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दू

1. किसी भी देश के औद्योगिक विकास हेतु शक्ति के संसाधन एक आवश्यक तत्त्व है।
2. ऊर्जा के सभी सांधनों को परम्परागत और गैर– परम्परागत संसाधनों में वर्गीकृत किया जाता है।
3. कार्बन की मात्रा के आधार पर कोयला एन्थ्रेसाइट, बिटुमिनस, लिग्नाइट व पीट में विभाजित किया जाता है।
4. भारत में कोयला दो कालखण्डों– गोंडवाना और टरशियरी काल का पाया जाता है।
5. गोण्डवानायुगीन कोयला दामोदर, मरानदी, सोन, गोदावरी नदियों की घाटी में पाया जाता है।
6. भारत में विश्व के कुल 0.5 प्रतिशत पेट्रोल के भण्डार उपलब्ध है।
7. प्राकृतिक तेल की खोज के लिए 1956 में ONGC की स्थापना की गई है।
8. भारत में कुल 22 तेल शोधन कारखाने कार्यरत है।
9. देश में पहली पाइन लाइन असम में नाहरकटिया से बरौनी तक 1152 किमी. लम्बी बिछाई गयी है।
10. भारत में जल विद्युत का प्रारम्भ 1897 में दार्जलिग से प्रारम्भ हुआ।
11. आणविक ऊर्जा के मुख्य खनिज यूरेनियम, थोरियम, जिरकन, ग्रेफाइट, इलोनाइट है।
12. भारत में 17 परमाणु रिएक्टर संचालित है जिनकी उत्पादन क्षमता 4800 मेगावाट है।
13. ऊर्जा के गैर परम्परागत साधनों में सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, भूतापीय ऊर्जा, ज्वारीय ऊर्जा और जैविक ऊर्जा सम्मिलित होते हैं।
14. 13 पंचवर्षीय योजना में 2022 तक 20 हजार मेगावाट और ऊर्जा के उत्पादन का लक्ष्य रखा गया है।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक

1. अंकलेश्वर तेल क्षेत्र किस राज्य में स्थित है–
   (अ) असोम (ब) महाराष्ट्र
   (स) आन्ध्र प्रदेश (द) गुजरात
2. भारत में किस राज्य में सर्वाधिक थोरियम निकाला जाता है–
   (अ) तमिलनाडु (ब) केरल
   (स) कर्नाटक (द) महाराष्ट्र
3. बॉम्बे हाई किसलिए प्रसिद्ध है–
   (अ) पनडुब्बी निर्माण के लिए
   (ब) परमाणु रिएक्टर के लिए
   (स) पेट्रोलियम भण्डार के लिए
   (द) मत्स्य के लिए
4. भारत का नूनमती तेल शोधक कारखाना स्थित है–
   (अ) बिहार (ब) महाराष्ट्र
   (स) केरल (द) असोम
5. सूर्य शक्ति (ऊर्जा) के उत्पादन की उपयुक्त दशाएँ पायी जाती है–
   (अ) तमिलनाडु में (ब) राजस्थान में
   (स) उत्तरांचल में (द) मध्य प्रदेश में
6. निम्नांकित क्षेत्रों में से कौन से क्षेत्र में भारत का अधिकतम पेट्रोलियम भण्डार पाया जाता है।
   (अ) बम्बई–हाई (ब) गोदावरी बेसिन
   (स) गुजरात तट (द) ब्रह्मपुत्र घाटी
7. कोयला भण्डारों की दृष्टि से अग्रणी राज्य है–
   (अ) मध्य प्रदेश (ब) छत्तीसगढ़
   (स) झारखण्ड (द) ओडिशा
8. देश की सबसे लम्बी पेट्रोलियम पाइप लाइन है–
   (अ) नूनमती–बरौनी (ब) मथुरा–जालन्धर
   (स) सलाया–मथुरा (द) मुम्बई–जालन्धर
9. ऊर्जा के गैर परम्परागत स्रोतों में सबसे महत्त्वपूर्ण है–
   (अ) सौर ऊर्जा (ब) पवन ऊर्जा
   (स) ज्वारीय ऊर्जा
   (द) कूड़–कचरे से उत्पन्न ऊर्जा
10. निम्न में से किस नदी बेसिन में कोयला के निक्षेप नहीं पाए जाते हैं–
    (अ) ब्रह्मपुत्र (ब) गोदावरी
    (स) दामोदर (द) गंगा

अतिलघूत्तरात्मक

11. भारत में पाये जाने वाले परम्परागत ऊर्जा संसाधनों के नाम लिखिए।
12. भारत में पाये जाने वाले गैर–परम्परागत ऊर्जा संसाधनों के नाम लिखिए।
13. टरशियरी कोयला कहाँ पर मिलता है।
14. भारत के पाँच प्रमुख कोयला उत्पादक राज्यों के नाम लिखिए।

15. भारत के प्रमुख खनिज तेल भण्डारों के नाम लिखिए।
16. भारत की पाँच प्रमुख तेल शोधनशालाओं के नाम व क्षमता लिखिए।
17. भारत में जल विद्युत की पाँ प्रमुख परियोजना के नाम लिखिए।
18. परमाणु ऊर्जा के प्रमुख खनिज पदार्थों के नाम लिखिए।
19. भारत के पाँच सौर ऊर्जा उत्पादक राज्यों के नाम लिखिए।
20. सौर ऊर्जा का उपयोग लिखिए।

लघूत्तरात्मक

21. भारत में ऊर्जा संसाधनों की स्थिति लिखिए।
22. भारत में जल विद्युत के उत्पादन, वितरण व संभावनाओं का वर्णन कीजिए।
23. भारत में सौर ऊर्जा व पवन ऊर्जा का विवरण लिखिए।

निबन्धात्मक

24. भारत में कोयला संसाधन पर एक लेख लिखिए।
25. भारत में गैर–परम्परागत ऊर्जा स्रोतों पर एक लेख लिखिए।

पाठ 18
कृषि (Agriculture)

अति प्राचीन काल से कृषि करने वाले देशों में भारत का प्रमुख स्थान रहा ई। इतिहास साक्षी है कि जब विश्व के अधिकाँश देश असभ्य थे, उस समय भारतवासी कृषि व्यवसाय में निपुण थे। हड़प्पा व मोहनजोदड़ो जैसी विकसित सभ्यता मौजूद थी, जिसमें बड़े विकसित नगर एवं खाद्यान्नों के भण्डारण की व्यवस्था भी रखी जाती थी।

विश्व के अधिकाँश कृषि विद्वान अन्नोत्पादन एवं पशुपालन 8000 ई.पू. से प्रारम्भ मानते हैं, उनमें से अधिकतर यह मानते है कि कृषि का प्रारम्भ दक्षिण–पूर्वी मानसून एशिया में हुआ है।

रूसी विद्वान वेविलोव ने 1951 में कृषि उद्‌भव के आठ केन्द्र/स्थल निर्धारित किये है। इसमें भारत को कृषि उद्‌भव का केन्द्र माना है।

कृषि का महत्त्व

आज भी भारत एक कृषि प्रधान देश है, जिसकी 54.6 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर प्रत्यक्ष तोर पर निर्भर है। कृषि जीवन–निर्वाह का सबसे महत्त्वपूर्ण साधन है। ऐसे कई उद्योग है, जो प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है वे उद्योग लाखों व्यक्तियों को रोजगार प्रदान करते हैं।

भारत में कृषि एवं सम्बन्धित क्षेत्र का योगदान 1950–51 में 53.1% था जो 2014–15 में सकल घरेलू उत्पादन का 17.5% रहा है।

भारतीय कृषि की मानसून पर निर्भरता के कारण भारतीय कृषि और अर्थव्यवस्था को मानसून का जुआ कहते हैं। भारत के कुल निर्यात में कृषि का महत्त्वपूर्ण स्थान रहता है। देश के कुल निर्यात मूल्य का 12.7 प्रतिशत के लगभग कृषि उत्पादों से प्राप्त होता है।

भारतीय संस्कृति कृषि से ओत–प्रोत है, हमारे अनेक त्योहार तथा उत्सव कृषि से ही सम्बन्धित है। इस तरह स्पष्ट होता है कि भारत की अर्थव्यवस्था, समाज एवं संस्कृति का मूलाधार कृषि ही है।

प्रकृति ने भी भारत जितनी विविधता सम्पूर्ण विश्व में किसी भी अन्य राष्ट्र को प्रदान नहीं की उसी भाँति उत्कृष्ट भौगोलिक स्थिति, समतल भूमि, उपजाऊ मृदा, पर्याप्त जलापूर्ति, मानसूनी जलवायु जैसे कारकों ने भारत को कृषि के क्षेत्र में विशिष्ट देश बना दिया है।

भारत का क्षेत्रफल 32,87,263 वर्ग किमी. है उसके 40.5 प्रतिशत भाग पर कृषि कार्य होता है। इन्हीं विशेषताओं के कारण भारत में कृषि पद्धतियों एवं फसलों में भी विविधता दिखाई देती है।

भारतीय कृषि का महत्त्व निम्न बिन्दुओं से स्पष्ट है–

1. सर्वाधिक रोजगार का साधन
2. उद्योगों के लिए कच्चे माल की प्राप्ति
3. राष्ट्रीय आय का साधन
4. विदेशी मुद्रा की प्राप्ति
5. पोष्टिक पदार्थों का उत्पादन
6. यातायात संसाधनों का विकास

भारतीय कृषि की विशेषताएँ :

भारत में अति प्राचीनकाल से अधिकाँशतः खाद्यान्न के रूप में

एवं परम्परागत रूप से कृषि की जाती रही है। विगत दशकों से कृषि का आधुनिकीकरण एवं वैज्ञानिकरण हो रहा है। भारतीय कृषि की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार है–

1. जनसंख्या की निर्भरता
2. मानसून पर निर्भरता
3. सिंचाई की सुविधाओं का अभाव
4. प्रति हेक्टयर कम उत्पादन
5. चारा फसलों की कमी
6. कृषि जोतों का छोटा आकार
7. खाद्यान्नों की प्रधानता
8. फसलों की विविधता

भारतीय कृषि की मुख्य समस्याएँ

1. भूमि पर जनसंख्या का बढ़ता हुआ भार
2. भूमि का असन्तुलित वितरण
3. कृषि की न्यून उत्पादकता
4. मौसम की मार, कभी अति वृष्टि, अनावृष्टि
5. किसान का भाग्यवादी दृष्टिकोण।
6. कृषि व्यवसाय के रूप में न लेकर जीवन यापन के रूप में है।
7. सिंचाई के साधनों का सीमित विकास।
8. कृषि का अशिक्षित एवं परम्परावादी होना।
9. उचित विक्रय व्यवस्था का लाभ न मिलना।
10. विभिन्न योजनाओं का सामान्य किसान को लाभ नहीं पहुँचना आदि।

कृषि के प्रकार

भारत की प्राकृतिक दशा, जलवायु, मिट्टी में पर्याप्त भिन्नता के कारण देश के विभिन्न भागों में कई प्रकार की कृषि की जाती है। भारत में मुख्यतः निम्न प्रकार की कृषि प्रचलित है।

1. निर्वहन कृषि

भारत में जीवन निर्वहन कृषि एक परम्परागत कृषि विधि रही है। स्वतंत्रता पूर्व से यह जीवन निर्वहन करने वाली एक गहन कृषि के रूप में प्रचलित थी। उस समय किसान की जोत का आकार छोटा था और बैलों की सहायता से हल चलाकर खेती करता था। इन खेतों पर परिवार के सदस्य ही श्रमिक के रूप में कार्य करते थे। खेती करने का तरीका पुराना ही था। रासायनिक उर्वरकों का उपयोग नहीं किया जाता था। कृषि का मुख्य उद्देश्य परिवार की खाद्यान्न आवश्यकता की पूर्ति करना ही रहता था। अतिरिक्त उत्पादन नहीं होता और यदि होता तो भी अगले वर्ष हेतु अपनी आवश्यकता पूर्ति के लिए रख लिया जाता था। किसान की आवश्यकता और सोच थोड़ी और साधारण होती थी। आवश्यकताओं की कुछ वस्तुएँ प्राकृतिक वातावरण से मिल जाती थी जिससे अधिक उत्पादन के लिए प्रोत्साहित नहीं होता। इस प्रकार कृषि में खाद्यान्नों के उत्पादन एवं छोटे क्षेत्र में ही अपनी आवश्यकताओं की विभिन्न प्रकार की फसलों का उत्पादन करता है।

पशुपालन भी निर्वहन कृषि का एक मुख्य अंग है। स्वतंत्रता के बाद भूमि–सुधारों को लागू किया गया। 1960 के बाद हरित क्रान्ति एवं अतिरिक्त उत्पादन की आवश्यकता महसूस की गई और जैविक के साथ रासायनिक कृषि का विकास हुआ। निर्वहन कृषि भी निम्न प्रकार की होती है।

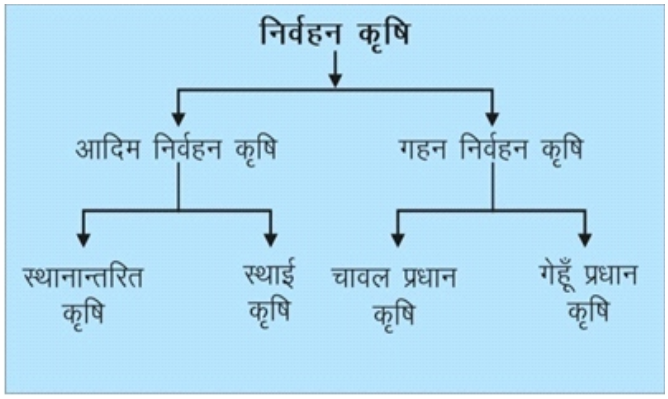

(अ) आदिम निर्वहन कृषि

आदिम निर्वहन कृषि को दो प्रकार में विभक्त किया जाता है।

(i) स्थानान्तरित कृषि : स्थानान्तरित कृषि आज भी भारत वर्ष के कई क्षेत्रों में वनवासियों द्वारा आदिम कालीन ढंग से निर्वाह कृषि के रूप में की जाती है। ये कृषक केवल उतनी ही भूमि पर खेती करते है, जितने से उसके परिवार के जीवित रहने के लिए आवश्यक भोज्य मिल जाता है।

इसके अतिरिक्त वनों को जलाकर भूमि को साफ करके दो से तीन वर्षों तक फसलें उगाई जाती है और भूमि की उर्वरता नष्ट होने पर उसे परती छोड़ दिया जाता है। अन्यत्र जाकर पुनः इसी प्रक्रिया को अपनाया जाता है, अतः इसे स्थानान्तरित कृषि कहते हैं।

यहाँ मुख्यतः खाद्यान्न उगाये जाते हैं, कहीं–कहीं तम्बाकू भी उगाई जाती है। भारत के उ.पू. भाग में झूमिंग मध्यप्रदेश व छत्तीसगढ़ में बेवर, आन्ध्र प्रदेश में पोदू, केरल में पोनम, दक्षिणी

भारत में (गोण्ड द्वारा) छिप्पा, पैण्डा, पश्चिमी घाट में कुमारी हिमालय में खील, दक्षिण–पूर्वी राजस्थान में विभिन्न नामों से स्थानान्तरित कृषि को जाना जाता है।

(ii) स्थाई कृषिः ऐसे आदिवासी क्षेत्र जहाँ कृषि भूमि पर जनसंख्या का दबाव बढ़ जाता है वहाँ स्थानान्तरित कृषि का स्थान स्थाई कृषि लेने लगती है। इस प्रकार की कृषि स्थानान्तरित से उन्नत होती है और आवश्यकता से कुछ अधिक अन्न उत्पादन हो जाता है। भूमि की उर्वरता को बनाए रखने के लिए पशु खाद का उपयोग किया जाता है। कृषि के साथ पशुपालन भी किया जाता है। जिसका उपयोग कृषि कार्य में सहयोग के लिए किया जाता है। मध्य हिमालय तथा प्रायद्वीप के उत्तरी पूर्वी भाग में इसका प्रचलन है।

(ब) गहन निर्वहन कृषि

भारत के विशाल मैदान तथा तटीय मैदानों में यह कृषि की जाती है। पर्याप्त वर्षा वाले क्षेत्रों में चावल व कम वर्षा वाले क्षेत्रों में गेहूँ प्रमुख फसलों के रूप में बोई जाती है। इस प्रकार की कृषि में मानव श्रम का प्रयोग अधिक होता था, अब मशीनों का प्रयोग बढ़ रहा है। गहन निर्वहन कृषि में फसल आर्वतन भी किया जाता है। भारत के अधिकाँश क्षेत्रों में यह प्रचलित है। फसल प्रधानता के आधार पर यह दो प्रकार की होती है–

(i) चावल प्रधान गहन निर्वहन कृषि : यह कृषि 100 सेमी. से अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में होती है। यहाँ उर्वरक जलोढ़ मिट्टी पाई जाती है। मुख्य उत्पादक राज्य पश्चिमी बंगाल, बिहार, पूर्वी उत्तर प्रदेश, पूर्वी मध्य प्रदेश एवं तटीय मैदान है। इन सभी क्षेत्रों में चावल मुख्य फसल है जिसकी वर्ष में 2 या 3 बार फसल उत्पादित की जाती है।

(ii) गेहूँ प्रधान गहन निर्वहन कृषि : यह कृषि पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, पश्चिमी मध्यप्रदेश, राजस्थान तथा प्रायद्वीपीय पठार के पश्चिमी भागों में प्रचलित है। इन क्षेत्रों में वर्षा की कमी के कारण चावल के स्थान पर गेहूँ की खेती की जाती है। कपास, ज्वार, बाजरा, दालें आदि फसलें भी उगाई जाती है। जहाँ सिंचाई के साधन विकसित है, वहाँ व्यापारिक अन्न उत्पादन विकसित हो गया है। इसमें मशीनों, उर्वरकों, फसल आवर्तन का विशेष योगदान है।

2. व्यापारिक कृषि

व्यापारिक कृषि के अन्तर्गत निर्यात की दृष्टि से अतिरिक्त उत्पादन किया जाता है। परिवहन, यातायात व संचार के साधनों के विकास के साथ–साथ निर्भरता बढ़ी है। इस प्रकार की कृषि में कई फसलों के स्थान पर भौगोलिक परिस्थितियों के अनुकूल एक ही फसल का उत्पादन, बढ़ाकर निर्यात से आय में वृद्धि करने का प्रयास किया जाता है। पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, केरल आदि राज्यों में इस प्रकार की कृषि का प्रचलन बढ़ रहा है।

3. आर्द्र कृषि

आर्द्र कृषि : आर्द्र कृषि उन क्षेत्रों में की जाती है जहाँ फसलों के लिए आवश्यक मात्रा में अथवा उससे अधिक वर्षा होती है। सामान्यतः इन क्षेत्रों में वर्षा का औसत 100 से 200 सेमी तक रहता है। गंगा की मध्यवर्ती घाटी, प्रायद्वीप भारत के उत्तर पूर्वी भागों एवं तटीय आर्द्र क्षेत्रों में इस प्रकार की कृषि की जाती है। इन क्षेत्रों में वर्ष में दो तथा कहीं–कहीं तीन फसलें तक प्राप्त की जा सकती है। उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग से अरूणाचल प्रदेश तक आर्द्र कृषि की जाती है।

4. शुष्क कृषि : शुष्क कृषि भारत के उन क्षेत्रों में की जाती है, जहाँ वार्षिक वर्षा 50 सेमी से कम होती है साथ ही सिंचाई की सुविधाओं का भी अभाव है। कृषि की इस पद्धति में उपलब्ध जल संसाधनों का अधिकतम उपयोग किया जाता है, फुव्वारों द्वारा सिंचाई स्प्रिंकलर सिस्टम, बूँद–बूँद सिंचाई जैसी सिंचाई पद्धति का उपयोग किया जाता है। इस कृषि में उन्हीं फसलों को बोया जाता है, जो शुष्कता सहन कर सकती है। गूहँ, जौ, ज्वार, बाजरा, चना, कपास आदि शुष्क कृषि की फसलें है। शुष्क कृषि की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित है।

(1) वर्षा से पहले खेत जोत दिए जाते हैं, ताकि भूमि नर्म हो जाए।

(2) प्रत्येक वर्षा के बाद गहरी जुताई की जाती है ताकि वर्षा का जल भूमि के अन्दर जा सके।

(3) वर्षा के जल को नियंत्रित करने के लिए भूमि पर मेड़ बनाकर कई भागों में बांट कर व्यर्थ बहने से रोका जाता है।

(4) जोती हुई भूमि में नमी सुरक्षित रखने के लिए सुखी मिट्टी की एक परत बिछा दी जाती है।

(5) जल का दुरूपयोग रोकने के लिए अनावश्यक वनस्पति को निकाल दिया जाता है।

(6) इसमें शुष्कता को सहन करने वाली फसलों को ही उगाया जाता है।

भारत में इस प्रकार की कृषि पश्चिमी उत्तर प्रदेश अरावली के पश्चिम में प. राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश आदि राज्यों के कम वर्षा वाले क्षेत्रों में की जाती है।

भारत में शुष्क कृषि अनुसंधान कार्यालय राँची में स्थापित किया गया है। यह भारत के शुष्क क्षेत्रों की जलवायु, प्राकृतिक दशा तथा बीजों का उचित चयन करके शुष्क क्षेत्रों हेतु कृषि की योजना बनाता है।

5. गहन कृषि

गहन कृषि : भारत में शताब्दियों से गहन कृषि का प्रचलन रहा है जो देश के अधिकाँश भागों में की जाती है। इसके अन्तर्गत कम क्षेत्र में अधिक उत्पादन का उद्देश्य रहता है जिसका प्रमुख कारण सघन आबादी एवं कृषि भूमि की कमी होना है। इस कृषि की विशेषताएँ निम्नलिखित है–

(1) गहन कृषि क्षेत्रों में जनसंख्या के अनुपात में भूमि कम होती है।

(2) प्रति हेक्टेयर भूमि में खेतिहर श्रमिकों की संख्या अधिक होती है।

(3) वर्ष में एक से अधिक फसलें उगाई जाती है।

(4) इसमें फसल चक्रण को अपनाया जाता है।

(5) भूमि पर जनसंख्या का भार अधिक होने से सीमित भूमि से अधिक पैदावार की जाती है।

(6) गहन कृषि में पूँजी निवेश व यांत्रिक उपयोग की अपेक्षा मानवीय श्रम की प्रधानता होती है।

उत्तर भारत के अधिकाँश भागों में गहन कृषि ही की जाती है।

6. विस्तीर्ण कृषि : विस्तीर्ण कृषि उन देशों में की जाती है जहाँ जनसंख्या के अनुपात में भूमि अधिक होती है। इसीलिए खेतों का आकार बड़ा होता है जहाँ कृषि कार्य करने के लिए बड़ी मशीनों एवं यांत्रिक उपकरणों की आवश्यकता होती है। अतः कृषि के लिए अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है, उपरोक्त विशेषताओं वाली कृषि को विस्तीर्ण कृषि कहते हैं।

भारत में जनसंख्या की अपेक्षा भूमि कम है तथा पारिवारिक बँटवारे में भूमि का निरन्तर विभाजन एवं उपविभाजन होते रहने से खेतों का आकार छोटा होता गया और गहन खेती की जाती है। इन छोटे व बिखरे खेतों में लागत अधिक एवं उत्पादन कम होता है, इससे निपटने के लिए चकबन्दी योजना आरम्भ की गई जिसके अन्तर्गत साढ़े चार से पांच करोड़ हेक्टयर भूमि पर चकबन्दी की जा चुकी है।

इस योजना में बिखरे हुए खेतों को मिलाकर चक बना देते है जिसके फलस्वरूप खेतों की देखभाल में आसानी रहती है और सिंचाई करने में भी सुविधा हो जाती है। पंजाब, हरियाणा व उत्तर प्रदेश में यह कार्य लगभग पूर्ण हो चुका है। इन राज्यों के अधिकाँश भागों में यांत्रिक आधार पर विस्तीर्ण कृषि की जा रही है व अन्य राज्यों में भी कार्य प्रगति पर है जैसे राजस्थान का राजस्थान नहर का सिंचित क्षेत्र विस्तीर्ण कृषि के नवीन क्षेत्रों में हैं।

7. उद्यान कृषि

व्यापारिक कृषि में उद्यान कृषि एक ऐसी सघन कृषि है, जिसमें बहुत उच्च स्तर का विशेषीकरण होता है, और जो अधिकतर छोटे पैमाने पर की जाती है। डेरी उद्योग के समान, उद्यान कृषि भी संसार के नगरीय बाजारों के द्वारा शाक–सब्जियों और फलों की माँग के कारण विकसित हुई है। इसमें भूमि के छोटे से क्षेत्रफल में ही भोजन की बहुत बड़ी मात्रा उत्पन्न कर ली जाती है।



चित्र 18.1 : पुष्प एवं सब्जियों की खेती

उद्यान कृषि के उपभेद

उद्यान कृषि के छः उपभेद होते हैं (i) बाजार के समीप सब्जी उत्पादन, (ii) ट्रक कृषि, (iii) ग्रीन हाउस फार्मिंग, (iv) पुष्प कृषि, (v) पादप नर्सरी, (vi) व्यापारिक फलोधान।

इनमें सब्जी उत्पादन, ट्रक कृषि और व्यापारिक फलोघान सबसे अधिक महत्वपूर्ण है।

भारत में प्रमुख बागवानी फसलें : 2013–14 के अनुसार – भारत में सबसे अधिक फलों का उत्पादन तमिलनाडू, मसाले उत्पादन में गुजरात प्रथम, फलों के उत्पादन में महाराष्ट्र, सब्जियों के उत्पादन में पश्चिम बंगाल तथा आलू के उत्पादन में उत्तर प्रदेश प्रथम स्थान रखता है। वर्ष 2004–05 से 2014–15 के बीच बागवानी फसलों की उत्पादकता में लगभग 34 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। 2004–05 में बागवानी फसलों का उत्पादन 167 मिलियन टन था जो 2014–15 में बढ़कर 283 मिलिटन टन हो गया।

8. जैविक कृषि

भारत में जैविक कृषि का आरम्भ सभ्यता के आरम्भ या यों कहें कृषि युग के प्रारम्भ से ही हो गया था जो गैर जैविक (रासायनिक कृषि) के प्रारम्भ तक हमारे पूर्वजों ने प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित करके अपनी आर्थिक क्रियाओं द्वारा भरण पोषण किया तथा अपना विकास करते आये। विकास की इस प्रक्रिया में मनुष्य या प्रकृति के मध्य स्थापित सम्बन्ध कभी खराब नहीं हुए। बढ़ती आबादी के भरण–पोषण तथा अनाज संकट को दूर करने के लिए 60 के दशक में गैर जैविक कृषि (हरित क्रान्ति अर्थात रासायनिक कृषि) की और आकर्षण बढ़ा।

अधिक उत्पादन के लालच में किसान ने नई–नई तकनीकियों के प्रयोग के साथ–साथ रासायनिक खादों तथा कीटनाशक दवाओं का प्रयोग प्रारम्भ किया। इससे कुछ फसलों के उत्पादन में 2–4 गुना प्रति हेक्टेयर वृद्धि भी हुई। इस वृद्धि से अति उत्साही किसानों ने गुणवत्ता एवं स्वास्थ्य के दुष्प्रभावों को नज़रअन्दाज कर अति उत्साह में प्रयोग अधिक प्रारम्भ कर दिये। इससे न केवल अनाज दूध, सब्जियाँ, फल–फूल आदि दूषित हुए साथ ही जल स्रोत भी दूषित हो गए। रासायनिक कृषि का विनाशकारी प्रभाव जीवधारियों व कीड़ों मकोड़ों पर भोजन श्रृंखला के माध्यम से होने लगा, साथ ही जैव विविधता का क्षरण भी तीव्र गति से होने लगा। मिट्टी की गुणवत्ता में कमी आना तथा कई जीवधारियों व कीड़े मकोड़े की प्रजातियों के विलुप्त होने का संकट भी मंडरा रहा है।



चित्र 18.2 : जैविक खेती

रासायनिक कृषि से जल की माँग ही नहीं बढ़ी अपितु भूमिगत जल स्तर में भी गिरावट के साथ–साथ भूमि की उर्वरा शक्ति का भी तीव्रता से हास्व हुआ है। जब से मनुष्य को रासायनिक कृषि के दुष्परिणामों की जानकारी प्राप्त हुई है तब से वह अपने स्वास्थ्य तथा पर्यावरण संरक्षण के सन्दर्भ में जागरूकता आयी और विश्व पुनः जैविक कृषि अर्थात परम्परागत कृषि की और लौटने लगा। आज विश्व में लगभग 3.7 करोड़ हेक्टयर भूमि पर जैविक कृषि की जा रही है जो विश्व की कुल कृषि भूमि का 0.9 प्रतिशत है। लेकिन निरन्तर इसके क्षेत्र में वृद्धि हो रही है। पर्यावरण एवं जीवन के लिए उपयोगी होने के कारण इसे प्राकृतिक कृषि (आर्गेनिक फार्मिंग) कहते हैं।

भारत में जैविक कृषि

भारत में लगभग 7.23 लाख हेक्टेयर क्षेत्रफल पर जैविक खेती की जा रही है। महाराष्ट्र, मेघालय, मिजोरम, पंजाब, उत्तर प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, झारखण्ड, बिहार, राजस्थान आदि के किसान जैविक खेती अपनाने में आगे आ रहे हैं।

सिक्किम देश का पहला पूर्ण जैविक खेती करने वाला राज्य : 18 जनवरी, 2016 को गंगटोंक (सिक्कीम) में आयोजित 'टिकाऊ कृषि सम्मेलन' में सिक्किम को पूर्णतया जैविक खेती करने वाला देश का पहला राज्य घोषित किया। सिक्किम में जैविक कृषि की खेती वर्ष 2003 में शुरू की गई थी। पर्यावरण सुरक्षा के लिए सिक्किम में रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग को पूर्णतः निषिद्ध कर दिया गया है। सिक्किम ने अपनी लगभग 75000 हेक्टेयर भूमि को टिकाऊ कृषि के लिए जैविक भूमि में परिवर्तित कर दिया है। इन्हीं सब उपाय के कारण सिक्किम देश का सबसे स्वच्छ राज्य के रूप में भी 2016 के अन्तर्गत चुना गया है।

कृषि फसलें

भारत की फसलों को जलवायु के अनुसार तीन भागों में विभाजित किया गया है।

1. **खरीफ** : ये फसलें मानसून आगमन से पूर्व जून– जुलाई से सितम्बर–अक्टूबर के मध्य वर्षा काल में उत्पादित फसलों को खरीफ के नाम से पहचाना जाता है। चावल, ज्वार, बाजरा, मक्का, कपास, जूट, मूँगफली, तिल, गन्ना, उड़द, मूँग, मोठ आदि फसलें सम्मिलित की जाती है।

2. **रबी** : शीतकाल में अक्टूबर–नवम्बर से लेकर मार्च– अप्रेल के मध्य होने वाली फसलों को रबी की फसल कहते हैं जिनमें सिंचाई की आवश्यकता रहती है। गेहूँ, जौ, चना, सरसों, मटर, अरहर, मसूद आदि।

3. **जायद** : रबी व खरीफ के अतिरिक्त मध्यवर्ती समय में बोई जाने वाली फसल जिसमें सब्जियाँ, ककड़ी, तरबूज, खरबूजा, चरी (ज्वार) आदि फसलें।

जैविक कृषि तथा रासायनिक कृषि में अन्तर

जैविक कृषि तथा रासायनिक कृषि में अपने स्वभाव, उत्पादन की विधियों एवं कृषि के अन्य दृष्टिकोण से भारी अन्तर है जो निम्न तालिका में स्पष्ट किये गये हैं।

जैविक कृषि	रासायनिक कृषि
1. जैविक खाद एवं परम्परागत तरीकों से की जाने वाली कृषि को जैविक कृषि कहते हैं।	1. रासायनिक खादों व कीटनाशक दवाओं के प्रयोग से की जाने वाली कृषि को रासायनिक कृषि कहते हैं।
2. जैव पदार्थों द्वारा निर्मित खादों का प्रयोग किया जाता है।	2. रासायनिक खाद एवं कीटनाशक दवाओं का प्रयोग किया जाता है।
3. जैविक कृषि में मानव श्रम अधिक लगता है।	3. मानव श्रम के स्थान पर मशीनों का उपयोग अधिक होता है।
4. जैविक खाद घर अथवा फार्म पर ही तैयार की जाती है।	4. रासायनिक खाद औद्योगिक केन्द्रों (कारखानों) में तैयार की जाती है।
5. जैविक खाद भूमि के उपजाऊपन को बढ़ाने में सहायक होती है।	5. रासायनिक खाद से भूमि की उर्वरा शवित नष्ट होती है।
6. जैविक कृषि से प्रकृति के साथ आदर्श रिश्ता बनाते हुए कृषि उत्पादन को बढ़ाया जाता है।	6. रासायनिक कृषि में पर्यावरण के साथ लाभ–हानि के सोचे बिना रासायनिक खादों का उपयोग करके कृषि उत्पादन बढ़ाया जाता है।
7. जैविक कृषि से उत्पादित खाद्यान्नों के उपयोग से मनुष्य के स्वास्थ्य पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।	7. रासायनिक कृषि से उत्पन्न खाद्यानों के उपयोग से मनुष्यों तथा अन्य जीवों में अनेक प्रकार की बीमारियाँ उत्पन्न हो रही है।
8. जैविक कृषि से जैव–विविधता पर नकारात्मक विनाशात्मक प्रभाव नहीं पड़ता।	8. रासायनिक कृषि से जैव–विविधता पर विनाशात्मक प्रभाव पड़ता है।
9. जैविक खाद में कम्पोस्ट, गोमूत्र, काऊ पेट पिट, वर्मी कम्पोस्ट, नीम केक इत्यादि खादें सम्मिलित की जाती हैं जो कि जीवों से सड़े–गले पदार्थों से बनाई जाती है।	9. रासायनिक खादों में फास्फेट, नाइट्रोजन, अमोनिया, जैसे रासायनिक तत्व होते हैं जिसके नकारात्मक परिणाम भूमि पर दिखाई पड़ते हैं।
10. जैविक कृषि द्वारा भूमि की उर्वरा शवित व उत्पादन दोनों में धीरे–धीरे वृद्धि होती है।	10. रासायनिक कृषि में भूमि की उर्वरा शवित कुछ ही समय तक बनी रहती है। उसके पश्चात् उर्वरा शवित का हास होना प्रारम्भ हो जाता है।
11. जैविक कृषि में जल की आवश्यकता नहीं पड़ती है।	11. रासायनिक कृषि में जल का अधिक मात्रा में उपयोग किया जाता है।
12. भूमिगत जल की शुद्धता पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता है।	12. रासायनिक कृषि में उपयोग होने वाले कई रसायनों का विपरीत प्रभाव पड़ता है।
13. जैविक कृषि उपज स्वास्थ्य के लिए उपयोगी होने के कारण माँग अधिक रहती है।	13. रासायनिक खाद एवं किटनाशकों का प्रभाव शरीर के लिए हानिकारक होता है। साथ ही भूमिगत जल एवं एकत्रित जल के उपयोग से विभिन्न प्रकार की बीमारियां हो रही है। पंजाब उदाहरण के लिए
14. जैविक कृषि की गाँव और प्रकृति पर निर्भरता है क्योंकि इस कृषि में बीच प्रकृति, खाद पशुओं से कीटनाशक जंगलों से सिंचाई, प्रकृति से प्राप्त होती है। मेहनत स्वयं किसान करता है।	14. रासायनिक कृषि पूरी तरह से बाजार पर निर्भर होती है, क्योंकि बीज, रासायनिक खाद, कीटनाशक दवाईयां, कृषि यंत्र तकनीक, आदि बाजार से खरीदी जाती है।

उपयोग के आधार पर विभाजन

1. खाघान्न फसलें : चावल, गेहूँ, बाजरा, ज्वार, मक्का, दालें।
2. बागानी फसलें : चाय, कहवा, तम्बाकू
3. नगदी फसलें : गन्ना, तिलहन, सोयाबीन, राई, सरसों
4. रेशेदार : कपास एवं जूट

मुख्य कृषि फसलों का वर्णन इस प्रकार है–

1. गेहूँ

इसके लिए समशीतोष्ण सर्वोत्तम जलवायु है। मोहनजोदड़ो की खुदाई में जो गेहूँ दाने मिले हैं इससे इतिहासकारों का मत है कि भारत ही गेहूँ का सम्भवतः आदि स्थान रहा है। ऋग्वेद की ऋचाओं में भी चावल, जौ, गेहूँ, मूंग का वर्णन मिलता है। भारत की यह दूसरी वृहत खाद्य फसल है जो उगाई व भोजन में काम आती है। विश्व उत्पादन का 11.7 प्रतिशत भारत से प्राप्त होता है। खाद्यान्न उत्पादन में लगी कुल भूमि का 23 प्रतिशत भाग पर गेहूँ उगाया जाता है।

भौगोलिक दशाएँ

तापमान : गेहूँ शीतोष्ण कटिबन्धीय उपज है जिसका उत्पादन भारत में अक्टूबर–नवम्बर से मार्च के मध्य किया जाता है। बोते समय 10 प्रतिशत बढ़ते समय 15°C तथा पकते व काटते समय 20°C से 28°C तापमान की आवश्यकता रहती है साथ ही 100 दिन पाला रहित होना आवश्यक है।

वर्षा : गेहूँ के लिए आदर्श वर्षा 50 से 75 सेमी. है लेकिन कम होने पर सिंचाई की आवश्यकता होती है। मावट इसके लिए श्रेष्ठ होती है।

मिट्टी : गेहूँ के लिए हल्की, दोमट, बलुई, काली मिट्टी उपयुक्त रहती है।

धरातल : समतल धरातल होना चाहिए, जहाँ कृषि यंत्रों का उपयोग आसानी से किया जा सके और जल निकास हो सके।

श्रम : विभिन्न कार्यों हेतु सस्ते श्रम की आवश्यकता रहती है लेकिन अब तीव्र गति से यंत्रिकरण हो रहा है।

खाद : उत्पादन बढ़ाने के लिए कम्पोस्ट, जैविक, गोबर के साथ रासायनिक उर्वरकों का उपयोग भी तेजी से बढ़ा है।

उत्पादन एवं वितरण

भारत में गेहूँ उत्पादन की दृष्टि से सतलज, यमुना एवं ऊपरी गंगा का मैदानी भाग सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। पर्याप्त जल, उपजाऊ एवं समतल भूमि के कारण यह क्षेत्र देश का 68 प्रतिशत गेहूँ का उत्पादन करता है। 1970–71 में औसत ऊपज 1307 किग्रा. थी वहीं 2013–14 में भारतीय औसत 3145 किग्रा प्रति हेक्टेयर था। सन् 2014–15 में देश के 31 मिलियन हेक्टेयर भूमि पर गेहूँ बाया गया जिसका उत्पादन 88.9 लाख मिलियन टन रहा, साथ ही प्रति हेक्टेयर उत्पादन 2872 किग्रा रहा।

उत्तर प्रदेश : यह भारत का आदर्श गेहूँ उत्पादक राज्य है। यहाँ केवल उत्तरी पर्वतीय एवं दक्षिणी पठारी क्षेत्रों को छोड़कर सर्वत्र गेहूँ की कृषि की जाती है। राज्य में गंगा–यमुना, गंगा–घाघरा दोआब गेहूँ की कृषि के लिए विशेष रूप से जाना जाता है। जहाँ राज्य का 75 प्रतिशत गेहूँ पैदा होता है। मुख्य उत्पादक जिले सहरानपुर, मुजफरनगर, मेरठ, मुरादाबाद, रामपुर, बदायूँ, बुलन्दशहर आदि। उत्तर प्रदेश में वर्ष 2014–15 में 25.2 मिलियन टन गेहूँ का रिकार्ड उत्पादन हुआ जो देश का 28.4 प्रतिशत है।

पंजाब : हरित क्रान्ति के प्रभाव से पंजाब में गेहूँ की उपज में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। यहाँ कुल कृषि भूमि के 30 प्रतिशत भाग पर गेहूँ की कृषि की जाती है। सिंचाई सुविधा एवं उपजाऊ मिट्टी उन्नत खाद बीज के उपयोग से राज्य की औसत उपज 5017 किग्रा प्रति हेक्टेयर पर है जो देश का सर्वाधिक है। 2014–15 में राज्य 15.8 मिलियन टन का उत्पादन हुआ जो देश के गेहूँ उत्पादन का 17.7 प्रतिशत उत्पादन कर दूसरा सबसे बड़ा उत्पादन राज्य है। मुख्य उत्पादक जिले– लुधियाना, जालन्धर, अमृतसर, कपूरथला, फिरोजपुर, भटिण्डा, पटियाला तथा संगरूर है।

हरियाणा : क्षेत्रफल की दृष्टि से छोटा लेकिन सिंचाई सुविधाओं के कारण 13.5 प्रतिशत गेहूँ उत्पादन कर बड़ा उत्पादक राज्य बन गया है यहाँ रोहतक, हिसार, जिंद, कुरूक्षेत्र, सिरसा, फतेहाबाद, अम्बाला, गुड़गाँव, फरीदाबाद जिलों में देश का 8 प्रतिशत गेहूँ उत्पादन क्षेत्र स्थित है।

मध्यप्रदेश : मैदानी भागों और मालवा की काली मिट्टी क्षेत्रों में सिंचाई द्वारा गेहूँ उत्पादन किया जाता है। वर्ष 2014–15 में राज्य में 14.2 मिलियन टन गेहूँ का उत्पादन हुआ जो देश का 15.9 प्रतिशत था। मध्य प्रदेश देश का तीसरा बड़ा उत्पादन राज्य है। प्रमुख उत्पादक जिले गुना भिण्ड, ग्वालीयर, उज्जैन, सागर, इन्दौर, जबलपुर आदि। पिछले कुछ वर्षों से गेहूँ उत्पादन में वृद्धि हुई है।

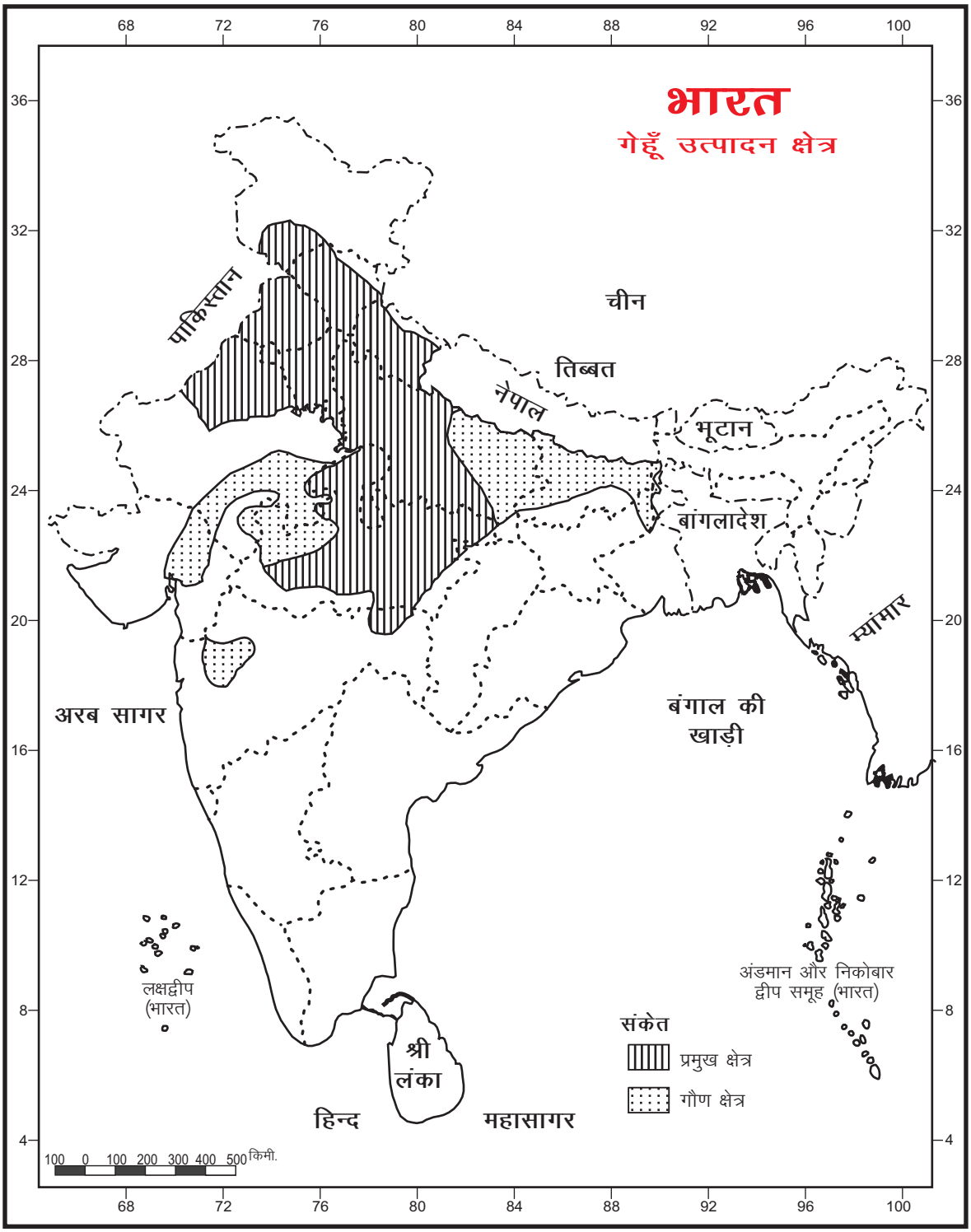

मानचित्र 18.1 : भारत में गेहूँ उत्पादन

राजस्थान : वर्षा की कमी के कारण सिंचाई द्वारा गेहूँ की फसल बोई जाती है। राज्य की कुल कृषि भूमि के 18 प्रतिशत भाग पर गेहूँ की कृषि की जाती है। इन्दिरा गाँधी नहर निर्माण के पश्चात् राजस्थान में गेहूँ की उपज में वृद्धि हुई है। यहाँ देश का 7–9 प्रतिशत गेहूँ उत्पादन किया जाता है। प्रमुख उत्पादक जिले श्रीगंगानगर, भरतपुर, कोटा, अलवर, बाँरा, जयपुर, भीलवाड़ा, सवाई माधोपुर, बाँसवाड़ा आदि है।

बिहार : बिहार के उत्तरी मैदानी भागों में गेहूँ उत्पादन किया जाता है, जहाँ कृषि भूमि के 14 प्रतिशत भाग पर कृषि की जाती है। राज्य में देश का 6 प्रतिशत गेहूँ उत्पादन होता है। चम्पारन, शाहबाद, दरभंगा, गया, मुजफरनगर, पटना आदि प्रमुख उत्पादक

जिले हैं।

अन्य गेहूँ उत्पादक राज्य : पश्चिम बंगाल (मुर्शिदाबाद, नादिया, वीरभूमि, दीनाजपुर), हिमाचल प्रदेश (कांगड़ा मण्डी, शिमला), कर्नाटक (बिजापुर, धारवाड़, बेलगाम), महाराष्ट्र, गुजरात, तमिलनाडु तथा आन्ध्र प्रदेश 500 किग्रा प्रति हेक्टेयर औसत उत्पादन कर सबसे पीछे हैं।

2. चावल

चावल भारत के प्रमुख खाद्यान्नों में से एक है। यह देश के तीन चौथाई मनुष्यों का भोज्य पदार्थ है।

विश्व उत्पादन का लगभग 19 प्रतिशत चावल भारत से प्राप्त होता है। वर्ष 2014–15 में देश में खाद्यान्नों के अन्तर्गत क्षेत्र का 35.9 प्रतिशत भाग पर चावल बोया गया है।

रूसी विद्वान वेविलोव के अनुसार चावल का मूल स्थान भारत है, जहाँ से इसका प्रसार पूर्व की और चीन तक 3000 ई.पू. तक होचुका था। मोहनजोदड़ो एवं हड़प्पा व समकालिक सभ्यताओं में भी चावल के अवशेष मिले हैं। वैदिक काल में चावल धार्मिक, सांस्कृतिक कार्यों में उपयोग लिया जाता है।

भौगोलिक दशाएँ

तापमान : चावल उष्णकटिबन्धीय पौधा है। यह 19°C से कम तापमान में पैदा नहीं हो सकता। बोते समय 20°C तापमान, पकने के समय 27°C की आवश्यकता होती है।

वर्षा : खेतों में 75 दिनों तक पानी भरा रहना चाहिए। 100 सेमी से 200 सेमी वार्षिक वर्षा आवश्यक है। इससे कम होने पर सिंचाई की आवश्यकता होती है।

मिट्टी : चावल कृषि हेतु जलोढ़ चिकनी मिट्टी सर्वोत्तम है जो नदियों के डेल्टाई क्षेत्रों में तथा तटवर्ती भागों में मिलती है।

धरातल : चावल की कृषि के लिए समतल धरातल उपयुक्त रहता है पहाड़ी क्षेत्रों में सीढ़ीनुमा खेत बनाकर भी खेती की जा सकती है।

श्रम : चावल के खेत तैयार करने, पौधे लगाने, फसल काटने हेतु सस्ते श्रम की आवश्यकता होती है। यह श्रम आधारित फसल है।

खाद : चावल की खेती के लिए हरी एवं गोबर खाद, हड्डियों की खाद, अमोनियम सल्फेट व नाइट्रेट खाद की आवश्यकता होती है।

चावल की किस्में

भारत में चावल की 200 किस्में मिलती है। निम्न भूमि चावल की फसलों को चावल स्वादिष्ट होता है और प्रति हेक्टयर उत्पादन भी अधिक होता है। भारत का अधिकाँश चावल दलदली या निम्न भूमि में ही उत्पादित किया जाता है। उच्च भूमि : यहाँ चावल का पौधा छोटा होता है, इसका दाना छोटा तथा लाल रंग का होता है। यह थोड़ी सी वर्षा में उग जाता है और जल्दी पक कर तैयार हो जाता है। जो सख्त एवं खाने में कम स्वादिष्ट होता है।

उत्पादन क्षेत्र

वर्ष 2015–16 में 252.23 मिलियन टन, कुल खाद्यान्न उत्पादन हुआ, जिसमें चावल 103.36 मिलियन टन यानि 40.97 प्रतिशत था। भारत में चावल उत्पादन के प्रमुख राज्यों का वर्णन इस प्रकार है।



चित्र 18.3 : पहाड़ी क्षेत्रों में चावल का उत्पादन



चित्र 18.4 : पंजाब राज्य में चावल की खेती

पश्चिम बंगाल : देश का 14 प्रतिशत चावल क्षेत्र है। वर्ष 2014–15 के आधार पर 14.32% चावल उत्पादन कर प्रथम स्थान पर है। राज्य के हर जिले में कृषि भूमि के 70 प्रतिशत से अधिक क्षेत्र पर चावल की कृषि की जाती है। कुल उत्पादन का 75 प्रतिशत अमन फसल से प्राप्त होता है। मुख्य उत्पादक जिले कूच बिहार जलपाई गुड़ी, बाँकुडा मिदनापुर, दार्जलिंग है। यहाँ ओस,

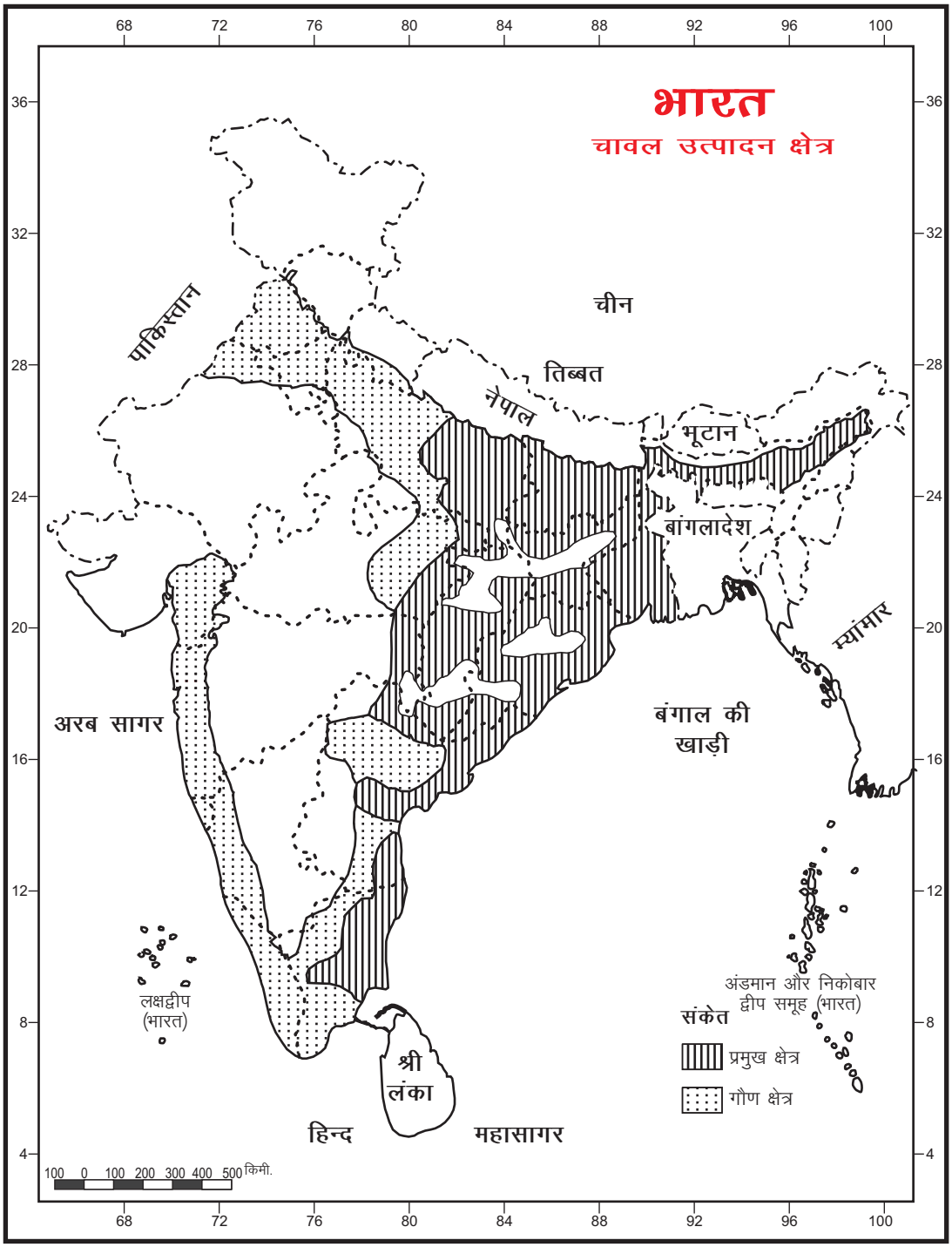

चित्र 18.2 : भारत में चावल उत्पादन

अमन एवं बोरो तीनों फसलें पाई जाती है। बाढ़ की उपजाऊ मिट्टी के कारण खाद की कम आवश्यकता रहती है।

उत्तर प्रदेश : हरित क्रान्ति के पश्चात् उत्पादन में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। पूर्व में यहाँ देश का 6 से 8 प्रतिशत उत्पादन होता था जो बढ़कर देश का 12% हो गया है। प्रमुख उत्पादक जिलों में सहारनपुर, देवरिया, गोरखपुर, लखनऊ, बहराइच, गोंडा, बलिया, रायबरेली, पीलीभीत आदि है। राज्य के पश्चिमी जिलों में सिंचाई की सहायता से चावल की कृषि की जाती है। 2014–15 में 12.2 मि.टन चावल का उत्पादन किया गया जो देश का 11.7% था।

आन्ध्र प्रदेश : देश वर्ष 2014–15 के उत्पादन आधार पर 11 प्रतिशत उत्पादन कर तीसरे स्थान पर है। प्रमुख उत्पादन किस्मों की भी खेती की जाती है।

पंजाब : परम्परागत रूप से गेहूँ उत्पादक राज्य ने हरित क्रान्ति के बाद चावल उत्पादन में देश में सबसे ज्यादा वृद्धि

दर्ज की है। सन् 2011–12 में पंजाब में लगभग 108.3 लाख टन चावल पैदा किया गया जो उत्पादन का 11.29 प्रतिशत था। प्रमुख उत्पादक जिले यहाँ होशियारपुर, गुरदासपुर, जालन्धर, अमृतसर, रूपनगर, लुधियाना, कपूरथला आदि जिले है। राज्य 2014–15 के अनुसार प्रति हेक्टेयर 3952 किग्रा उत्पादन कर प्रथम स्थान है।

बिहार : राज्य में चावल की वर्ष में 2 फसलें पैदा की जाती है। कुल कृषि भूमि के 40 प्रतिशत भाग पर चावल उगाया जाता है। प्रमुख उत्पादक जिलों में सारन, चम्पारन, गया, दरभंगा, मुंगेर, पूर्णिया आदि जिलों में धान पैदा किया जाता है।

तमिलनाडु : इस राज्य की देश के कुल चावल उत्पादन में 6–10 प्रतिशत तक भागीदारी है। यहाँ काबेरी नदी के डेल्टा में स्थित अकेला तंजावूर जिला तमिलनाडु का 25 प्रतिशत चावल पैदा करता है।

छत्तीसगढ़ : छत्तीसगढ़ का मैदानी भाग चावल कृषि के लिए महत्वपूर्ण है और इसे प्रायः चावल का कटोरा कहा जाता है। बिलासपुर, बस्तर, सरगुजा, रायगढ़, दंतेवाडा, नारायणपुर आदि प्रमुख उत्पादन जिले हैं।

मध्यप्रदेश : राज्य की कुल कृषि भूमि के 14 प्रतिशत भाग पर चावल उगाया जाता है। यहाँ नर्मदा तथा तापी नदी की घाटियों में चावल की कृषि होती है। यहाँ देश का सबसे कम प्रति हेक्टेयर 1474 किग्रा औसत उत्पादन होता है।

ओडिसा : राज्य की कुल कृषि भूमि के 58 प्रतिशत भाग पर चावल उत्पादन किया जाता है। यह राज्य देश का 6 से 8 प्रतिशत भाग उत्पादित करता है। बालासोर, कटक, पुरी, मयूरभंज, कालाहाँडी आदि जिलें है। भारतीय चावल अनुसंधान संस्थान कटक में है।

राजस्थान : डूँगरपुर, बूँदी, बाँसवाड़ा, हनुमानगढ़, गंगानगर जिलों में चावल की फसल पैदा होती है।

महाराष्ट्र, कर्नाटक, असम, केरल, मेघालय, गोवा, मणिपुर, नागालैण्ड, मिजोरम, अन्य चावल उत्पादक राज्य है।

3. कपास

कपास का जन्म स्थान भारत देश है। ऋग्वेद एवं मनुस्मृति में कपास के धागे का विवरण मिलता है। सिन्धु नदी की घाटी की खुदाई से सूती वस्त्रों के प्राप्त अवशेषों से भी ज्ञात होता है कि भारत में 5000 से 8000 वर्ष पूर्व सूती वस्त्रों का प्रयोग होता था। यूनानी विद्वानों हेरोडोटस तथा मार्कोपोलो के स्मरणों एवं आलेखों में भारत में कपास के उपयोग, उत्पादन का पता चलता है।

भारत से विश्व की 12 प्रतिशत कपास प्राप्त होती है। प्रति हेक्टेयर में भी वृद्धि हो रही हैं। कपास एक झाड़ीनुमा पौधा है जो 1.5 से 2 मीटर तक बढ़ता है, जिसके उपर अनेक डोडियाँ लगती है। डोडियो में बीज (बिनौला) होता है जिसके चारों और रेशे लिपटे रहते हैं। पूरे विश्व में सूती वस्त्र उद्योग के कच्चे माल के रूप में कपास का प्रयोग होता है।

भौगोलिक दशाएँ

तापमान : कपास उपोष्ण तथा उष्ण कटिबन्धीय पौधा है। 21 से 25 से.ग्रे. तापमान आदर्श रहता है किन्तु 40 से.ग्रे. तक भी पैदा किया जा सकता है। 200 दिन पाला रहित आकाश साफ आवश्यक।

वर्षा : कपास हेतु 50 से 100 सेमी. वर्षा पर्याप्त है लेकिन थोड़े–थोड़े अन्तराल पर आवश्यक वर्षा कम होने पर सिंचाई द्वारा भी की जाती है।

मिट्टी : कपास यथा संभव सभी मिट्टियों में पैदा किया जाता है। कच्छारी, उ. भारत एवं दक्षिण पठारी प्रदेश में काली मिट्टी सर्वाधिक उपयुक्त है इसे रेगुर मिट्टी भी कहते हैं।

धरातल : कपास की खेती के लिए अच्छे जल प्रवाह युक्त धरातल की आवश्यकता होती है। खेतों में पानी भरा रहना फसल के लिए हानिकारक होता है।

श्रम : कपास की खेती में बीज बोने, सिंचाई, कपास, चुनने जैसे कार्यों के लिए अधिक श्रम की आवश्यकता रहती है।

उत्पादन

देश की कपास के उत्पादन का 60 प्रतिशत चार राज्य, गुजरात, महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश एवं तेलंगाना करते हैं।

गुजरात : गुजरात भारत के कुल उत्पादन का 34.09 प्रतिशत कपास उत्पादित कर प्रथम स्थान पर है। यहाँ की जलवायु एवं मिट्टी कपास के लिए आदर्श है। यहाँ की 70 प्रतिशत कपास बड़ोदरा, अहमदाबाद, सूरत, भड़ौच, साबरमती, पंचमहल, सुरेन्द्र नगर, जिलों में उत्पादित होती है।

महाराष्ट्र : यह देश की 20.45 प्रतिशत कपास उत्पादन कर दूसरे स्थान पर है। यहाँ अब लम्बे रेशे वाली कपास उगाई जाती है। राज्य की लावायुक्त काली मिट्टी कपास की कृषि हेतु बहुत उपयुक्त है। नागपुर, आकोला, अमरावती, वर्धा, नाँदेड, जलगाँव, बुलढ़ाना आदि प्रमुख उत्पादक जिले हैं। प्रति हेक्टयर उत्पादन सबसे कम है।

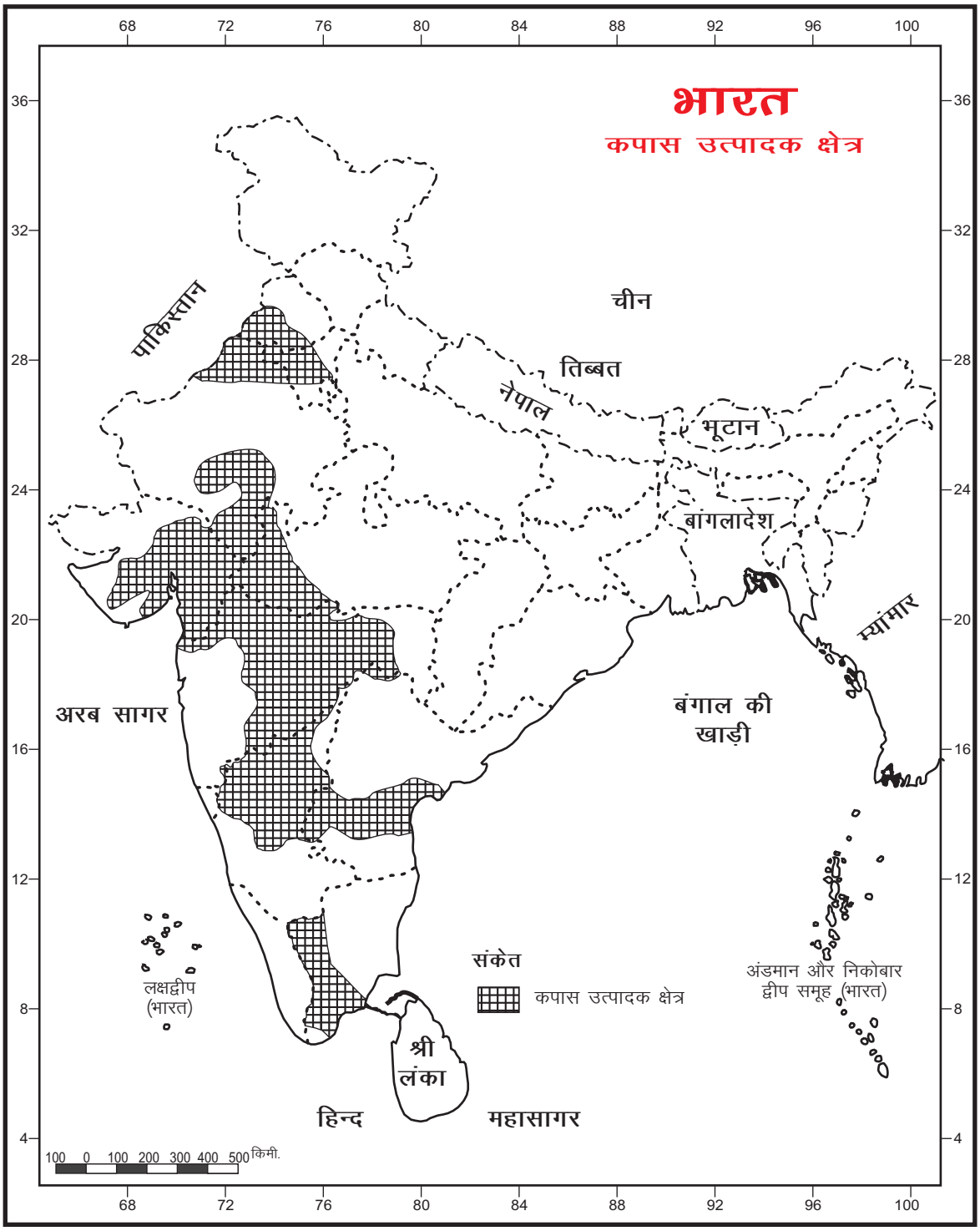

मानचित्र 18.3 : भारत में कपास का उत्पादक क्षेत्र

आन्ध्र प्रदेश : आन्ध्र प्रदेश तीसरा बड़ा उत्पादक है। यह देश का 13.92 प्रतिशत उत्पादन करता है। राज्य में कपास की खेती कृष्णा नदी की घाटी में की जाती है। पिछले दशक में कपास उत्पादन तीव्रता से बढ़ा है। गन्तूर, अवन्तपुर, कर्नूल, कृष्णा प्रमुख उत्पादक जिले हैं।

पंजाब : पिछले कुछ वर्षों में उत्पादन क्षेत्र व उत्पादन में तेजी से वृद्धि हुई है। उपजाऊ मिट्टी तथा सिंचाई की सुविधा के कारण यहाँ पर कपास की प्रति हेक्टेयर उपज भी देश में सर्वाधिक है। अधिकतम उत्पादन में अमेरीकन– पंजाब कपास पैदा की जाती है। फिरोजपुर, भटिण्डा, लुधियाना, अमृतसर तथा संगरूर मुख्य उत्पादक जिले हैं।

हरियाणा : उपजाऊ मिट्टी एवं सिंचाई सुविधा के रहते प्रति हेक्टेयर उत्पादन में दूसरा स्थान है। यहाँ लम्बे रेशे वाली

कपास पैदा की जाती है। हरियाणा में हिसार और सिरसा दोनों जिले राज्य की 80 प्रतिशत कपास पैदा करते हैं।

राजस्थान : राज्य में सिंचाई की सहायता से ही कपास की कृषि की जाती है। देश का 6.6 प्रतिशत कपास उत्पादन राज्य में होता है। अकेला हनुमानगढ़ जिला राज्य का 30 प्रतिशत कपास का उत्पादन करता है। अन्य जिलों में श्रीगंगानगर, भीलवाड़ा, अजमेर, बूंदी, टोंक, पाली, कोटा, झालावाड़ आदि है। राज्य में सिंचाई की सुविधा बढ़ाने पर कपास उत्पादन में अपार संभावना है।

तमिलनाडु : यह राज्य पाँच प्रतिशत उत्पादन करता है। तमिलनाडु लम्बे रेशे एवं उच्च गुणवत्ता वाली कपास के लिए प्रसिद्ध है। मदुरई, कोयम्बटूर, तिरूचिरापल्ली, सलेम, तंजावूर प्रमुख उत्पादक जिले हैं।

कर्नाटक : राज्य के कपास उत्पादन के दो प्रमुख क्षेत्र हैं। प्रथम क्षेत्र काली मिट्टी का है, जिसे सलहट्टी कहते हैं। इसके अन्तर्गत बेलारी, शिमोगा, चिकमंगलूर, चितल दुर्ग आते हैं। द्वितीय दक्षिणी क्षेत्र लाल मिट्टी का है, इसे दौड़हट्टी कहते हैं। जिससे रायचूर एवं धारवाड़ जिले राज्य की 50 प्रतिशत से अधिक कपास का उत्पादन करते हैं।

अन्य उत्पादक क्षेत्र : मध्यप्रदेश, अनुकूल दशायें नर्मदा, ताप्ती की घाटी एवं मालवा के पठार राज्य का 80 प्रतिशत उत्पादन किया जाता है। कुछ मात्रा में केरल, उड़ीसा, हिमाचल प्रदेश, जम्मू–कश्मीर, असम, बिहार में भी कपास का उत्पादन किया जाता है।

बी.टी. कॉटन

जी.एम.फसल : जेनेटिक मॉडिफाइड फसल इसके अन्तर्गत कपास पर लगने वाले डोडा कीट (Boll-warm) को मारने, सक्षम विष उत्पादक बैक्टीरिया, 'बसिलस थोरेजियेंसिस में उपलब्ध इस विष के जनक वंशाणु या जीन को कपास में प्रत्यारोपित करके ऐसा B.T. कपास (Cotton) विकसित किया गया है जिससे उस कपास में डोडा कीट को मारने की आंशिक सामर्थ्य आ जाती है।ऐसा हुआ भी पंजाब एवं अन्य राज्यों में एक दम कपास के प्रति हेक्टेयर में अभूतपूर्व वृद्धि हुई, लेकिन कुछ वर्षों में ही अब वह डोडा कीट ऐसे 'सुपर कीट' में संवर्द्धित हो रहा है कि वह अब बी.टी. कॉटन के इस विष को सह लेता है। अब पंजाव में उसी कीट रोधी बी.टी. कपास पर हाल में हुआ सुपर पेस्ट रूपी सफेद मक्खी का प्रकोप अत्यन्त घातक सिद्ध हुआ है।

4. गन्ना

भारत को गन्ने की जन्म स्थली होने का गौरव प्राप्त है। पूर्वी भारत में गन्ने की खेती का वृतान्त वैदिक साहित्य में भी उपलब्ध है। चीन, जावा एवं अन्य देशों में गन्ने की खेती का विस्तार भारत से ही हुआ है।

भारत में गन्ना मुख्य व्यापारिक फसल है। विश्व के गन्ना उत्पादक क्षेत्र का 35 प्रतिशत क्षेत्र भारत में पाया जाता है। गन्ना उत्पादन में भी भारत प्रथम–द्वितीय स्थान पर होता रहता है। ब्राजील एवं क्यूबा भी भारत के लगभग बराबर ही गन्ना उत्पादन करते हैं।

सन् 1850 तक कुल शक्कर का 86 प्रतिशत तक गन्ने से प्राप्त होता था लेकिन अब चुकन्दर की शक्कर से प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती है अब यह 55 से 60 प्रतिशत तक रह गई है।

भौगोलिक दशायें

गन्ना, अयन वृत्तीय पौधा है, इसकी खेती 8° उत्तरी अक्षांश से 32° उत्तरी अक्षांश तक की जाती है।

तापमान : 20° से 30°C तापमान आवश्यक है। पाला गन्ने के लिए हानिकारक रहता है। निरन्तर समान तापमान रहने पर गन्ने की मिठास की मात्रा बढ़ जाती है।

वर्षा : 100 से 200 सेमी वर्षा फसल के लिए उपयुक्त होती है। सूखा या वर्षा कम होने पर सिंचाई द्वारा गन्ना उत्पादन किया जा सकता है।

मिट्टी : गन्ना उत्पादन हेतु नाइट्रोजन एवं जीवाँश युक्त उपजाऊ मिट्टी आवश्यक है। उपजाऊ दोमट गहरी चिकनी एवं लावायुक्त काली मिट्टी फसल के लिए उपयुक्त है।

खाद : गन्ने की अच्छी फसल हेतु गोबर, कपोस्ट, हरी खाद, जैविक एवं रासायनिक खाद की आवश्यकता होती है।

भारत में गन्ना उत्पादक क्षेत्र में उत्तरी भारत का स्थान प्रमुख रहा है, लेकिन वर्तमान में इसका विस्तार दक्षिण क्षेत्र में हो रहा है। समुद्रतटीय जलवायु गन्ना उत्पादन के लिए अनुकूल है। जहाँ प्रति हेक्टयर उत्पादन भी अधिक होता है। उपज की अनेक प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद गन्ने की 60 प्रतिशत उपज उत्तर भारत से प्राप्त होती है।

भारत में उत्पादित गन्ने का 40 प्रतिशत गुड़ एवं 50 प्रतिशत चीनी बनाने में प्रयुक्त होता है। देश में उत्तर प्रदेश महाराष्ट्र, कर्नाटक मिलकर देश के कुल उत्पादन का 73 प्रतिशत गन्ना पैदा करते हैं।



चित्र 18.5 : भारत में गन्ना उत्पादन

वर्ष 2014–15 में देश में 5 प्रतिशत मिलियन हेक्टयर क्षेत्र में गन्ना बोया गया जिससे 359.3 मिलियन टन गन्ने का उत्पादन किया गया। वर्षों से गंगा की ऊपरी व मध्यवर्ती घाटी में ही सर्वाधिक गन्ना पैदा किया जाता रहा है।

उत्तर प्रदेश : वर्ष 2013–14 के अनुसार उत्तर प्रदेश देश का 38.56 प्रतिशत गन्ना उत्पादन कर प्रथम स्थान पर रहा, साथ ही कृषि क्षेत्रफल की दृष्टि से भी प्रथम रहा है। यहाँ दो प्रमुख उत्पादक क्षेत्र है (अ) तराई क्षेत्र : रामपुर से बरेली, पीलीभीत, सीतापुर, खीरी, मुरादाबाद, फैजाबाद, आजमगढ़, जौनपुर, गोरखपुर होते हुए बिहार के चम्पारन जिलों तक विस्तृत है। (ब) दोआब क्षेत्र : गंगा–यमुना का दो आब क्षेत्र जो मेरठ से प्रारम्भ होकर इलाहाबाद तक विस्तृत है। मेरठ का गन्ना उत्तम कोटि का है जिसको यहाँ गुड़ बनाने में उपयोग किया जाता है।

महाराष्ट्र : दूसरा सबसे बड़ा गन्ना उत्पादक राज्य है। 2013–14 में 818.60 लाख टन गन्ने का उत्पादन हुआ, जो देश का 22.89 प्रतिशत है। यहाँ गोदावरी नदी की उपरी घाटी गन्ने की कृषि के लिए प्रसिद्ध है। अधिकाँश गन्ने से शक्कर बनाई जाती है। राज्य शक्कर के उत्पादन में प्रथम स्थान पर है। यहाँ उच्च कोटि का गन्ना पैदा किया जाता है। अहमदनगर, नासिक, पुणे, शोलापुर, रत्नागिरी प्रमुख गन्न उत्पादक जिले हैं।

तमिलनाडु : गन्ने का तीसरा बड़ा उत्पादक राज्य है। प्रति हेक्टेयर उत्पादन (113.41 टन) में देश के अधिकतम उत्पादन करने वाले राज्यों में से है। भारत के कुल उत्पादन का 10.68 प्रतिशत गन्ना उत्पादित होता है। कोयम्बटुर में राष्ट्रीय गन्ना अनुसंधान संस्थान स्थित है। राज्य में समुद्रतटीय जलवायु के कारण गन्ने में मिठास अधिक होती है।

कर्नाटक : यहाँ गन्ने की कृषि नदी घाटियों में होती है। तटीय क्षेत्र में उपजाऊ मिट्टी अनुकूल समुद्री जलवायु से उत्पादकता अधिक और निरन्तर क्षेत्र में वृद्धि हो रही है। देश का 10 से 12 प्रतिशत गन्ने का उत्पादन होता है। बेलगॉव, बेलारी, माण्डवा, कोलार, मैसूर, तुमकूर, रायचूर प्रमुख उत्पादक जिले हैं।

आन्ध्र प्रदेश : राज्य में कृष्णा–गोदावरी नदियों के डेल्टाई क्षेत्र में स्थित है। यहाँ देश का 4.67 प्रतिशत गन्ना पैदा होता है। मुख्य उत्पादक जिले पूर्वी एवं पश्चिमी गोदावरी, श्रीकाकुलम, विशाखापट्टनम तथा चितूर है।

गुजरात : यहां देश का 3.17 प्रतिशत गन्ना उत्पादन होता है। सूरत, भावनगर, जामनगर, राजकोट तथा जूनागढ़ प्रमुख उत्पादक जिले हैं।

पंजाब : भारत वर्ष का 2.21 प्रतिशत गन्ना पैदा किया जाता है। अमृतसर, जालंधर, फिरोजपुर, गुरदासपुर प्रमुख उत्पादक जिले हैं।

हरियाणा : देश का 2.04 प्रतिशत गन्ना पैदा किया जाता है। पंजाब की तरह यहाँ भी उपजाऊ मृदा एवं सिंचाई साधनों के कारण गन्ना क्षेत्र एवं उत्पादन व प्रति हेक्टर में निरन्तर वृद्धि हो रही है।

राजस्थान : बूंदी, उदयपुर, भीलवाड़ा, श्रीगंगानगर, चितौडगढ़, कोटा जिले प्रमुख है।

अन्य उत्पादक क्षेत्र : बिहार के उत्पादक क्षेत्र तराई के समीपवर्ती चम्पारन, गया, दरभंगा, सारन प्रमुख उत्पादक जिले हैं। उड़ीसा में– पुरी, कटक, अम्बलपुर तथा मध्य प्रदेश में– मुरैना, ग्वालियर, शिवपुरी आदि है।

गन्ना उत्पादन की समस्याएँ

(1) गन्ने के लिए आदर्श दशाएँ भारत के दक्षिण में सागर तटीय क्षेत्रों में मिलती है। किन्तु अब भी इसका उत्पादन उत्तर भारत में होता है जहाँ शुष्क ऋतु लम्बी होने से गन्ने में रस की मात्रा कम होती है।

(2) उन्नत तकनीक का यथोचित उपयोग नहीं हो पाना।

(3) किसानों को समय पर फसल मूल्य का भुगतान नहीं होना।

(4) मौसम की मार।

(5) गन्ने की फसल का उचित मूल्य निर्धारण न होना।

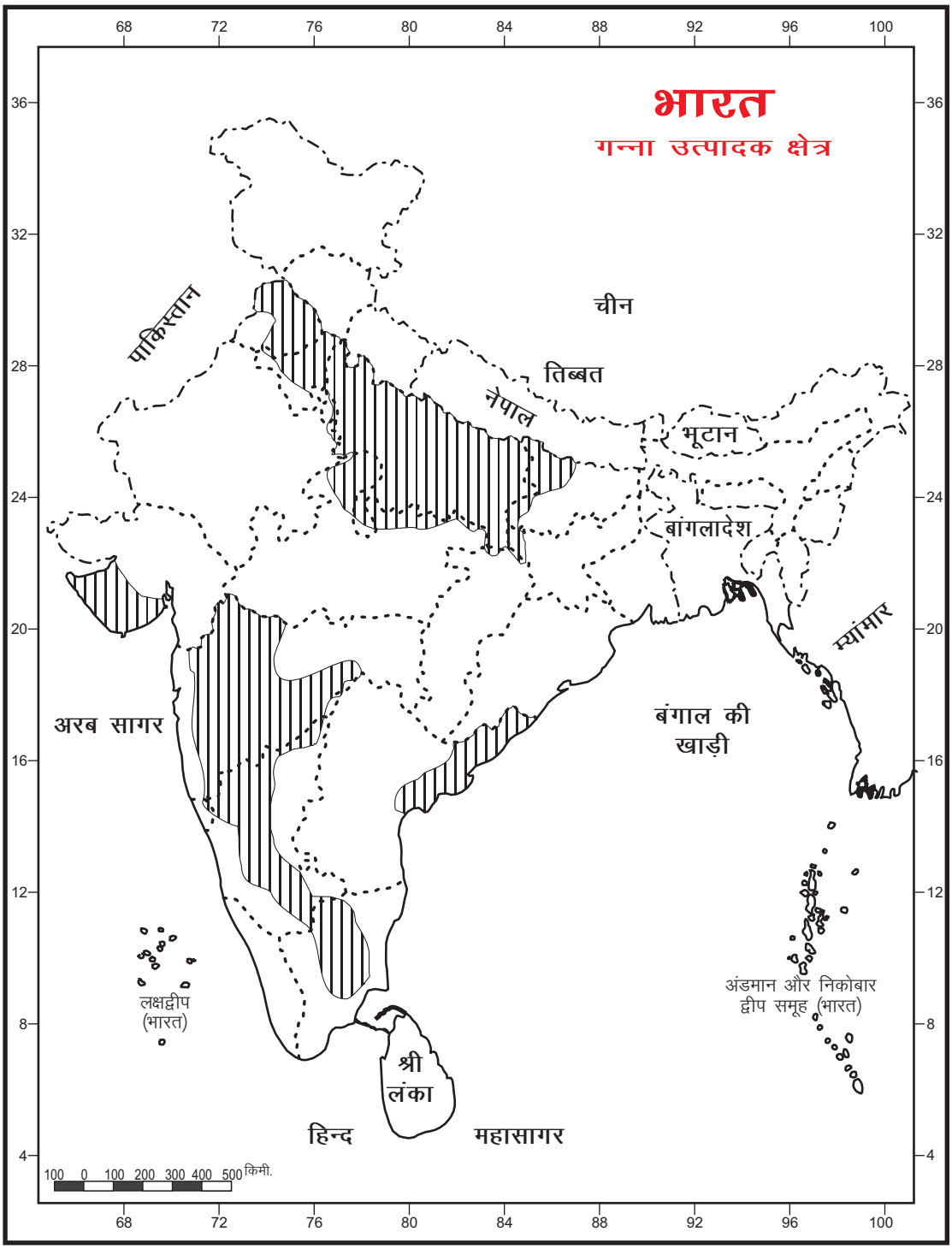

मानचित्र 18.4 : भारत में गन्ना उत्पादक क्षेत्र

5. चाय

चाय रोपण कृषि की सबसे महत्वपूर्ण उपज है जो एक स्फूर्तिदायक पेय पदार्थ है। भारत में चाय के पौधे पूर्वोत्तर पहाड़ियों पर अति प्राचीन काल से ही जंगली अवस्था में उगते थे।

भारत में पहली बार व्यावसायिक सतर पर 1830–40 के दशक में अंग्रेज सरकार द्वारा परीक्षण हेतु (भारत के) उत्तरी पूर्वी पहाड़ी क्षेत्र में लगाया गया। चाय के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ होने के कारण आज भारत क्षेत्रफल एवं उत्पादन में प्रथम स्थान रखता है।

स्थानीय उपभोग की अधिकता के कारण चाय के निर्यात में श्रीलंका के बाद भारत का दूसरा स्थान है। वर्ष 2014–15 में चाय के निर्यात से देश का 4,171 करोड़ रूपये



चित्र 18.6 : नीलगिरि पहाड़ियों पर चाय के बागान



चित्र 18.6 : दार्जलिंग पहाड़ियों पर चाय के बागान

की विदेशी मुद्रा प्राप्त हुई है। इस बागाती फसल से देश में प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से 20 लाख लोगों को रोजगार मिल रहा है। असम के बागानों में ही 4 लाख लोग श्रमिक के रूप में कार्य करते हैं।

आवश्यक भौगोलिक दशाएँ

तापमान : यह उष्ण कटिबन्धीय पौधा है। इसके लिए 25 से 30°C तापमान आदर्श रहता है। चाय की झाड़ी एवं पौधों की वृद्धि के लिए छाया अनुकूल व शुष्क हवा प्रतिकूल रहती है।

वर्षा : 200 से 250 सेमी. आवश्यक है। वर्ष में बार–बार वर्षा की बोछारें उपयुक्त रहती हैं। प्रातःकालीन धूप फसल के विकास के लिए अच्छी रहती हैं।

मिट्टी : चाय के लिए मिट्टी गहरी और गंधक युक्त होनी चाहिए। वनों को साफ करके तैयार की गई भूमि अच्छी मानी जाती है।

धरातल : सुप्रवाहित धरातल आवश्यक होता है। पौधे की जड़ों में पानी का एकत्र होना हानिकारक रहता है। चाय के बागान ढालू पहाड़ियों पर ही लगाये जाते हैं।

श्रम : चाय की खेती के लिए पौधे उगाने, निराई– गुड़ाई पत्तियाँ तोड़ने के लिए सस्ते व कुशल श्रम की आवश्यकता होती है। चाय की कोमल पत्तियों को तोड़ने में महिला श्रमिकों की जरूरत रहती हैं।

चाय उत्पादन एवं वितरण

चाय की खेती भारत के 16 राज्यों में की जाती है। असम, पश्चिम बंगाल, तमिलनाडु, केरल, मिलकर देश की कुल चाय का 95 प्रतिशत तक उत्पादन करते हैं। 2014–15 में देश का औसत उत्पादन 2170 किग्रा. रहा। सबसे कम हिमाचल प्रदेश व सर्वाधिक तमिलनाडु का रहा। जिले की दष्टि से केरल के त्रिचूर जिला 3145 किग्रा प्रति हेक्टयर चाय उत्पाद कर प्रथम स्थान पर रहा हैं।

असम : सभी आवश्यक भौगोलिक दशायें अनुकूल होने से यहाँ देश का 52 प्रतिशत चाय क्षेत्र एवं 54 प्रतिशत चाय उत्पादन कर दोनों तरफ से प्रथम स्थान पर है। शिवसागर, लखीमपुर, दरांग, गोलपाड़ा, नौगांव आदि जिले मुख्य है। देश के अन्य राज्यों विशेष दक्षिण में उत्पादन बढ़ने से असम की चाय सापेक्षिक महत्व कुछ कम होता जा रहा है।

प.बंगाल : दूसरा बड़ा उत्पादक राज्य देश की 22.36 प्रतिशत चाय का उत्पादन करता है। दार्जलिंग, जलपाई गुड़ी, कूचबिहार, पुरूलिया मुख्य उत्पादक जिले हैं। दार्जलिंग की चाय उत्तम, सुगन्धित चाय होती है जिसकी देश व विदेश में बहुत अधिक माँग रहती है।

तमिलनाडु : देश की 12 प्रतिशत चाय उत्पादन कर तृतीय स्थान पर है। नीलीगिरी व अन्नामलाई की पहाड़ियाँ क्रमशः 46 एवं 33 प्रतिशत उत्पादन करती हैं। यहाँ की चाय की माँग यूरोपियन देशों में अधिक रहती है।

केरल : यहाँ देश की 8.5 प्रतिशत चाय पैदा होती है। त्रिचूर, पालघाट, कन्नानोर, त्रिवेन्द्रम, कोजीकोड़, मालापुरम प्रमुख उत्पादक जिले हैं।

अन्य उत्पादक राज्य : हिमाचल प्रदेश– कांगड़ा मण्डी जिले में हरी चाय, उत्तराखण्ड में देहरादून, अल्मोड़ा, गढ़वाल जिले, कर्नाटक– कुर्ग, मैसूर, चिकमंगलूर जिले। मणिपुर, त्रिपुरा, मेघालय, अरूणाचल प्रदेश में भी अल्प मात्रा में चाय पैदा की जाती है। यह सभी राज्य मिल कर देश की 1 प्रतिशत चाय का उत्पादन करते हैं।

ट्रक फार्मिंग

ट्रक फार्मिंग उद्यान कृषि का ही एक प्रकार है। महानगरों में जनसंख्या की अधिकता से वहाँ फलों एवं सब्जियों की आपूर्ति

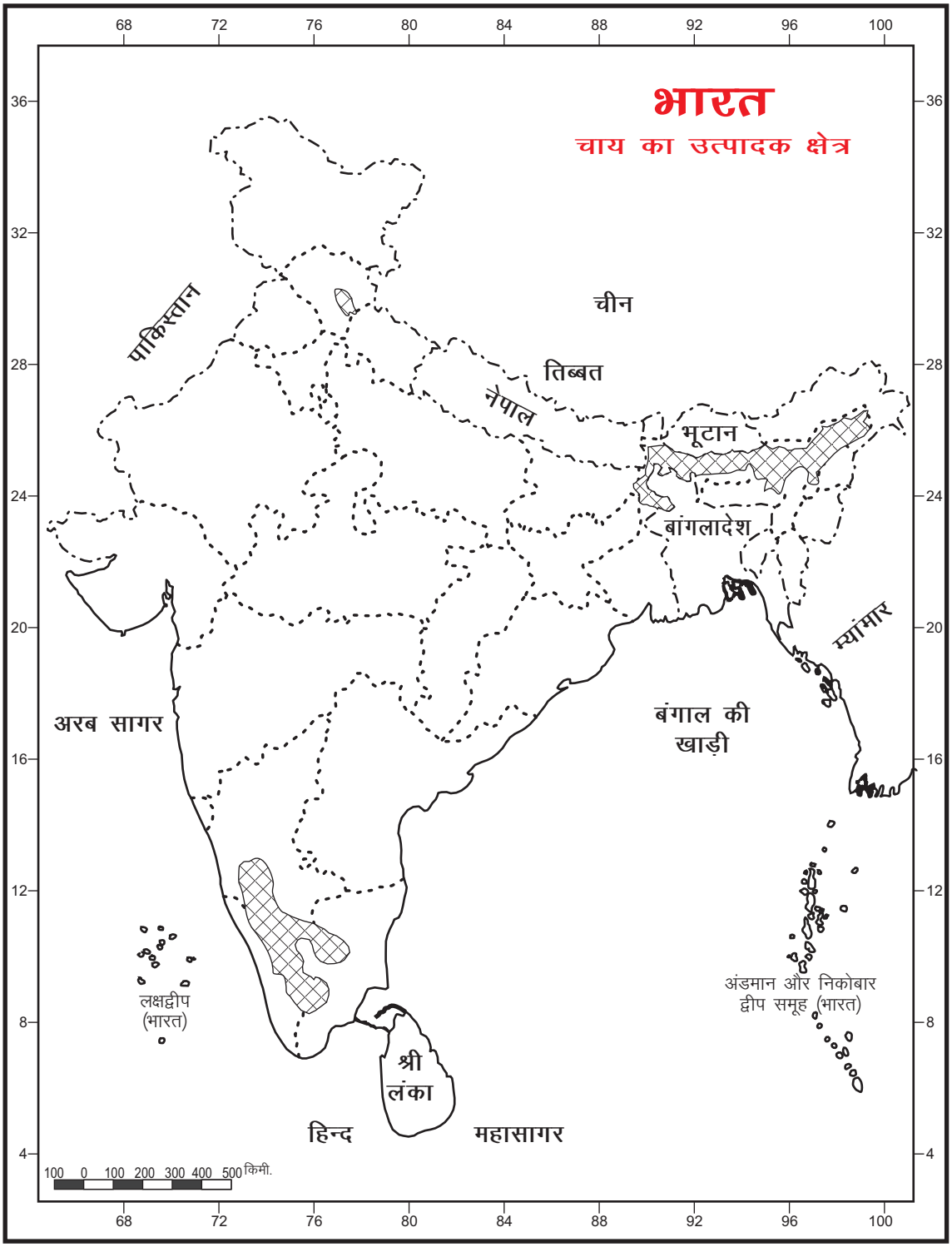

मानचित्र 18.5 : भारत में चाय उत्पादक क्षेत्र

स्थानीय रूप से नहीं होकर बहुत दूर, जहाँ फलों एवं सब्जियों के उत्पादन के लिए अनुकूल जलवायु तथा मिट्टी होती है, वहाँ उनको पैदा करके ट्रकों तथा प्रशीतन युक्त गाड़ियों द्वारा महानगरों तक पहुँचाया जाता है। इस प्रकार की फलों व सब्जियों की कृषि को ट्रक फार्मिंग कहते हैं। ट्रक फार्मिंग कृषि सर्वप्रथम संयुक्त राज्य अमेरिका के केलिफोर्निया में प्रारम्भ की गई। उसके पश्चात उत्तरी पश्चिमी यूरोप में ब्रिटेन, बेल्जियम, जर्मन, डेनमार्क में हुई।

भारतीय महानगरों में व औद्योगिक केन्द्रों तक फलों एवं सब्जियों की माँग की आपूर्ति रेलगाड़ियों ट्रकों व अन्य साधनों से निकटवर्ती एवं दूरस्थ दोनों ही क्षेत्रों से हो जाती है। हमारे

देश में फलों एवं फूलों व सब्जियों का उत्पादन बहुत बड़ी मात्रा में तो होता ही है, साथ ही उत्पादन में विविधता देखी जाती है। इस विविधता के पीछे देश की जलवायु दशायें हैं।

ट्रक फार्मिंग कृषि की विशेषताएँ

1. खेतों के छोटे आकार
2. गहन कृषि वर्ष में 3–4 फसलें (सब्जियाँ) पैदा करना।
3. श्रम की अधिकता
4. खेतों का प्रबन्धन वैज्ञानिक तरीकों से किया जाता है।
5. उर्वरता बनाये रखने के लिए अधिक खाद एवं उर्वरक डाले जाते हैं।
6. प्रतिशतन युक्त ट्रकों की भी आवश्यकता होती है।
7. पूँजी की अधिकता।

फलों एवं सब्जियों के उत्पादन में भारत का विश्व में दूसरा स्थान है। भारत में कृषि क्षेत्र के सकल घरेलू उत्पाद में बागवानी क्षेत्र का योगदान लगभग 30 प्रतिशत है जबकि बोए गए क्षेत्रफल का 17 प्रतिशत ही है। 2004– 05 से 2014–15 के बीच बागवानी फसलों की उत्पादकता मेंलगभग 34 प्रतिशत की वृद्धि हुई है।

बागवानी फसलों के अन्तर्गत क्षेत्रफल 2005–06 में 18.7 मिलियन हेक्टयर से बढ़कर 2013–14 में 24.2 मिलियन हेक्टयर हो गया। बागवानी फसलों का कुल उत्पादन 2004–05 में 16.07 मिलियन टन से 69 प्रतिशत बढ़कर 2014–15 में 283 मिलियन टन हो गया है।



चित्र 18.7 : ट्रक फार्मिंग

इस प्रकार अब भारत में बागवानी फसलों का उत्पादन खाद्यान्न उत्पादन से अधिक है।

भारत में फलों की प्रति व्यक्ति उपलब्धता 189 ग्राम प्रतिदिन है। जबकि सब्जियों की 357 ग्राम है। सब्जियों के उत्पादन में भारत चीन के बाद दूसरे नम्बर पर है। मटर उत्पादन में प्रथम स्थान पर है। बैंगन, गोभी के उत्पादन में दूसरा, आलू एवं टमाटर में भारत का तीसरा स्थान है। 2013–14 की रिपोर्ट के अनुसार फूलों के उत्पादन में प्रथम स्थान, तमिलनाडु मसाले उत्पादन में प्रथम स्थान– गुजरात, फलों के उत्पादन में प्रथम स्थान– महाराष्ट्र, सब्जियों के उत्पादन में प्रथम स्थान– बंगाल का रहा है।

फलों की कृषि

फल उत्पादन की दृष्टि से भारत को निम्न प्रदेशों में विभाजित किया जा सकता है–

(1) हिमालय पर्वतीय शीतोष्ण क्षेत्र : इसमें श्रीनगर की घाटियाँ कुल्लू, काँगड़ा, कुमाऊँ की पहाड़ियाँ, हिमाचल प्रदेश आदि क्षेत्र सम्मिलित है। सेव, अँगूर, नाशपाती, लीची, अंजीर, आलू–बुखारा, बादाम, अखरोट, बेर खुबानी, स्ट्राबेरी यहाँ के प्रमुख फल है।

(2) पूर्वात्तर आर्द्र प्रदेश : इसके अन्तर्गत पश्चिमी बंगाल, झारखण्ड, बिहार, पूर्वी उत्तर प्रदेश, छत्तीसगढ़, उड़ीसा जैसे राज्य आते हैं। आम, केला, अमरूद, नाशपाती, लीची, अनानास, चीकू, पपीता, सीताफल प्रमुख फल है।

(3) शुष्क एवं अर्द्ध शुष्क प्रदेश : इस क्षेत्र में पंजाब, राजस्थान, पं. उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश राज्य आते हैं। आम, जामुन, मौसमी, माल्टा, केला, नींबू, अनार, खजूर, अंगूर, बेर, पपीता, अमरूद, अंजीर प्रमुख फल है।

(4) दक्षिणी प्रदेश : इसके अन्तर्गत महाराष्ट्र, केरल, तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश राज्य सम्मिलित है। आम, संतरा, केला, अमरूद, अनानास, अंगूर, अनार, नारियल, काजू, पपीता आदि प्रमुख फल है।

(5) तटीय प्रदेश : इसके अन्तर्गत प्रायद्वीपीय भारत के तटीय भाग सम्मिलित है। यहाँ नारीयल, केला, आम, पपीता, संतरा मुख्य फल है।

सब्जियों की कृषि

भारत में प्राकृतिक विविधता के कारण विविध प्रकार की



चित्र 18.8 : सब्जियों का बाजार

सब्जियाँ पैदा की जाती है। भिण्डी, कद्दू, तुरई, मूली, गाजर, लौकी, गोभी, टमाटर, मटर, पालक, मैथी, चुकन्दर, शलजम, रतालू, जमीकन्द, फलियाँ, करेले, बैंगन, आलू, प्याज, लहसून, धनियाँ, पुदीना, पत्ता गोभी जैसी अनेक सब्जियाँ लगभग सभी जगह उगाई जाती है, वहाँ से नगरों, महानगरों तक ट्रकों के माध्यम से पहुँचाई जाती है।

कृषि की विशेषता

(1) उर्वरकों का अधिक प्रयोग

(2) दक्ष श्रम की आवश्यकता

(3) सबसे सघन कृषि

(4) सिंचाई की अधिक आवश्यकता रहती है

(5) किडो से बचाव के रासायनिक पावडर एवं दवाओं का उपयोग अधिक करते हैं।

(6) पेकिंग की उचित व्यवस्था

(7) तीव्र परिवहन साधनों की आवश्यकता

(8) अधिक लाभ

फलों एवं सब्जियों के उत्पादन में भारत का विश्व में दूसरा स्थान है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दू

1. कृषि भारत का प्राचीन व्यवसाय जिसका अर्थव्यवस्था में महत्त्वपूर्ण स्थान, 54.6 प्रतिशत जनसंख्या प्रत्यक्ष तोर पर निर्भर है।
2. भारतीय कृषि की मानसून पर निर्भरता के कारण भारतीय कृषि को मानसून का जुआ कहते हैं।
3. भारतीय कृषि की विशेषताएँ : जनसंख्या की कृषि पर निर्भरता, कृषि की मानसून पर निर्भरता, सिंचाई सुविधाओं का अभाव, प्रति हेक्टेयर कम उत्पादन, चारा फसलों की कमी, कृषि जोतों का छोटा आकार, खाद्यान्नों की प्रधानता, फसलों की विविधता आदि।
4. कृषि उत्पादन कम होने के कारण : कृषि पर मौसम की मार, किसान का भाग्यवादी दृष्टिकोण, कृषि को व्यवसाय के स्थान पर जीवन यापन प्रणाली के रूप में अपनाना, खाद का दुरूपयोग, सिंचाई साधनों का सीमित विकास, उत्तम बीज साधारण किसान की पहुँच से दूर, कृषि रोग, पशुओं की हीनावस्था (हीन अवस्था), मिट्टी की उर्वरा शक्ति में कमी, कृषि जात का निरन्तर छोटा होना आदि।
5. भारतीय कृषि के प्रकार– निर्वहन व व्यापारिक कृषि, आर्द्र व शुष्क कृषि, गहन व विस्तीर्ण कृषि, उद्यान कृषि, जैविक कृषि।
6. भारतीय कृषि को उपयोग के आधार पर खाद्यान्न, पेय पदार्थ, व्यावसायिक और नगरों, रेशेदार फसलों में विभाजित किया जाता है।
7. जैविक कृषि : जैविक कृषि का आरम्भ सभ्सता के आरम्भ से ही रहा है। सिक्कीम देश का पहला पूर्ण जैविक खेती वाला राज्य है।
8. गेहूँ : दूसरा प्रमुख खाद्यान्न, भारत में विश्व उत्पादन का 11. 7 प्रतिशत, हरित क्रान्ति के कारण उत्पादन में अत्यधिक वृद्धि, 2014–15 में प्रति हेक्टेयर उत्पादन 2872 किग्रा, प्रमुख उत्पादक राज्य उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार आदि।
9. चावल : प्रमुख खाद्य फसल, मूल स्थान भारत, विश्व का लगभग 19 प्रतिशत उत्पादन, देश के कुल उत्पादन का 97 प्रतिशत भाग आन्ध्र प्रदेश, असम, बिहार, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, तमिलनाडू, ओडिसा, पंजाब, उत्तर प्रदेश, केरल, पं. बंगाल राज्यों से होता है।
10. कपास : भारत कपास का भी जन्म स्थान, देश की महत्वपूर्ण व्यापारिक एवं रेशेदार फसल प्रति हेक्टेयर उत्पादन 510 किग्रा उत्पादन की दृष्टि से गुजरात व प्रति हेक्टेयर उत्पादन की दृष्टि से पंजाब प्रथम राज्य है।
11. गन्ना : जन्म स्थान भारत, सर्वाधिक प्रति हेक्टेयर उत्पादन पं. बंगाल एवं सबसे कम प्रति हेक्टेयर उत्पादन जम्मू–कश्मीर, उत्तर प्रदेश क्षेत्रफल एवं उत्पादन की दृष्टि से प्रथम राज्य।

12. चाय : भारत की प्रमुख मुद्रादायिनी फसल, विश्व का सबसे बड़ा उत्पादक व उपभोक्ता, निर्यात की दृष्टि से दूसरा स्थान, असम, पं. बंगाल, तमिलनाडु, केरल प्रमुख उत्पादक राज्य है।

13. ट्रक फार्मिंग : उद्यान कृषि का ही एक प्रकार, महानगरों के लिए फलों एवं सब्जियों का उत्पादन कर ट्रकों एवं प्रशीतनयुत–गाड़ियों से पहुँचाया जाता है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के केलिफोर्निया से प्रारम्भ, सब्जियों के उत्पादन में पं. बंगाल, फलों के उत्पादन में महाराष्ट्र देश में अपना प्रथम ध्यान रखते हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न

1. भारतीय कृषि को कहा जाता है?
   (अ) किसान की खेती (ब) मानसून का जुआँ
   (स) मजदूर की खेती (द) व्यापारिक खेती
2. प्रथम पूर्ण जैविक कृषि वाला राज्य है।
   (अ) सिक्किम (ब) बिहार
   (स) असम (द) राजस्थान
3. भारत में मसालों का सबसे बड़ा उत्पादक राज्य है?
   (अ) तमिलनाडु (ब) कर्नाटक
   (स) गुजरात (द) महाराष्ट्र
4. गेहूँ उत्पादन में प्रथम स्थान किस राज्य का है।
   (अ) पंजाब (ब) हरियाणा
   (स) गुजरात (द) उत्तर प्रदेश
5. तमिलनाडु का कौनसा जिला चावल उत्पादन में अग्रणी है।
   (अ) तेजाबूर (ब) मदुरै
   (स) रामनाथपुरम (द) चेन्नई
6. गुजरात देश कितना प्रतिशत कपास उत्पादित करता है।
   (अ) 30 प्रतिशत (ब) 34 प्रतिशत
   (स) 38 प्रतिशत (द) 40 प्रतिशत
7. गन्ना उत्पादन में कौनसा राज्य प्रथम है–
   (अ) तमिलनाडु (ब) पंजाब
   (स) महाराष्ट्र (द) उत्तर प्रदेश
8. चाय निर्यात में भारत का स्थान है–
   (अ) प्रथम (ब) द्वितीय
   (स) तृतीय (द) पंचम
9. असम देश की कितना प्रतिशत चाय उत्पादित करता है–
   (अ) 50 प्रतिशत (ब) 60 प्रतिशत
   (स) 54 प्रतिशत (द) 45 प्रतिशत

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

10. भारत की अधिकाँश जनसंख्या किस व्यवसाय में कार्यरत/संलग्न हैं?
11. राजस्थान में स्थानान्तरित कृषि को किस नाम से जाना जाता है।
12. भारत के किस राज्य का सब्जी उत्पादन में प्रथम स्थान है।
13. चाय उत्पादन में असम का भारत में कौनसा स्थान है?
14. भारत में पूर्ण जैविक खेती वाले राज्य का गौराव किस राज्य को मिला है।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

15. ट्रक फार्मिंग कृषि की विशेषताएँ बताइये।
16. भारतीय अर्थव्यवस्था को मानसून का जुआ क्यों कहते हैं?
17. भारतीय कृषि की कोई चार विशेषताएँ लिखिए।
18. भारत के प्रमुख गन्ना उत्पादक राज्यों के नाम लिखिए।

निबन्धात्मक प्रश्न

19. भारत में जैविक कृषि के विकास को समझाते हुए जैविक एवं रासायनिक कृषि में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
20. भारतीय कृषि के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए प्रमुख कृषि प्रकारों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
21. भारत में गेहूँ उत्पादन के लिए आवश्यक भौगोलिक दशाओं का उल्लेख करते हुए वितरण एवं उत्पादन का वर्णन कीजिए।

पाठ 19
उद्योग (Industry)

भारत में औद्योगिक विकास

भारत में कुटीर उद्योग का विकास अति प्राचीन काल से ही हो गया था, जिसके साक्ष्य हमें सिन्धु घाटी सभ्यता से भी मिलते हैं। उस काल खण्ड में भारत वर्ष में सूती कपड़े, कांसे के बर्तन अन्य वस्तुएँ मिट्टी के बर्तन बनाए जाते थे।

अठारहवीं शताब्दी तक भारत जलयान निर्माण में अग्रणी था। यहाँ उत्तम प्रकार के वस्त्र, आभूषण, धातु के बर्तन, सजावट एवं वैभव सदृश्य सामग्री के बदले संसार के अधिकाँश देशों का सोना हजारे देश की तरफ खींचा चला आता था। इसलिए भारत को 'सोने की चिड़िया' कहा जाता था। किन्तु ब्रिटिश शासन में अंग्रेजों के शोषणपूर्ण नीति एवं औद्योगिक क्रान्ति के विकास के कारण भारतीय हस्तकलाओं को चोपट कर दिया। भारत कच्चा माल भेजने की मण्डी व तैयार माल का बाजार बन कर रह गया।

इस काल में दो प्रकार के उद्योगों को प्रोत्साहन मिला (1) भारतीय बाजर की माँग पूर्ति ब्रिटेन के उद्योग पूर्ति नहीं कर पा रहे थे, सूती वस्त्र, ऊनी वस्त्र, सीमेन्ट, कागज उद्योग (2) वैसे उद्योग जिनका कच्चा माल ब्रिटेन ले जाना लाभकारी नहीं था, चीनी, जूट उद्योग।

लोह इस्पात उद्योग में 1779 तमिलनाडु के अर्काट जिले में असफल प्रयास किया गया। 1872 कुल्टी में बर्नपुर में सफल प्रसाय रहा जो आज भी कार्यरत है।

एल्यूमिनियम उद्योग 1837 जे.के. नगर पं. बंगाल में लगाया गया। 1904 में सीमेन्ट का पहला असफल प्रयास चेन्नई में किया गया। रासायनिक उर्वरक उद्योग 1906 में रानीपेट तमिलनाडु में सुपर फॉस्फेट संयत्र की स्थापना की गई।

इस हेतु 1923 में एक औद्योगिक नीति का निर्माण भी किया, जिसका उद्देश्य औद्योगिक विकास कर विश्व युद्ध की परिस्थितियों से लाभ अर्जन करना था। इस समय कई उद्योग स्थापित किये लेकिन देश के विभाजन से पुनः भारतीय अर्थव्यवस्था पर वज्रपात हुआ।

जहाजरानी उद्योग 1941 में विशाखापट्टनम हिन्दुस्तान शिपयार्ड के नाम से स्थापित किया गया। कागज उद्योग में प्रथम मिल पं. बंगाल के सिरामपुर असफल, 1879 लखनऊ एवं 1881 टीटागढ़ पं. बंगाल में स्थापित किया गया।

सूती वस्त्र उद्योग 1818 में फोर्ट ग्लास्टर (कोलकात्ता) में असफल प्रयास, 1854 में डाबर द्वारा मुम्बई में प्रथम सफल सूती मिल की स्थापना की गई। ऊनी वस्त्र की प्रथम मिल की स्थापना 1876 कानपुर में लाल इमली के नाम से प्रारम्भ की।

द्वितीय विश्व युद्ध के मध्य एवं बाद सरकारी संरक्षण के कारण लौहा इस्पात, चीनी, सीमेन्ट, काँच, साबुन, वनस्पति, इंजिनियरिंग उद्योगों की स्थापना की गई जिनका विकास सीमित रहा।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् आर्थिक एवं सामाजिक उद्देश्यों की को पूरा करने के लिए सर्वप्रथम 6 अप्रेल 1948 को औद्योगिक नीति घोषित की गई। जिसका उद्देश्य प्रादेशिक असन्तुलन को कम करना था। यही कारण रहा कि अधिकतर सरकारी उद्योग पिछड़े क्षेत्रों में लगाए गये। भारत ने मिश्रित अर्थव्यवस्था के आधार पर अपने विकास को चुना। सन् 1950 में राष्ट्रीय योजना आयोग की स्थापना की गई, इसके द्वारा नियोजित पंचवर्षीय योजनाओं के

कारण देश में चहुमुँखी विकास संभव हुआ और हम आत्म निर्भर बन सकें।

इस अध्याय में हम भारत के कुछ महत्त्वपूर्ण उद्योगों– लौह–इस्पात, एल्युमिनियम, सीमेन्ट, सूती वस्त्र, चीनी एवं इंजीनियरिंग उद्योग का अध्ययन करेंगे।

लोहा और इस्पात उद्योग

लोहा इस्पात उद्योग एक आधारभूत उद्योग है जिसके उत्पादन अन्य सभी वस्तुओं के निर्माण में आवश्यक होते हैं। इसी उद्योग से किसी भी देश के औद्योगिक विकास की नींव पड़ती है।

भारत में लोहा पिघलाने, ढालते तथा इस्पात तैयार करने का कार्य अत्यन्त प्राचीन काल से ही अगारिया जाति यह कार्य करती थी। इनके द्वारा तैयार किया गया लोह इस्पात उच्च क्वालिटी का होता था। ऐतिहासिक तथ्यों के अनुसार पश्चिमी एशिया के दमिश्क नगर में तलवारें भारतीय इस्पात से बनती थी। दिल्ली में कुतुबमीनार के पास लगा अशोक महान का लौह स्तम्भ लगभग 1700 वर्ष पुराना है। यह इस्पात का अनूठा उदाहरण है। सदियों से सर्दी, गर्मी, बरसात की मार सहकर भी यह वैसा का वैसा ही है। इसमें कहीं भी जंग नहीं लगा है। इससे भारत में समुन्नत लोह–इस्पात निर्माण की कला के ज्ञान का बोध होता है। आधुनिक ढंग के कारखाने स्थापित हो जाने के कारण भारतीय कुटीर उद्योगों को बड़ा धक्का पहुँचा और भारत निर्यातक से आयात तक हो गया।

भारत में लोहा–इस्पात उद्योग का आरम्भ 1870 में हुआ था, जब बंगाल आयरन वर्क्स कम्पनी ने झरिया के निकट कुलटी (पश्चिमी बंगाल) में अपने संयंत्र की स्थापना की। यह कारखाना केवल ढलवाँ लोहे का ही उत्पादन कर पाया।

भारत में लोह–इस्पात उद्योग की आधुनिक परम्परा वास्तव में जमशेदजी टाटा द्वारा रखी गई। इन्होंने 1907 में साँकची (वर्तमान जमशेदपुर) नामक स्थान पर एक आधुनिक कारखाना 'टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी' (TISCO) की स्थापना के साथ हुआ। इसके बाद 1918 में बर्नपुर में इण्डियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनी (IISCO) की स्थापना हुई। ये दोनों ही इकाइयाँ निजी क्षेत्र में स्थापित की गई। सन् 1923 तके भद्रावती में विश्वेरवरैया आयरन एण्ड स्टील वर्क्स की स्थापना (VISL) के साथ सार्वजनिक क्षेत्र की पहली इकाई ने कार्य प्रारम्भ किया। भिलाई छतीसगढ़ में (सोवियन संघ के सहयोग से) दुर्गापुर पश्चिमी बंगाल में (ब्रिटेन के सहयोग से) और राउरकेला ओडिशा (प.जर्मनी के सहयोग से) में स्थापित की गई।

1936 में कुल्टी व हीरापुर के दोनों कारखानें 'इण्डियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनी' में मिला दिए गये। 1953 में बर्नपुर को भी इनमें शामिल कर दिया गया और इस्को की तीन इकाइयाँ (कुल्टी, हीरापुर, बर्नपुर) हो गई।

चौथी पंचवर्षीय योजना में इन कारखानों की वर्तमान क्षमता का अधिक उपयोग होने लगा तथा सेलम (तमिलनाडु), विजयनगर (कर्नाटक), विशाखापट्टनम (आंध्र प्रदेश) में नए इस्पात कारखाने स्थापित हुए। सन् 1978 में बेकारो इस्पात संयंत्र के प्रथम चरण के पूरा हो जाने पर इस्पात उत्पादन क्षमता में वृद्धि संभव हो पाई।

1974 में सरकार ने स्टील ऑथोरिटी ऑफ इण्डिया (SAIL) की स्थापना की तथा कम्पनी को इस्पात उद्योग में विकास की जिम्मेदारी दी गई। इसके अन्तर्गत भिलाई, दुर्गापुर, राउरकेला, बोकारो व बर्नपुर इकाइयों को सम्मिलित कर एकीकृत इस्पात संयंत्रों के प्रबन्धन के लिए उत्तरदायी बनाया गया।

14 जुलाई 1976 को IISCO (इस्को) का स्वामित्व भी सरकार ने अपने हाथ में लेकर (SAIL) में विलय कर दिया गया। सन्दर्भित विलय 1 अप्रेल 2005 से प्रभावी माना गया और SAIL के अधिन एकीकृत संयंत्रों की संख्या 5 हो गई है।

वर्ष 2014 के अनुसार कच्चे इस्पात के उत्पादन में चीन, जापान, यू.एस.ए. के बाद भारत चौथे (86.5 मिलियन टन उत्पादन कर) स्थान पर है। 2015 में यह ऊपर उठ कर तीसरे पायदान पर आ गया है

वर्ष 2014–15 में भारत में पिग आइरन का उत्पादन 9.694 मिलियन टन, स्पॉज आयरन का 20.38 मिलियन टन, कुल तैयार इस्पात (एलौय + गैर एलौय) का 91.45 मिलियन टन था। 2014–15 में भी भारत ने 9.32 मिलियन टन तैयार इस्पात का आयात किया वहीं 5.59 मिलियन टन का निर्यात किया गया।

उद्योग का स्थानीयकरण

लोहा–इस्पात उद्योग में प्रयुक्त होने वाला कच्चा माल कोयला, लोह अयस्क, चूने का पत्थर, मैंगनीज आदि भारी एवं कम मूल्य का होता है। अतः इसे दूर तक ले जाना आर्थिक दृष्टि से ठीक नहीं है। इसलिए अधिकाँश लोह इस्पात उद्योग कच्चे माल के प्राप्ति स्थान पर ही लगाए जाते हैं।

एक टन कच्चा लोहा (Pigiron) बनाने के लिए 1.5 टन लोह अयस्क, 1.4 टन कोयला, 0.3 टन चूने का पत्थर, 0.1 टन मैंगनीज तथा 0.1 टन डोलामाइट की आवश्यकता होती है। यही कारण है कि विश्व के लोह इस्पात कारखाने कोयले एवं लोहे की खानों के समीप ही स्थापित किए जाते हैं। इसके अतिरिक्त उद्योग में जल, सस्ता परिवहन, पूँजी, कुशल श्रमिक, बाजार की समीपता

आवश्यक है।

भारत वर्ष में उद्योग की स्थापना 4 भिन्न स्थितियों वाले क्षेत्रों में हुई है।

(1) कोयला क्षेत्रों के निकट – बर्नपुर, हीरापुर, कुल्टी, दुर्गापुर, बोकारो।

(2) लोह–अयस्क क्षेत्रों के निकट – भिलाई, राउरकेला, भद्रावती, सेलम, विजयनगर (कर्नाटक)।

(3) कोयला एवं लोह–अयस्क के मध्य – टाटा इस्पात कारखाना।

(4) तटीय क्षेत्र एवं व्यापार की सुविधा : विशाखापट्टनम (आन्ध्र प्रदेश)

1. टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी (TISCO) टाटा लोह इस्पात कम्पनी

भारत का पहला बड़ा कारखाना जहाँ भारत का 20% इस्पात तैयार होता है। इस कारखाने में इस्पात के अतिरिक्त लोहे के गर्डर, रेल का सामान, कांटेदार तार आदि भी बनाए जाते हैं।

पहले दो चरणों के विस्तार के बाद अब तीसरे चरण के विस्तार के लिए 2400 करोड़ की व्यवस्था की गई है जिसके पश्चात् उत्पादन क्षमता 30 लाख टन कच्चा इस्पात तथा 27 लाख टन बिक्री योग्य इस्ताल हो जाएगा।

टाटा लौह इस्पात मुम्बई, कोलकाता रेलवे मार्ग के बहुत निकट स्थित है। संयंत्र के पर्याप्त जल सुवर्ण रेखा, खार, कोई नदियों से, लोहा नोआमण्डी और बादाम पहाड़ से मिल जाता है। कोयला झरिया व रानीगंज, बोकारो से प्राप्त होता है।

240 किमी. दूर कोलकाता बन्दरगाह है, जहाँ से मशीनों का आयात एवं इस्पात के निर्यात की उत्तम सुविधा प्राप्त है।

2. भारतीय लोहा और इस्पात का कारखाना (IISCO) :

सन् 1874 में स्थापित किया गया बर्नपुर में फिर से 2 इकाइयों को शामिल किया और कम्पनी में 3 इकाइयाँ हो गई यह कुल्टी, बर्नपुर और हीरापुर। ये तीनों ही कारखानें रेल मार्ग से जुड़े हुए है। कुल्टी बाराकर नदी पर स्थित है तथा कोलकाता से 215 किमी. दूर है। हीरापुर आसनसोल से 6 किमी और कुल्टी 11 किमी दूर है। हीरापुर में कच्चा लोहा (PMI) पीग आइरन बनता है, जिसको कुल्टी कारखाने में इस्पात के रूप में तैयार करता है। यहाँ से बर्नपुर भेजा जाता है, जहाँ रोलिंग मिल के द्वारा उपयोग योग्य चादरें, छड़े, पाइप, रेल्वे–स्लीपर, एंगल, पत्ती तार मुख्य रूप से बनाए जाते हैं। ये तीनों इकाइयाँ संगठित रूप से काम करती है। 1976 से इनका प्रबन्ध पूर्णतः सार्वजनिक क्षेत्र SAIL के पास आ गया।

यहाँ की इस्पात की वार्षिक क्षमता 10 लाख टन है जिसे बड़ा कर 23 लाख टन किया गया।

इण्डियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनी के तीनों संयंत्र दामोदर घाटी कोयला क्षेत्रों (रानीगंज, झारिया, रामगढ़) के निकट कोलकाता–आसनसोल रेलमार्ग पर स्थित है।

लोह अयस्क सिंह भूमि (झारखण्ड), जल दामोदर नदी की सहायक नदी बराकर से प्राप्त किया जाता है।

3. विश्वेश्वरैया आयरन एण्ड स्टील कम्पनी लिमिटेड

इस कम्पनी की स्थापना 1923 में कर्नाटक में भद्रावती नदी के किनारे भद्रावती स्थानपर की गई थी।

यह बाबाबूदन की पहाड़ियों, केमान गुंडी के लोह अयस्क क्षेत्र के निकट स्थित है। चूना माँडीगुडा तथा डोलामाइट शंकरगुडा से आता है। लकड़ी के कोयले के बाद अब शिवसमुद्रम से जल विद्युत प्राप्त की जाती है। कारखाने की उत्पादन क्षमता 1 लाख टन थी जिसे बढ़ा कर 1.3 लाख टन किया गया है। यहाँ विशिष्ट एवं अलौय किस्म का इस्पात बनाया जाता है। अब यह SAIL के स्वामित्व में है।

4. राउरकेला

हिन्दुस्तान स्टील लिमिटेड का यह कारखाना उड़ीसा के सुन्दरगढ़ जिले में साख और कोइल नदियों के संगम पर जर्मनी की क्रूप्स व डिमाग कम्पनियों की सहायता से की गई।

संयंत्र को कच्चे माल की निकटता के आधार पर स्थापित किया गया था जिससे परिवहन मूल्य कम हो जाता है। लोह अयस्क उड़ीसा के क्योंझर एवं सुन्दरगढ़ जिले से तथा कोयला झरिया, झारखण्ड क्षेत्र, मैंगनीज क्योंझर से चूना पत्थर वीर मिश्रपुर से होती है। हीराकुण्ड से जल विद्युत फोयल व शंख नदियों से पर्याप्त जल प्राप्त होता है। कोलकाता–मुम्बई रेल मार्ग से परिवहन सुविधा प्राप्त होती है।

राउरकेला में अधिकतम चपटे (Flat) आकार की वस्तुएँ अलग–अलग मोटाई की प्लेटे, पत्तियाँ, टीन की चादरें आदि बनाई जाती है। इनका उपयोग जहाज एवं रेल के डिब्बें बनाने के लिए किया जाता है। इसकी क्षमता 16.71 लाख टन इस्पात है।

उप उत्पादों के रूप में हल्का तेल, प्रांगविक तेल, नेफ्थलिन तेल, बॉश ऑयल, ऐन्थ्रेसिन तेल, पिच आदि। नाइट्रोजन तथा उर्वरक बनाने के लिए 10 लाख टन क्षमता वाला संयंत्र स्थापित किया गया।

5. भिलाई का इस्पात संयंत्र

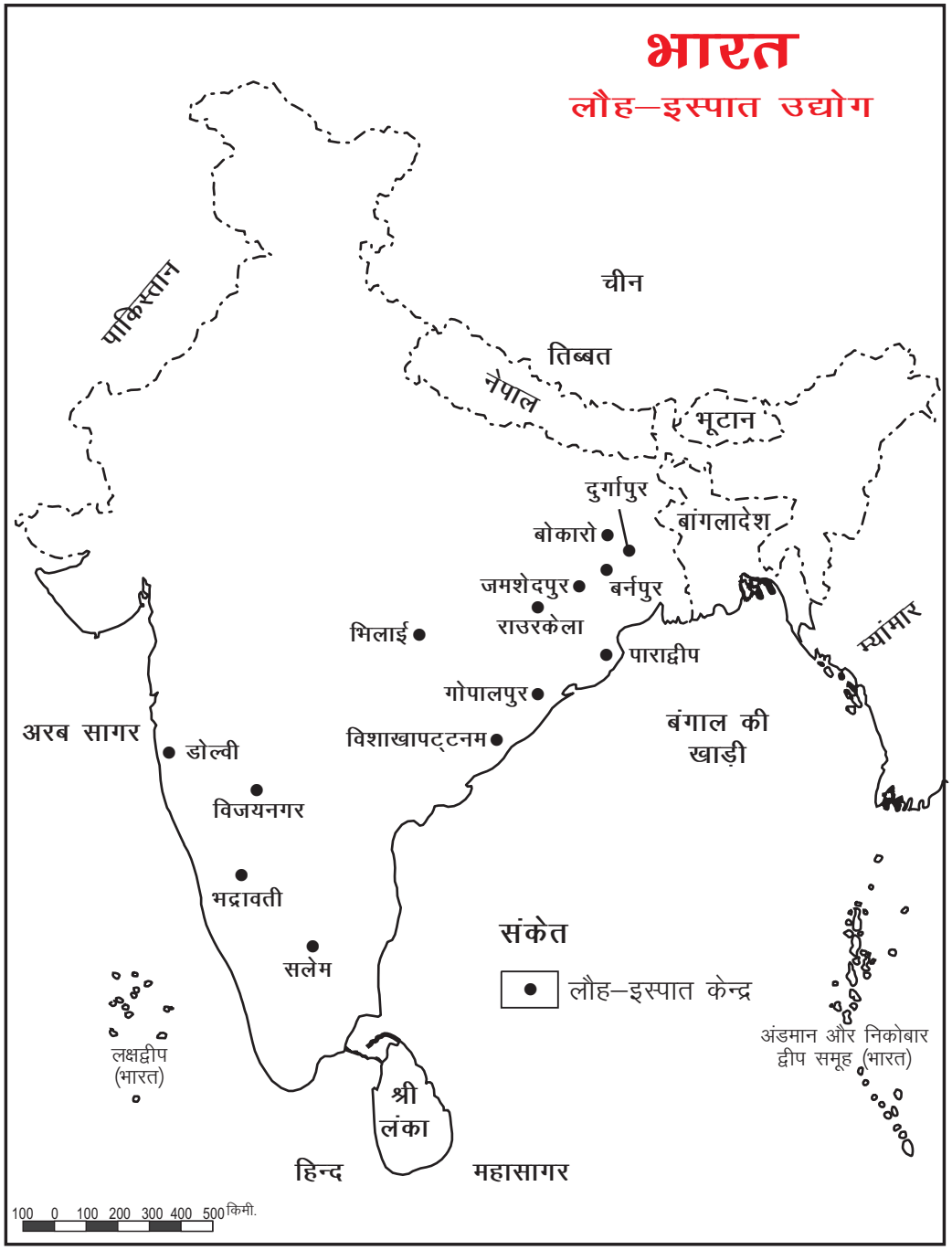

मानचित्र 19.1 : भारत लौह–इस्पात उद्योग

छत्तीसगढ़ में रायपुर से 21 किमी दूर भिलाई नामक स्थान पर रूस की सहायता से यह संयंत्र बनाया गया है। यह भारत का सफल एवं आदर्श कारखाना माना जाता है। प्रारम्भ में उत्पादन क्षमता 10 लाख टन थी जिसे बढ़ा कर 52 लाख टन किया गया है। कच्चा लोहा 32 किमी दूर डल्ली राजहरा की पहाड़ियों से कोकिगं कोयला कोखा छत्तीसगढ़ एवं करमाली (झारखण्ड) कोयला खानों से, मैंगनीज बालाघाट–भंडारा से, डोलामाइट– रायपुर, स्वच्छ जल तंदुला बाँध से। कोलकाता – मुम्बई रेलमार्ग पर स्थित है। उत्पादित इस्पात का अधिकांश भाग विशाखापट्टनम हिन्दुस्तान शिपयार्ड में चला जाता है।

6. दुर्गापुर इस्पात संयंत्र

पश्चिम बंगाल के वर्द्धमान जिले में आसनसोल कोलकता रेल मार्ग पर दामोदर नदी के किनारे ब्रिटिश सरकार के सहयोग से इस कारखाने की स्थापना की गई। वर्तमान में यह (SAIL) के

द्वारा इस संयंत्र को संचालित है।

कोयला–रानीगंज, झारिया, बाकारो खानों से, DUC से जल विद्युत प्राप्त हो जाती है। लोहा–अयस्क नोआमण्डी, गुआ खान से, चूना पत्थर क्योंझर व सुन्दरगढ़ से, मैंगनीज क्योंझर की बदाजामादा खानों से, कोलकाता के निकट होने से बन्दरगाह की सुविधा प्राप्त है। संयंत्र की उत्पादन क्षमता 40 लाख टन है। यहाँ पर रेल के पहिये, पटरियाँ, धुरियाँ, छड़े आदि का उत्पादन होता है।

7. बोकारो इस्पात संयंत्र

हिन्दुस्तान स्टील लिमिटेड का चौथा कारखाना रूस की सहायतासे बोकारो एवं दामोदर नदियों के संगम पर स्थापित किया गया। 1972 में उत्पादन क्षमता 17 लाख टन थी वर्तमान में इसे बढ़ाकर 40 लाख टन कर दिया गया है। भविष्य में उत्पादन क्षमता 100 लाख टन किया जाना प्रस्तावित है।

इस संयंत्र को लोह अयस्क उड़ीसा के क्योंझर की किरीबुरू खानों से, चूने का पत्थर पलामू जिले, कोयला झरिया, विद्युत दामोदर घाटी निगम से प्राप्त होती है। जल दामोदर व बोकारो नदियों से प्राप्त होता है। रेलमार्ग एवं सड़क मार्ग द्वारा कोलकाता एवं अन्य नगरों से जुड़ा हुआ है।

8. विशाखापट्टनम इस्पात कारखाना

बन्दरगाह पर स्थित यह भारत का पहला इस्पात संयंत्र है। यह अति आधुनिक तकनीक के आधार पर बनाया गया है। लोह अयस्क बैलाडिला खानों से, कोयला दामोदर घाटी से, मैंगनीज, डोलामाईट, चूने का पत्थर छत्तीसगढ़ एवं उड़ीसा की खानों से प्राप्त होता है। बन्दरगाह पर स्थित होने से उत्पादों को निर्यात की सुविधा रहती है।

2008–09 में इस संयंत्र में 29.4 लाख टन हॉट मेटल, 26.2 लाख तरल इस्पात, 23.8 लाख टन बिक्री योग्य इस्पात का उत्पादन किया गया था।

9. विजयनगर इस्पात संयंत्र

यह कर्नाटक के हास्पेट जिले के विजयनगर में पूर्णतः स्वदेशी तकनीक पर आधारित है। इसकी उत्पादन क्षमता 32 लाख टन उच्च कोटि का इस्पात पिण्ड तैयार करने की है, जिसे दुगना किया जाना प्रस्तावित है। इस क्षेत्र में उच्च कोटि का लोह अयस्क, चूना पत्थर, डोलामाइड आदि प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। नर्म इस्पात उत्पादन संयंत्र की मुख्य विशेषता है।

10. सलेम

तमिलनाडु के सलेम स्थान पर मिश्र इस्पात तथा लोहा मिश्र इस्पात का कारखाना स्थापित किया गया। जहाँ 1982 से उत्पादन किया जा रहा है। समीपवर्ती क्षेत्र से मेग्नेटाइट लोहा, चूना पत्थर, डोलामाइट प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। नवेली लिग्नाइट से कोयला प्राप्त हो जाता है। जंग नहीं लगने वाले इस्पात का भी निर्माण किया जाता है। इसकी वार्षिक क्षमता 70,000 टन जंग रहित इस्पात, 75,000 टन सिलीकन इस्पात, 30,000 टन विशेष प्रकार का इस्पात एवं 20,000 टन नर्म इस्पात तैयार किया जाता है।

राष्ट्रीय इस्पात नीति,

केन्द्र सरकार द्वारा 2 नवम्बर 2005 को राष्ट्रीय इस्पात नीति को स्वीकृति दी थी, जिसके अन्तर्गत वर्ष 2019–2020 तक वर्तमान उत्पादन 4 करोड़ 21 लाख टन से बढ़ाकर 11 करोड़ टन करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए नीजि एवं सार्वजनिक क्षेत्र की और से लगभग 2.5 लाख करोड़ का निवेश किए जाने की संभावना है।

साथ ही मूलभूल सुविधाओं का विस्तार किया जायेगा, उत्पादन बढ़ाने हेतु वित्तीय प्रोत्साहन दिया जायेगा। इस नीति का उद्देश्य वैश्विक स्तर पर लागत लाना, गुणवत्ता एवं उत्पादकता में प्रति स्पर्धा बढ़ाना है।

एल्युमिनियम उद्योग

लोहा और इस्पात उद्योग के बाद एल्युमिनियम उद्योग देश का दूसरा बड़ा महत्वपूर्ण उद्योग है। बॉक्साइट धातु को शुद्ध करने पर एल्युमिना प्राप्त होता है। सामान्यतः 1 टन एल्युमिनियम बनाने के लिए 20 से 24 हजार किलोवाट विद्युत शक्ति, 5 टन बॉक्साइट, आधा टन चूना, 0.3 टन पेट्रोलियम को, 0.13 टन कॉस्टिक सोडा की आवश्यकता पड़ती है। यही कारण है कि ये उद्योग कोयला या बिजली उत्पादन केन्द्र के समीप ही स्थापित किये जाते हैं। एल्युमिनियम का उपयोग घरेलू बर्तन, बिजली के तार, भवन निर्माण, प्रतिरक्षा उपकरण, रेल के डिब्बे, वायुयान, मोटर गाड़ी, नाभिकीय कार्यक्रमों, फर्नीचर के निर्माण में बड़ी मात्रा में प्रयोग किया जाता है।

उद्योग का विकास

भारत में एल्यूमिनियम धातु का सर्वप्रथम उत्पादन 1886 में इलेक्ट्रॉनिक पद्धति से किया गया। आयातित एल्युमिनियम से बर्नन बनाने का कार्य भारत में 1929 में शुरू हुआ।

भारत में एल्युमिनियम उद्योग की सही शुरूआत 1937 में J.K. (जे.के. नगर, पं. बंगाल में एलुमिनियम कॉरपोरेशन ऑफ इण्डिया के अन्तर्गत एक कारखाना लगाया गया। 1941 में इण्डियन एल्युमिनियम कम्पनी ने विदेशों से आयातित एल्युमिनियम पिण्डों से एल्युमिनियम की चादरें बनाने का कार्य

प्रारम्भ हुआ था। वर्तमान में हीराकुण्ड INDAL, रेणकूट Hindalco, उत्तर प्रदेश और मद्रास एल्युमिनियम कम्पनी (MALCO), कोरबा (छतीसगढ़) नेशनल एलुमिनियम कम्पनी लि. (NALCO) 21 लाख टन प्रति वर्ष की उत्पादन क्षमता के साथ एशिया का सबसे बड़ा एलुमिनियम उत्पादक कारखाना बन गया है। यह कारखाना दामन जोड़ी उड़ीसा में है। वर्ष 2008 से वेदान्ता एल्युमिनियम लि. ने भी कार्य प्रारम्भ कर दिया।

उत्पादन एवं व्यापार

वर्ष 2011–12 के अन्तर्गत एल्युमिनियम का उत्पादन 2011–12 में 16.71 लाख टन था। जो वर्ष 2014–15 में बढ़कर 3. 96 मिलियन टन हो गया। भारत एल्युमिनियम उत्पादन में दूसरा तथा उपभोग की दृष्टि से विश्व का तीसरा बड़ा देश है। भारत बॉक्साइड के भण्डारण की दृष्टि से 5वां बड़ा देश है।

उद्योग की समस्याएँ

1. विदेश व्यापार में स्पर्द्धा

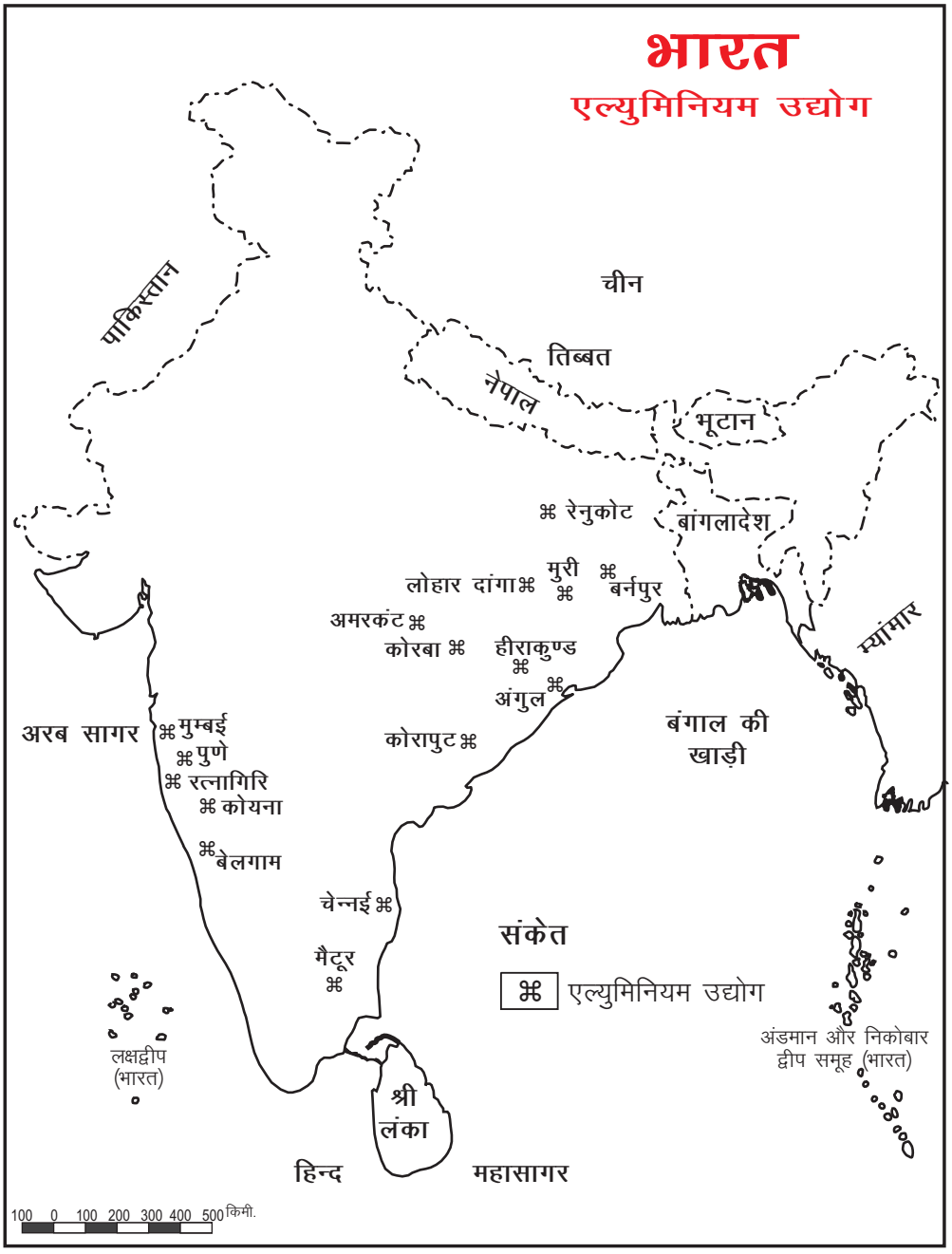

मानचित्र 19.2 : भारत एल्युमिनियम उद्योग





चित्र 19.1 : एल्युमिनियम उद्योग

2. निर्यात में वृद्धि करने में असमर्थ
3. शक्ति के साधनों का केन्द्रीयकरण
4. उत्पादन की ऊँची लागत
5. एल्युमिनियम के पूर्नचक्रण में प्रदूषण से 95 प्रतिशत कम ऊर्जा की आवश्यकता।
6. घरेलू विशाल बाजार

उद्योग का स्थानीयकरण

1. इण्डियन एलुमिनियम कम्पनी (**INDAL**)

कम्पनी पूर्णतः स्वावलम्बी बॉक्साइड से एलुमिनियम के पिण्ड और उनसे उसकी चादरें बनाती है। यह कारखाना झारखण्ड के मूरी नामक स्थान पर है। बॉक्साइड मुरी से 32 किमी. दूर लोहारदग्गा खानों से, दामोदर घाटी से पानी व कोयला प्राप्त हो जाता है। यहाँ से अल्लुपुरम (केरल), बेलगाम (कर्नाटक), थाना (महाराष्ट्र) को एल्युमिनियम भेजा जाता है।

2. भारत एलुमिनियम कम्पनी लिमिटेड **(BALCO)**:

सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनी कोरबा (छत्तीसगढ़) में स्थित है। इसकी क्षमता 2 लाख टन की है। अमरकंटक (मध्यप्रदेश) से बॉक्साइड, विद्युत कोरबा तापीय गृह से प्राप्त होता है। BALCO ने अपना एक संयंत्र महाराष्ट्र के रत्नगिरि में स्थापित किया है।

3. हिन्दुस्तान एल्यूमिनियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड **(HINDALCO)**

इसका कारखाना रेणकूट सोनभद्र जिले में स्थित है। यहाँ बॉक्साइट झारखण्ड के राँची एवं पलायू जिले से एवं चूने का पत्थर विंध्यांचल क्षेत्र से, विद्युत शक्ति रिहन्द बाँध से प्राप्त होती है। वार्षिक उत्पादन क्षमता 3.45 लाख टन है।

4. नेशनल एल्युमिनियम कम्पनी लिमिटेड **(NALCO)**

सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनी की स्थापना जनवरी 1981 में की गई, जो आज देश की सबसे बड़ी कम्पनी है। उत्पादन को नियमित बनाये रखने के लिए कारखाने में ही ताप विद्युत–गृह में एक अतिरिक्त युनिट अंगुल (ओडिशा) में लगाई जा चुकी है। बॉक्साइड पंच पतमाली पहाड़ियाँ (मोरापुर जिला), आडिशा से। एलुमिना बनाने का कारखाना दामन जोड़ी एवं एलूमिना प्रध्रवक संयंत्र ढेंकनाल ओडिसा में स्थित है।

विशाखापट्टनम से प्रतिवर्ष 3.75 लाख टन लगभग प्रतिवर्ष यूरोप अमेरिका भेजा जाता है। नेशनल एलूमिनियम कम्पनी लिमिटेड 21 लाख टन प्रति वर्ष उत्पादन कर एशिया का सबसे बड़ा एल्यूमिनियम उत्पादक कारखाना बन गया है।

सीमेन्ट उद्योग

लौह इस्पात की ही तरह सीमेन्ट भी एक आधार भूत उद्योग है। जिसका सर्वाधिक भवन निर्माण, सड़क, पुल, बाँध, कारखाने, हवाई अड्डे, आदि बनाने के लिए किया जाता है। इसका उत्पादन एवं उपभोग किसी भी देश के विकास का मापदण्ड होता है। चीन के बाद भारत विश्व में सीमेन्ट का सबसे बड़ा उत्पादक देश है।

उद्योग का विकास

भारत में संगठित ढंग से पहली बार सीमेन्ट बनाने का का प्रयास 1904 में मद्रास में समुद्री सीपियों से किया गया जो सफल न हो सका। वास्तविक विकास 1912–13 में हुआ, जब कटनी (मध्यप्रदेश खटाऊ कम्पनी द्वारा), लाखेरी (राजस्थान) बूँदी, किलिक निक्सन कम्पनी द्वारा, पोरबन्दर गुजरात में (टाटा सन्स द्वारा) स्थापित की गई जिनमें उत्पादन 1914 में आरम्भ हुआ।

1919 तक सीमेन्ट कम्पनियों की संख्या 19 पहुँच गई

जिनकी उत्पादन क्षमता एक लाख टन थी। दो विश्व युद्धों ने भारतीय सीमेन्ट उद्योग के विकास को प्रोत्साहित किया। सन् 1934 में एसोसिएट सीमेन्ट कम्पनी लिमिटेड एवं 1937 में डालमिया सीमेन्ट ग्रुप ने सीमेन्ट उत्पादन को सर्वाधिक प्रोत्साहित किया।

सन् 1947 तक देश में सीमेन्ट के कुल 23 कारखानें थे जिनमें से विभाजन के कारण 5 पाकिस्तान में चले गए तथा 18 भारत में रहें। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सीमेन्ट उद्योग की प्रगति तेज हुई। 1951 में देश में कुल 21 कारखाने थे। प्रथम पंचवर्षीय योजना में 6 नए कारखाने खाले गए और 1956 में इनकी संख्या 27 हो गई। 1960–61 तक यह संख्या बढ़कर 34 हो गई। 1990–91 में यह संख्या बढ़कर 92 हो गई। यह संख्या निरन्तर बढ़ते हुए मार्च, 2015 के अन्त तक देश में 209 बड़े सीमेन्ट संयत्र थे जिनकी उत्पादन क्षमता 37.83 करोड़ टन हो गई। इसके साथ ही 365 छोटे संयंत्रों का उत्पादन 33.63 मिलियन टन था। भारतीय सीमेन्ट की तुलना विश्व के सर्वश्रेष्ठ सीमेन्ट से की जा सकती है।

उद्योग का स्थानीयकरण

सीमेन्ट उद्योग में भारी वस्तुओं का उपयोग अधिक होता है। अनुमानतः एक टन सीमेन्ट बनाने के लिए 1.6 टन चूने का पत्थर, 0.38 टन जिप्सम और 3.8 टन कोयले की आवश्यकता होती है। ये सभी भारी पदार्थ है, परिवहन की सुविधा को ध्यान में रखकर सीमेन्ट के कारखाने कच्चे माल के समीप स्थापित किए जाते हैं। अतः सीमेण्ट उद्योग की स्थापना में शक्ति के साधन, कच्चा माल, कोयला तथा परिवहन के साधन मुख्य कारक है। अधिकाँश सीमेन्ट उद्योग इन्हीं कारकों के आधार पर स्थापित किए जाते हैं।

सीमेण्ट उद्योग का वितरण

भारत में सीमेन्ट उद्योग का स्थानीयकरण बहुतायत से चूना पत्थर एवं कोयला उत्पादन क्षेत्रों में हुआ है। राजस्थान से लेकर विंध्याचंल, बिहार, झारखण्ड तक चूना पत्थर का विस्तार है। भारत के कुल उत्पादन का 74 प्रतिशत (उत्पादन क्षमता का 86 प्रतिशत), गुजरात राजस्थान, तमिलनाडु, बिहार, मध्यप्रदेश, झारखण्ड से होता है।

सीमेन्ट के बड़े संयंत्रों में से 77 संयंत्र आंध्रप्रदेश, राजस्थान तथा तमिलनाडु में ही है। सीमेन्ट उद्योग की शीर्ष 20 कम्पनियाँ 70 से अधिक सीमेन्ट का उत्पादन करती है।

तमिलनाडु : भारत के शीर्ष उत्पादक राज्यों में से एक है। यहाँ पर्याप्त कच्चा माल उपलब्ध है। यहाँ का पठारी क्षेत्र मुख्य सीमेन्ट उत्पादक क्षेत्र है जहाँ शंकर दुर्ग डालमिया पुरम, पुलिपुर, आयिला मदुरै अलुगंग मुख्य सीमेन्ट उत्पादक केन्द्र है।

मध्यप्रदेश : राज्य में देश के कुल सीमेन्ट उत्पादन का 12 प्रतिशत उत्पादन होता है। जामुल में स्थित संयंत्र देश का सबसे बड़ा कारखाना है। सतना, मैहर, कैसून, गोपालनगर, अंकलतारा, बनयोर, नीमच, ग्वालीयर, कटनी, सतना, दमोह, प्रमुख सीमेन्ट उत्पादन केन्द्र है। यहाँ उत्तम किस्म का चूना पत्थर, कोयला, बिजली, परिवहन बाजार की सुविधा उपलब्ध होने से उद्योग का विकास तीव्र गति से हुआ है।

आन्ध्र प्रदेश : राज्य के अधिकाँश सीमेन्ट कारखानें तेलंगाना तथा रायलसीमा क्षेत्र में स्थित है। कारखानों का केन्द्रण समुद्रतटीय क्षेत्रों में अधिक हुआ है। प्रमुख सीमेन्ट उत्पादक केन्द्र–मछरेला, मंगलगिरि, पनयाम, कृष्णा, विजयवाड़ा, तान्दुर, मांचेरियल, येरागुंटला, बुगनीपाली, किस्तृना, पेड़ापल्ली, नलकोण्डा, हैदराबाद, आदिलाबाद आदि है।

राजस्थान : देश के प्रमुख उत्पादक राज्यों में से एक यहां देश के सर्वाधिक जिप्सम के भण्डार एवं उन्नत–चूने का पत्थर, बाजार, पूँजी, परिवहन की सुविधा से विकास तीव्र हुआ। लाखेरी, निम्बाहेड़ा, चितौड़गढ़, उदयपुर, ब्यावर आदि मुख्य केन्द्र है।

गुजरात : अधिकाँश कारखाने समुद्र तटीय क्षेत्र में है।



चित्र 19.2 : सीमेन्ट कारखाना

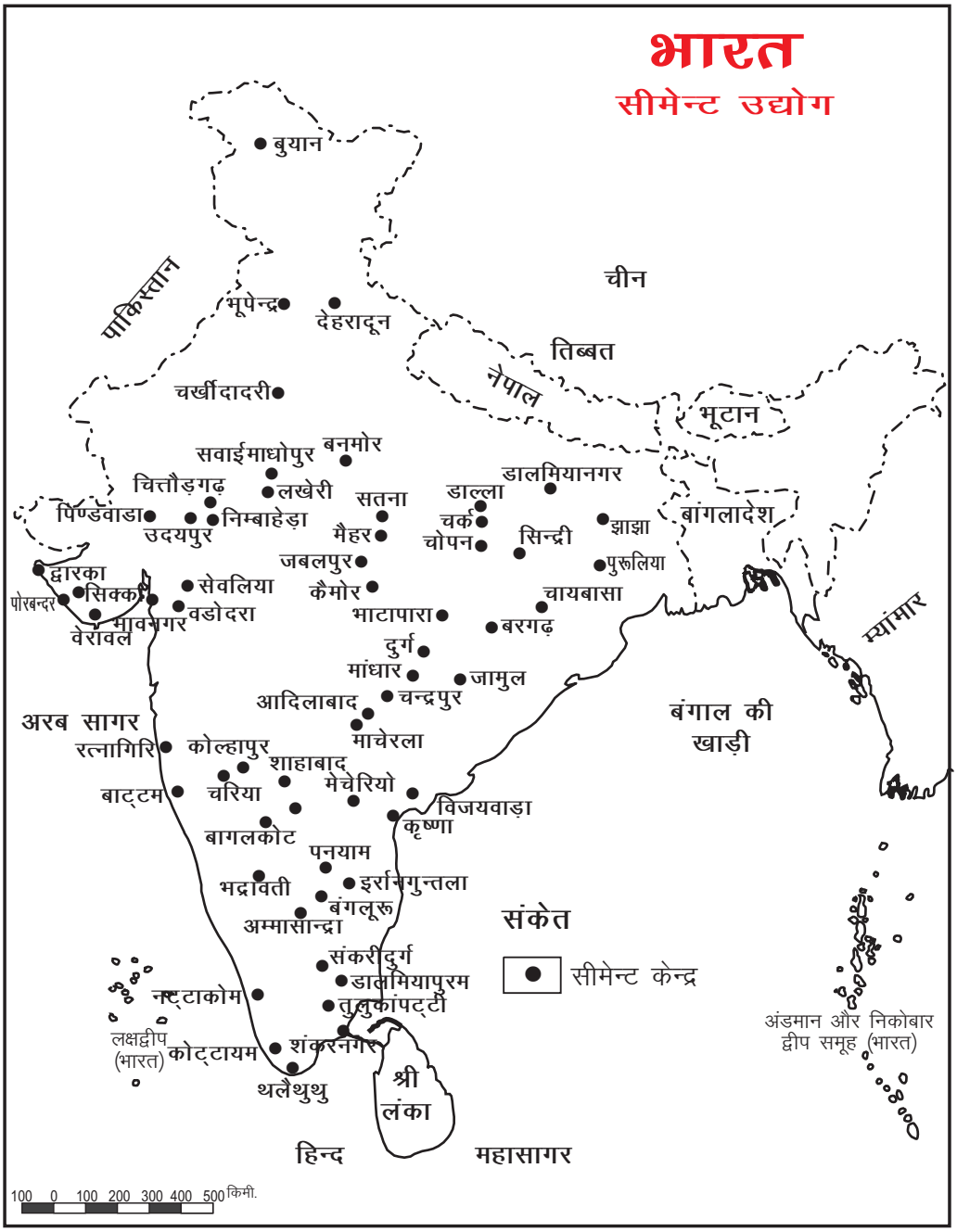

मानचित्र 19.3 : भारत सीमेन्ट उद्योग

सिक्का राज्य का सबसे बड़ा सीमेन्ट कारखाना है। पोरबन्दर, द्वारिका, रनवाब, ओखामण्डल अहमदाबाद मुख्य सीमेन्ट उत्पादक केन्द्र है। कर्नाटक : राज्य में सीमेन्ट कारखाने पश्चिमी घाट की पहाड़ी एवं कर्नाटक पठार पर विकसित हुए हैं। बागलकोट, बाड़ी, भद्रावती बैंगलोर, कुरकन्ता, शाहबाद, आमसन्द्र, बीजापुर, गुलबर्गा, तुमकुर मुख्य सीमेन्ट उत्पादक केन्द्र है।

झारखण्ड : झारखण्ड में चूना पत्थर एवं कोयला स्थानीय रूप से प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। सोन नदी घाटी सीमेन्ट उद्योग के लिए विशेष महत्वपूर्ण है। सीमेन्ट कारखाने सिन्द्री, डालिमिया नगर, जापला, खलारी, चादूबासा, बनजोरी का पानी, कल्याणपुर में है।

उत्तरप्रदेश : नवीन उत्पादक राज्य। यहाँ के कारखाने नए होने से उनकी उत्पादन क्षमता अधिक है। चुर्क, चोपन, चुनार मुख्य उत्पादक जिले हैं।

इनके अतिरिक्त हरियाणा में (सूरजपुर, चरखी, दादरी), महाराष्ट्र (चन्द्रपुरा), उड़ीसा (हीराकुण्ड, राजगपुरा), केरल (कोटायम), जम्मू–कश्मीर (ब्रुयान), मेघालय (चेरापूँजी), मध्यम

एवं छोटे सीमेन्ट उद्योग स्थापित किए गए है।

सीमेन्ट उद्योग की समस्याएँ

1. भारी पूंजी लागत
2. बिजली, कोयले की उपलब्धता की अनिश्चितता
3. माल डिब्बों की निरन्तर कमी
4. पर्याप्त जल की कमी– राजस्थान, गुजरात में विशेष

सूती वस्त्र उद्योग

भारत में सूती वस्त्र निर्माण की परम्परा अति प्राचीन है। जब आज के विकसित देश कपास को नहीं जानते थे तब भारत में उत्तम कोटि का सूती वस्त्र तैयार किया जाता था। हेरोडोटस 434 ईसा पूर्व भारत आया औरउसने लिखा की भारतीय सफेद फूल के पौधों से बने सुन्दर कपड़े बना कर पहनते थे। आज से 5000 से 8000 वर्ष पूर्व भी उत्तम कपड़ा बुना जाता था, जिसको हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ो की खोज ने प्रमाणित किया है। मिश्र में ईसा से 2000 वर्ष पूर्व पिरामिडो में मृत शरीर भारतीय मलमल से लिपटे हुए पाये गये है। प्राचीन रोम में भारतीय रेशम और छींट के वस्त्र पहनने में रोमन महिलाएँ गौरव समझती थी।

भारतीय सूती वस्त्र उद्योग के विषयमें मुगल यात्री ट्रेवर्नियर लिखते हैं कि ''भारतीय रेशम'' सुन्दर थी कि वे तुम्हारे हाथ में है यह ज्ञान भी नहीं होता था। यह अति कोमलता से काते हुए तागों (धागों) से बुना जाता था। यह मलमल का टुकड़ा अंगूठी में से निकाला जा सकता था।'' यह सारा उद्योग उस समय हथकरधों द्वारा ही होता था। उद्योग के मुख्य केन्द्र पूर्वी तट पर नागापट्टनम से ढांका के मध्य तथा पश्चिमी तट पर कस्बे सूरत भरोंच मुख्य थे। कालीकट में कैलिकी कपड़ा विशेष रूप से बनाया जाता था।

अमीर लोग अहमदाबाद, वाराणसी में सूती कपड़े के साथ सोने एवं चांदी के तारों के धागे काम में लिए जाते थे। यह कुटीर वस्त्र उद्योग 18वीं शताब्दी तक चलता रहा, लेकिन यूरोप की औद्योगिक क्रान्ति में उद्योग को बहुत बड़ा झटका दिया। मशीन युग ने इस उद्योग को जर्जर बना दिया, साथ ही भारत में रेल मार्ग का विकास एवं पूर्व पश्चिम के बीच स्वेज मार्ग का खुल जाना अन्तिम आघात था। उपरोक्त कारणों से गौरवशाली भारतीय वस्त्र उद्योग अतीत के गर्भ में विलीन हो गया। बुकानन ने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये ''भारत के लिए सूती उद्योग अतीत का गौरव भूत और वर्तमान का संकट और सदैव की आशा रहा है।''

भारत में आधुनिक वस्त्र उद्योग का प्रारम्भ 1818 में कोलकत्ता में कावसजी डाबरद्वारा मुम्बई में स्थापित की गई। 1961 तक इनकी संख्या 12 हो गई। सन् 1945 तक इन मिलों की संख्या 417 हो गई। स्वतंत्रता प्राप्ति तक उद्योग का काफी विकास हो चुका था। देश के विभाजन का इस पर बुरा प्रभाव पड़ा।

लेकिन स्वतंत्रता के पश्चात् उद्योग का निरन्तर विकास होता गया। आज कृषि के बाद सूती वस्त्र उद्योग है जहाँ सर्वाधिक जनसंख्या काम करती है। औद्योगिक उत्पाद का 14 प्रतिशत सकल घरेलू उत्पाद (GDP) का लगभग 4.0 प्रतिशत कुल विर्निमित औद्योगिक उत्पादन के 20 प्रतिशत व कुल निर्यातों के 11 प्रतिशत की आपूर्ति करता है। आयात खर्च में 2–3 प्रतिशत तक ही है। यह उद्योग देश के लगभग 4.5 करोड़ लोगों को रोजगार प्रदान करता है।

वस्त्र उद्योग में संगठित मिलों की संख्या 1969 है जिनमें 1717 कताई 198 कम्पोजिट मिले हैं। भारत में प्रति व्यक्ति कपड़े की खपत 2009–10 में 43.1 वर्ग मीटर वार्षिक थी।

भारत में सूती वस्त्र उद्योग के स्थानीयकरण को निम्नलिखित कारक प्रभावित करते हैं– (1) कच्चा पदार्थ, (2) परिवहन सुविधा, (3) बाजार की सुविधा, (4) आर्द्र एवं नम जलवायु, (5) नियमित विद्युत आपूर्ति, (6) पर्याप्त कुशल श्रमिक, (7) पूँजी, (8) आधुनिक तकनीकी।

सूती वस्त्र उद्योग का वितरण

आरम्भिक काल में सूती वस्त्र उद्योग कपास उत्पादक क्षेत्रों में ही स्थापित किया गया पर आज यह सर्वाधिक विकेन्द्रीत उद्योग है। वर्तमान में सर्वाधिक कारखाने गंगा के मैदान एवं दक्षिण प्रायद्वीपीय प्रदेश में है। देश का सूती वस्त्र उद्योग का राज्यवार विवरण इस प्रकार है–

महाराष्ट्र : भारत में सूती वस्त्र उत्पादन की दृष्टि से इसका प्रथम स्थान है जहाँ 181 मिले कार्यरत है। मुम्बई सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण केन्द्र देश की प्रथम मिल यहीं स्थापित की गई। अकेले मुम्बई में 57 सूती वस्त्र मिले हैं। इसी कारण मुम्बई को सूती वस्त्र की राजधानी कहते हैं। अन्य केन्द्रों में शोलापुर, अकोला, अमरावती, पूना, सतारा, कोल्हापुर, साँगली, औरगाँबाद, जलगाँव, नागपुर आदि में लगभग 30 लाख श्रमिक इस उद्योग में कार्य कर रहे हैं।

यहाँ उद्योग के विकास के प्रमुख कारण (1) समुद्री नम जलवायु, (2) कपास उत्पादन क्षेत्र, (3) टाटा विद्युत उत्पादन केन्द्र से पर्याप्त जल विद्युत शक्ति की प्राप्ति, (4) बन्दरगाह से आयात–निर्यात की सुविधा (5) स्थानीय बाजार, (6) परिवहन की

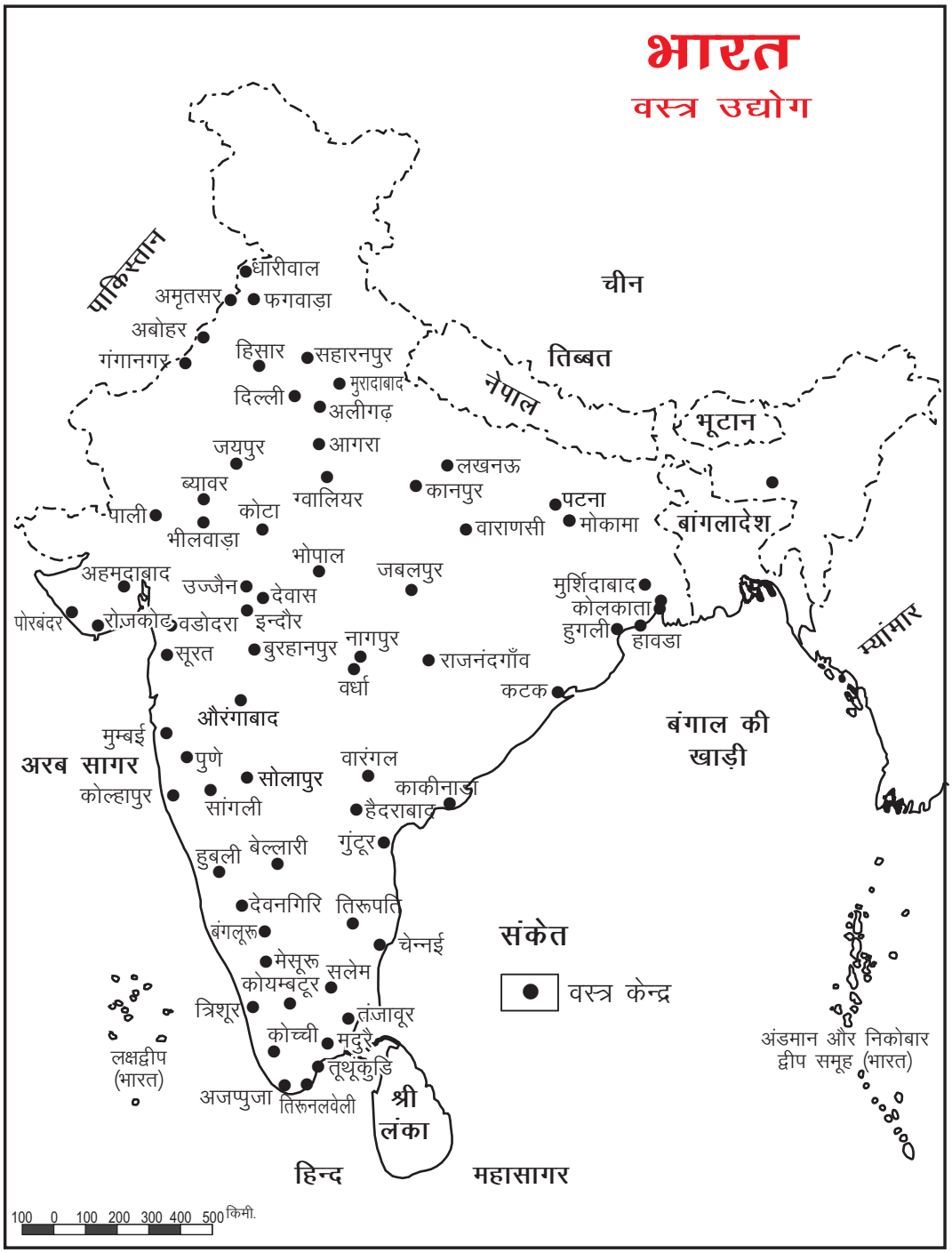

मानचित्र 19.4 : भारत सूती वस्त्र उद्योग

सुविधा। इन सबके उपरान्त भी मुम्बई से वस्त्र उद्योग का स्थानान्तरण होने लगा है जिनमें पेट्रोलियम उद्योग की स्थापना, भूमि का अधिक मूल्य, श्रमिकों का मंहगा होना है।

गुजरात : भारत में गुजरात दूसरा सबसे बड़ा सूती वस्त्र उत्पादक राज्य हैं जहाँ 135 मिले कार्यरत है। जिनमें से 65 अकेले अहमदाबाद में है। अहमदाबाद को पूर्व का बोस्टन कहते हैं। मुम्बई जैसी सुविधाएँ गुजरात में मिलती है। अहमदाबाद में उत्तम एवं महीन कपड़ा अधिक बनाया जाता है। सूरत, बड़ौदा, अहमदाबाद, हिम्मतनगर मुख्य केन्द्र है।

तमिलनाडु : कपास उत्पादक राज्य नहीं होने के उपरान्त भी यहाँ की सबसे ज्यादा सूती मिले है। ये मिले आकार में गुजरात एवं महाराष्ट्र से छोटी है।

यहाँ का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण केन्द्र कोयम्बटूर है, जहाँ राज्य की 50 प्रतिशत मिलें स्थित है। मदूरै, सेलम, चेन्नई, तिरूचिरापल्ली, रामनाथपुरम, तूती कोरन अन्य महत्त्वपूर्ण केन्द्र है। यहाँ सूती वस्त्र उद्योग विकास के पीछे पर्याप्त एवं सस्ती जल विद्युत, सस्ते श्रमिक, बन्दरगाहों की सुविधा, नम जलवायु, नवीन कपास उत्पादक क्षेत्र जैसी सुविधाएँ है।

पश्चिम बंगाल : पं. बंगाल में कोलकत्ता के आस–पास चौतिस परगना, हावड़ा और हुगली जिलों में सूती कपड़ों की पर्याप्त मिले हैं। विकास के कारण (1) कोलकत्ता बन्दरगाह एवं द. पू. एशियाई देशों से निकटता (2) आयात की सुविधा (मशीन एवं उन्नत रूई), (3) रानीगंज एवं झारिया से कोयले की प्राप्ति, (4) विकसित परिवहन तंत्र, (5) कोलकत्ता में पूँजी एवं अन्य व्यापारिक सुविधाएँ मिल जाना, (6) आर्द्र एवं नम जलवायु, (7) विशाल स्थानीय बाजार, (8) पूर्वात्तर राज्यों में उद्योग का विकास नहीं होना।

उत्तर प्रदेश : राज्य में 36 सूती वस्त्र मिले स्थित है जो आयातित कपास पर निर्भर है। कानपुर राज्य का प्रमुख केन्द्र है जहाँ 10 मिले हैं। कानपुर को उत्तरी भारत का मेनचेस्टर कहते हैं। मुरादाबाद, मोदीनगर, सहारनपुर, अलीगढ़, आगरा, हाथरस इटावा, बरेली आदि महत्त्वपूर्ण केन्द्र है।

कर्नाटक : राज्य में बैंगलूरू के समीपवर्ती क्षेत्र में सूती वस्त्र उत्पादक है जिनमें बैगलोर, छुणली, बैलारी, बेलगांव, गुलबर्गा आदि मुख्य क्षेत्र है।

आन्ध्र प्रदेश : आन्ध्र प्रदेश एक नवीन उभरता हुआ राज्य यहाँ का वस्त्र उद्योग तेलगांना की कपास पर निर्भर है। हैदराबाद, बारंगल, गंटूर, गोदावरी, सिकरान्दराबाद मुख्य उत्पादक केन्द्र है।

राजस्थान : में भीलवाड़ा, बाँसवाड़ा, उदयपुर, ब्यावर, पाली में इस उद्योग के कारखाने हैं।

अन्य सूती वस्त उत्पादक राज्य : पंजाब (अमतृसर, लूधियाना), केरल (तिरूवन्तपुरम, अलवाये), बिहार (पटना, मुंगेर, भागलपुर, गया) आदि मुख्य उत्पादक क्षेत्र है।

सूती वस्त्र का निरन्तर उत्पादन बढ़ रहा है साथ ही नवीन मिलों में उत्तम प्रकार का वस्त्र निर्माण किया जा रहा है और घरेलू उपयोग की पूर्ति कर विश्व के 50 से अधिक देशों को निर्यात किया जा रहा है।

चीनी उद्योग

भारत में चीनी (शक्कर) का उत्पादन गन्ने से किया जाता है। चीनी उद्योग कृषि आधारित उद्योग में सूती वस्त्र के बाद द्वितीय स्थान पर आता है। भारत में शक्कर (चीनी) उद्योग का विकास 3000 ईसा पूर्व से कुटीर उद्योग के रूप में किया जाता रहा है। वैदिक साहित्य, चाणक्य के अर्थशास्त्र, मेगास्थनीज की इण्डिका में भारत के लोगों द्वारा गन्ने से गुड, खाण्डसारी बनाने की कला का विस्तृत वर्णन किया गया है। किन्तु बड़े उद्योग के रूप में इसका विकास 20वीं सदी से प्रारम्भ हुआ। इसके पूर्व 1841–42 एवं 1899 में भी प्रयास किए जो असफल रहे। 1903 में अंग्रेजों द्वारा बिहार के मढ़ोर (सारण जिला) में प्रथम सफल चीनी मिल की स्थापना की गई। इसके पश्चात् बिहार से सटे उत्तर प्रदेश में भी कई चीनी मिलों की स्थापना की गई थी। 1932 तक लगभग 35 चीनी मिलों की स्थापना हो चुकी थी। 1951 में भारत में शक्कर के 138 कारखाने थे जिनकी उत्पादन क्षमता 15 लाख टन थी। देश में 31 अगस्त 2014 तक चीनी की 70 मिलें स्थापित थी इनमें से 334 निजी क्षेत्र, 43 सार्वजनिक क्षेत्र तथा 324 सहकारी क्षेत्र में है।

चीनी उद्योग का स्थानीयकरण

चीनी उद्योग एक वजन ह्रास उद्योग है। 100 किलोग्राम गन्ने से 9 से 12 किग्रा. चीनी की प्राप्ति होती है। चीनी की उत्पादन लागत में 60 प्रतिशत व्यय गन्ने पर होता है। चीनी की तुलना में गन्ने का परिवहन कठिन है। गन्ने को कटाई के 24 घण्टे के अन्दर ही पिराई हो जानी चाहिए। पिराई में देरी होने पर सुक्रोज की मात्रा घटती रहती है। अतः चीनी मिलों की स्थापना गन्ने के उत्पादन क्षेत्र में ही लगाने की मजबूरी है।

चीनी उद्योग का वितरण

भारत में 90% चीनी उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, बिहार, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु तथा कर्नाटक में तैयार की जाती है।

उत्तर प्रदेश : यहाँ देश का सर्वाधिक गन्ना क्षेत्र एवं मिलों की संख्या में भी राज्य का स्थान प्रथम था लेकिन वर्ष 2015–16 के अन्तर्गत चीनी उत्पादन व मिलों की दृष्टि से द्वितीय स्थान है।

चीनी उत्पादन में उत्तर प्रदेश व महाराष्ट्र में प्रथम स्थान हेतु होड़ सी लगी रहती है। उत्तर प्रदेश में गंगा–यमुना दोआब तथा तराई का क्षेत्र महत्वपूर्ण गन्ना उत्पादक क्षेत्र है। सहारनपुर से गाजियाबाद तक लगभग हर रेल्वे स्टेशन के पास एक चीनी मिल स्थापित है।

महाराष्ट्र : वर्ष 2015–15 में देश में चीनी उत्पादन में महाराष्ट्र का प्रथम स्थान है। इस वर्ष 105.1 लाख टन चीनी का

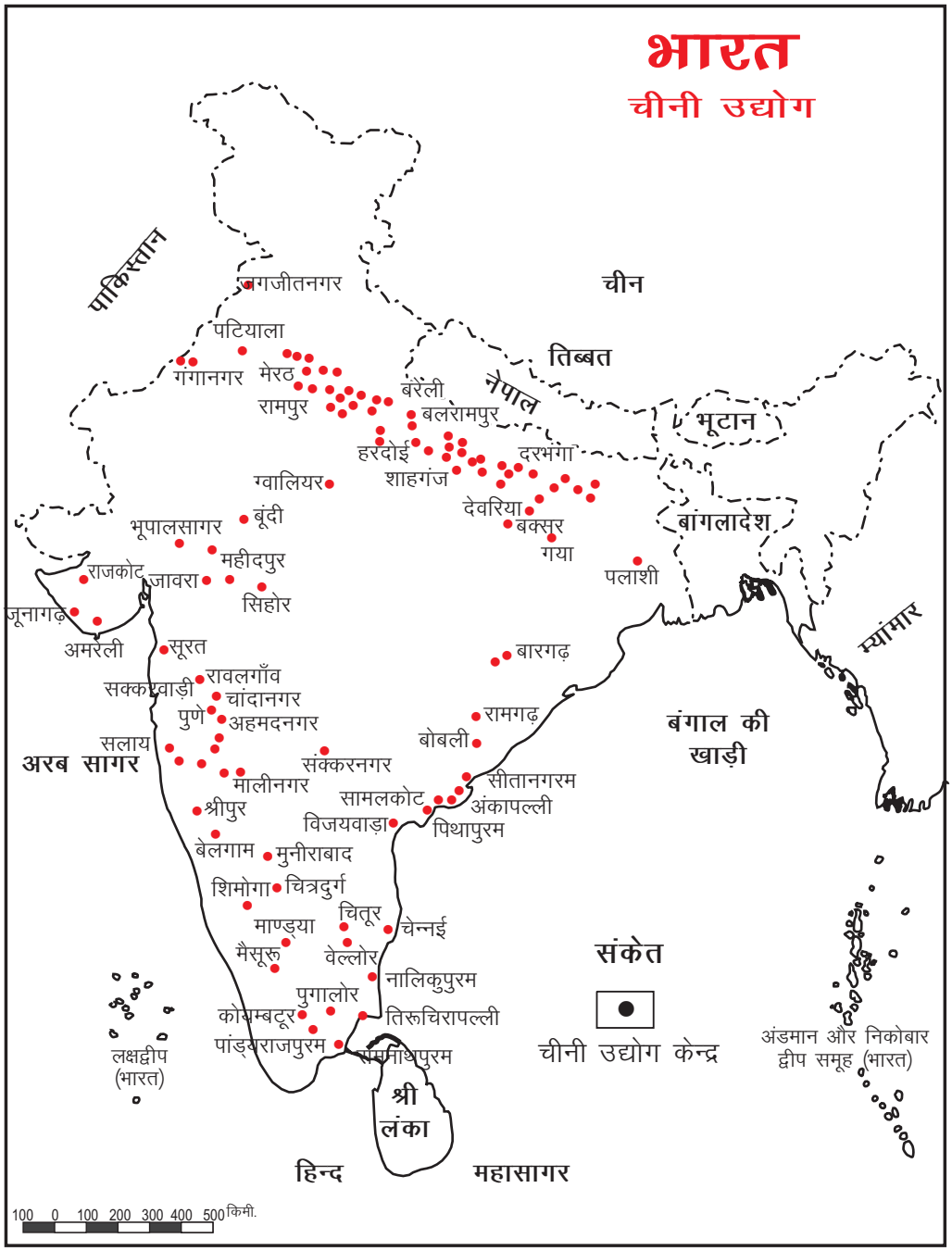

मानचित्र 19.4 : भारत चीनी उद्योग

उत्पादन हुआ था जो देश के कुल चीनी उत्पादन का लगभग 41.87 प्रतिशत था। राज्य का सबसे बड़ा केन्द्र अहमदनगर है जहाँ 11 मिले स्थापित है। वर्तमान में महाराष्ट्र में 134 चीनी मिले हैं जो देश की सर्वाधिक है।

आन्ध्रप्रदेश : चीनी का उत्पादन पूर्वी तथा पश्चिमी गौदावरी जिले कृष्णा विशाखापट्टनम, निजामाबाद स्थानों पर चीनी उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि हुई।

कर्नाटक : यहाँ चीनी की 11 मिले हैं। जिनमें 3 सहकारी मिले हैं। बेलगांव में 3, रायचुर में 2 मिले स्थापित हैं।

बिहार : उत्तरी बिहार मुख्य चीनी उत्पादक है जहाँ चम्पारन, सारण, दरभंगा, पटना मुख्य उत्पादक जिले हैं।

तमिलनाडु : सभी मिलें कोयम्बटूर उत्तरी दक्षिण अरकाट, तिरूचिरापल्ली तथा रामनाथपुरम में है। यहाँ के गन्ने में समुद्री हवाओं के कारण मिठास अधिक होती है।





चित्र 19.3 : चीनी उद्योग हेतु गन्ना

राजस्थान : कैशोरायपाटन (बूंदी), श्रीगंगानगर।

पंजाब : नवाँशहर, धूरी, होशियारपुर, गुरूदासपुर, अमृतसर में चीनी मिले हैं। हरियाणा में यमुनानगर, पानीपत, रोहतक, सोनीपत, पलवल आदि स्थानों पर चीनी मिलें हैं। गुजराज में अहमदाबाद तथा भावनगर चीनी उद्योग के मुख्य केन्द्र है। पं. बंगाल : बेलडोग, मुर्शिदाबाद प्लाली (नदियों), बशीरहट (चौबीस परगना), हावड़ा में चीनी मिले लगी हुई है।

पिछले कुछ दशकों में चीनी उद्योग का दक्षिण भारत की ओर स्थानान्तरण हो रहा है।

समस्या एवं सुझाव

चीनी उद्योग की उन्नति के सुझाव :

चीनी उद्योग की अपनी अनेकानेक समस्याएँ हैं, लेकिन उसके उपरान्त भी उत्पादन बढ़ाया जा सकता है।

(1) उचित निरीक्षण की व्यवस्था हो।

(2) पुरानी के स्थान पर नई मशीनों की व्यवस्था हो

(3) मिल गन्ना उत्पादक क्षेत्र में ही स्थापित हो अनिवार्य किया जाए।

(4) गन्ने की फसल पर (अनुसंधान कार्य पर विशेष बल दिया जाय।

(5) गन्ने की मात्रा के साथ–साथ गुण (रस) को भी देखकर कीमत में समावेश किया जाए।

(6) श्रमिकों के रोजगार की व्यवस्था की जाए ताकि वे वर्ष भर कार्यशील रहे।

(7) गोण उपजों का भी पूर्ण उपभोग किया जाए।

(8) कर व्यवस्था में सुधार किया जाए।

(9) गन्ने का भुगतान किसान को बेचान करते समय ही किया जाए।

इंजीनियरिंग उद्योग

इंजिनियरिंग उद्योग किसी भी देश के औद्योगिकरण में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। विश्व में आज जितने भी विकसित राष्ट्र है, उनकी प्रगति के पीछे का रहस्य वहाँ के इंजीनियरिंग उद्योग का विकास ही है। विद्वानों का कहना है कि बिना इंजीनियरिंग उद्योग के विकास के मशीनों का एक पहिया भी नहीं चल सकता। इस उद्योग के अन्तर्गत अनेक प्रकार की मिश्रित धातुओं, पूँजीगत माल, विविध मशीनरी, मशीनी औजार आदि का निर्माण किया जाता है।

इस उद्योग में अधिक पूँजी, परिवहन की सुविधा, सस्ती विद्युत शक्ति, सस्ता श्रम तकनीकी ज्ञान का अनुभव होना आवश्यक है।

भारी इंजीनियरिंग उद्योग

देश में भारी इंजीनियरिंग उद्योग की स्थापना हैवी इंजीनियरिंग कार्पोरेशन लिमिटेड द्वारा 1957 में (HEC) राँची में रूस एवं चेकोस्लावाकिया के सहयोग से कर गई। प्रथम पंचवर्षीय योजना में इसका उत्पादन 0.3 करोड़ रूपये था जो वर्ष 2008–09 में बढ़कर 5164 करोड़ रूपये हो गया।

आधारभूत ढाँचा

निर्माण उद्योग एक महत्वपूर्ण उद्योग है। इसके अन्तर्गत इस्पात संयंत्रों के ढाँचे, रेल के पुल एवं हाइड्रोलिक गेट आदि सम्मिलित है। इसके अन्तर्गत 250 कारखाने जिनकी कुल उत्पादन क्षमता 6 लाख टन है। 1965 में नैनो (इलहाबाद), 1747 तुंगभद्रा (कर्नाटक), भारत हैवी प्लेट एण्ड वैसल्स लिमिटेड विशाखापट्टनम (आन्ध्र प्रदेश), लार्सेन एण्ड टुर्बो लिमिटेड, पवई मुम्बई, नरोडा (अहमदाबाद) में ड्रील्स बनाये जाते हैं।

औद्योगिक मशीनरी

भारत में कागज, सीमेन्ट, रसायन, चाय, सूती वस्त्र, जूट वस्त्र, कोयला, खनन आदि प्रमुख उद्योगों के लिए अनेक प्रकार की मशीनरी बनाई जाती है। भारत औद्योगिक मशीनरी निर्माण में आत्म निर्भर है। कुछ अफ्रीकी व एशियाई देशों को निर्यात भी किया जाता है।



चित्र 19.4 : इंजीनियरिंग उद्योग

वस्त्र बनाने की मशीनें

देश में वस्त्र उद्योग की मशीनरी बनाने वाली 210 इकाइयाँ कार्यरत है जो विभिन्न प्रकार की वस्त्र उद्योग मशीनरी का निर्माण करती है। इन इकाइयों में रिंग फ्रेम, फ्लाई फ्रेम, स्पीड फ्रेम, ब्लीचिंग प्लाण्ट आदि बनते हैं प्रमुख केन्द्र मुम्बई, कोलकाता, बैंगलोर, कोयम्बटूर आदि है।

मशीनी उपकरण

लोह इस्पात की चादरें कई अन्य उद्योगों के लिए कच्चे माल का काम देती है। इससे जो अन्य वस्तुएँ बनाई जाती है उन उपकरणों को मशीन टूल्स कहते हैं। इस तरह की 200 इकाईयाँ कार्यरत है। हिन्दुस्तान मशीन टूल्स की स्थापना 1953 में स्विटरलेण्ड के सहयोग से की गई जिसके 9 संयंत्र है। सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम है। बैगंलोर प्रमुख एवं पिंजोर कलामासेरी, हैदराबाद, श्रीनगर में कार्यरत है जिनके अनतर्गत मशीनी उपकरण घड़ियाँ, ट्रेक्टर बनाये जाते हैं। अजमेर, कोटा, सिकन्दराबाद आदि सार्वजनिक क्षेत्र के एचएमटी के उपक्रम है।

भारी इलेक्ट्रिक इंजीनियरिंग

देश के विद्युत उपकरणों के निर्माण हेतु 1964 में भारत हेवी इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड (BHEL) की स्थापना सार्वजनिक क्षेत्र में की गई। इसके संयंत्र भोपाल, हैदराबाद, हरिद्धार, रानीपेट, बैंगलूरू एवं जमशेदपुर में है।

मोटर गाड़ी उद्योग

देश के ऑटोमोबाइल्स उद्योग को 'सनराइज क्षेत्र' कहा जाता है। सन् 1944 में हिन्दुस्तान मोटर कम्पनी ने कोलकाता के उत्तरपाड़ा में कार्य प्रारम्भ किया। 1947 में प्रीमियर ऑटोमोबइल्स लिमिटेड, कुर्ला, मुम्बई की स्थापना हुई। इस समय देश में 35 इकाइयाँ कार्यरत है सर्वाधिक महाराष्ट्र 12, तमिलनाडु 6, दिल्ली 5।

यात्री कार व अन्य बहूपयोगी वाहन : मारूति उद्योग लिमिटेड (गुडगांव) द्वारा जापान की सुजुकी के तकनीकी सहयोग से 1983 में पहली कार बनाई थी। वर्तमान क्षमता 4 लाख वाहन प्रतिवर्ष है। प्रीमियम ऑटोमोबाइल्स मुम्बई, स्टेण्डर्ड मोटर प्रोडक्स चेन्नई, हुण्डई मोटर्स इण्डिया लिमिटेड (चेन्नई), महिन्द्रा एण्ड महिन्द्रा कम्पनी लिमिटेड, पुणे, टाटा लोकोमोटिव वर्क्स, जमशेदपुर में है, देश से अब इनका निर्यात भी किया जा रहा है।

साइकिल उद्योग

विश्व में चीन के बाद भारत दूसरा बड़ा साइकिल उत्पादक देश है। उद्योग का प्रारम्भ 1938 में हुआ था। वर्तमान में लुधियाना भारत का प्रमुख साइकिल निर्माण केन्द्र है।

रेल के इंजन बनाने का उद्योग

रेलों के विकास के साथ ही रेलवे विभाग द्वारा अजमेर (राज.) एवं जमालपुर (बिहार) में लोकोमोटिव वर्कशॉप स्थापित कर रेल इंजन बनाने का कार्य आरम्भ किया। सन् 1940 तक अजमेर के वर्कशॉप से 446 इंजन व 346 बॉयलर तैयार किये गये थे। अब दोनों को ही बन्द कर दिया गया। वर्तमान में दो इकाइयाँ मुख्य है– 1950 में चित्तरंजन लोकोमोटिव वर्क्स चितरंजन (पश्चिम बंगाल) यहाँ विद्युत इंजन का निर्माण किया जाता है एवं डीजल लोकोमोटिव वर्क्स वाराणसी की क्षमता 161 इंजन प्रति वर्ष है। इसकी स्थापना अमेरिकी कम्पनी एल्फो के सहयोग से की गई। यहाँ डीजल इंजन का निर्माण किया जाता है। भारतीय रेलवे द्वारा डीजल कम्पोनेट वर्क्स की स्थापना पटियाला में डीजल इंजन के निर्माण एवं मरम्मत के लिए की गई।

रेल के डिब्बे बनाने का कारखाना

सार्वजनिक क्षेत्र में रेल डिब्बे बनाने का कारखाना इंटीग्रल कोच फैक्ट्री पेराम्बूर (तमिलनाडु) में 1975 से 1998 के मध्य 25138 सवारी डिब्बे बनाये गये। यहाँ साधारण एवं वातानुकूलित सवारी डिब्बों का निर्माण किया जाता है।

रेलकोच फैक्ट्री कपूरथला (पंजाब) मेसर्स प्रेस्सोप्स (कोलकाता), भारत अर्थ मूवर्स लिमिटेड, बैंगलूरू द्वारा भी डिब्बे एवं

साजो सामान का निर्माण किया जाता है। बैंगलोर में एक 'व्हील एण्ड एक्सल' प्लान्ट की स्थापना की गई है।

जलयान निर्माण उद्योग

भारत में तकनीकी रूप से उन्नत जलयान कारखाना सर्वप्रथम सिन्धिया स्टीम नेवीगेशन कम्पनी 1941 विशाखापट्टनम में स्थापित किया गया। जहाँ उषा नामक पहला जलयान बनाया गया। इसका 1952 में राष्ट्रीकरण कर किया गया और नाम 'हिन्दुस्तान शिपयार्ड लिमिटेड' (विशाखापट्टनम) हो गया जहाँ अब तक 107 जलयानों का निर्माण किया गया है।

गार्डन रीच वर्कशॉप : हुगली नदी के किनारे 15000–25000 टन भार वाले जलयान बनाये जाते हैं।

गोआ शिपयार्ड : यहाँ जहाजों की मरम्मत एवं निर्माण दोनों ही होते हैं।

मझगॉव डॉकयार्ड : मुम्बई, जहाँ भारतीय नौ सेना के फिगेट किस्म के जहाज बनाए जाते हैं।

कोचीन शिपयाई लि. : जापान की सहायता से 1965 में 165 करोड़ रूपये से बना देश का सबसे बड़ा शिपयार्ड, यहाँ मरम्मत, निर्माण एवं प्रशिक्षण कार्य होता है।

वायुयान निर्माण उद्योग

भारत में वायुयान निर्माण हेतु प्रथम प्रयास 1940 में बैगलूरू हिन्दुस्तान एयरक्राफ्ट लिमिटेड के रूप में की गई। 1964 में बैगलूरू में हिन्दुस्तान ऐरोनॉटिक्स लिमिटेड की स्थापना की गई। इसकी इकाइयाँ स्थिति है– बैंगलूरू, कानपुर, नासिक, कोरापुट, हैदराबाद, एवं कोरवा (लखनऊ) में स्थित है।

सूचना प्रोद्योगिकी

इसके अन्तर्गत इलेक्ट्रानिक्स संचार एवं कम्प्यूटर को शामिल किया जाता है। बैगलूरू सूचना प्रोद्योगिकी उद्योग का प्रमुख केन्द्र है जिसे भारत की 'सिलिकन वैली' कहा जाता है।

इलेक्ट्रोनिक उद्योग : 1950 में बैंगलरू में 'इण्डियन टेलीफोन इण्डस्ट्रीज' की स्थापना की गई इसकी इकाइयाँ श्रीनगर, रायबरेली, नैनी (इलाहाबाद) में है। 'भारत इलेक्ट्रोनिक्स लिमिटेड, बैंगलूरू में की गई। यह सेना, मौसम विज्ञान, आकाशवाणी से सम्बन्धित इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों का निर्माण करता है। 'हिन्दुस्तान केबल्स' टेलीफोन का तार बनाते हैं।

इंजीनियरिंग वस्तुओं का भारत में निर्यात 1970–71 वर्ष में 198 करोड़ रूपये का हुआ था जो 2014–15 में बढ़कर 4,33,868 करोड़ रूपये का हो गया।

उद्योग की समस्याएँ

इंजीनियरिंग उद्योग में निरन्तर विकास हो रहा है लेकिन इस उद्योग की कुछ समस्याएँ है।

1. कच्चे माल का अभाव : कल पुर्जो के निर्माण में जिस इस्पात का उपयोग जाता है वह देश में कम ही बनता है। अतः आयात करना पड़ता है।
2. पूँजी का अभाव : इस उद्योग के लिए भारी पूँजी की आवश्यकता होती है दुर्भाग्य से देश में कमी है और इसी कारण कारखानें सार्वजनिक क्षेत्र में खुले हैं।
3. अत्यधिक कर भार : उद्योग के उत्पादन पर भारी कर लगा होने से निर्यात में कठिनाई आती है।
4. अन्य समस्याएँ : विदेशी प्रतिस्पर्द्धा, उत्पादन क्षमता का पूर्ण उपयोग न होना, गुणवत्ता नियन्त्रण का अभाव।

उद्योग का भविष्य

उद्योग का भविष्य उज्जवल है। हम अमेरिका, चीन, ब्रिटेन, रूस जैसे देशों को इंजीनियरिंग माल का निर्यात कर रहे हैं जो निरन्तर बढ़ रही है। देश में स्थानीय स्तर पर भी माँग बढ़ रही है। अतः इस उद्योग को अपना विकास करने का पूर्ण अवसर है।

'मेक इन इण्डिया' कार्यक्रम : निवेश को बढ़ावा देकर औद्योगिक विकास की गति को तेज करने तथा देश को 'मेन्यूफैक्चरिंग हब' बनाने के लिए मेक इन इण्डिया कार्यक्रम की औपचारिक शुरूआत 25 सितम्बर 2014 को की।

महत्त्वपूर्ण बिन्दू

1. भारत में उद्योग का विकास अति प्राचीन काल से रहा है, हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ों में 5000–8000 वर्ष पूर्व वस्त्र निर्माण एवं विभिनन वस्तु निर्माण की लघु इकाइयाँ कार्य करती थी।
2. सूती वस्त्र उद्योग : उद्योग का वास्तविक विकास 1854 ईस्वी में मुम्बई में हुआ। कृषि के बाद दूसरा सबसे बड़ा रोजगार प्रदान करने वाला क्षेत्र, प्रमुख केन्द्र अहमदाबाद, मुम्बई है।
3. प्रमुख सूत वस्त्र उत्पादक राज्य – महाराष्ट्र, गुजरात, तमिलनाडु, पंजाब, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, राजस्थान आदि।
4. सीमेन्ट उद्योग : भारत में तेजी से विकसित होने वाला उद्योग 209 बड़े संयंत्र जिनकी उत्पादन क्षमता 37.83

करोड़ टन है, विश्पव का दूसरा बड़ा उत्पादक देश

5. प्रमुख सीमेन्ट उत्पादक राज्य : तमिलनाडु, मध्य प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, राजस्थान, गुजरात, कर्नाटक, झारखण्ड आदि।
6. चीनी उद्योग : कृषि आधारित उद्योग जिसका विकास 3000 ई.पू. कुटीर उद्योग के रूप में, यह एक वजन हास्व उद्योग, उत्तर भारत से दक्षिण भारत की और स्थानान्तरित होने की प्रवृति।
7. चीनी उत्पादक राज्य : महाराष्ट्र, उत्तरप्रदेश, बिहार, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु, कर्नाटक आदि राज्य।
8. लोह–इस्पाल उद्योग : आधारभूत उद्योग, भार हास्व मूलक उद्योग, प्रमुख इकाइयाँ, टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी, भारतीय लोहा और इस्पात कारखाना, विश्वेश्वरैया आयन एण्ड स्टील कम्पनी लिमिटेड, राउरकेला, भिलाई, दुर्गापुर इस्पात केन्द्र, बोकारो इस्पात संयंत्र आदि।
9. एल्यूमिनियम उद्योग : शुरूआत 1886, 2014–15 में 3.96 मिलियन टन उत्पादन प्रमुख उत्पादक इकाइयां इण्डियन एल्युमिनियम कम्पनी, भारत एलुमिनियम कम्पनी लिमिटेड, हिन्दुस्तान एल्युमिलियम कार्पोरेशन लिमिटेड आदि।
10. इंजिनियरिंग उद्योग : सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उद्योग की समस्याएँ, कच्चे माल का अभाव पूँजी का अभाव, अत्यधिक कर भार, विदेशी प्रतिस्पर्धा, उत्पादन क्षमता का पूर्ण उपयोग न होना, क्वालिटी नियन्त्रण का अभाव।
11. मेक इन इण्डिया कार्यक्रम का प्रारम्भ 25 सितम्बर 2014 को किया गया, जिसका प्रमुख उद्देश्य देश के औद्योगिक विकास को गति देना है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुचयनात्मक

1. भारत में चीनी का सबसे बड़ा उत्पादक राज्य है–
   (अ) उत्तर प्रदेश (ब) बिहार
   (स) महाराष्ट्र (द) तमिलनाडु
2. रेल के डिब्बे बनाने का सबसे नया कारखाना किस जगह स्थापित किया गया है।
   (अ) बनारस (ब) रायबरेली
   (स) कपूरथला (द) पेराम्बेर
3. सीमेन्ट उद्योग की स्थापना के लिए किस कच्चे माल की उपस्थिति सर्वाधिक प्रभावी होती है।
   (अ) चूना पत्थर (ब) मैंगनीज
   (स) जिप्सम (द) इनमें से कोईनहीं
4. बोकारो में स्थित लौह–इस्पात उद्योग किस देश में सहयोग से स्थापित किया गया है।
   (अ) संयुक्त राज्य अमेरिका
   (ब) पूर्व सोवियत संघ
   (स) ब्रिटेन (द) जर्मनी
5. टाटा लौह एवं इस्पात प्लांट को लौह–अयस्क की प्राप्ति होती हैं–
   (अ) बेलाडिया से (ब) मयूरभंज से
   (स) सिंहभूम से (द) बोनाई से
6. भारत में सर्वप्रथम कौनसा उद्योग शुरू हुआ–
   (अ) कपड़ा उद्योग (ब) लौहा उद्योग
   (स) जूट उद्योग (द) संगमरमर उद्योग
7. भारत में कच्चे माल के निकट जिस उद्योग का सर्वाधिक केन्द्रीयकरण हुआ है, वह है–
   (अ) लौह–इस्पात (ब) ऊनी वस्त्र
   (स) चीनी (द) सूती वस्त्र
8. कोयला क्षेत्रों के निकट स्थित लौह–इस्पात उद्योग का केन्द्र है–
   (अ) भद्रावती (ब) बोकारो
   (स) जमशेदपुर (द) विशाखापट्टनम
9. सर्वाधिक सूती वस्त्र के कारखाने किस राज्य में स्थापित है–
   (अ) महाराष्ट्र (ब) गुजरात
   (स) तमिलनाडु (द) मध्यप्रदेश
10. भारी इंजिनियरिंग उद्योग का केन्द्र है–
    (अ) रांची (ब) बंगलूरू
    (स) हैदराबाद (द) पुणे
11. सीमेन्ट उद्योग किस राज्य में सबसे अधिक विकसित है–
    (अ) मध्य प्रदेश (ब) राजस्थान
    (स) गुजरात (द) कर्नाटक

अतिलघूत्तरात्मक

12. झारिया किस खनिज के लिए प्रसिद्ध है?
13. लाखेरी किस राज्य में स्थित है?
14. टिस्को का पूरा नाम लिखिए।
15. भारत के किस शहर में लोह स्तम्भ स्थापित है?

16. भारत में समुद्र सीपियों द्वारा सीमेण्ट निर्माण पहली बार कब और कहाँ प्रारम्भ किया गया?

लघूत्तरात्मक

17. इंजिनियरिंग उद्योग की कोई तीन समस्याएँ लिखिए।
18. कच्चा माल उद्योगों के लिए चुम्बक का कार्य करता है?टिप्पणी लिखिए।
19. वायुयान निर्माण उद्योग के प्रमुख केन्द्रों के नाम लिखिए।
20. विशाखापट्टनम लोह–इस्पात संयंत्र की विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।
21. राजस्थान में सीमेन्ट उद्योग के विकास के लिए उत्तरदायी कारकों का संक्षेप में बताइये।
22. चीनी उद्योग का उत्तरी भारत से दक्षिणी भारत की ओर स्थानान्तरित हो रहा है। कारण स्पष्ट कीजिए।

निबन्धात्मक

23. भारत में सूती वस्त्र उद्योग के विकास का संक्षिप्त विवरण लिखिए। यह उद्योग महाराष्ट्र और गुजरात में क्यों अधिक केन्द्रित हैं?
24. भारत में लौह इस्पात उद्योग के स्थानीयकरण के कारकों को समझाते हुए वितरण का वर्णन कीजिए।
25. भारत में एल्युमिनियम उद्योग का विस्तार से वर्णन कीजिए।

पाठ 20
परिवहन (Transport)

परिवहन से आशय यात्रियों एवं वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर लाने ले जाने से है। परिवहन के साधन किसी देश के उद्योग व कृषि के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जिस तरह शरीर में रक्त वाहिकाओं (धमनियों) का कार्य है वहीं महत्त्व (उपयोग) किसी राष्ट्र के लिए वहां के परिवहन का है।

किसी भी देश में परिवहन तंत्र की सघनता और आधुनिकता वहाँ के आर्थिक विकास का संकेत है। भारत एक विशाल देश है, जिसमें प्राकृतिक, आर्थिक, सामाजिक व अन्य विविधताएँ पाई जाती है। इन विविधताओं को एकता के सूत्र में बांधने में परिवहन साधनों का विशेष योगदान है।

परिवहन के माध्यम से ही कृषि तथा औद्योगिक उत्पादन उपभोक्ताओं तक पहुँचते हैं। रेखाचित्र 20.1 में परिवहन के साधनों

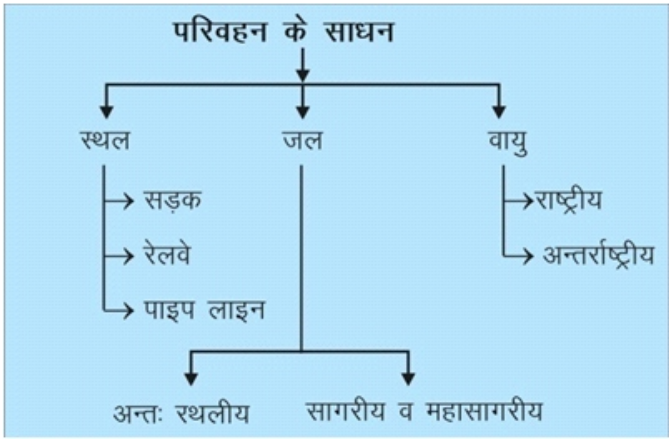

रेखाचित्र 20.1 : परिवहन के साधन

का वर्गीकरण दर्शाया गया है।

परिवहन तंत्र के विकास को प्रभावित करने वाले कारक

भारत एक विशाल देश है जहाँ सभी प्रकार की विविधताएँ उपस्थित है। परिवहन के साधन उनका वितरण और सघनता कई कारकों द्वारा नियन्त्रित होती है। परिवहन तंत्र के विकास को प्रभावित करने वाले कारकों का विवरण इस प्रकार है–

(1) भौतिक कारक : 50 प्रतिशत से अधिक रेलमार्ग उत्तर भारत में है। कच्ची सड़क सर्वाधिक मैदानी भाग में जबकि पक्की सड़कें पठारी क्षेत्र में।

(2) सांस्कृतिक कारक : पश्चिमी रेगिस्तान में कम विकास हुआ है। वहाँ जनसंख्या निवास कम है।

(3) आर्थिक कारक : खनिज एवं औद्योगिक बहुलता वाले क्षेत्रों में परिवहन मार्गों का विकास अधिक होता है।

(4) सुरक्षात्मक कारक : सीमाओं की सुरक्षा एवं सैनिकों की आवश्यकताओं, सैन्य सामग्री पहुँचाने के लिए विकास किया जाता है। सन् 1962 में चीन के आक्रमण का मुकाबला हम परिवहन साधन के अभाव में ही पूरी शक्ति के साथ नहीं कर सके।

(5) राजनैतिक कारक : सरकारी नीति व राजनैतिक इच्छा शक्ति व उद्देश्य का भी परिवहन विकास पर प्रभाव पड़ता है।

सड़क परिवहन

भारत में सड़क परिवहन का महत्त्व आदिकाल से रहा है। यह परिवहन के अन्य साधनों का आधार स्तम्भ है।

भारत में सड़कों की व्यवस्था मोहन जोदड़ो और हड़प्पा में की

गई खुदाई से पता लगा कि 5000–8000 वर्ष पूर्व भी भारत में पक्की सड़के थी। चन्द्रगुप्त मौर्य ने पाटलीपुत्र को उत्तरी–पश्चिमी सीमान्त से जोड़ने के लिए सड़क का निर्माण करवाया था जो, पक्की थी एवं उसमें पानी की निकासी की भी समुचित व्यवस्था थी। सम्राट अशोक ने भी इस सड़क का विस्तार किया एवं अन्य राजकीय मार्गों का सुधारा किया।

ईसा से लगभग 400 वर्ष पूर्व से 300 ई. तक उत्तरी भारत में दो मार्गों से आन्तरिक व्यापार होता था, जो पाटलीपुत्र से काबुल सिन्ध घाटी तक विस्तृत था।

700 ई. में चीनी यात्री ताओसन ने भारत और चीन के मध्य तीन मुख्य व्यापारिक मार्गों का उल्लेख किया है।

शेरशाह सूरी ने ढाका से वाराणसी, आगरा, दिल्ली होते हुए लाहोर और वहां से सिन्धु नदी तक ग्रांट ट्रंक रोड़ बनवाई, जिसकी शाखाएँ आगरा से जोधपुर, आगरा–इन्दौर और लाहौर से मुल्तान तथा आगरा से चित्तौड़गढ़ तक जाती थी।

ब्रिटिश शान ने भी भारत में सड़क मार्गों का निर्माण करवाया लेकिन रेलवे परिवहन के आ जाने के पश्चात उन्होंने सड़क परिवहन की अपेक्षा उस पर अधिक ध्यान दिया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् पुनः सड़क मार्गों का विकास तीव्र गति से हुआ। उपलब्ध आकड़ों के अनुसार देश में 2015 में सड़कों की कुल लम्बाई 48.85 लाख किमी. थी। जो देश के कुल परिवहन का लगभग 80% तक करती है।

सड़क परिवहन का महत्व

(1) उपभोक्ता के घर तक पहुँच।

(2) व्यापकता : उबड़–खाबड़ मरूस्थली सभी धरातलीय क्षेत्रों में सड़क निर्माण संभव।

(3) कृषि विकास में सहायक : कृषि उपकरण, बीज खाद को खुले व अतिरिक्त उत्पादन को बाजार तक पहुँचाने में सहायक।

(4) लचीलापन : कहीं भी रोक कर सवारी व सामान लिया जा सकता है।

(5) शीघ्र खराब होने वाली वस्तुओं का परिवहन : दूध, सब्जी, फल जैसी सामग्री को मांग क्षेत्र तक पहुँचाने में सहायक।

(6) सड़क निर्माण और मरम्मत का खर्च अन्य परिवहन साधन की अपेक्षा कम।

(7) कम दूरी के लिए आदर्श परिवहन साधन।

(8) युद्ध एवं अकाल, प्राकृतिक आपदा के समय सड़क मार्ग ही सदैव उपयुक्त रहते हैं।

(9) ग्रामीण भारत के समुचित विकास हेतु सर्वप्रिय साधन।

(10) लघु से वृहत उद्योग के विकास में सहायक।

भारतीय सड़कों के प्रकार

सड़क मार्ग के उपयोग एवं महत्त्व की दृष्टि से इन्हें 5 भागों में विभक्त किया जा सकता है।

(1) राष्ट्रीय महामार्ग

(2) राज्यीय / राज्य राजमार्ग

(3) जिला सड़के

(4) ग्रामीण सड़के

(5) सीमावर्ती सड़के

(1) राष्ट्रीय राजमार्ग : राष्ट्रीय राजमार्ग का निर्माण एवं रख–रखाव केन्द्रीय सरकार के नियंत्रण में है। 1950–51 में इनकी लम्बाई 19,700 किमी. थी जो अब 100,475 किमी. है। देश में कुल 292 / 223 राष्ट्रीय राजमार्ग है। राष्ट्रीय राजमार्गों की लम्बाई पूरे देश की कुल सड़कों की लम्बाई की मात्र 1.7 प्रतिशत है किन्तु ये सड़के यातायात का 40 प्रतिशत भाग वहन करते हैं।



चित्र 20.1 : राष्ट्रीय राजमार्ग

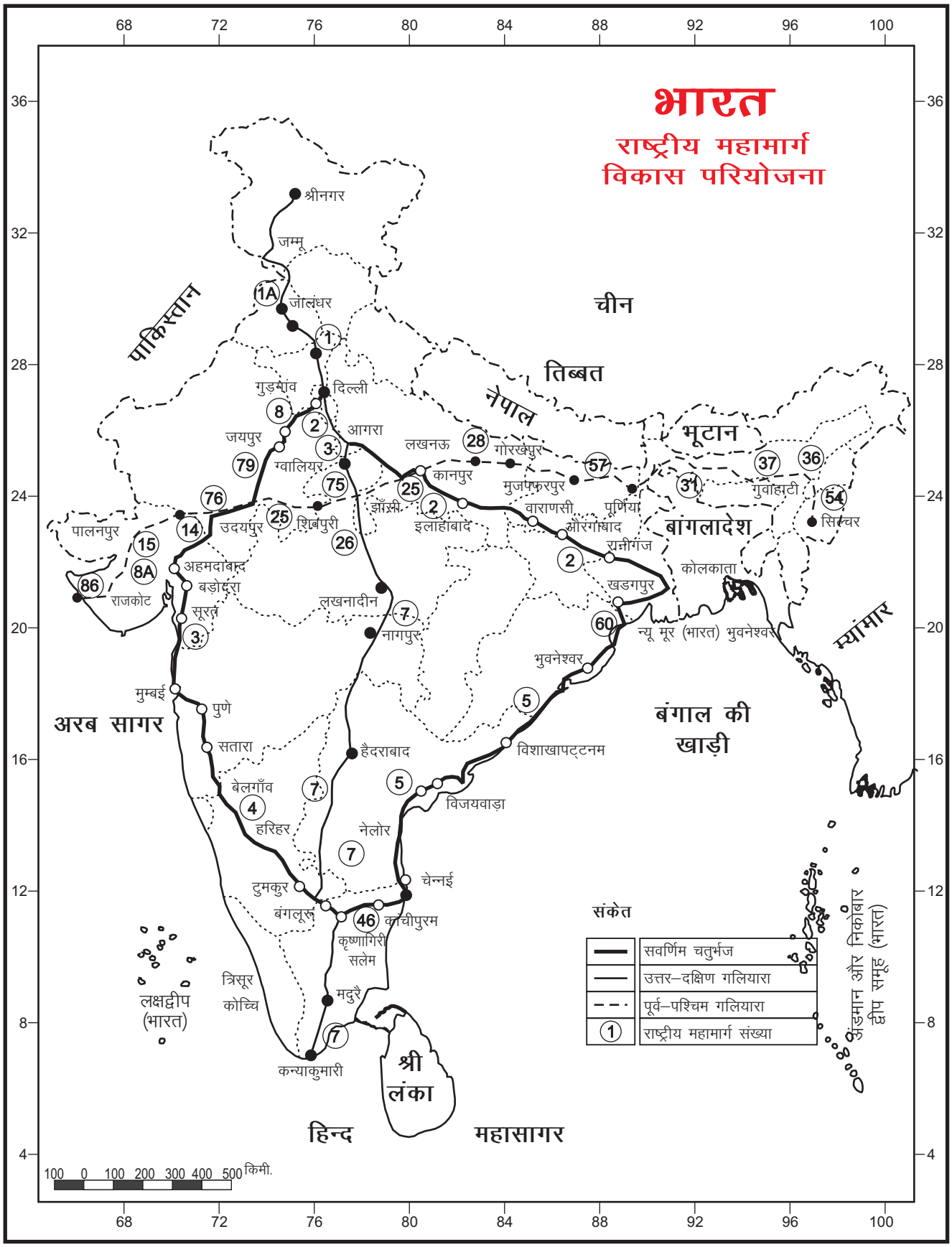

मानचित्र 20.1 : राष्ट्रीय महामार्ग विकास परियोजना

स्वर्णित चतुर्भुज परियोजना : पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी की महत्वाकांक्षा योजनाओं में से एक, इसके अन्तर्गत 5846 किमी. लम्बी 4 व 6 लेन वाले राष्ट्रीय राजमार्ग जो देश के चार महानगरों दिल्ली–मुम्बई– चेन्नई–कोलकाता को जोड़ते हैं। इसके निर्माण के बाद महानगरों के बीच समय, दूरी तथा यातायात की लागत बहुत कम हो गयी है।

उत्तर–दक्षिण तथा पूर्व–पश्चिम गलियारा : उत्तर– दक्षिण गलियारे का उद्देश्य जम्मु व कश्मीर के श्रीनगर से कन्याकुमारी (तमिलनाडु) तक 4016 किमी पूर्व एवं पश्चिम गलियारे असम से सिलचर से गुजरात में पोरबन्दर को 3640 किमी. लम्बे मार्ग द्वारा जोड़ना है।

BOT (Built Operate and Transfer) : सड़क मार्गों पर भारी दबाव तथा सड़कों के विकास के लिए बजट आवंटन अप्रर्याप्त होने के कारण राष्ट्रीय राजमार्गों के निजी में बनाओ–चलाओं और हस्तान्तरित करो BOT परियोजना शुरू की है।

(1) एक्सप्रेस राजमार्ग : देश में 5 एक्सप्रेस राजमार्ग बनाये गए हैं– (क) मुम्बई–शांताक्रूज, (ख) मुम्बई–थाणे, (ग) कोलकाता–दमदम, (घ) पारद्वीप–सुकिन्धखान क्षेत्र, (च) दुर्गापुर–कोलकाता राजमार्ग।

(2) राज्य राजमार्ग : इन सड़कों का निर्माण एवं रख –रखाव का कार्य राज्य सरकार द्वारा किया जाता है। ये राजधानी से जिला मुख्यालय को जोड़ती है। ये मार्ग राष्ट्रीय महामार्गों से जुड़े होते हैं। 2010–11 में इन सड़कों की लम्बाई 163.9 हजार किमी. थी जो देश की सड़कों की कुल लम्बाई का 4 प्रतिशत है।

(3) जिला सड़क मार्ग : जिला मुख्यालय को जिले के अन्य स्थानों से मिलाती है। इनकी कुल लम्बाई लगभग 4.7 लाख किमी. है जो देश की कुल सड़क का 14 प्रतिशत है।

(4) ग्रामीण सड़के : ग्रामीण क्षेत्रों को शहरों, कस्बों एवं ग्रामीण सड़क मार्गों को जोड़ने के लिए प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना कार्य प्रगति पर है। भारत की कुल सड़क का लगभग 80 प्रतिशत भाग ग्रामीण सड़क के रूप में है।

(5) सीमावर्ती सड़के : 1960 में 'सीमा सड़क संगठन' (Border Road Organisation) की स्थापना की गई। संगठन का मुख्य उद्देश्य सीमावर्ती क्षेत्रों में सड़कों के निर्माण को बढ़ावा देना था। सन् 1960 से 2005 तक संगठन में 40,450 किमी. लम्बी सड़कों को निर्माण कार्य पूरा किया है तथा 35577 किमी. लम्बी सड़कों को पक्का किया है। सीमा सड़क संगठन ने लद्दाख से लेह तक संसार की सबसे ऊँची सड़क का भी निर्माण किया है।

रेल परिवहन

भारतीय रेल देश का सबसे बड़ा राष्ट्रीयकृत उपक्रम है। यह भारतीय अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों (कृषि उद्योग, व्यापार सेवा) के विकास में सहयोग करने वाला मुख्य परिवहन माध्यम है।

रेल परिवहन राष्ट्रीय सुरक्षा, शान्ति व्यवस्था भौगोलिक एवं सांस्कृतिक एकता स्थापित करने एवं उसे बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता रहा है।

भारत में रेलों का विकास

विश्व की प्रथम रेल इग्लेण्ड में 1825 में चलाई गई थी। भारत में प्रथम रेल 16 अप्रेल 1853 में मुम्बई से थाणे के मध्य 34 किमी. में चलाई गई। 1857 की क्रान्ति के बाद अंग्रेजों ने भारत के प्रशासन पर अपनी पकड़ बनाने, विदेशी आक्रमणों में मदद पहुँचाने तथा इग्लेण्ड के हितों को साधने के लिये रेल मार्गों का तीव्र विकास किया।

विशाल रेलमार्ग के साथ भारतीय रेलवे एशिया का सबसे बड़ी व विश्व की दूसरे स्थान की रेल प्रणाली हो गई है। 31 मार्च 2015 के अनुसार भारतीय रेलवे के पास 10822 इंजन है, जिसमें से 43 भाप इंजन, 5714 डीजल इंजन है। 5065 विद्युत इंजन है।

देश में रेलवे स्टेशनों की संख्या 7112 है। भारतीय रेलवे में 13.26 लाख श्रमिकों को रोजगार मिला हुआ है।

रेलों की प्रशासनिक व्यवस्था

भारतीय रेलवे का संचालन केन्द्र सरकार द्वारा किया जाता है। सन् 1949 में देश में 9 राजकीय एवं 28 देशी रियासतों की रेल चलती थी, जिनका 1950 में राष्ट्रीयकरण कर 8 रेलमण्डल बनाए गए। 1966 में अधिनियम द्वारा 9 रेलमण्डलों में विभक्त किया गया। भारतीय रेल निरन्तर प्रगति पथ पर अग्रसर है और रेलमार्गों का जाल निरन्तर सघन होता जा रहा है। जिसके कारण यात्री एवं माल का आवागमन में तीव्र वृद्धि होने से रेलमण्डलों के पूर्नगठन की आवश्यकता महसूस की गई और 1 अप्रेल 2003 से 16 मण्डल कार्यशील है।

सारणी 20.1 : देश के विभिन्न रेल मण्डल

क्र.सं.	रेल मण्डल का नाम	मुख्यालय
1	उत्तर रेलवे	नई दिल्ली
2	पूर्वोत्तर रेलवे	गोरखपुर
3	उत्तर–पूर्व सीमान्त रेलवे	मालेगांव (गुवाहटी)
4	उत्तर मध्य रेलवे	इलाहाबाद
5	उत्तर पश्चिम रेलवे	जयपुर
6	पूर्वीरेलवे	कोलकाता
7	दक्षिण पूर्वी रेलवे	कोलकाता
8	पूर्वी मध्य रेलवे	हाजीपुर
9	पूर्वी तटवर्ती रेलवे	भुवनेश्वर
10	दक्षिण पूर्व मध्य रेलवे	बिलासपुर
11	मध्य रेलवे	मुम्बई सेन्ट्रल
12	पश्चिमी रेलवे	चर्चगेट मुम्बई
13	पश्चिमी मध्य रेलवे	जबलपुर
14	दक्षिण रेलवे	चेन्नई
15	दक्षिण मध्य रेलवे	सिकन्दराबाद
16	दक्षिणी–पश्चिमी रेलवे	हुबली
17	मेट्रो रेलवे कोलकाता जोन	कोलकाता*

* 25 दिसम्बर 2010 को जोन की घोषणा। इसके अन्तर्गत एक ही जोन डिविजन है।

भारतीय रेल का तेजी से आधुनिकीकरण हो रहा है, भारतीय रेल के महत्त्वपूर्ण तथ्यों को बिन्दुवार वर्णित किया गया है।

- गतिमान एक्सप्रेस :

गतिमान एक्सप्रेस ट्रेन को रेलमंत्री ने 5 अप्रेल 2016 को हजरत निजामुद्दीन स्टेशन से रवाना किया जो आगरा केंट तक 187 किमी. की दूरी 100 मिनट में तय करेगी। 12049–12050 रेलगाड़ी देश की पहली हाई स्पीड ट्रेन होगी। इस रेलगाड़ी में सुरक्षा के साथ परिचायिका भी होगी। वाई–फाई के साथ आधुनिक तकनीकों से सुसज्जित होगी।

- हिम सागर एक्सप्रेस

देश की सबसे लम्बी दूरी 3729 किमी. तय करने वाली जो कन्याकुमारी से जम्मूतवी तक चलती है।

(ii) मथुरा–पलवलन 180 किमी प्रति घंटे की रफ्तार से चलेगी।

- भारत में बुलेट ट्रेन

मुम्बई–अहमदाबाद रेलमार्ग के बाद सरकार ने दिल्ली से 3 और शहरों तक बुलेट ट्रेन चलाने का निर्णय लिया है।

- देश का पहला रेल विश्वविद्यालय

बड़ोदरा (गुजरात) में स्थापित करने की 25 फरवरी 2016 रेल बजट में घोषणा की गई।

- विश्व विरासत में भारतीय रेल

1. माउन्टेट रेलवे (दार्जिलिंग हिमालयन रेलवे)– 1999

2. नीलगिरि पर्वतीय रेलवे – 2005 में शामिल किया गया।

3. कालका शिमला रेलवे – 2008 में शामिल किया गया।

- फ्रंट कोरिडोर परियोजना

भारतीय रेल की अब तक की सबसे महत्वाकांक्षी परियोजना डेडिकेटिड फ्रेंट कॉरिडोर परियोजना के अन्तर्गत देश के चार महानगरों (दिल्ली, मुम्बई, कोलकात्ता, चेन्नई) को जोड़ने का परिचालन किया जाएगा।

- कोंकण रेलवे परियोजना

देश का समृद्ध पश्चिमी तटीय प्रदेश 26 जनवरी 1998 तक रेल सेवा से वंचित था। उबड़–खाबड़ धरातल जिसमें हजारो छोटी–बड़ी नदियों की घाटियाँ हो, रेलमार्ग बनाना नामुमकिन सा था। भारतीय इंजीनियरों ने इस नामुमकिन कार्य को मुमकिन कर दिखाया। यह मार्ग मुम्बई के निकट रोहा से मंगलोर तक 760 किमी. लम्बा है। मार्ग में 2000 पुल (जिसमें 179 बड़े) तथा 91 सुरंगे (एक सुरंग 6.5 किमी लम्बी है) शरावती नदी पर पुल 2065.8 मीटर लम्बा है।

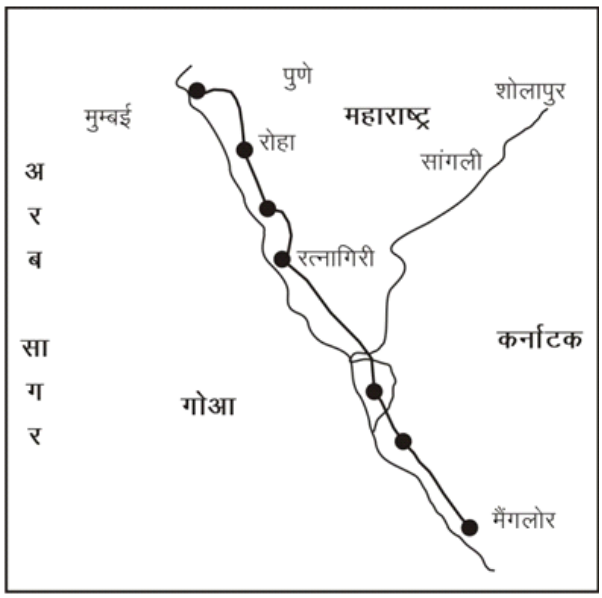

मानचित्र 20.2 : कोकण रेलमार्ग

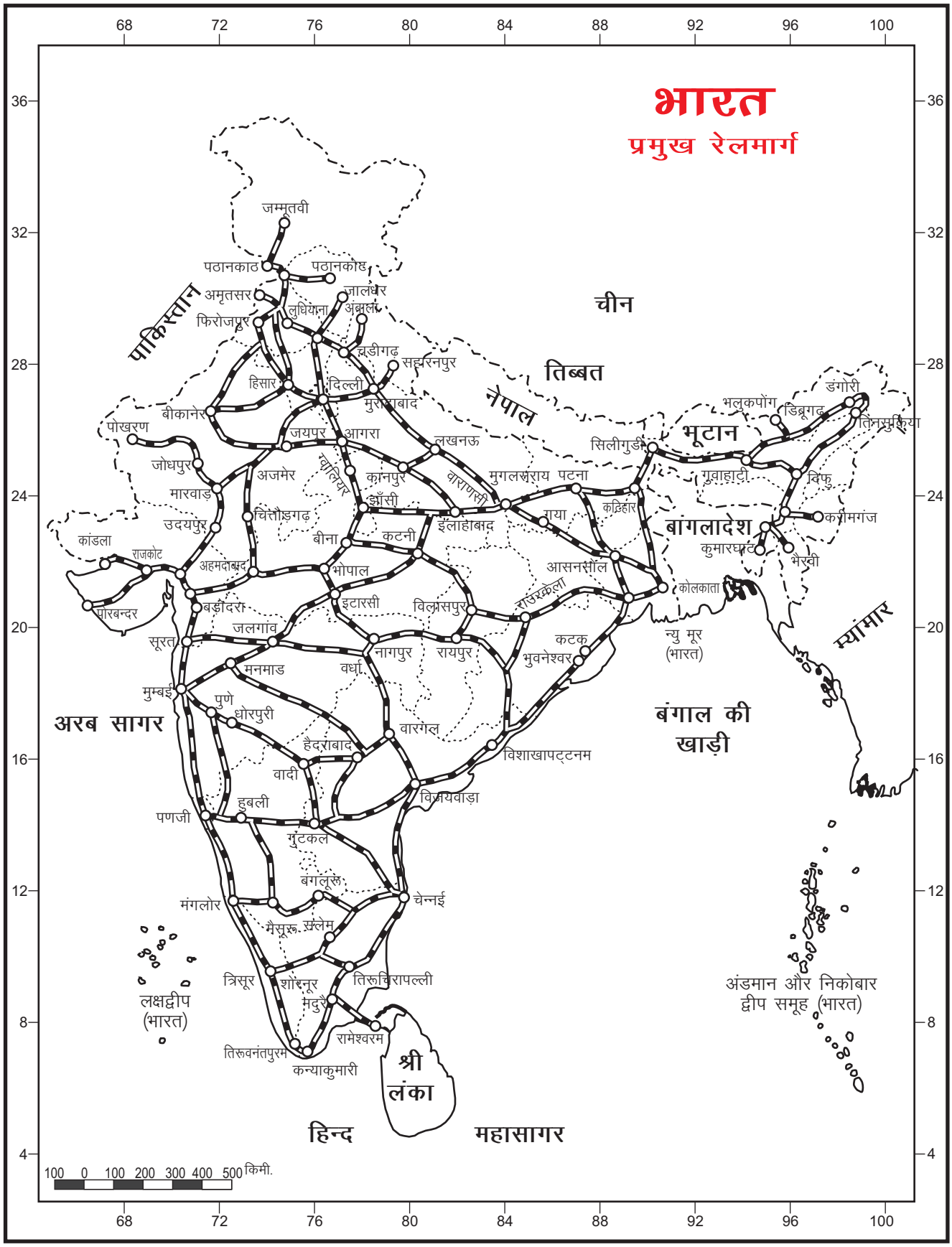

मानचित्र 20.3 : भारत : प्रमुख रेलमार्ग

- मेट्रो रेल : भारत में मेट्रो रेल का शुभारम्भ 1972 में कोलकता मेट्रो स्टेशन के साथ हुआ। इसके पश्चात् दिल्ली मेट्रो, बेगलूरू मेट्रो, चेन्नई मेट्रो, हेदराबाद मेट्रा, जयपुर मेट्रो का शुभारंभ हो चुका है। यह अन्तःनगरीय द्रुतगामी रेल सेवा है।
- मोनो रेल : देश की पहली मोनो रेल मुम्बई में 1 फरवरी 2014 को प्रारम्भ हुई।

वायु परिवहन

वायु परिवहन परिवहन का सबसे तीव्रतम एवं आधुनिक व महंगा साधन है। विशाल क्षेत्र एवं औद्योगिक एवं व्यापारिक केन्द्रों के मध्य अत्यधिक दूरियों को शीघ्रता से पार करने के लिए वायु परिवहन ही महत्त्वपूर्ण साधन है। इसके साथ ही दुगर्म दूरस्थ स्थानों पर पहुँच, प्राकृतिक आपदाओं में राहत हेतु उत्तम माध्यम है। भारत में इसकी शुरूआत 1911 में इलाहाबाद एवं नैनी के बीच प्रथम उड़ान के साथ ही हुई थी लेकिन वास्तविक विकास प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् ही हुआ था। देश (भारत) में वायु परिवहन की सुविधाएँ प्रदान करने का दायित्व भारतीय विमान पतन प्राधिकरण को है। प्राधिकरण 23 अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डों सहित 97 घरेलू हवाई अड्डों और 25 नागरिक विमान टर्मिनलों सहित 127 हवाई अड्डों का प्रबन्धन कर रहा है। भारत द्वारा 57 देशों के साथ वैमानिक समझौते किये गए हैं।

1953 में भारत की वायु परिवहन का राष्ट्रीयकरण किया गया और सभी कम्पनियों को दो नवनिर्मित निगमों इण्डियन एअर लाइन्स निगम व एअर इण्डिया के अन्तर्गत कर दिया गया। इसके बाद वायुदूत व पवन हंस लिमिटेड अन्तर्देशीय वायु परिवहन हेतु स्थापित की गई।

1 मार्च 1994 से इण्डियन एअर लाइन्स व एअर इण्डिया का एकाधिकार समाप्त कर दिया गया। परन्तु अब सार्वजनिक क्षेत्र की इण्डियन एअर लाइन्स व एअर इण्डिया के विलय के पश्चात् 'द नेशनल एविएशन कम्पनी ऑफ इण्डियास लिमिटेड' नामक कम्पनी गठित की गई है। लेकिन यह कम्पनी 'एअर इण्डिया' के नाम से ही सेवा उपलब्ध कराएगी।

- ग्रीन फील्ड हवाई अड्डा

भारत में हैदराबाद का ''राजीव गांधी अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डा'' एशिया का प्रथम ग्रीन एयरपोर्ट है। जुलाई 2012 में जोधपुर हवाई अड्डे को भी ग्रीन फील्ड के रूप में विकसित करने की अनुमति भारतीय वायु सेना द्वारा प्रदान कर दी गई थी। ग्रीन एयरपोर्ट से तात्पर्य ऐसे हवाई अड्डों से है जहाँ पर कार्बन उत्सर्जन को कम करने सम्बन्धी विधियों को प्रयोग में लाया जाता है।

सिक्किम में वेरूयांग हवाई अड्डा 309.46 करोड़ लागत का कार्य शुरू हो चुका, चेतू (नागालेण्ड), इटानगर (अरूणाचल प्रदेश) में भी ग्रीन फील्ड हवाई अड्डे का निर्माण संभावित है।

अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे : इसमें प्रमुख है दिल्ली का इन्दिरा गांधी अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डा, कोलकता का नेताजी सुभाष चन्द्र बोस हवाई अड्डा (दमदम), मुम्बई का शांताक्रुज (छत्रपति शिवाजी) हवाई अड्डा, चेन्नई का मीनाम्बक्म हवाई अड्डा अहमदाबाद, हैदराबाद, बैंगलोर है।

- हवाई अड्डों के लिए अनुकुल दशाएँ

(1) भारत का विशाल आकार।

(2) भारत की स्थिति विश्व के प्रमुख वायु मार्गों पर है।

(3) वायुयान निर्माण के लिए पर्याप्त एल्यूमिनियम उपलब्ध है।

(4) वायुयान निर्माण हेतु तकनीकी ज्ञान भी देश में उपलब्ध है।

(5) हवाई अड्डों के निर्माण हेतु समतल एवं कठोर भूमि की उपलब्धता।

(6) देश की विशाल जनसंख्या।

(7) देश का आर्थिक विकास।

(8) देश का विशाल पर्यटन उद्योग।

ऐसे अनेक कारक है जो इस परिवहन के साधन के विकास में अपनी भूमिका निर्वहन करते हैं।





चित्र 20.2 : वायु परिवहन (घरेलू एवं अन्तर्राष्ट्रीय)

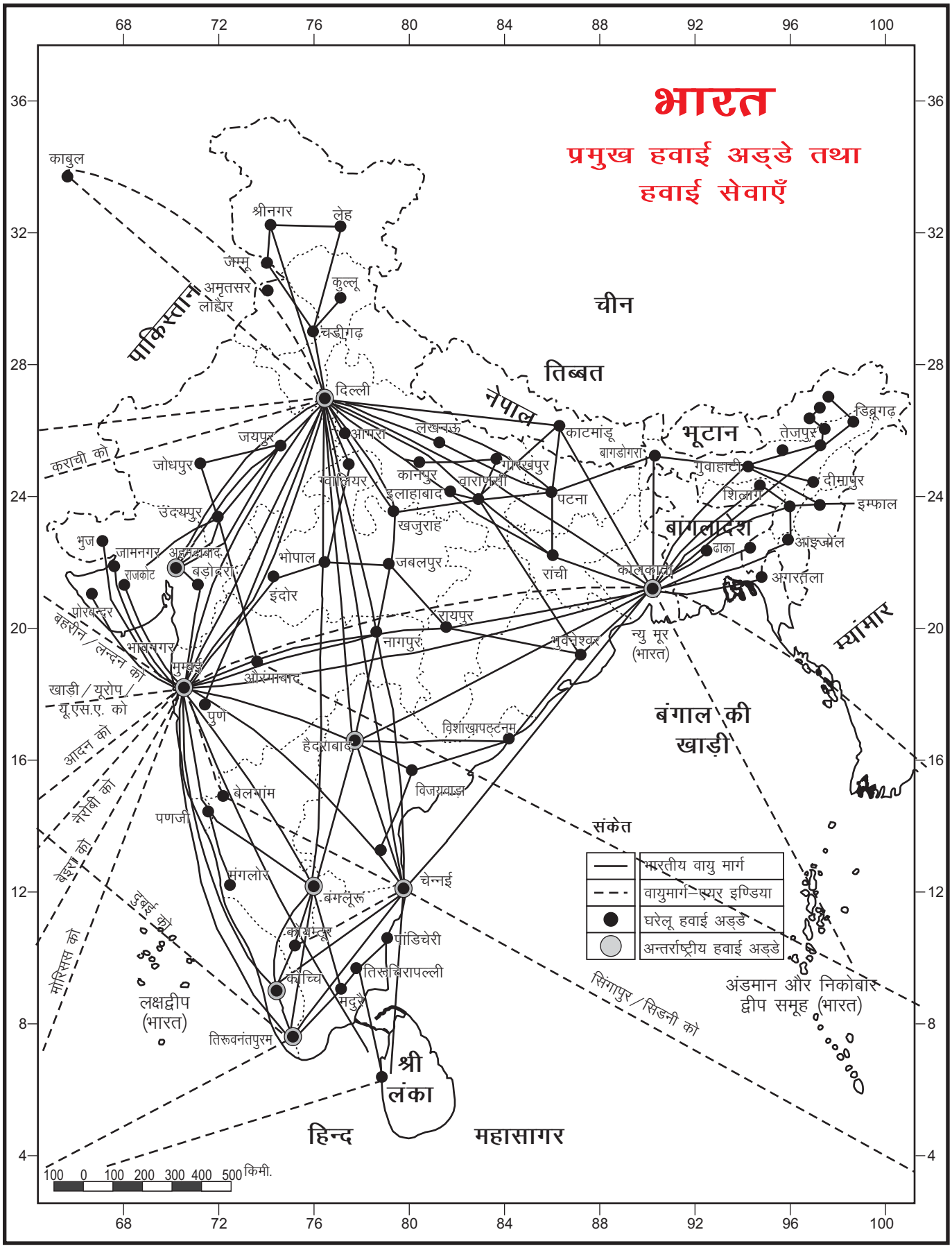

मानचित्र 20.4 : भारतीय प्रमुख हवाईअड्डे एवं हवाई सेवाएँ

जल परिवहन

जल परिवहन सबसे सस्ता है। इसमें परिवहन मार्ग, निर्माण एवं रखरखाव की समस्या नहीं तथा भारी भरकम सामानों का सुरक्षित परिवहन होता है।

भारत के जल परिवहन के विषय में मैगस्थनीज व एरियन के लेखों से ज्ञात होता है कि गंगा और उसकी 17 सहायक नदियों एवं सिन्धु और उसकी 13 सहायक नदियों में नौकाओं द्वारा परिवहन होता था।

भारतीय सामुद्रीक मार्ग पर चोल राजाओं का एकाधिकार था और उनकी जहाजी बेड़ा इतना सस्ता था कि उन्होंने सामुद्रीक मार्ग से विदेशियों को हमले का दुःसाहस नहीं करने दिया। पिछली शताब्दी तक बह्मपुत्र में डिब्रूगढ़ तक तथा गंगा में पटना के आगे तक यमुना में आगरा तक स्टीमर चला करते थे।

रेलमार्गों के विकास के कारण आन्तरिक जल परिवहन कम होने लगा किन्तु इसके विकास के लिए पर्याप्त संभावनाएँ है। भारत व्यापारिक जहाज रानी बेड़े की दृष्टि से विश्व में 16वें स्थान पर है।

भारत के जलमार्ग को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है।

(अ) आन्तरिक जल परिवहन

(ब) महासागरीय जल परिहवन

(अ) आन्तरिक जल परिवहन

भारत के पास अन्तर्देशीय जहाज रानी के लिए 14,500 किमी का जलमार्ग है जिसमें नदियाँ एवं नहरों का योगदान सर्वाधिक है। इसमें से बड़ी नदियों के 3700 किमी. लम्बे मार्ग यंत्रीकृत नोकाओं द्वारा नौगम्य है। इसमें से भी 2000 किमी. लम्बे जलमार्गों का ही प्रयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त देश में 4300 किमी नौगम्य नहरें भी है, जिनमें से केवल 900 किमी. लम्बे नहर मार्ग ही यंत्रीकृत जलपोतों द्वारा नौगम्य है।

देश के सर्वाधिक आन्तरिक जलमार्ग क्रमशः उत्तर प्रदेश, पं. बंगाल, आन्ध्र प्रदेश, असम, केरल, बिहार तथा उड़ीसा है।

जलमार्ग के लिए 27 अक्टूबर 1986 को भारतीय देशीय जलमार्ग प्राधिकरण (Inland Water Ways Authority of India) का गठन किया। नदियों में स्थायी जल मार्ग विकसित करने के लिए सरकार ने 6 महत्त्वपूर्ण जलमार्गों को राष्ट्रीय जलमार्ग घोषित किया। ये मार्ग (i) गंगा में हल्दिया से इलाहाबाद तक 1620 किमी., (ii) ब्रह्मपुत्र में धुबरी से सादिया तक 891 किमी., (iii) केरल में चम्पाकारा नहर 14 किमी., (iv) पश्चिम तट नहर कोल्लम–कोटापुरम खण्ड 168 किमी., (v) केरल में उद्योग मण्डल नहर 22 किमी. (vi) असम में भागा से लखीपुर।

केन्द्रीय सरकार ने इसे और मजबूत करने के लिए राष्ट्रीय जलमार्ग विधेयक 2015 पारित किया।

आन्तरिक जल परिवहन के विकास में बाधाएँ

(i) नदियों का मौसमी होना, (ii) जल स्तर में परिवर्तन, (iii) जल प्रपात, (iv) अवसाद की अधिकता, (v) सदावाहिनी नदियों से सिंचाई की नहरें निकालने से जल की कमी आना, (vi) तटीय क्षेत्र की नदियों में लवणीय होना।

आन्तरिक जल परिवहन के लाभ

(i) सबसे सस्ता परिवहन साधन, (ii) अन्य साधनों की तरह रख–रखाव पर खर्च नहीं, (iii) ऊर्जा की बचत, (iv) भारी सामान के लिए उपयुक्त, (v) वर्षा काल में पूर्वात्तर में सड़के रेलमार्ग अवरूद्ध हो जाते हैं, (vi) जल परिवहन में प्रदूषण कम होता है।

(ब) महासागरीय जल परिवहन

समुद्र अथवा नदी के किनारे पर स्थित वह नगर जिसमें एक पोताश्रय होता है जहाँ जहाजों से माल उतारने तथा चढ़ाने की सुविधा होती है बन्दरगाह कहलाता है।

भारत की 7517 किमी लम्बे समुद्र तट रेखा व 20 लाख वर्ग किमी से अधिक का समुद्री आर्थिक क्षेत्र है। सम्पूर्ण तट रेखा पर 13 प्रमुख पत्तन तथा 20 लघु एवं मध्यम पत्तन (बन्दरगाह) है।

देश का लगभग 95% (मूल्य स्तर पर 70%) व्यापार समुद्री मार्ग से होता है।

13 बड़े बन्दरगाहों द्वारा कुल समुद्री व्यापार का 76% पूरा किया जाता है। देश में 200 मध्यम एवं छोटे बन्दरगाह है।

भारतीय जहाज रानी निगम लिमिटेड

देश की सबसे बड़ी जहाजरानी कम्पनी को 'प्राइवेट लिमिटेड' से बदलकर 'पब्लिक लिमिटेड' कर दिया गया। कम्पनी को भारत सरकार ने 24 फरवरी 2000 को 'मिनी रत्न' का खिताब दिया। कम्पनी की देश की कुल भार वहन क्षमता का 3.5 प्रतिशत है। वर्तमान में कम्पनी के पास बेड़े में 84 पोत है।

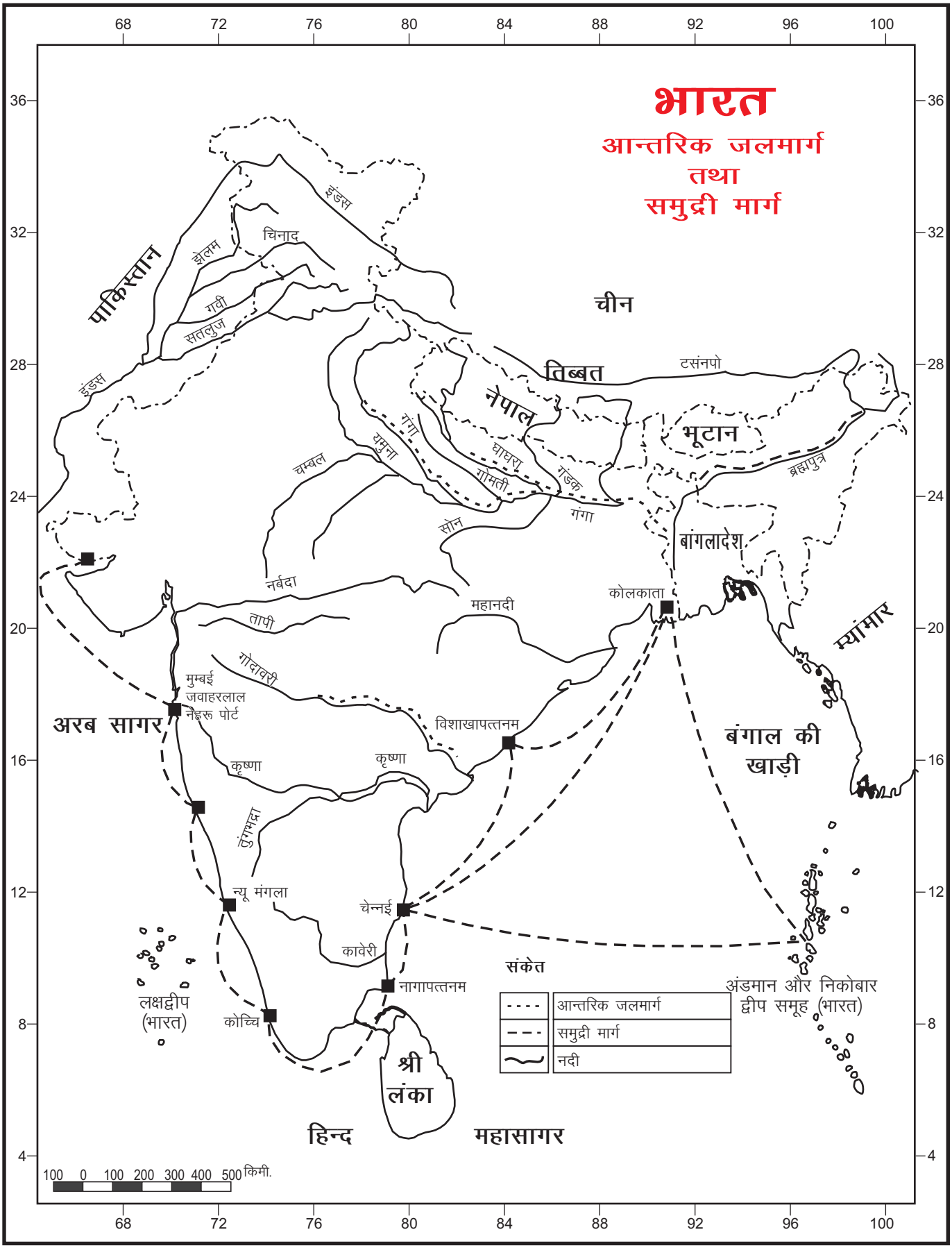

मानचित्र 20.5 : भारत : आन्तरिक जलमार्ग एवं समुद्री मार्ग

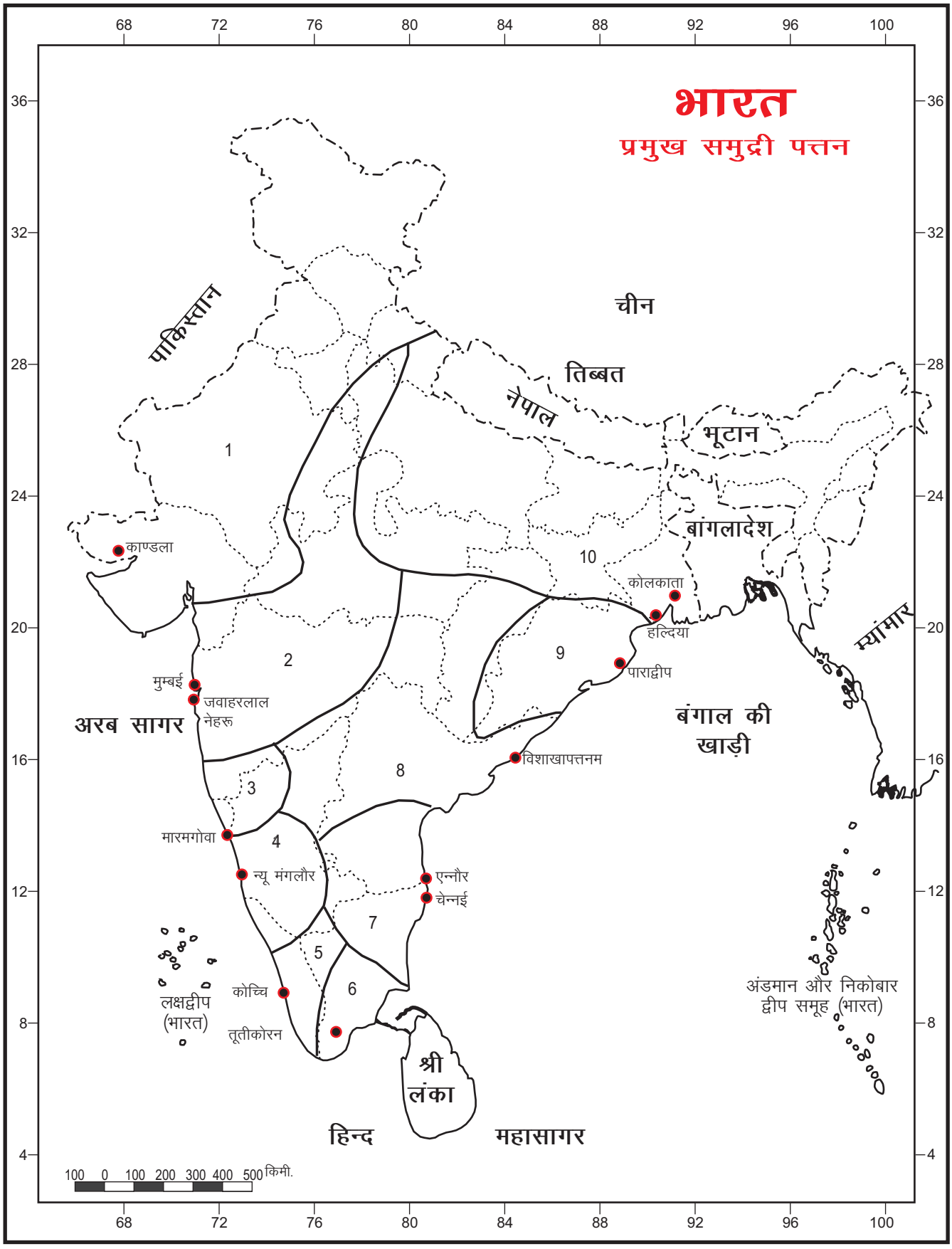

मानचित्र 20.6 : भारत प्रमुख समुद्री पत्तन

पाइप लाइन परिवहन

पाइप लाइन परिवहन का एक नया साधन है। जल आपूर्ति के लिए पाइप लाइन का उपयोग लम्बे समय से हो रहा है। खनिज, तेल, पेट्रोलियम, प्राकृतिक गैस, तरह लोह अयस्क के परिवहन हेतु पाइप लाइन सस्ता एवं द्रुतगामी साधन है।

भारत में 1980 में 5035 किमी. पाइप लाइनें थी जो 2010 में बढ़कर लगभग दस हजार किमी. हो गई।

पाइप लाइन परिवहन के लाभ

(i) सस्ता साधन
(ii) सुगम परिवहन
(iii) उबड़–खाबड़ मार्ग से परिवहन
(iv) ऊर्जा की बचत
(v) समुद्री जल में भी पाइप लाइन बिछाई जा सकती है।
(vi) सुनिश्चित आपूर्ति
(vii) समय की बचत
(viii) प्रदूषण कम

भारत में पाइप लाइनें

(1) नाहरकटिया–नूनभती–बरौनी पाइन लाइन : भारत में सबसेपहली पाइन लाइन जो असम के तेल कुओं से नूनमती तेल शोधन शाला तक 443 किमी की दूरी तय कर तेल ले जाया जाता है। नूनमती से 724 किमी. दूर बिहार के बरोनी तक पाइन लाइन को बढ़ाया गया। इस प्रकार पाइप लाइन की कुल लम्बाई 1167 किमी है। यह पाइप लाइन छोटी बड़ी 80 नदियों को पार करती है, इसके मार्ग में 9 पम्पिंग स्टेशन बनाए गए हैं। बरोनी से कानपुर बरौनी–हल्दिया कार्य 1966 तक पूर्ण हो गया था। लाकवा–रूद्रसागर 1968 में पूर्ण हुआ। मॉरीग्राम राजबन्ध पाइप लाइन डाली गई।

(2) गुजरात की पाइप लाइने : अंकलेश्वर–कोयली तेल पाइन लाइन का निर्माण 1965 में पूर्ण हो गया था। इसके अतिरिक्त कलोल–साबरमती तेल पाइप लाइन, नवगाँव–कालेल–कोयली तेल पाइप लाइन केम्बे धुबरन गैस पाइप लाइन, अंकलेश्वर–बड़ौदा गैस पाइप लाइन, कोयली अहमदाबाद पाइप लाइन है। इसी तरह स्थानीय महत्त्व की कुछ और लाइनें बिछाई गई है।

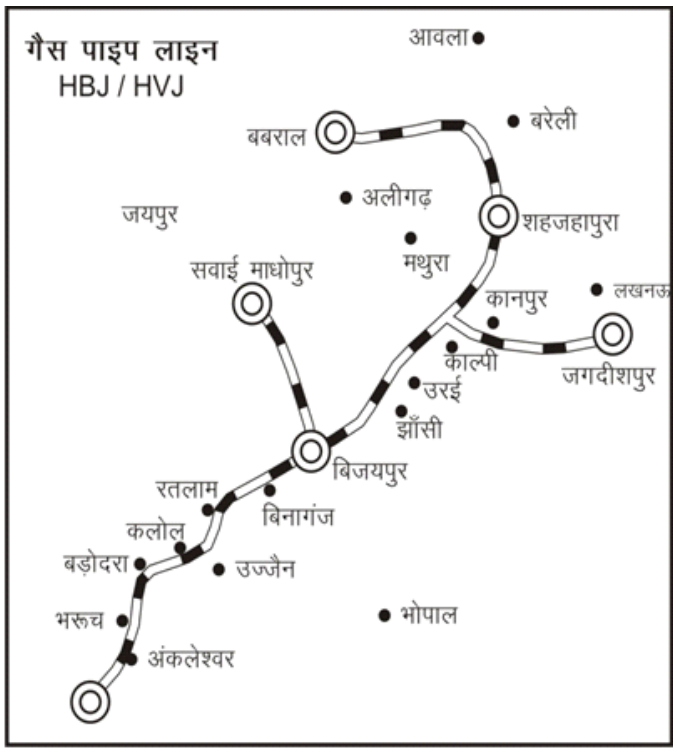

मानचित्र 20.7 : हजीरा–विजयनगर–जगदीशपुर

(3) सलाया–कोयली–मथुरा–पाइप लाइन : कच्छ की खाड़ी के समीप स्थित सलाया से मथुरा के मध्य बिछाई गई है। यह 1256 किमी. लम्बी पाइप लाइन है। जो मुम्बई हाई से एवं प्राप्त आयातित तेल को मथुरा शोधन शाला पहुँचाती है। साफ किया तेल जालधंर तक ले जाया गया है और कोयली पाइन लाइन से जोड़ दिया गया है।

(4) मुम्बई–हाई–मुम्बई–अंकलेश्वर–कोयली पाइप लाइन : महाराष्ट्र में मुम्बई हाई से मुम्बई तट तक तेल तथा गैस लाने के लिए दो अलग–अलग पाइप लाइने बिछाई गई जिसमें प्रत्येक की लम्बाई 210 किमी है।

(5) भारतीय गैस प्राधिकरण लिमिटेड की स्थापना 1984 में की गई थी जो 14400 किमी लम्बी पाइप लाइनों का संचालन करती है।

(6) हाजीरा–विजयपुरा–जगदीशपुर (**HUJ**) पाइप लाइन : यह विश्व की सबसे लम्बी भूमिगत गैस पाइप लाइन है जो 1750 किमी. लम्बी है। इस पाइप लाइन द्वारा उत्तर प्रदेश के 4, मध्य प्रदेश व राजस्थान के एक–एक उर्वरक कारखानों तथा औरेया (उत्तर प्रदेश) अन्ता राजस्थान कावस (गुजरात) ताप विद्युत गृहों को गैस पहुँचाई जाती है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दू

1. यात्रियों एवं वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर लाना ले जाना परिवहन कहलाता है।
2. परिवहन के मुख्य प्रकार (साधन) – सड़क, रेल, जल, वायु एवं पाइप लाइन।
3. परिवहन तंत्र के विकास को प्रभावित करने वाले कारक– भौतिक, आर्थिक, सुरक्षात्मक, राजनैतिक कारक, साँस्कृतिक कारक।
4. सड़क परिवहन – भारत में 5000–8000 वर्ष पूर्व की पक्की सड़कों का निर्माण कराया गया था जिसके प्रमाण मोहन जोदड़ों एवं हड़प्पा से प्राप्त होते हैं।
5. भारतीय सड़कों के प्रकार– राष्ट्रीय महामार्ग राज्जीय (राज) मार्ग जिला सड़के ग्रामीण सड़के सीमावर्ती सड़कें।
6. भारत में प्रथम रेल 16 अप्रेल 1853 में मुम्बई से थाणे के मध्य चलाई गई थी।
7. विश्व विरासत में भारतीय रेल– मांउटेन रेलवे, नीलगिरि पर्वतीय रेलवे, कालका–शिमला रेल्वे को शामिल किया गया है।
8. वायु परिवहन के विकास के लिए देश की पहली राष्ट्रीय नागरिक उड़डयन नीति 15 जून, 2016 को घोषित की गई।
9. जल परिवहन के प्रकार– आन्तरिक व समुद्री जल परिवहन।
10 राष्ट्रीय जलमार्ग विधेयक 2015 पारित करने के पश्चात् 5 के स्थान पर 106 राष्ट्रीय जलमार्ग की संख्या 106 हो जाएगी।
11. पाइप लाइन्स – खनिज तेल, पेट्रोलियम, पेट्रो उत्पाद, प्राकृतिक गैस के परिवहन के लिए सस्ता व द्रुतगामी साधन। वर्तमान में गैस, पेट्रोल क्षेत्रों से शोधन शालाओं, माँग क्षेत्रों तथा उद्योगों तथा तापीय विद्युत गृहों तक पाइप लागनों का विकास किया जा रहा है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुचयनात्मक

1. भारत में ग्रांड ट्रंक रोड़ का निर्माण किसने करवाया।
   (अ) अशोक (ब) अकबर
   (स) बाबर (द) शेरशाह सूरी
2. भारत का सबसे लम्बा राष्ट्रीय राजमार्ग–7 की लम्बाई है–
   (अ) 2369 किमी (ब) 1949 किमी
   (स) 1533 किमी (द) 1428 किमी
3. भारत में BRO का गठन कब किया गया
   (अ) मई, 1960 (ब) मई, 1954
   (स) मई, 1965 (द) मई, 1962
4. भारत में कुल कितने राष्ट्रीय राजमार्ग है–
   (अ) 205 (ब) 190
   (स) 220 (द) 235
5. भारत में कितने रेल मण्डल है–
   (अ) 9 (ब) 16
   (स) 17 (द) 20
6. कोंकण रेलमार्ग किस पर्वत श्रृंखला से गुजरता है–
   (अ) हिमाद्रि (ब) पूर्वी घाट
   (स) पश्चिमी घाट (द) नीलगिरी पर्वत
7. भारत में सर्वप्रथम रेल का संचालन मुम्बई–थाणे के बीच कब हुआ–
   (अ) 16 अप्रेल, 1955 (ब) 16 अप्रेल, 1952
   (स) 16 अप्रेल, 1854 (द) 16 अप्रेल, 1853
8. भारत में मेट्रो रेलवे की शुरूआत 1972 में कहाँ हुई–
   (अ) बंगलूरू (ब) नई दिल्ली
   (स) जयपुर (द) कोलकाता
9. भारत में 31 मार्च, 2013 को रेल मार्गों की कुल लम्बाई है।
   (अ) 64,600 (ब) 64,415
   (स) 64,400 (द) 63,500
10. भारत का सबसे गहरा बन्दरगाह कौनसा है–
   (अ) मंगलौर (ब) पारा,ीप
   (स) विशाखापट्टनम (द) हल्दिया
11. कोझीकोड बन्दरगाह स्थित है–
   (अ) ओडिशा में (ब) केरल में
   (स) आन्ध्र प्रदेश में (द) तमिलनाडु में
12. भारत का सबसे बड़ा बन्दरगाह है–
   (अ) एनौर () कांडला
   (स) मुम्बई (द) चेन्नई

13. भारत में अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डों की संख्या कितनी है–

(अ) 62 (ब) 80

(स) 24 (द) 23

14. भारत का प्रथम ग्रीन एयरपोर्ट (जुलाई, 2012) कौनसा है–

(अ) राजीव गांधी अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डा, नई दिल्ली

(ब) श्रीनगर हवाई अड्डा

(स) बंगलूरू हवाई अड्डा

(द) कोचीन हवाई अड्डा

15. वर्तमान में भारत कितने देशों से अन्तर्राष्ट्रीय वायु सेवा से जुड़ा हुआ है–

(अ) 120 (ब) 95

(स) 104 (द) 100

अतिलघूत्तरात्मक

16. भारत में वायु परिवहन की शुरूआत कब की गई थी?
17. HBJ का पूरा नाम क्या है?
18. भारत के किस शहर में मेट्रो रेल का प्रारम्भ हुआ।
19. भारत में सर्व प्रथम रेल किन दो नगरों के मध्य चलाई गई?
20. भारत की सबसे लम्बी दूरी तय करने वाली रेल का नाम बताइये।

लघूत्तरात्मक

21. स्वर्णिम चतुर्भुज परियोजना क्या है?
22. आन्तरिक जल परिवहन के विकास में आने वाली बाधाओं को संक्षेप में स्पष्ट कीजिए।
23. पाईप लाइन में किन–किन वस्तुओं का परिवहन संभव है?
24. बोट को स्पष्ट कीजिए।
25. कोंकण रेलमार्ग पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

निबन्धात्मक

26. भारत में सड़क परिवहन की लोकप्रियता के कारणों एवं विकास पर एक लेख लिखिए।
27. भारत में वायु परिवहन के विकास की अपार संभावनाएँ है, कथन को विस्तार से स्पष्ट कीजिए।
28. भारतीय जल मार्ग पर एक लेख लिखिए।

पाठ 21
भारत में नियोजन
(Planning in India)

नियोजन शब्द का प्रयोग हमारे दैनिक जीवन में होता रहता है। किसी कार्य को करने की पूर्व तैयारी, रूपरेखा बनाना और उनका क्रियान्वयन नियोजन के अन्तर्गत समाहित होता है। सामान्यतः यहाँ हम विकास के लिए केन्द्रीय स्तर पर अपनाये गये समस्त योजनाओं और उनकी क्रियान्विति और समीक्षा का अध्ययन करेंगे। वास्तव में किसी भी राष्ट्र के विकास के लिए अपनाये जाने वाले नियोजन के दो रूप हो सकते हैं (अ) खण्डीय नियोजन– इसमें अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों जैसे– कृषि, सिंचाई, उद्योग, ऊर्जा, परिवहन संचार के विकास के लिए योजनाबर लागू करना। (ब) प्रादेशिक नियोजन– किसी प्रदेश के लिए उसके समस्त संसाधनों के उचित उपयोग और विकास के लिए कार्यक्रम बनाकर लागू किया जाता है।

भारत में केन्द्रीय नियोजन है और नियोजन का कार्य भारत में योजना आयोग को सौंपा गया है। भारत में नियोजन पक्ष के सभी पहलूओं का विस्तृत विवरण इस प्रकार है।

नियोजन किसी क्षेत्र या प्रदेश के संसाधनों के इष्टतम उपयोग द्वारा आर्थिक समृद्धि प्राप्त करने की प्रणाली है। यह विशिष्ट लक्ष्यों की प्राप्त का एक संगठित सचेतन और सतत् प्रयास है, जिससे वास्तविकता एवं प्रत्याशा के मध्य के अन्तराल को कम किया जा सकता है। साथ ही यह आत्मनिर्भरता प्राप्त करने, अन्त एवं अन्तप्रादेशिक विषमताओं को दूर करने तथा लोगों के जीवन स्तर सुधारने का प्रयास है नियोजन का सम्बन्ध देश के दीर्घावधि आर्थिक एवं सामाजिक विकास से है। भारत ऐसे विकासशील देश में लोगों की गरीबी दूर करने, राष्ट्रीय एवं प्रति व्यक्ति आय बढ़ाने, आय एवं सम्पत्ति में असमानता को कम करने, रोजगार के अवसर बढ़ाने, देश के बहुमुँखी विकास करने तथा प्राप्त स्वतंत्रता को सुरक्षित करने हेतु नियोजन अपरिहार्य है।

भारत में नियोजन तंत्र

भारतीय नियोजन में प्रशासनिक तंत्र का ढाँचा निम्न प्रकार है–

1. योजना आयोग

15 मार्च, 1950 को भारत सरकार के एक प्रस्ताव द्वारा योजना आयोग का गठन किया गया। यह एक सलाहकार एवं वैधानिक संस्था है। देश के प्रधानमंत्री इसके अध्यक्ष होते हैं। योजना आयोग के मुख्य कार्य (i) देश के भौतिक, अभौतिक, पूंजीगत एवं मानवीय संसाधनों का अनुमान लगाना, (ii) साधनों के अनुकूलतम एवं प्रभावपूर्ण उपयोग हेतु विकास योजनाओं का निर्माण करना, (iii) प्राथमिकताओं का निर्धारण करना तथा उसी के अनुरूप संसाधनों का आवंटन करना, (iv) नियोजन की सफलता के लिए आवश्यक कार्य प्रणाली का निर्धारण करना, (v) सरकार को आर्थिक विकास की बाधाओं से अवगत कराना, (vi) योजना की प्रगति का मूल्यांकन करना, (vii) केन्द्र व राज्य सरकारों को अन्य सभी आर्थिक विकास के लिए आवश्यक सुझाव देना है। विकास सम्बन्धी समस्त परियोजनाओं का संचालन एवं

क्रियान्वयन केन्द्र व राज्य सरकारों द्वारा किया जाता है। केन्द्र सरकार ने 1 जनवरी 2015 में इसका नाम बदल कर नीति आयोग कर दिया है।

2. राष्ट्रीय विकास परिषद्

6 अगस्त, 1952 को राष्ट्रीय विकास परिषद् का गठन किया गया। यह एक गैर संवैधानिक निकाय है। इसका गठन आर्थिक नियोजन हेतु योजना आयोग तथा राज्यों के बीच समन्वय बनाये रखने हेतु किया गया। इस परिषद् में प्रधानमंत्री, केन्द्रीय मंत्रीपरिषद के सदस्य, सभी राज्यों के मुख्यमंत्री एवं योजना आयोग के सदस्य सम्मिलित होते हैं। राष्ट्रीय विकास परिषद् के प्रमुख कार्य (i) राष्ट्रीय योजना की समीक्षा करना इसका अध्ययन करना, अन्तिम रूप देना तथा स्वीकृतिप्रदान करना है। एन.डी.सी. की स्वीकृति के बाद ही योजना देश में लागू होती है। (ii) योजना आयोग को प्राथमिकताओं के निर्धारण में परामर्श देना, (iii) विकास के आर्थिक एवं सामाजिक पहलुओं पर विचार करना, (iv) योजना के संचलान का समय–समय पर मूल्यांकन करना है।

3. राष्ट्रीय आयोजना परिषद्

इस परिषद् का गठन प्रत्येक योजना निर्माण के समय क्रिया जाता है। इसमें राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त इंजीनियर वैज्ञानिक, अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री एवं अन्य विशेषज्ञ शामिल किये जाते हैं।

पंचवर्षीय योजनाओं में नियोजन

सन् 1947 में देश के आज़ाद होने के बाद नियोजन की आवश्यकता महसूस की गयी। परिणामस्वरूप सोवियत संघ जैसे समाजवादी देशों से प्रेरणा ग्रहण कर राष्ट्रीय आय, प्रति व्यक्ति आय, रोजगार, कृषि उत्पादन, औद्योगिक विकास आदि में वृद्धि करने, आर्थिक असमानता को दूर करने, आत्म निर्भरता प्राप्त करने और विदेशी मदद पर निर्भरता कम करने के उद्देश्य से पंचवर्षीय योजनाओं की शुरूआत की गयी। यद्यपि विभिन्न योजनाओं में प्राथमिकता बदलती रही है परन्तु नियोजन के मुख्य उद्देश्य–विकास, आधुनिकीकरण, आत्म निर्भरता एवं सामाजिक–न्याय आदि रहे हैं। भारत में नियोजन की व्यूह रचना, द्वितीय पंचवर्षीय योजना से प्रारम्भ मानी जाती है, तब एक तरफ सरकार ने भारत में रूस के नियोजन से प्रभावित होकर 'समाजवादी ढंग के समाज' की स्थापना के लक्ष्य की घोषणा की। प्रो. पी.सी. महलानोबिस का विकास–मॉडल भारत में लागू करना स्वीकार किया था।

वैसे भारी उद्योगों के विकास पर आधारित नियोजन की यह रणनीति उस समय की परिस्थितियों में भारत के लिए उपयुक्त लगी थी, लेकिन वकील व ब्रह्मानन्द जैसे अर्थशास्त्रियों ने अपने विकास के 'मजदूरी–वस्तुओं के मॉडल' में इसको भारत के लिए अनुपयुक्त बतलाया था। उनको कहना था कि भारी उद्योग आधारित औद्योगिकरण से भारत में बेरोजगारी व मुद्रा स्फीति दोनों की समस्याएँ जटिल हो जायेगी और महलानोबिस–मॉडल भारतीय अर्थ व्यवस्था को विकास के मार्ग पर ज्यादा से ज्यादा आगे नहीं ले जा पाया।

बाद के वर्षों में नियोजन की रणनीति में निर्धनता– निवारण पर केन्द्रित रही है। 12वीं पंचवर्षीय योजना में, विशेषता अधिक तीव्र अधिक समावेशी व स्थिर/टिकाऊ विकास की नई रणनीति पर जोर दिया गया ताकि भारतीय अर्थ व्यवस्था का सन्तुलित विकास हो सके।

अब नियोजन को आर्थिक उदारीकरण से जोड़ा जाने लगा है ताकि विदेशी व्यापार, विदेशी निवेश व विदेशी प्रौद्योगिकी का उपयोग बढाकर आगामी वर्षों में भारत को विश्व की अमेरिका व चीन के बाद तीसरी बड़ी आर्थिक शक्ति के रूप में उभरने का अवसर मिल सके।

पंचवर्षीय योजनाओं के उद्देश्य एवं उपलब्धियाँ : भारत में योजनाबद्ध आर्थिक विकास की प्रक्रिया की शुरूआत 1 अप्रेल 1951 से हुई। तब से अब तक 9 पंचवर्षीय योजनाएँ तथा 6 वार्षिक योजनाएँ क्रियान्वित हो चुकी है। दसवीं पंचवर्षीय योजना 31 मार्च, 2007 को समाप्त हो चुकी है। इस प्रकार भारत ने आर्थिक नियोजन के 66 वर्ष पूर्ण कर लिए हैं। प्रत्येक पंचवर्षीय योजना में अधिकतम उत्पादन, पूर्ण रोजगार, आर्थिक समानता व सामाजिक न्याय जैसे मूलभूत उद्देश्य निर्धारित किये गये। तात्कालिक आर्थिक समस्याओं व परिस्थितियों को ध्यान में रखकर भी उद्देश्य निर्धारित किये गये। योजनावार प्रगति का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951–1956) : प्रथम पंचवर्षीय योजना के निर्माण के समय देश के समक्ष द्वितीय विश्वयुद्ध एवं विभाजन के फलस्वरूप बिखरी हुई अर्थ व्यवस्था सामने थी। इसके साथ ही शरणार्थियों का तेजी से बढ़ता प्रवाह,

स्फीति एवं खाद्य समस्याएँ मौजूद थी। कल्याणकारी राज्य की स्थापना की पूर्ति के लिए भी इन समस्याओं को हल करना आवश्यक था। प्रथम योजना में 2378 करोड़ रूपये व्यय करने का प्रावधान किया गया। लेकिन वास्तविक व्यय 1960 करोड़ रूपये ही हुआ।

प्राथमिकताएँ : उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कृषि एवं सिंचाई को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई। कुल प्रस्तावित व्यय का 1/4 भाग इसके लिए निर्धारित किया गया। विद्युत शक्ति के सृजन को भी उच्च प्राथमिकता दी गयी। उद्योगों को प्राथमिकता क्रम में अन्तिम स्थान दिया गया। कृषि विकास के लिए सामुदायिक विकास कार्यक्रम को अपनाया जाना योजना की मुख्य विशेषता थी।

इसके साथ ही समाज कल्याण के कार्यों जैसे– शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा, सामाजिक सुरक्षा आदि के विकास को महत्ता प्रदान की गयी।

उपलब्धि : प्रथम योजना अपने अल्पकालीन उद्देश्यों की प्राप्ति में काफी सफल रही। आर्थिक असन्तुलन दूर होने, खाद्यान्नों की स्थिति सुधारने, मूल्य स्तर घटने से अर्थव्यवस्था काफी सुदृढ़ हो गयी। कुछ क्षेत्रों में उपलब्धियाँ लक्ष्य से अधिक प्राप्त हुई। राष्ट्रीय आय में 18 प्रतिशत, प्रति व्यक्ति आय में 11 प्रतिशत वृद्धि हुई। विद्युत उत्पादन 23 लाख किलोवाट से बढ़कर 34 लाख किलोवाट हो गया। 75 लाख व्यक्तियों को अतिरिक्त रोजगार के अवसर उपलब्ध करवाये गये। इस योजना में उद्योगों की उपेक्षा की गयी थी। यह योजना देश की मृतप्रायः अर्थव्यवस्था में नयी जान फूँकने में सफल रही।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1956–61) : इस योजना की रूपरेखा पी.सी. महालनोबिस द्वारा तैयार की यी। इस योजना में सार्वजनिक क्षेत्र का वास्तविक व्यय 4672 करोड़ रू. था, जिसका 23 प्रतिशत भाग विदेशी सहायता से पूरा किया गया।

उद्देश्य : (1) तीव्र औद्योगीकरण पर जोर दिया गया। देश में आधारभूत उद्योगों के विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गयी। द्वितीय वरीयता परिवहन, संचार के साधनों के विकास को दी गई। इसके बाद सिंचाई एवं विद्युत विकास को प्राथमिकता के क्रम में रखा गया।

उपलब्धियाँ एवं कमियाँ : राष्ट्रीय आय लक्ष्य (25 प्रतिशत) से कम (20 प्रतिशत) रही। विकास दर 4 प्रतिशत रही। प्रति व्यक्ति आय लक्ष्य (15 प्रतिशत) के मुकाबले 11 प्रतिशत ही रही। मूल्य स्तर में वृद्धि होने से मुद्रा स्फीति की समस्या उत्पन्न हो गयी। 95 लाख अतिरिक्त लोगों को रोजगार के अवसर उपलब्ध करवाये गये। औद्योगिक विकास हुआ। कृषि क्षेत्र का उत्पादन योजनावधि में बढ़ा।

तृतीय पंचवर्षीय योजना (1961–66) : दो पंचवर्षीय योजनाओं की समाप्ति के पश्चात् देश में आर्थिक नियोजन हेतु एक उपयुक्त वातावरण बन चुका था। तीसरी योजना में आत्मनिर्भरता एवं स्वयं स्फूर्त अर्थव्यवस्था की स्थापना का लक्ष्य रखा गया। इस योजना में सार्वजनिक क्षेत्र के व्यय हेतु 7500 करोड़ का प्रावधान रखा गया, जबकि वास्तविक व्यय 8577 करोड़ रूपये हुआ।

उद्देश्य : (i) राष्ट्रीय आय में 5–6 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि करना, (ii) खाद्यान्न क्षेत्र में आत्म निर्भरता प्राप्त करना व घरेलू उद्योग तथा निर्यात की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कृषि उत्पादन बढ़ाना, (iii) आधारभूत एवं मूलभूत उद्योगों का देशीय आधार पर विकास करना, (iv) आय, सम्पत्ति व अवसरों की समानता बनाये रखना एवं (v) देश की मानव शक्ति का अधिकतम उपयोग करते हुए रोजगार के अवसरों में वृद्धि करना।

प्राथमिकताएँ : अर्थव्यवस्था को आत्म निर्भर एवं स्वयं स्फूर्त अर्थव्यवस्था बनाने के लिए खाद्यान्नों में आत्म निर्भरता प्राप्त करने को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई। उसके बाद उद्योगों, खनिजों का विकास, परिवहन एवं संचार तथा सामाजिक सेवाओं को स्थान दिया गया।

उपलब्धियाँ एवं कमियाँ : योजना काल में 1962 तथा 1965 में देश को विदेशी आक्रमणों का मुकाबला करना पड़ा और इसका प्रभाव योजना में उपलब्धियों पर पड़ा। 1965– 66 में देश में आकल एवं सूखे की स्थिति उत्पन्न हो गयी। परिणामस्वरूप आर्थिक विकास की गति धीमी पड़ गई। तृतीय योजना में राष्ट्रीय आय, प्रति व्यक्ति आय, खाद्यान्न उत्पादन, विद्युत उत्पादन में वृद्धि लक्ष्य की तुलना में कम रही। औद्योगिक क्षमता में 9 प्रतिशत वृद्धि हुई। इस प्रकार यह योजना अपने उद्देश्यों एवं लक्ष्यों को प्राप्त करने में असफल रही।

तीन वार्षिक योजनाएँ (1966–1969) : विदेशी पूँजी की अनुपलब्धता, मूल्यों में लगातार वृद्धि, सूखा व अकाल, विदेशी आक्रमण, बढ़ती लागतें एवं तृतीय योजना की असफलता के कारण चतुर्थ पंचवषीय योजना समय से प्रारम्भ नहीं हो सकी। नियमित नियोजन न होने के कारण 1966–69 की अवधि को योजनावकाश कहा गया। इस अवधि में तीन (1967, 1968, 1969) एक वर्षीय योजनाएँ बनायी गई। इन वार्षिक योजनाओं का उद्देश्य विकास

के कार्यक्रमों में निरन्तरता बनाये रखना तथा चौथी पंचवर्षीय योजना के लिए आवश्यक पृष्ठभूमि तैयार करना था। इस अवधि में सार्वजनिक परिव्यय 6625 करोड़ रूपये रहा। प्रथम दो एक वर्षीय योजनाओं में कृषि को तथा तीसरी में उद्योगों के विकास को महत्त्व दिया गया। इस अवधि में विकास दर 3.8 प्रतिशत रही। कीमतों में वृद्धि हुई, बचत एवं विनियोग घटे। परिणामस्वरूप अर्थ व्यवस्था में आर्थिक प्रगति की गति धीमी पड़ गई थी।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना (1969–74)

उद्देश्य : चौथी योजना के दो मुख्य उद्देश्य थे– (1) स्थिरता के साथ आर्थिक विकास तथा (2) आत्मनिर्भरता की प्राप्ति। इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए राष्ट्रीय आय में 5.5 प्रतिशत, आर्थिक विकास की दर 5.7 प्रतिशत, कृषि में 4.6 प्रतिशत, उद्योगों में 8 प्रतिशत से 10 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि का लक्ष्य रखा गया। इस योजना का लक्ष्य समानता व सामाजिक न्याय को प्रोत्साहित करने वाले उपायों के साथ–साथ निर्धन वर्ग के जीवन स्तर को ऊँचा उठाना था। इस योजना में सार्वजनिक क्षेत्र में 15,902 करोड़ रू. व्यय करने का प्रावधान रखा गया।

प्राथमिकताएँ : योजनाकाल में औद्योगिक विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई। इसके बाद कृषि, परिवहन एवं संचार विकास को प्राथमिकता के क्रम में रखा गया।

उपलब्धियाँ एवं कमियाँ : योजना काल में राष्ट्रीय आय में 5. 5 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि के लक्ष्य के विपरीत वास्तविक वृद्धि 3.3 प्रतिशत वार्षिक रही। खाद्यान्न उत्पादन में गिरावट हुई। हरित क्रान्ति का प्रभाव सीमित फसलों तथा सीमित क्षेत्रों तक रहा। योजनावधि में मूल्य वृद्धि देखने को मिली, जिसका लाभ किसान, बड़े व्यापारियों एवं उद्योगपतियों ने उठाया। इस प्रकार चौथी योजना अपने निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने में असफल रही। देश में बेरोजगारी की समस्या भी विकट हुई। इस अवधि में शिक्षा, सामाजिक विकास की प्रगति संतोषजनक रही।

पाँचवी पंचवर्षीय योजना (1974–79) : पाँचवी पंचवर्षीय योजना ऐसे समय में प्रारम्भ हुई, जब देश 1973 में हुई तेल की अन्तर्राष्ट्रीय कीमतों में वृद्धि से हताहत था। देश गंभीर आर्थिक संकट का सामना कर रहा था। कीमतों के बढ़ने से देश में मुनाफाखोरी व कालाबाजारी की समस्या अपने चरम बिन्दु पर थी। पांचवी योजना में सार्वजनिक क्षेत्र में व्यय की राशि 39,322 करोड़ रू. रखी गई। वास्तविक परिव्यय लगभग 39,426 करोड़ रू. हुआ।

उद्देश्य एवं प्राथमिकताएँ : इस योजना का मुख्य उद्देश्य गरीबी उन्मूलन तथा आत्म निर्भरता था। योजना में औद्योगिक विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई। कृषि, परिवहन, संचार, विकास आदि प्राथमिकता क्रम में बाद में रखे गये। राष्ट्रीय आय में वार्षिक वृद्धि दर 4.4 प्रतिशत, कृषि में 4.67 प्रतिशत तथा उद्योग में 7 से 10 प्रतिशत का लक्ष्य रखा गया। यह आशा की गयी कि 1979–80 तक विदेशी सहायता घटाकर शून्य कर दी जायेगी। गैर कृषि क्षेत्र में रोजगार के अवसर बढ़ाने का लक्ष्य रखा गया।

उपलब्धियाँ एवं कमियाँ : योजनाकाल में अर्थव्यवस्था अधिक सुदृढ़ हुई। योजना काल में विकास की दर, कृषि क्षेत्र, खाद्यान्न उत्पादन में लक्ष्य से अधिक वृद्धि हुई। औद्योगिक उत्पादन में वार्षिक वृद्धि 5.9 प्रतिशत आंकी गयी। घाटे की वित्त–व्यवस्था से मूल्यों में वृद्धि हुई। इस प्रकार यह योजना योजनाबद्ध विकास प्रक्रिया में एक महत्त्वपूर्ण कड़ी सिद्ध हुई। केन्द्र में सरकार परिवर्तित हो जाने के कारण पांचवी योजना समय से एक वर्ष पूर्व मार्च 1978 में ही समाप्त कर दी गयी।

छठी पंचवर्षीय योजना (1980–85) : छठी पंचवर्षीय योजना दो बार तैयार की गयी। अतः विकास की प्रक्रिया में 1 अप्रेल, 1979 से मार्च, 1980 की अवधि को संक्रमणकालीन योजना कहा जा सकता है। इस एक वर्ष में सार्वजनिक क्षेत्र का परिव्यय 12177 करोड़ रू. रहा। कृषि, सिंचाई, बाढऋ नियन्त्रण व कृषि सहायक क्षेत्रों पर कुल परिव्यय का 27 प्रतिशत भाग व्यय किया गया। इस काल में विकास की गति ऋणात्मक (–6 प्रतिशत) रही। लगभग अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में कमी देखने को मिली। देश के समक्ष विदेशी विनिमय का संकट खड़ा हो गया। छठी पंचवर्षीय योजना का संशोधित प्रारूप मई, 1981 में जारी किया गया। इसमें सार्वजनिक क्षेत्र का कुल परिव्यय 97,500 करोड़ रू. निर्धारित किया गया।

उद्देश्य : (1) गरीबी का निवारण करना, (2) बेरोजगारी की दर में कमी करना।

उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए निम्नलिखित लक्ष्य निर्धारित किये गये– विकास की वार्षिक वृद्धि दर 5.2 प्रतिशत, प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय में 3.3 प्रतिशत वृद्धि दर, औद्योगिक विकास की दर 8.9 प्रतिशत, कृषि विकास दर 4 प्रतिशत वार्षिक तथा सेवा क्षेत्र की वार्षिक वृद्धि दर 5.2 प्रतिशत निर्धारित की गई। गरीबी एवं बेरोजगारी निवारण हेतु एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (आई.

आर.डी.पी.), राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (एन.आर.ई.पी.) व न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम (एम.एन.पी.) चालू किये गए। आर्थिक एवं सामाजिक विषमताओं में कमी लागने का लक्ष्य रखा गया।

उपलब्धियाँ एवं कमियाँ : छठी योजना में वास्तविक व्यय 110,821 करोड़ रू. हुआ। योजनावधि में औसत विकास दर 5 प्रतिशत, प्रति व्यक्ति आय 3 प्रतिशत वार्षिक तथा कृषि में वृद्धि दर 3.1 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर रही। औद्योगिक उत्पादन में भी प्रगति हुई। खाद्यान्न उत्पादन 1984–85 में 14.6 करोड़ टन तक पहुँच गया। व्यापार घाटा बढ़ने से विदेशी संकट और गहरा गया। गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले व्यक्तियों की संख्या 33 प्रतिशत आ गयी। छठी योजना में देश में आर्थिक प्रगति हुई। विकास की वार्षिक वृद्धि दर 5 प्रतिशत पर आ गयी, जो पूर्व में चली आ रही विकास दर 3.5 प्रतिशत से अधिक थी। इसके परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था में एक नये उत्साह का संचार हुआ।

सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985–90) : छठी योजना की सफलता के कारण सातवीं योजना एक सुखद वातावरण में प्रारम्भ हुई। सातवीं योजना प्रारम्भ करते समय देश के समक्ष वे प्रतिकूल परिस्थितियाँ नहीं थी, जिसका सामना छठी योजना प्रारम्भ करते समय करना पड़ा।

उद्देश्य : सातवीं योजना में आर्थिक वृद्धि, आधुनिकीकरण, आत्म निर्भरता व सामाजिक न्याय के आधारभूत उद्देश्यों के साथ (i) खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि करना, (ii) रोजगार के अवसरों में वृद्धि करना, (iii) उत्पादकता को बढ़ावा, उद्देश्य रखे गये। रोजी–रोटी, उत्पादकता इसके तीन मुख्य बिन्दु निर्धारित किये गए। सातवीं योजना का कुल प्रस्तावित व्यय 3,48,148 करोड़ रू. निर्धारित किया गया।

लक्ष्य : इस योजना में गरीबी, बेरोजगारी व क्षेत्रीय असन्तुलनों की समस्या पर सीधा प्रहार करने का संकल्प लिया गया। सातवीं योजना में गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन कर रहे 37 प्रतिशत लोगों को 25.8 प्रतिशत पर लाने का लक्ष्य रखा गया। विकास की वार्षिक वृद्धि दर 5 प्रतिशत, खाद्यान्न उत्पादन 18.3 करोड़ टन, औद्योगिक विकास की दर 8 प्रतिशत, विनियोग एवं बचत की वार्षिक वृद्धि दर क्रमशः 25.9 प्रतिशत तथा 24.4 प्रतिशत निर्धारित की गई। गरीबी निवारण हेतु IRDP, NREP, सामुदायिक एवं पंचायत विकास पर जोर देने का लक्ष्य रखा गया।

उपलब्धियाँ एवं कमियाँ : सातवीं योजना में विकास की वास्तविक वार्षिक वृद्धि दर 5.9 प्रतिशत तथा प्रति व्यक्ति आय में 3. 6 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर दर्ज की गई। कृषिगत उत्पादन में औसत वार्षिक वृद्धि दर 4 प्रतिशत रही, जो लक्ष्य से अधिक थी। खनन उत्पादन में गिरावट के कारण औद्योगिक उत्पादन में वार्षिक वृद्धि लक्ष्य (8.7 प्रतिशत) से कुछ कम रही। बचत तथा विनियोग में वार्षिक वृद्धि दर क्रमशः 21.7 प्रतिशत तथा 23.7 प्रतिशत रही। घाटे की वित्त व्यवस्था के कारण मुद्रा स्फीति की समस्या पैदा हुई। देश में विदेशी विनिमय कोषों में गिरावट के कारण रूपये का मूल्य विदेशी मुद्रा के सन्दर्भ में घट गया। विदेशी कर्ज का भार बढ़ने से भारत ऋण जाल में फँस गया। कुछ कमियों के बावजूद यह योजना आर्थिक समृद्धि का मार्ग प्रशस्त करने में सफल रही हैं।

दो एक वर्षीय योजनाएँ (1990–92) : इन योजनाओं पर सार्वजनिक क्षेत्र का वास्तविक परिव्यय 1,23,129 करोड़ रू. हुआ। इस समय देश राजनीतिक अनिश्चितता एवं अस्थिरता के दौर में रहा।

आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992–97) : आठवी पंचवर्षीय योजना ऐसे समय प्रारम्भ हुई, जब विश्व स्तर पर अनेक क्रांतिकारी परिवर्तन देखने को मिले। विश्व में शीतयुद्ध का अन्त हुआ, स्वतंत्र बाजार, प्रतिस्पर्द्धात्मक व्यवस्था एवं आर्थिक सुधारों का दौर प्रारम्भ हुआ। भारत में भी संरचनात्मक सुधारों एवं समायोजन की प्रक्रिया तेज हुई। औद्योगिक, विदेशी व्यापार, विनिमय दर, राजकोषीय एवं मौद्रिक क्षेत्र में नई नीतियों की शुरूआत की गयी।

उद्देश्य एवं लक्ष्य : योजना के छः उद्देश्य थे– (i) रोजगार के अवसरों को बढ़ाना, (ii) लोगों के सक्रिय सहयोग एवं प्रेरणाओं द्वारा जनसंख्या वृद्धि पर नियन्त्रण, (iii) प्राथमिक शिक्षा का विस्तार व 15 से 35 वर्ष के आयु वर्ग में निरक्षरता का पूर्ण उन्मूलन, (iv) सुरक्षित पेयजल एवं प्राथमिक सेवाओं का विस्तार, (vi) खाद्याान्न में आत्मनिर्भरता प्राप्त करना, (vi) देश में बुनियादी ढाँचे को मजबूत करते हुए स्वयं स्फूर्त विकास जारी रखना। योजनावधि मेंविकास दर 5.6 प्रतिशत वार्षिक, कृषि क्षेत्र में 3.7 प्रतिशत, खनन में 8 प्रतिशत, औद्योगिक क्षेत्र में 8 से 10 प्रतिशत, निर्यात में वृद्धि 13.6 प्रतिशत का लक्ष्य रखा गया। रोजगार के अवसरों में 2.6 प्रतिशत वृद्धि का लक्ष्य निर्धारित किया गया। आर्थिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण, निर्धनता उन्मूलन कार्यक्रम, सामाजिक न्याय की प्राप्ति तथा आर्थिक समानता का मार्ग प्रशस्त करने का लक्ष्य तय

किया गया।

उलब्धियाँ एवं कमियाँ : आठवी योजना में विकास की दर 6.8 प्रतिशत रही। जो लक्ष्य से अधिक रही। रोजगार के अवसरों में वृद्धि, निर्धनता उन्मूलन, जनसंख्या वृद्धि दर को सीमित करने की दृष्टि से अथक प्रयास किये गये। कृषि क्षेत्र के विकास के साथ–साथ औद्योगीकरण की गति भी तेज हुई। अर्थव्यवस्था में तकनीकी प्रगति तथा आधुनिकीकरण के प्रयास किये गये। निर्यात की वृद्धि दर ऊँची रही। मुद्रास्फीति पर नियन्त्रण किया जाना संभव हो सका। विश्व समुदाय का देश की अर्थव्यवस्था में विश्वास जागा है।

नवीं पंचवर्षीय योजना (1997–2002) : देश में नवीं पंचवर्षीय योजना (1997–2002) के संशोधित प्रारूप को केन्द्रीय मंत्रीमण्डल द्वारा जनवरी, 1999 में मंजूरी प्रदान कर दी गई। इस योजना में कुछ ऐसे क्षेत्रों की पहचान की गई जिन पर विशेष ध्यान दिया गया। जैसे– वित्तीय हालत में सुधार लाना, दीर्घकालीन नीति तैयार कर राज्यों व केन्द्र सरकार के राजकोषीय घाटे को कम करना, निर्यात को बढ़ावा देना, आधारभूत संरचना का परिणात्मक एवं गुणात्मक दृष्टि से सुधार करना, पर्यावरण असंतुलन को दूर करना, पंचायती राज प्रणाली को सशक्त करते हुए जन–भागीदारी बढ़ाना, विदेशी विनियोग को प्रोत्साहन आदि क्षेत्र।

उद्देश्य एवं लक्ष्य : योजना में निम्नलिखित उद्देश्य स्वीकार किये गए (i) कृषि एवं ग्रामीण विकास को प्राथमिकता देना तथा पर्याप्त उत्पादक रोजगार पैदा करना, (ii) मूल्यों में स्थिरता बनाये रखते हुए आर्थिक विकास की गति को तेज करना, (iii) समाज के कमजोर वर्ग को भोजन एवं पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करना, (iv) जनसंख्या वृद्धि दर को काबू में करना, (v) जन–भागीदारी द्वारा विकास प्रक्रिया में पर्यावरण संरक्षित करना, (vi) पंचायती राज प्रणाली को सशक्त करना, (vii) महिलाओं तथा सामाजिक रूप से उपेक्षित वर्गों को सक्षम तथा सामर्थ्यवान बनाना, (viii) आत्म निर्भरता प्राप्त करने के प्रयासों को सुदृढ़ करना।

नवीं योजना में सार्वजनिक क्षेत्र का परिव्यय 1996–97 के मूल्यों पर 8,59,200 करोड़ रूपये निर्धारित किया गया था। योजना के संशोधित प्रारूप में प्रधानमंत्री की विशेष कार्य योजना (SAP) के लिए 21,946 करोड़ रू0 का प्रावधान किया गया। इस विशेष कार्य योजना में खाद्य व कृषि, सूचना, पेयजल पर विशेष ध्यान दिया जाना था। इस योजना में विकास की दर 6.5 प्रतिशत वार्षिक, विनियोग व बचत की दर क्रमशः 28.2 प्रतिशत तथा 26.1 प्रतिशत, बेरोजगारी की दर 1.8 प्रतिशत निर्यात व आयात वृद्धि दर क्रमशः 11.8 प्रतिशत एवं 10.8 प्रतिशत तथा राजकोषीय घाटा 5.0 प्रतिशत निर्धारित किया गया।

प्राथमिकताएँ : इस योजना में न्याय पूर्ण वितरण एवं समानता के साथ विकास पर बल दिया गया। सर्वोच्च प्राथमिकता ऊर्जा क्षेत्र को दी गई। (25.9 प्रतिशत) दूसरा स्थान सामाजिक सेवाओं (21.3 प्रतिशत) को दिया गया। कृषि एवं सम्बन्धित कार्यक्रमों को तृतीय वरीयता (20.5 प्रतिशत) दी गई। योजना के लक्ष्यों को प्राप्त करने की दृष्टि से जीवन की गुणवत्ता, रोजगार संवर्धन कार्यक्रम, क्षेत्रीय असन्तुलन कम करने तथा आत्म निर्भरता प्राप्त करने पर जोर दिया गया।

उपलब्धियाँ एवं कमियाँ : योजना को काफी व्यावहारिक व उपयोगी बनाने का प्रयास किया गया। योजना में 15 वर्षों के लिए दीर्घकालीन नियोजन के लक्ष्य निर्धारित किये गए। इस योजना में विकास की दर 5.6 प्रतिशत प्राप्त की गई जो लक्ष्य से नीची रही। औद्योगिक दृष्टि से देश मंदी की चपेट में आ गया। कृषि उत्पादन में उतार–चढ़ाव आये। विदेशी विनिमय कोषों की स्थिति संतोषजनक रही। खाद्यान्नों का स्टॉक 6 करोड़ टन से अधिक हो गया। निर्धनता का अनुपात 26 प्रतिशत अनुमानित किया गया। जनता का सक्रिय सहयोग योजना में मिला। इस प्रकार आर्थिक प्रगति का प्रभाव इस योजना में मिश्रित ही रहा।

दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002–2007) : योजनाबद्ध विकास की प्रक्रिया को आगे बढ़ाते हुए भारत सरकार के योजना आयोग ने 1 मई, 2001 को दसवीं पंचवर्षीय योजना का दृष्टिकोण पत्र पेश किया। तत्पश्चात् 2003 के प्रारम्भ में यह प्रारूप तीन खण्डों में जारी किया गया। दसवीं योजना को एक साधन योजना न बनाकर एक सुधार योजना बनाने का प्रयास किया गया है। इसमें अर्थ व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्र में व्यय की राशि पर जोर देने की बजाय उन क्षेत्रों में आवश्यक सुधारों पर बल दिया गया, जिससे वांछित लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके।

उद्देश्य एवं लक्ष्य : दसवीं योजना में विकास की दर का लक्ष्य 8 प्रतिशत रखा गया तथा अगले 10 साल में प्रति व्यक्ति आय को दुगुना करना प्रस्तावित किया गया है। कृषिगत सुधारों, ऊँची गुणवत्ता वाले रोजगार के अवसरों, सेवा क्षेत्र में रोजगार के अवसरों पर ध्यान देने की बात कहीं गई है। समाज के विशेष समूहों के लिए लाभ पहुँचाने की दृष्टि से विशेष कार्यक्रम निर्धारित

करने की बात कहीं गई है। सामाजिक न्याय एवं समानता स्थापित करने का उद्देश्य रखा गया है। जनसंख्या वृद्धि पर प्रभावी नियन्त्रण तथा शिशु मृत्यु दर एवं मातृ–मृत्यु दर को कम करने का उद्देश्य रखा गया है। वन क्षेत्रों के विकास तथा पेयजल सभी गांवों में उपलब्ध करवाने हेतु व्यवस्था करने की बात कहीं गयी हैं।

दसवी योजना में विकास की 8 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि का लक्ष्य रखा गया। 5 करोड़ व्यक्तियों को अतिरिक्त रोजगार के अवसर प्रदान करने का लक्ष्य रखा गया है। 2007 तक निर्धनता अनुपात 19.34 प्रतिशत तक लाने का प्रस्ताव किया गया। खाद्यान्न उत्पादन का लक्ष्य 2006–07 में 24.8 करोड़ टन आंका गया है। कृषि, उद्योग व सेवा क्षेत्रों में विकास की दर का लक्ष्य क्रमशः 4.0 प्रतिशत, 8.9 प्रतिशत तथा 9.4 प्रतिशत रखा गया है।

प्राथमिकता : दसवी पंचवर्षीय योजना में सर्वोच्च प्राथमिकता ऊर्जा क्षेत्र (26.5 प्रतिशत) को दी गई है। सामाजिक सेवाओं (22.8 प्रतिशत) को दूसरा स्थान दिया गया। कृषि एवं सम्बद्ध आर्थिक क्रियाओं पर 20.1 प्रतिशत व्यय करने का प्रावधान किया गया है। दसवीं योजना की प्राथमिकताएं लगभग नवीं योजना के समान ही प्रतीत होती है। इस योजना में सभी राज्यों के सन्तुलित विकास की महत्ता पर जोर दिया गया है। लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए आर्थिक सुधारों की गति तेज करने तथा कठोर निर्णय की आवश्यकता पर योजना में बल दिया है। अभी तक उपेक्षित चार मुद्दों पर जोर देते हुए राष्ट्रीय विकास परिषद् की चार उपसमितियों के गठन की घोषणा की गयी। ये उपसमितियां ई गवनेंस सुधार, निवेशकों के लिए उचित माहौल स्थापित करने, देश में आन्तरिक व्यापार की बाधाओं को दूर करने तथा वित्तीय एवं प्रशासकीय दृष्टि से पंचायतों को सुदृढ़ बनाने से सम्बन्धित होगी। दृष्टिकोण पत्र में इस बात पर बल दिया गया कि निर्धनता–उन्मूलन के कार्यक्रमों में आर्थिक सहायता के स्थान पर ग्रामीण क्षेत्रों में परिसम्पत्ति–निर्माण कार्यक्रमों पर ध्यान देना होगा। दसवीं योजना में सार्वजनिक परिव्यय की कुल राशि 15,92,300 करोड़ रू. अनुमानित है, लेकिन साधनों का आवंटन 15,25,630 करोड़ रू. किया गया है।

परिणाम एवं संभावनाएँ : दसवीं पंचवर्षीय योजना मानवीय कल्याण कार्यों तथा जीवन स्तर में व्यापक सुधार के लक्ष्य से प्रेरित है। योजना में खाद्यान्न व अन्य उपभोक्ता वस्तुओं की आपूर्ति के साथ–साथ शिक्षा, स्वास्थ्य, पेयजल और स्वच्छता की उपलब्धता पर ध्यान दिया गया है। योजना का दृष्टिकोण पत्र काफी प्रमाणिक, पारदर्शी व परिवर्तनकारी लगता है। जन भागीदारी, जनसहयोग एवं सरकारी प्रयासों द्वारा इनका क्रियान्वयन प्रभावी हो सकेगा।

दसवीं योजना के मध्यावधि मूल्यांकन में उद्योगों के विकास, कृषि में आवश्यक सुधारोत्मक नीतियों पर ध्यान देने की बात कहीं गयी हैं। जैव प्रौद्योगिकी, स्वास्थ्य देखभाल आदि क्षेत्रों को सुदृढ़ करना, ग्रामीण क्षेत्रों में सार्वजनिक निवेश में वृद्धि से परिसम्पति द्वारा श्रय समाहित करना, केन्द्र राज्यों के वित्तीय साधनों के लिए सुधारात्मक नीतियों की पहचान करना, क्षेत्रीय विषमताओं एवं पिछड़ेपन को दूर करने के लिए अनुभवों की जांच करना आदि तत्वों का समावेश मध्यावधि मूल्याँकन में किया गया है।

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (2007–2012) : इस योजना का लक्ष्य तीव्र और समावेशी विकास रखा गया है। ग्यारहवीं योजना के लिए देश की विकास की दर का लक्ष्य 9 प्रतिशत रखा गया है। बाद में इसे कम कर 8.1 प्रतिशत कर दिया गया है। इस योजना का सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर 8.1 प्रतिशत रही।

महत्त्वपूर्ण तथ्य : 2001 से 2011 के दशक में जनसंख्या की दशकीय वृद्धि दर को घटाकर 16.2 प्रतिशत के स्तर पर लाना। कुल प्रजनन क्षमता दर 2–1 तक नीचे लाना। 0–6 आयु वर्ग में लिंग अनुपात को 2011–12 तक बढ़ाकर 935 तथा 2016–17 तक 950 करना। 2012 तक सभी गाँवों में स्वच्छ पेयजल आपूर्ति सुनिश्चित करना। नवम्बर 2007 तक देश के प्रत्येक गाँव को टेलीफोन व 2012 तक ब्रॉडबैण्ड सुविधा से जोड़ना।

उपलब्धियाँ एवं कमियाँ : 11वीं पंचवर्षीय योजना में देश की विकास दर 7.9 प्रतिशत रही है जो 10वीं योजना की विकास दर 7.6 प्रतिशत से अधिक है। यह विकास दर की अब तक की सभी पंचवर्षीय योजनाओं की विकास दर में सर्वाधिक रही है। इस योजना में कृषि क्षेत्र की विकास दर 3.3 प्रतिशत रही जो 10वीं पंचवर्षीय योजना की इस क्षेत्र की विकास दर 2.4 से अधिक है। गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों का प्रति हर वर्ष 1.5 प्वाइंट कम हुआ है। 11वीं योजना में कुल 78,700 मेगावाट विद्युत क्षमता स्थापित करने का लक्ष्य था। वास्तव में 54,964 मेगावाट विद्युत क्षमता इस योजना में स्थापित हुई।

12वीं पंचवर्षीय योजना (2012–2017) : 1 अप्रेल 2012 से देश की 12वीं पंचवर्षीय योजना प्रारम्भ हो चुकी है जो 31 मार्च 2017 तक लागू रहेगी। इस योजना के मूल ड्राफ्ट में इस अवधि के लिए विकास दर का लक्ष्य 9 प्रतिशत रखा गया था, परन्तु विश्व अर्थव्यवस्था में आये मंदी के दौर के परिणामस्वरूप योजना आयोग ने विकास दर घटाकर पहले 8.2 प्रतिशत कर दी थी, 27 दिसम्बर

2012 को हुई राष्ट्रीय विकास परिषद की बैठक में देश अर्थव्यवस्था की विकास दर को पुनः घटाकर 8 प्रतिशत कर दिया।

लक्ष्य : इस योजना के अन्तर्गत गरीबी अनुपात को 10 प्रतिशत से कम करना। आधारभूत संरचना क्षेत्र में विनियोग को GDP के 9 प्रतिशत तक लाने हेतु प्रयास करना। आधार कार्ड पर आधारित से बैंकिग व्यवस्था से सभी सबसिडी आधारित योजनाओं को प्रत्यक्ष कैश ट्रांसफर योजना से सम्बन्धित करना।

क्षेत्रीय नियोजन

नियोजन की प्रक्रिया एक स्तरीय या बहुस्तरीय होती है। एक स्तरीय नियोजन में सभी निर्णय राष्ट्रीय स्तर पर लिए जाते हैं जिनके क्रियान्वयन के लिए ही निचले क्षेत्रीय स्तरों का सहारा लिया जाता है। भारत में ऐसे ही केन्द्रीकृत नियोजन का प्रचलन है। इसके विपरीत बहुस्तरीय नियोजन में देश को विभिन्न स्तर की प्रादेशिक इकाइयों में बांटकर नियोजन की नीतियाँ तय की जाती है। ये सभी प्रादेशिक इकाइयाँ एक–दूसरे की पूरक होती है। इस प्रकार के नियोजन में निचले स्तर का क्षेत्रीय नियोजन उच्च स्तरीय क्षेत्रीय नियोजन हेतु आधार प्रस्तुत करता है जबकि उच्च स्तरीय नियोजन निम्न स्तरीय नियोजन के लिए ढांचा तैयार करता है। इसमें जनता की सीधी भागीदारी होती है और योजना के लाभ सबसे निचले स्तर तक पहुँच जाते हैं।

भारत जैसे विशाल देश में नियोजन की आवश्यकता के कई कारण है–

(i) भारत एक जनतांत्रितक और संघीय प्रणाली वाला देश है जिसमें राज्यों को कई क्षेत्रों में स्वायत्तता प्राप्त है। इन राज्यों की योजनाओं के क्रियान्वयन में प्रमुख भूमिका है, साथ ही विकास में इनकी जबावदेही है।

(ii) केन्द्रीकृत नियोजन से क्षेत्रीय असमानता में वृद्धि हुई है और निचले स्तर की समस्याओं की अनदेखी हुई है। बहुस्तरीय नियोजन से इनके समाधान के प्रयास किये जा सकते हैं।

(iii) बहुस्तरीय नियोजन देश में गरीबी की समस्या के समाधान का एक उपाय हो सकता है। जनता की सीधी भागीदारी से इस समस्या का पूर्ण समाधान ढूँढ़ा जा सकता है।

प्रादेशिक असन्तुलन

भारत में प्रादेशिक विषमता का लम्बा इतिहास रहा है। स्वतंत्रता के समय देश में तीव्र प्रादेशिक असन्तुलन विद्यमान था। केवल कुछ ही राज्य कृषि एवं उद्योगों की दृष्टि से आगे थे। बिहार (अविभाजित), उड़ीसा, मध्य प्रदेश (अविभाजित) जैसे राज्य प्राकृतिक संसाधनों से सम्पन्न होते हुए भी आर्थिक रूप से पिछड़े थे। स्वतंत्रता के उपरान्त भी इस विषमता को दूर करने के ठोस और कारगर उपाय नहीं किए जा सके हैं। अनेक समाज विज्ञानियों ने विकास में अन्तर्प्रादेशिक असमानताओं की इस समस्या के अध्ययन का प्रयास किया है।

के.वी. सुन्दरम् ने प्रिंसिपल कम्पोनेट अनैलिसिसि टेकनीक द्वारा 14 चरों का उपयोग करते हुए 'अविकसित भारत' में निम्न एवं अति निम्न वर्ग की पहचान की है। जिसमें देश के मुख्यतः पूर्वी, मध्यवर्ती, मध्य दक्षिणी भाग सम्मिलित है। इसमें अजमेर, कोटा, ग्वालियर, उज्जैन, भोपाल, आगरा, कानपुर, लखनऊ, इलाहाबाद, वाराणसी, पटना, राउरकेला एवं जबलपुर आदि नगरीय केन्द्र द्वीपों की भाँति स्थित है, जो चित्तीदार विकास के सूचक है। इस समस्याग्रस्त क्षेत्र में 5 पिछड़े क्षेत्रों की पहचान की जा सकती हैं– (अ) उत्तर–पूर्वी भारत, (ब) पूर्वी मध्यवर्ती भारत की जनजातीय मेखला, (स) पूर्वी उत्तर प्रदेश एवं उत्तरी बिहार, (द) उत्तर प्रदेश एवं मध्यप्रदेश का बुन्देलखण्ड क्षेत्र एवं (य) पारिस्थितिक दृष्टि से असन्तुलित क्षेत्र (सूखा प्रवण क्षेत्र, मरू क्षेत्र, खड्ड क्षेत्र, बाढ़ प्रभावित क्षेत्र एवं पहाड़ी क्षेत्र आदि)।

हाल ही में मोनी (1999) ने 1991 के आंकड़ों के आधार पर 38 चरों की सहायता से जनपदीय स्तर पर देश के विकास के स्तर को मानचित्रित करने का प्रयास किया है। इमसें विकास की दृष्टि से पिछड़े क्षेत्रों की पहचान की गई है। इन क्षेत्रों में पिछले 20 वर्षों के दौरान कोई प्रगति नहीं हुई है। संभव है कि इन पिछड़े जिलों में से कुछ में ऊर्जा, परिवहन, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि में से किसी एकाध क्षेत्र में कुछ विकास कार्य हुए हों परन्तु यह विकास स्तर को ऊपर उठाने हेतु अपर्याप्त रहा है।

सरकारी स्तर पर भी पिछड़े क्षेत्रों की पहचान एवं उनकी समस्याओं के अध्ययन हेतु समितियों एवं आयोगों का गठन किया गया हैं। इनमें चक्रवर्ती कमेटी (1972, योजना आयोग द्वारा), शिवरमन कमेटी (1978), आई.जी. पटेल कमेटी (1984 गुजरात के लिए), डांडेकर फैक्ट फाइंडिग कमेटी (1984, महाराष्ट्र के लिए) प्रमुख है। योजना आयोग ने देश में आर्थिक पिछड़ेपन के तीन कारण बताए हैं – (अ) ऐतिहासिक उपेक्षा, (ब) भौतिक असुविधाएँ (जलवायु, स्थलाकृति, मृदा, धरातल एवं भौमजल आदि) (स) सामाजिक पिछड़ापन (जनजातीय क्षेत्र, सीमान्त समुह, उत्पीडित

समुदाय आदि)। इनमें से प्रत्येक के लिए पृथक तौर पर नियोजन नीति एवं विकास के कार्यक्रमों को तैयार करने की जरूरत है।

राज्यों के स्तर पर भी विकास स्तर पर भी विकास स्तर में पर्याप्त विषमता देखी जाती है। इसके आकलन के लिए प्रति व्यक्ति आय, नगरीकरण, साक्षरता, महिला साक्षरता, निर्धनता रेखा से नीचे रहने वाले व्यक्तियों का प्रतिशत, बेरोजगारी, बुनियादी सुविधाएँ, चिकित्सा सुविधाएँ, शस्य गहनता, सिंचाई, विकास दर आदि संकेतकों का उपयोग किया जाता है।

1. मरू विकास कार्यक्रम

मरूस्थल विकास कार्यक्रम (डी.डी.पी.) का उद्देश्य मरूस्थल के प्रसार को रोकना तथा स्थानीय संसाधनों की उत्पादकता में बढ़ोतरी कर स्थानीय लोगों की आय और रोजगार स्तर में वृद्धि करना है। इसे उष्ण एवं शीतल मरू क्षेत्रों में लागू किया जा रहा है। यह कार्यक्रम मरूस्थलीयकरण को रोकने के लिए ऐसी गतिविधियों पर जोर देता है जो पारिस्थितिक सन्तुलन को पुनःस्थापन, बालुका स्तूपों के स्थिरीकरण तथा मृदा एवं जल के संरक्षण में सहायक है। सुरक्षा पेटियों का लगाना, जल संग्रहण तकनीकों को अपनाना तथा पशुपालन व्यवस्था के संपोषण हेतु चरागाहों का विकास करना इस कार्यक्रम की कुछ रणनीतियाँ हैं। इसमें चारागाह के अलावा चारा फसलों, ईंधन एवं चारा हेतु वृक्षारोपण को प्रोत्साहित किया जाता है। इसी प्रकार लद्दाख और स्थिति के शीतल मरू क्षेत्रों में सिंचित कृषि एवं पशुपालन के विकास पर जोर दिया जाता है।

मरूस्थल विकास कार्यक्रम कृषि आयोग की सिफारिशों पर 1977–78 में प्रारम्भ किया गया था। इसे देश के 7 राज्यों के 40 जिलों के 235 विकास खण्डों (क्षेत्रफल 4,57,432 वर्ग किमी) में लागू किया गया है। राजस्थान में यह कार्यक्रम 16 जिलों के 85 खण्डों में संचालित किया जा रहा है। इन राज्यों में आन्ध्रप्रदेश, गुजरात, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, जम्मू एवं कश्मीर, कर्नाटक और राजस्थान शामिल है। इसमें खर्च का सारा भाग केन्द्र द्वारा (उष्ण मरू क्षेत्र में 75 प्रतिशत) वहन किया जाता है। अप्रेल 1995 में इसे जलसंभर विकास कार्यक्रम में समांकित कर लिया गया है।

2. जनजातीय क्षेत्र विकास कार्यक्रम

सन् 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में परिगणित जनजातियों की कुल जनसंख्या 182.81 लाख (कुल जनसंख्या का 8.61 प्रतिशत) है, जो 58 जनजातीय समुदायों और 365 समूहों में विभाजित है। लक्षद्वीप (94.80%), मिजोरम (94.43%), नागालैण्ड (86.48%), मेघालय (86.15%), अरूणाचल प्रदेश (68.79%) एवं दादर नगर हवेली (51.95%) में जनजातियों की प्रधानता है। इसके अलावा देश में 12 राज्य मणिपुर, छत्तीसगढ़, त्रिपुरा, झारखण्ड, उड़ीसा, सिक्किम, मध्यम प्रदेश, गुजरात, राजस्थान, असम, जम्मू कश्मीर एवं महाराष्ट्र और केन्द्र शासित दमन एवं दीव और अण्डमान एवं निकोबार द्वीप समूह है जहाँ जनजातियों की जनसंख्या का राष्ट्रीय औसत (8.61 प्रतिशत) से अधिक पाया जाता है। देश के 10 राज्यों के 19 जिलों में जनजातियों की जनसंख्या का प्रतिशत 50 से अधिक एवं 332 तालुकों/तहसीलों में ये पूर्ण बहुमत में पाई जाती है। इन जनजातियों का सर्वाधिक समुहन उत्तर–पूर्वी पहाड़ियों, मेघालय–कार्बी, आंगलौग पठार, छोटा नागपुर पठार, अरावली (आबु व कोटड़ा), और विन्ध्य पहाड़ियों के पूर्वी भागों (वागड़ एवं मालवा) के बीच में, पश्चिमी घाट और हिमालय की उच्च घाटियों में पाया जाता है। ये पहाड़िया, वनाच्छादित और अर्द्ध शुष्क क्षेत्र सामाजिक और आर्थिक विकास में अत्यन्त गरीब व पिछड़े हैं। जनजातीय विकास कार्यक्रम उन क्षेत्रों के लिए तैयार किए जाते हैं जिनमें 50 प्रतिशत या उससे अधिक पाई जाती है। इन क्षेत्रों के लिए उपयोजनाएँ बनाई जाती है जिनका उद्देश्य जनजातीय और अन्य क्षेत्रों के बीच विकास स्तर के अन्तर को कम करना तथा जीवन की गुणवत्ता में सुधार करना है।

देश के 19 राज्यों और 2 केन्द्र शासित प्रदेशों में ऐसी उपयोजनाओं (टी.एस.पी.) के क्षेत्रों की पहचान की गई है। ये क्षेत्र मुख्यतः मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, उड़ीसा, महाराष्ट्र, झारखण्ड, गुजरात, आन्ध्र प्रदेश और राजस्थान (डूंगरपुर–बांसवाड़ा–प्रतापगढ़, उदयपुर, सिरोही) जिलों की 19 तहसीलें 23 पंचायत समिति में स्थित है।

इन योजनाओं हेतु संसाधन राज्य की योजना राशि, केन्द्रीय मंत्रालयों, केन्द्रीय सहायता और संस्थगत वित्त से प्राप्त होता है।

जनजातीय उपयोजनाओं के निर्माण में इस बात का ध्यान दिया जाता है कि इसका लाभ सामान्य लोगों विशेषकर सबसे कमजोर वर्ग तक पहुँच सके। इसमें स्थानान्तरण कृषि द. राजस्थान में (वालरा कृषि), बधुआ मजदूरी एवं भूमि हस्तान्तरण ऐसी समस्याओं और ऋण, विपणन वानिकी, सड़क निर्माण आदि कार्यक्रमों पर विशेष ध्यान दिया जाता है। जनजातीय उपयोजनाओं हेतु त्रिस्तरीय विकास ढाँचे (सूक्ष्म–ब्लॉक, मध्यम तहसील एवं

वृहत्–जनजातीय जमाव क्षेत्र) का उपयोग किया जाता है। इन उपयोजना में कृषि एवं वागवानी, पशुपालन वानिकी, लघु एवं ग्राम उद्योग एवं विपणन में सुधार पर जोर दिया जाता है। इसमें शिक्षा को प्राथमिकता दिए जाने के साथ–साथ शुद्ध पेयजल, पर्याप्त आवास, चिकित्सा एवं पोषाहार आदि मूलभूत सुविधाओं को भी शामिल किया जाता है। जनजातीय विकास में एक समान योजना के बजाय विभिन्न क्षेत्रों के लिए अलग–अलग तरह की उपयोजनाएँ बनाई जाती है।

3. पर्वतीय विकास कार्यक्रम

भारत का लगभग 17 प्रतिशत क्षेत्र पर्वतीय है जहाँ देश की लगभग 11 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है। मोटे तौर पर ऐसे क्षेत्र दो प्रकार के हैं (i) वे जो सम्पूर्ण राज्य का निर्माण करते हैं एवं (ii) वे जो किसी राज्य के भाग है। प्रथम वर्ग में– उत्तर–पूर्व के राज्य, जम्मू एवं कश्मीर, हिमाचल प्रदेश एवं उत्तराखण्ड सम्मिलित है। ये विशिष्ट श्रेणी के राज्य कहलाते हैं। इनके खर्च का बड़ा भाग केन्द्रीय सहायता द्वारा पूरा किया जाता है। उत्तर–पूर्व के राज्यों के समन्वित विकास हेतु संसद अधिनियम (1971) द्वारा उत्तर–पूर्वी परिषद् का गठन किया गया है। इस परिषद् ने ऊर्जा उत्पादन, सड़क निर्माण, कृषि, पशुपालन, मात्स्यिकी आदि अन्तर्प्रादेशिक कार्यक्रमों के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है।

द्वितीय वर्ग के अन्तर्गत असम (कार्बो आगलौंग एवं उत्तरी कछार जिले) और पश्चिम बंगाल (दार्जिलिंग जिला) के भाग शामिल है। इसके अलावा पहाड़ी क्षेत्रों का विस्तार, महाराष्ट्र, कर्नाटक, तमिलनाडु, गोवा एवं केरल (कुल क्षेत्रफल 134,500 वर्ग किमी.) में पाया जाता है। यद्यपि इनके विकास की जिम्मेदारी सम्बन्धित राज्य सरकारों की है परन्तु केन्द्र द्वारा अलग से भी वित्तीय सहायता दी जाती है।

पर्वतीय क्षेत्रों की समस्याएँ मैदानी क्षेत्रों से भिन्न होती है। यही कारण है कि इनकी स्थलाकृति, सांस्कृतिक और सामाजिक–आर्थिक विशिष्टताओं को ध्यान में रखकर प्रत्येक पर्वतीय क्षेत्र हेतु अलग–अलग विकास योजनाओं को बनाने की जरूरत है। इसमें सम्बन्धित क्षेत्र के भूमि, खनिज, जल एवं जैविक संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग किया जाना चाहिए। सम्पूर्ण विकास नीति स्थानीय लोगों, विशेषकर महिलाओं की सक्रिय सहभागिता पर आधारित होनी चाहिए।

पर्वतीय क्षेत्र के विकास कार्यक्रमों में बागवानी, बागान, कृषि, पशुपालन, मुर्गीपालन, मधुमक्खी पालन, वानिकी, मृदा संरक्षण एवं ग्रामीण उद्योग पर बल दिया जाता है। इसमें कार्यक्रमों के पैकेज एवं सहकारिता को बढ़ावा दिया जाता है। उदाहरणार्थ–वानिकी कार्यक्रम में बागाती कृषि (कहवा, चाय, मसाला इत्यादि), कृषि वानिकी, सामाजिक वानिकी या बागवानी में फलो के उद्यान (सेब, अंगूर, केला आदि) के साथ–साथ उनके विपणन को शामिल करना श्रेयस्कर होता है।

कुछ पर्वतीय क्षेत्रों में जनजातियों द्वारा 'झूमिंग' (स्थानान्तरणीय) कृषि की जाती है जिसे स्थायी कृषि में बदलने एवं झूमियाँ कृषकों को पुनर्वासित करने हेतु अनेक कार्यक्रम बनाए गए है। कहवा, रबड़ आदि के बागानों को विकसित कर झूमियाँ किसानों को इनका स्वामित्व सौंपना एक कारगर समाधान हो सकता है।

पशुपालन कार्यक्रम– पशुओं और चारागाहों की उपलब्धता को ध्यान में रखकर बनाये जाने चाहिए जिसमें वैज्ञानिक दृष्टि से प्रजनन, पशु स्वास्थ्य तथा पशु उत्पादों के प्रसंस्करण और विपणन पर बल दिया जाना चाहिए।

पर्वतीय क्षेत्र ऐसे उद्योगों के लिए उपयुक्त होते हैं जिनके लिए प्रदूषण रहित पर्यावरण, शीत जलवायु, उच्च दक्षता एवं मूल्य अभिवृद्धि की आवश्यकता होती है। इनमें इलेक्ट्रॉनिक, घड़ी निर्माण, औषण–निर्माण आप्टिकल ग्लास आदि प्रमुख है। कुटीर उद्योग के तौर पर गलीचा बनाना एवं हथकरघा उद्योग इन क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है। इसके साथ ही साथ इन क्षेत्रों में पर्यटन उद्योग के विकास पर सर्वाधिक ध्यान दिया जाना चाहिए।

पर्वतीय क्षेत्र विशेषकर हिमालय क्षेत्र, जैव विधिता के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ औषधीय पौधों, फलों, फूलों एवं वन्य जीवों की अनेक प्रजातियाँ पाई जाती है। अतः एवं यहाँ की मूल्यवान पादप एवं प्राणि सम्पदा के संरक्षण एवं परिवर्द्धन हेतु जैव–आरक्षित क्षेत्रों राष्ट्रीय उद्योगों और जीन केन्द्रों को स्थापित करने की जरूरत है।

पर्वतीय क्षेत्रों के वैज्ञानिक नियोजन हेतु संसाधनों (मृदा, खनिज, वनस्पति, जल आदि) के बारे में विधिवत जानकारी आवश्यक है जिसके लिए दूरसंवेदी तकनीकी, हवाई छायाचित्र और धरातलीय सर्वेक्षण का सहारा लिया जा सकता है। यहाँ क्षेत्रीय, उपक्षेत्रीय एवं सूक्ष्म स्तर पर अल्पकालिक एवं दीर्घकालिक योजनाओं का निर्माण किया जाना चाहिए जिसमें पर्यावरण सुरक्षा और जनता की सहभागिता को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

1. नियोजन विकास : स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत ने देश के विकास के लिए नियोजन का मार्ग अपनाया है।
2. नियोजन एक तकनीक है, यह वांछित उद्देश्यों एवं लक्ष्यों को पूरा करने का एक साधन है।
3. विकास व नियोजन – स्वतंत्रता के बाद से ही ग्रामीण विकास में सामुदायिक विकास कार्यक्रम 1952 को शुरूआत कर दी गई।
4. पंचवर्षीय योजना में नियोजन : विदेशी आत्मनिर्भरता कम करने के लिए पंचवर्षीय योजनाओं की शुरूआत की गयी। यह रूस के नियोजन से प्रेरणा ली गई थी।
5. भारत में अप्रेल 1952 से अब तक ग्यारह पंचवर्षीय योजनाएँ क्रियान्वित की जा चुकी है तथा बारहवीं पंचवर्षीय योजना (2012–2017) चालू है।
6. क्षेत्रीय नियोजन : भारत में प्रादेशिक विषमता का असन्तुलन विद्यमान है। जो प्राकृतिक रूप से विद्यमान विषमता को दूर करने के कारगर उपाय प्रयासरत है।
7. भारत में योजना आयोग ने पिछड़ेपन के तीन कारण बताए। – ऐतिहासिक उपेक्षा, – भौतिक असुविधाएँ, – सामाजिक पिछड़ापन।
8. भारत में क्षेत्रीय कार्यक्रम (i) मरू विकास कार्यक्रम 1977–78, (ii) जनजातीय क्षेत्र विकास कार्यक्रम, पर्वतीय विकास कार्यक्रम।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक

1. भारतीय नीति आयोग एक है–
   (अ) सलाहकारी निकाय (ब) क्रियान्वयन समिति
   (स) सरकारी समिति (द) विधायी समिति
2. योजना आयोग का अध्यक्ष होता है–
   (अ) राष्ट्रपति (ब) प्रधानमंत्री
   (स) वित्तमंत्री (द) रिजर्व बैंक का गवर्नर
3. राष्ट्रीय विकास परिषद् का अध्यक्ष होता है–
   (अ) प्रधानमंत्री (ब) राष्ट्रपति
   (स) योजना आयोग का उपाध्यक्ष
   (द) केन्द्रीय वित्तमंत्री
4. चतुर्थ योजना का मॉडल निम्न में से किसके मॉडल के आधार पर बनाया गया था–
   (अ) प्रो. महालनोबिस (ब) हैरोड डॉमर
   (स) डॉ. वी.वी. भट्ट
   (द) ए.एस. मान व अशोक रूद
5. ग्याहरवीं योजना में विकास दर के पूर्व निर्धारित लक्ष्य प्रतिशत को घटाकर कर दिया है–
   (अ) 8 प्रतिशत (ब) 8.1 प्रतिशत
   (स) 8.5 प्रतिशत (द) 8.7 प्रतिशत
6. सार्वजनिक परिव्यय में ग्यारहवीं योजना में किस क्षेत्र सर्वाधिक व्यय प्रस्तावित किया गया है–
   (अ) ऊर्जा (ब) यातायात
   (स) कृषि तथा सम्बद्ध (द) सामाजिक सेवायें
7. प्रथम पंचवर्षीय योजना में किसे उच्चतम प्राथमिकता प्रदान की गई–
   (अ) कृषि को (ब) उद्योग को
   (स) ऊर्जा को (द) रोजगार को
8. प्रथम पंचवर्षीय योजना का आधार कौनसा मॉडल था–
   (अ) हैरड–डॉमर मॉडल (ब) महालनोबिस मॉडल
   (स) मानव व रूद मॉडल (द) उक्त कोई नहीं
9. देश में पंचायती राज व्यवस्था का शुभारंभ किया गया
   (अ) प्रथम पंचवर्षीय योजना में
   (ब) द्वितीय पंचवर्षीया योजना में
   (स) तृतीय पंचवर्षीय योजना में
   (द) चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में
10. 12वीं पंचवर्षीय योजना की अवधि है–
    (अ) 1 अप्रेल, 2005 से 31 मार्च, 2010
    (ब) 1 अपेल, 2007 से 31 मार्च, 2012
    (स) 1 अपेल, 2012 से 31 मार्च, 2017
    (द) 1 अप्रेल, 2008 से 31 मार्च, 2013

अतिलघूत्तरात्मक

11. सामुदायिक विकास कार्यक्रम की शुरूआत कब हुई।
12. ''नीति आयोग'' का गठन कब हुआ। इसका अध्यक्ष कौन होता है।
13. पंचवर्षीय योजना की शुरूआत कब हुई थी।
14. वर्तमान में कौनसी पंचवर्षीय योजना संचालित है।
15. 'मरूस्थलीय विकास कार्यक्रम' क्या है?

लघूत्तरात्मक

16. नियोजन विकास पर टिप्पणी लिखिए?
17. पंचवर्षीय योजनाओं में नियोजन के महत्व पर प्रकाश डालिए।
18. भारत में पांचवी पंचवर्षीय योजना पर टिप्पणी लिखिए।
19. ''बीस सूत्री'' कार्यक्रम पर टिप्पणी लिखिए।
20. जनजातीय क्षेत्र विकास कार्यक्रम को समझाइये।

निबन्धात्मक

21. दसवी पंचवर्षीय योजना का वर्णन कीजिए।
22. प्रादेशिक असन्तुलन को समझाइए।
23. मरू विकास कार्यक्रम व पर्वतीय विकास कार्यक्रम का वर्णन कीजिए।
24. बारहवीं पंचवर्षीय योजना के लक्ष्य, प्रगति एवं परिणाम की चर्चा कीजिए।

पाठ 22
नियोजन एवं सतत् विकास
(Planning and Sustainable Development)

निर्धरता, भूख, कुपोषण, निम्न जीवन स्तर निराशाजनक अशिक्षा के गुणों से युक्त मानव विकास के निम्न स्तर की परिचायक है। भारत सरकार ने विभिन्न योजनाओं में गरीबी के उन्मूलन पर विशेष ध्यान दिया है। हमारे आर्थिक विकास का प्रमुख लक्ष्य निर्धनता का उन्मूलन करना है। भारत में 93.94 में ग्रामीण क्षेत्रों में कुल 40.37 करोड़ जनसंख्या निर्धनता की रेखा के नीचे रह रही थी, 2004–05 में 32.63 करोड़ लोग ग्रामीण क्षेत्र में गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन कर रहे थे।

विकास व नियोजन : योजनाओं एवं कार्यक्रम क्रियान्वयन भारत में स्वतंत्रता के बाद से ही ग्रामीण विकास के पुननिर्माण हेतु संगठित प्रयास किए गए हैं। सामुदायिक विकास कार्यक्रम (1952) की शुरूआत के उपरान्त इसका लक्ष्य गाँवों की पारम्परिक जीवन शैली में सुधार कर ग्रामीण समाज को समानता और न्याय का अधिकार दिलाना हो गया।

इस अध्याय में हम नियोजन के विभिन्न पक्षों, गरीबी, उसके उन्मूलन, रोजगार सृजन मनरेगा और सतत् विकास का अध्ययन करेंगे।

गरीबी

संयुक्त राष्ट्र संघ के खाद्य एवं कृषि के प्रथम निदेशक लार्ड बॉयड ओर ने सर्वप्रथम 1945 में गरीबी रेखा की अवधारणा प्रस्तुत की थी। डॉ. ओर ने 2300 कैलोरी प्रति व्यक्ति प्रतिदिन से कम उपभोग करने वाले व्यक्ति को गरीब माना गया।

निरपेक्ष गरीबी– इसके अनुसार गरीबी वह स्थिति है जिसमें व्यक्ति अपनी न्यूनतम आधारभूत आवश्यकताओं जैसे खाना, कपड़ा, स्वास्थ्य सुविधा आदि की पूर्ति नहीं कर पाता है।

सापेक्ष गरीबी– इसका अभिप्राय आय की असमानता से है। यह अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक असमानता या क्षेत्रीय आर्थिक असमानताओं से है। उदाहरणार्थ यदि एक देश की प्रति व्यक्ति आय दूसरे देश की प्रति व्यक्ति से आय कम है तो पहले देश को दूसरे देश की तुलना में गरीब माना जाएगा।

गरीबी : गरीबी का तात्पर्य 'विकास' के ठीक विपरीत है। इसका आशय विकास की कमी, अल्प विकास एवं पिछड़ेपन से है। देश के कुछ क्षेत्रों में चिरस्थायी पिछड़पेन और असमानता ने देश के कुछ हिस्सों में गरीबी की सघनता को जन्म दिया है। इसलिए गरीबी एक भौगोलिक आयाम है। इसके अतिरिक्त, चूँकि गरीबी कुछ समूहों के बीच विशेष रूप से कायम रही है, इसलिए सामाजिक आयाम भी है। भारत में गरीबी मापने के कई मतभेद है, फिर भी पैनल डाटा के माध्यम से परिवारों की खोज ने गरीबी की गतिशीलता के विश्लेषण को सुगम बनाना होगा। हमारा ध्यान सतत् गरीबी की सघनता के महत्त्वपूर्ण पहलू, गैर गरीब परिवारों को गरीबी की ओर जाने और सभी परिवारों के लिए एक बेहतर जीवन के रूप में बदलना होगा।

भारत में गरीबी मापने के दो आधार निर्धारित किए गए हैं– (i) न्यूनतम कैलारी उपभोग, (ii) प्रति व्यक्ति प्रतिमाह व्यय योजना

आयोग द्वारा गठित 'विशेषज्ञ ग्रुप' के अनुसार ग्रामीण क्षेत्र में 2400 कैलोरी व शहरी क्षेत्रों में 2100 कैलोरी प्रति व्यक्ति प्रतिदिन पोषण न प्राप्त करने वाला व्यक्ति गरीबी की रेखा से नीचे अर्थात बीपीएल माना जाता है। न्यूनतम उपभोग व्यय (2011–12 के) अनुसार तेंदुलकर समिति ने ग्रामीण में 27 रू. व शहरी में 33 रू. प्रतिदिन प्रति व्यक्ति खर्च करने वाला गरीबी रेखा से नीचे नहीं आएगा।

तेंदुलकर समिति के अनुसार 2011 में भारत में 26.9 प्रतिशत, ग्रामीण व शहरी क्रमशः 21.65 व 5.28 प्रतिशत तथा रंगराजन समिति के अनुसार भारत में 36.30 प्रतिशत, ग्रामीण व शहरी क्षेत्र में क्रमशः 26.05 वे 10.25 प्रतिशत जनसंख्या बीपीएल वर्ग में है।

गरीबी उन्मूलन रोजगार कार्यक्रम

ग्रामीण विकास के विभिन्न कार्यक्रमों जैसे पूर्व में एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम, ट्रोइसेम, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम तथा भूमिहीन रोजगार गारन्टी कार्यक्रम न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम तथा क्षेत्रीय विकास कार्यक्रमों, जैसे सूखा–सम्भाव्य क्षेत्र कार्यक्रम आदि से गरीबी उन्मूलन पर प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से प्रभाव पड़ा है। गरीबी निवारण के लिए संचालित पूर्ववर्त्ती कार्यक्रमों व वर्तमान में संचालित कार्यक्रमों का वर्णन इस प्रकार है।

(1) स्वरोजगार हेतु ग्रामीण युवक प्रशिक्षण (ट्राइसेम): इसे 15 अगस्त 1979 को केन्द्र समर्थित योजना के रूप में शुरू किया गया। इसमें गरीबी रेखा से नीचे के परिवारों से 18 से 35 वर्ष आयु के युवकों को कृषि एवं सम्बद्ध क्रिया– कलापों, उद्योग, सेवाओं एवं व्यापार में स्वरोजगार हेतु दक्षता प्राप्त करने के लिए प्रशिक्षण दिया जाता है। प्रशिक्षण के बाद ट्रायसम लाभार्थियों को समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत मदद दी जाती है। इस योजना के तहत 1980–98 तक 41,48,425 युवकों (17,74,395 अनुसूचित जाति/जनजाति) को प्रशिक्षित किया गया। जिसमें 23,32,274 युवक रोजगार में लग गये थे। इस योजना को 1 अप्रेल 1999 में स्वर्ण जयन्ति ग्राम स्वरोजगार योजना में समयोजित कर लिया गया है।

(2) एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (**IRDP**) : यह योजना 1978–79 में प्रारम्भ की गई। यह एक केन्द्र समर्थित योजना थी। इसका उद्देश्य गरीब परिवारों काक कोई न कोई परिसम्पत्ति दी जाए ताकि उसका उपयोग करके वे अपनी आमदनी बढ़ा सके और गरीबी की रेखा से ऊपर आ सके। कार्यक्रम में दुधारू पशु (गाय, भेड़, बकरी, भैंस) बैलगाड़ी, सिलाई की मशीनें, हथकरधा आदि साधन प्रदान करने के लिए सरकार अनुदान देती थी। बैंकों से ऋण दिलाया जाता था। यह कार्यक्रम 1 अप्रेल 1999 में स्वर्ण जयन्ति ग्राम स्वरोजगार योजना में मिला दिया गया है।

(3) जवाहर रोजगार योजना (**JRY**) : ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार बढ़ाने की दृष्टि से यह योजना 1989–90 में प्रारम्भ की गई थी। इसमें केन्द्र का अंश 80 प्रतिशत व राज्यों का 20 प्रतिशत तक रखा गया था। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत पेयजल के लिए कुओं का निर्माण, स्कूल–भवन, दवाखानें, ग्रामीण सड़के, लघु सिंचाई व भू–संरक्षण आदि के कार्य किए जाते थे। लोगों का पोषण स्तर ऊँचा उठाने के लिए 'काम के बदले अनाज' भी दिया जाता था। इससे पूर्व ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के दो कार्यक्रम चलाए गये थे (i) राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम तथा (ii) ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारन्टी कार्यक्रम। 1989–90 में यह दोनों कार्यक्रम इस योजना में मिला दिया गया। 1 अप्रेल, 1999 से जवाहर ग्राम–समृद्धि योजना लागू की गई।

(4) ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं एवं बच्चों का विकास (**DWCRA**) : इसमें गरीब परिवार की महिलाओं की आय में वृद्धि हेतु 5–10 महिलाओं का समूह बनाकर 15,000 रू. की आवृर्ती धनराशि (केन्द्र, राज्य एवं यूनिसेफ) प्रदान की जाती है। 1980–81 से 1997–98 के बीच इस योजना के तहत् महिलाओं को सहायता प्रदान की गई। 1 अप्रेल 1999 के SGSY में शामिल कर दिया गया।

(5) जिला गरीबी उन्मूलन परियोजना (**DPIP**) : यह योजना 22 जुलाई 2000 को विश्व बैंक के सहायोग से प्रारम्भ हुई। यह ग्रामीण गरीबों को गैर–सरकारी संस्थाओं के माध्यम से जोड़कर उनकी क्षमताओं का विकास करके उनका सशक्तीकरण करने के लिए बनाई गई। इसे NGOs के द्वारा कॉमन–इन्टरेस्ट ग्रुप (CIGs) बनाकर संचालित किया गया। इस प्रोजेक्ट के तहत सामुदायिक आधार– ढाँचा, भूमि–आधारित, सामाजिक सेवाएँ व आय–सृजन के कार्य किये गये।

(6) प्रधानमंत्री आवास योजना (**IAY**) : इसमें गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले अनुसूचित जाति/जनजाति, मुक्त बधुआ मजदूर ग्रामीण गरीबों और युद्ध में शहीद सैनिकों की विधवाओं/निकटतम सम्बन्धियों को आवास निर्माण हेतु पर्वतीय क्षेत्रों में 75,000/– रूपये, मैदानी भागों में 70,000/– रूपये प्रति आवास प्रदान किये गये। यह योजना मई 1985–86 में शुरू हुई और 2016 में प्रधानमंत्री आवास योजना में नाम परिवर्तित किया गया है। जिसमें

प्रत्येक कच्चे मकान वाले परिवार को शौचालय सहित 1,48,000/– रूपये प्रदान किये जाऐंगे।

(7) राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन (**NRHM**) : इस योजना को 30 मई 2005 में प्रारम्भ किया गया है। इसे देश में गरीब ग्रामीण जनता तक स्वास्थ्य सेवाओं को सुनिश्चित करने के उद्देश्य से शुरू किया गया है। इस योजना के उद्देश्य निम्न रखे गये हैं।

(i) ग्रामीण विशेषकर समाज के कमजोर वर्गों महिलाओं और बच्चों को प्रभावी स्वास्थ्य सेवाएँ प्रदान करना।

(ii) शिशु एवं मातृ मृत्यु दर में कमी लाना।

(iii) जनसंख्या स्थिरीकरण, लिंग एवं जन सांख्यिकीय सन्तुलन सुनिश्चित करना।

(8) गंगा कल्याण योजना : इस केन्द्र समर्थिक योजना को 1 फरवरी, 1997 को गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लघु एवं सीमान्त कृषकों को नलकूप/पंपिग सेट लगाने के लिए अर्थ–सहयोग और मियादी ऋण की सुविधा दी जाने के लिए किया गया है। इसमें 50 प्रतिशत लाभार्थी अनुसूचित जाति/जनजाति के होते हैं। खर्च का 80 प्रतिशत भाग केन्द्र 20 प्रतिशत राज्य सरकार द्वारा वहन किया जाता है। इसे भी 1999 में जीएसएसवाई में मिला दिया गया।

(9) राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम : इसकी शुरूआत 15 अगस्त, 1995 को की गई (i) इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना में 65 वर्षीय अपेक्षित वृद्ध की प्रतिमाह 700 रूपये व 60 वर्ष तक 500 रू. प्रति माह वर्तमान में (ii) राष्ट्रीय पारिवारिक लाभ योजना में घर के पालनकर्ता की मौत पर परिवार वालों को 30,000 रूपये दिए जाते हैं (iii) राष्ट्रीय मातृ लाभ योजना में गरीबी रेखा से नीचे की 19 वर्ष से अधिक आयु वाली गर्भवती महिलाओं को 1400 रूपये लड़की के जन्म पर राजश्री योजना में 50,000 रूपये बालिका के सरकारी विद्यालय से पढ़ाई करने पर प्रदान किये जाते हैं।

(10) अन्नपूर्णा योजना : यह 1 अप्रेल 2001 से शुरू की गई जिसका उद्देश्य प्रतिमाह वरिष्ठ नागरिकों (65 वर्ष से अधिक उम्र) को 10 किलो अनाज देने की योजना शामिल है।

(11) अंत्योदय अन्न योजना : यह योजना दिसम्बर 2001 को प्रारम्भ हुई है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अन्तर्गत बीपीएल परिवारों को 2 रूपये प्रति किलो की दर से 25 किलो गेहूँ एवं 3 रूपये प्रति किलो की दर से चावल उपलब्ध करवाया जाता है।

(12) स्वर्ण जयन्ति ग्राम स्वरोजगार योजना (**SGSY**) : यह कार्यक्रम पूर्व में संचालित (IRDP, TRYSEM, DWCRA, SITRA, GKY, MWS) नामक 6 कार्यक्रमों को मिलाकर 1 अप्रेल, 1999 से भारत सरकार के ग्रामीण विकास मंत्रालय की तरफ से चलाया गया था। इसमें भारत सरकार व राजस्थान सरकार की भागीदारी 75 : 25 थी। इसके तहत् स्वरोजगारियों को निर्धनता की रेखा से ऊपर उठाने के लिए तथा उनकी आमदनी बढ़ाने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में लधु उपक्रमों में काम पर लगाने की व्यवस्था की जाती है। इसमें 'समूह' के आधार पर स्वरोजगार अधिकतम किया जाता था। इसके अन्तर्गत सब्सिडी की व्यवस्था की गयी थी। इससे अनुसूचित जाति, जनजाति के लोगों को विशेष लाभ पहुँचाया जाता है।

(13) सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना (**SGRY**) : इसे सितम्बर 2001 में रोजगार गारण्टी योजना (EAS) और जवाहर ग्राम समृद्धि योजना (JGSY) को मिलाकर शुरू किया गया है। इसका उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में अतिरिक्त रोजगार, खाद्य सुरक्षा और स्थायी सामुदायिक परिसम्पत्तियों का निर्माण करना है। इसमें समाज के कमजोर वर्गों, विशेषकर महिलाओं, अनुसूचित जाति, जनजाति एवं खतरनाक व्यवसायों से हटाये गये बच्चों के माता–पिता को प्राथमिकता दी गई है। योजना में प्रत्येक श्रमिक को 5 किग्रा खाद्यान्न एवं 25 प्रतिशत नकद धनराशि देना जरूरी है। वर्तमान में इसे मनरेगा में समाहित कर लिया है।

(14) काम के बदले अनाज योजना : इसे 14 नवम्बर 2004 में देश के 150 अत्यधिक पिछड़े जिलों में शुरू किया गया है। जिसकी पहचान केन्द्र व राज्य सरकारों की सलाह पर योजना आयोग द्वारा की गयी है। प्रत्येक गरीब परिवार को वर्ष में 100 दिन का रोजगार देने का प्रावधान है। प्रतिदिन मजदूरी में 5 किग्रा अनाज और नकद धनराशि दी जाती है। अब यह योजना मनरेगा में शामिल कर ली है।

वर्तमान में गरीबी निवारण में सहायक कार्यक्रम

(1) प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना (**PMGSY**) : यह योजना 25 दिसम्बर 2000 को शुरू की गई। इसका उद्देश्य 500 से अधिक (पहाड़ी, मरूस्थल एवं जनजातीय क्षेत्रों में 250) जनसंख्या वाले प्रत्येक गाँव को पक्की सड़कों से जोड़ना है।

(2) जलसंभरण विकास कार्यक्रम (**WDP**), इससे पूर्व संचालित तीन कार्यक्रमों – सूखा प्रणव क्षेत्र विकास कार्यक्रम (DPAP, 1973), मरूस्थल विकास कार्यक्रम (DDP, 1977) एवं समन्वित बंजर भूमि विकास कार्यक्रम (IWD, 1989) को समाहित

कर दिया गया है। जल संभरण कार्यक्रमों को हरियाली निर्देश के अधीन परियोजना कार्यान्वयन एजेन्सी के माध्यम से ग्राम पंचायत द्वारा लागू किया जाता है।

(3) बीस सूत्री कार्यक्रम : यह कार्यक्रम की घोषणा 1975 में की गई थी। कार्यक्रम का लक्ष्य देश की गरीब व वंचित आबादी के जीवन–स्तर को सुधारना है, जिसमें गरीबी, रोजगार, शिक्षा, आवास, स्वास्थ्य, कृषि, सिंचाई, पेयजल, कमजोर तबकों की सुरक्षा इत्यादि 119 विषय है।

(4) राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन : 1 अप्रेल 1999 से शुरू स्वर्ण जयन्ति ग्राम स्वरोजगार योजना को ग्रामीण विकास मंत्रालय ने राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन के रूप में पुननिर्धारित किया है तथा इसका नाम (2011) में आजीविका मिशन कर दिया गया है। इसका उद्देश्य ग्रामीण गरीबों के लिए प्रभावी एवं कुशल संस्थागत मंच का निर्माण करना है। टिकाऊ आजीविका वृद्धि और वित्तीय संस्थाओं के उपयोग में सुधार के माध्यम से घरेलू आय में वृद्धि करने के लिए उन्हें सक्षम बनाना।

(5) प्रधानमंत्री जन–धन योजना : यह 15 अगस्त 2014 को शुरू की गई। इस योजना का उद्देश्य देश के सभी परिवारों को बैंकों तक लोगों की पहुँच को सरल– सहज बनाना है। बैंकों तक लोगों की पहुँच को सार्वजनिक सार्वभौमिक बनाने और वित्तीय सहायता के लिए प्रधानमंत्री जन–धन योजना की घोषणा प्रधानमंत्री के द्वारा की गई। इसके तहत गरीब परिवारों के लिए एक बैंक खाते, एक डेबिट कार्ड व एक लाख रूपये के बीमा की सुविधा दी गई है।

महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी कार्यक्रम (मनरेगा)

मनरेगा अधिनियम अर्थात् 5 सितम्बर, 2005 को अधिसूचित किया गया है। 2 फरवरी 2006 आन्ध्र प्रदेश राज्य से देश के 200 सबसे पिछड़े जिलों में शुरू किया गया और बाद में 1 अप्रेल 2008 को देश के शेष सभी ग्रामीण जिलों जिनकी संख्या 644 है, में लागू कर दिया गया। जिसमें राजस्थान के 6 जिले प्रथम चरण में शामिल थे। जिसका उद्देश्य ऐसे प्रत्येक परिवार जिनके वयस्क सदस्य अकुशल शारीरिक श्रम करना चाहते हैं, इन्हें एक वर्ष में कम से कम 100 दिनों की गारन्टी शुदा (मजदूरी) रोजगार उपलब्ध कराते हुए आजीविका सुरक्षा को बढ़ाना है। विश्व में भारत प्रथम देश है जिसने ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार सुनिश्चित करके गरीबी दूर करने के लिए सरकार ने साविधिक स्वरूप एवं अधिकार आधारित दृष्टिकोण के साथ 'मनरेगा' अधिनियम बनाया है।

इस व्यय से सड़कों के निर्माण, बाढ़–नियंत्रण व संरक्षण, भूमि–विकास, परम्परागत जल स्रोतों के नवीनीकरण, लघु सिंचाई कार्यक्रमों, सूखा–प्राफिंग, जल– संरक्षण व जलग्रहण आदि कार्य किये गये हैं। मनरेगा में कार्य दिवस 100 से बढ़ाकर 150 दिन प्रतिवर्ष कर दिया है। इस रोजगार में परिगणित जाति, जनजाति, महिलाओं (एक–तिहाई श्रमिक महिलाएँ) तथा गरीबी रेखा से नीचे के परिवारों को वरीयता दी जाती है। इसमें सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना (SGRY) तथा राष्ट्रीय काम के बदले अनाज कार्यक्रम (NFFWP) का सन्निवेशन कर लिया गया है। अधिनियम के तहत प्रत्येक जिले में पंचवर्षीय योजना तैयार की जायेगी। अधिनियम में कार्यक्रमों के क्रियान्वयन, मस्टर रोल, परिसम्पत्ति, रोजगार रजिस्टर आदि अभिलेखों के रख–रखाव, शिकायत निवारण तथा अनुश्रवण समितियों की व्यवस्था है। वर्ष 2014–15 में इस योजना के तहत 48 हजार करोड़ लोगों ने 100 दिन कार्य दिवस पूरे किए हैं। जिसमें महिला 55.26 प्रतिशत है तथा अजजा परिवारों में 17.74 प्रतिशत, अजा में 22.28 प्रतिशत परिवारों को रोजगार उपलब्ध कराया गया है।

मनरेगा का मुख्य प्रावधान

मनरेगा अधिनियम 2005 के अनुसार ग्रामीण क्षेत्र में निवास करने वाले प्रत्येक परिवार के वयस्क सदस्य को जो अकुशल श्रम करने का इच्छुक है कि आजीविका सुरक्षा बढ़ाने के उद्देश्य से एक वित्तीय वर्ष में 100 दिन के रोजगार की कानूनी गारन्टी दी गई है। इसके अन्तर्गत पंजीकृत परिवार का वयस्क सदस्य अकुशल मानव श्रम हेतु आवेदन करने का पात्र है। जॉब कार्ड प्राप्त होने पर रोजगार हेतु आवेदन ग्राम पंचायत में प्रस्तुत किया जाता है। मजदूरी श्रम आयुक्त द्वारा कृषि श्रमिकों के लिए निर्धारित दर से अथवा केन्द्र सरकार द्वारा इस अधिनियम के लिए निर्धारित दर से दी जाएगी। रोजगार की माँग की तारीख से 15 दिनों में रोजगार उपलब्ध कराया जाना आवश्यक है, अन्यथा आवेदक को बेरोजगारी भत्ते की पात्रता है। जिसके व्यय का वहन राज्य सरकार को करना होता है। योजना के क्रियान्वयन में ठेकेदारी प्रथा प्रतिबंधित है। मानव श्रम के स्थान पर कार्य करने वाली मशीनों का प्रयोग प्रतिबंधित है। कार्यस्थल पर तात्कालिक उपचार सुविधा, पेयजल, छाँव हेतु शेड़, झूलाधर आदि उपलब्ध कराए जाने का प्रावधान है। योजनांतर्गत कार्यरत व्यक्ति की मृत्यु या स्थायी अपंगता की स्थिति में 25000 रूपये बतौर मुआवजे के तौर पर दिए जाने का प्रावधान है। योजना में महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत सहभागिता अनिवार्य

है। इसके अन्तर्गत अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लिए किसी प्रकार के आरक्षण की व्यवस्था नहीं है।

मनरेगा में वित्तीय प्रबन्ध

मनरेगा में वित्तीय प्रबन्धन के अन्तर्गत केन्द्र सरकार द्वारा योजना के अधीन अकुशल मजदूरी के लिए दी जाने वाली मजदूरी की सम्पूर्ण राशि, सामग्री की लागत की तीन चौथाई राशि तथा प्रशासनिक खर्चों के लिए कुल लागत का तय किया गया प्रतिशत उपलब्ध कराए जाने का प्रावधान है। राज्य सरकार द्वारा बेरोजगारी भत्ता, सामग्री लागत की एक चौथाई राशि तथा राज्य परिषद् का प्रशासकीय खर्च उपलब्ध कराने का प्रावधान हैं।

भारत में मनरेगा की प्रगति

मनरेगा एक माँग आधारित योजना है जिसके अधीन जल संरक्षण, वानिकी, वृक्षारोपण, भूमि विकास, बाढ़ नियन्त्रण, सड़कों का निर्माण इत्यादि कार्यक्रम अपनाए जाने की व्यवस्था है।

मनरेगा योजना के अन्तर्गत भारत में सन् 2006–07 में जॉबकार्ड प्राप्त परिवारों की संख्या 3,78,60,390 थी जो सन् 2011–12 में 12,12,68,914 हो गई जो लगभग चार गुना है। इसी अवधि में कार्य की मांग करने वाले परिवारों की संख्या में लगभग तीन गुना तथा रोजगार उपलब्ध कराए गए।

भारत में महानरेगा की भूमिका

मनरेगा में केन्द्रीय बजट 2014–15 में 33,000 करोड़ रूपये आवंटित किये हैं जबकि 2012–13 बजट में इस पर आवंटित राशि 30,000 करोड़ रूपये थी। वर्ष 2013–14 में लगभग 4.39 करोड़ परिवारों को रोजगार प्रदान किया गया है। राष्ट्रीय स्तर पर मनरेगा में भुगतान की गयी औसत मजदूरी जो 2006–07 में 65 रूपये 2015 में 181 रूपये हो गयी। कृषि मजदूर की क्रय की शक्ति बढ़ी है और निजी क्षेत्र में भी मजदूरी बढ़ी है।

लक्ष्य

(i) सम्बन्धित क्षेत्र में अक्सर रचनात्मक सुविधाओं का विकास करने वाले कार्यों में मजदूरी, रोजगार के अवसर उपलब्ध कराकर ग्रामीण गरीबों की आजीविका सुरक्षा को बढाना।

(ii) सम्बन्धित क्षेत्र के प्राकृतिक संसाधनों को पुनः बढावा देना।

(iii) उपयोगी ग्रामीण परिसम्पत्तियों का निर्माण करना।

(iv) ग्रामीण गरीबों को सुरक्षा तंत्र उपलब्ध कराकर स्थानीय अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देना।

(v) महिलाओं का सशक्तिकरण सुनिश्चित करना।

(vi) जमीनी स्तर की लोकतांत्रिक संस्थाओं का सुदृढ़ीकरण करना।

मनरेगा के उद्देश्य

(i) ग्रामीण क्षेत्रों में माँग के हिसाब से प्रत्येक परिवार से एक वित्तीय वर्ष में गारन्टी युक्त रोजगार के रूप में कम से कम 100 दिनों का अकुशल शारीरिक श्रम कार्य उपलब्ध कराना, जिसके फलस्वरूप निर्धारित गुणवत्ता और स्थाई स्वरूप की उत्पादनकारी परिसम्पत्तियों का सृजन हो सके।

(ii) निर्धनों के आजीविका संसाधन आधार को सुदृढ़ बनाना।

(iii) सक्रिय रूप से सामाजिक समावेशिता सुनिश्चित करना।

(iv) पंचायती राज संस्थाओं को सुदृढ बनाना।

भारत में मनरेगा से प्रभावकारी परिवर्तन

विश्व में भारत प्रथम देश है जिनसे ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार सुनिश्चित करके गरीबी दूर करने के लिए राष्ट्रीय ग्रामीण गारन्टी बिल पारित कर रोजगार को कानूनी अधिकार की मान्यता दी है। निःसंदेह रूप से रोजगार गारन्टी कानून गांवों में विद्यमान गरीबी व बेरोजगारी उन्मूलन की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम है। इस योजना के अन्तर्गत श्रमिकों को गाँवों में ही स्थायी परिसम्पत्तियों जैसे वाटर शेड प्रोग्राम, जल संरक्षण कार्यों, सड़क, पंचायत घरों के निर्माण, तालाब निर्माण, वन संरक्षण व वृक्षारोपण जैसे कार्यों में संलग्न किया गया है। इसी भाँति क्षेत्र विकास प्रोग्रामों का संचालन, सूखा संभाव्य क्षेत्रों व दुर्गम पहाड़ी क्षेत्रों में निवास करने वाले गरीब परिवारों को रोजगार प्रदान करने हेतु किया जा रहा है।

डॉ. स्वामीनाथन ने भी इस तथ्य को पुष्ट करते हुए कहा है कि कृषि के क्षेत्र में रोजगार सृजन की संभावनाएँ कम हो गई हैं। अतः सरकार को गैर–कृषि क्षेत्रों के विकास की ओर ध्यान देते हुए कुशल श्रमिकों को वहां नियोजित करने की दिशा में सार्थक प्रयास करने चाहिए।

लघु, ग्रामीण व कुटीर उद्योगों के विकास मार्ग में अवस्थित विभिन्न अवरोधों व कठिनाइयों का निवारण करते हुए उनकी स्थापना, विकास व विस्तार हेतु ठोस, प्रभावी कदम ईमानदारी से उठाने चाहिए।

'मनरेगा' योजना न केवल ग्रामीण रोजगार के लिए लाभकारी सिद्ध हुई है, बल्कि यह सामाजिक आर्थिक स्थिति सुधारने के साथ दूरसंचार, चिकित्सा, शिक्षा, मरम्मत के कार्यों में

सहयोग दे रही है। आज जरूरत है इस योजना को अधिक प्रभावी बनाने हेतु क्रियान्वयन, प्रशासन तथा निरीक्षण पद्धति को अधिक सक्षम, पारदर्शी एवं सक्रिय बनाने की।

मनरेगा के तहत् वर्तमान में मुख्य पहलू

(i) योजना की गतिविधियों की मात्रा को विस्तारित किया गया है ताकि इन्हें सार्थक बनाया जा सके।

(ii) मजदूरी के भुगतान में विलम्ब में कमी लाने के लिये इलेक्ट्रोनिक विधि प्रबन्धन प्रणाली लागू की गयी है।

(iii) अधिसूचित सूखा प्रभावित ब्लॉकों में प्रति परिवार 100 दिनों से अधिक का अतिरिक्त रोजगार अब अनुमान्य है।

(iv) रोजगार रिकार्ड में गड़बड़ी तथा व्याप्त भ्रष्टाचार को रोकने के लिए ''आधार कार्ड का प्रयोग'' तथा नकद लाभ योजना के साथ जोड़ना।

(v) पूर्ण स्वच्छता अभियान के साथ मनरेगा को जोड़ना।

(vi) मनरेगा के अन्तर्गत देय मजदूरी को CPI-AL के साथ जोड़ना जिससे श्रमिकों को स्फीतिकारी दबाव से प्रतिरक्षित किया जा सके।

(vii) सामाजिक ऑडिट की व्यवस्था को लागू करना।

(viii) मनरेगा में देय मजदूरी को नकद लाभ अन्तरण स्कीम के साथ जोड़ना।

मनरेगा जहाँ एक ओर मजदूर वर्ग की आय में वृद्धि के कारण खाद्यान्नों की माँग में वृद्धि लाता है (माँग पक्ष पर दबाव) वहीं दूसरी ओर लागत में वृद्धि के द्वारा (न्यूनतम मजदूरी दबाव) दूसरे वैकल्पिक रोजगारों में मजदूरी में वृद्धि लायेगी तथा मजदूर की मजदूरी में वृद्धि लायेगी।

सतत् विकास : परम्परागत एवं आधुनिक दृष्टिकोण

अर्थ परिभाषा : सतत् विकास/टिकाऊ (Sustainable Development), शब्द का प्रथम बार प्रयोग 1987 ब्रंट लैण्ड कमीशन रिपोर्ट में किया था। वस्तुतः यह दो शब्दों टिकाऊ सतत् अथवा लगातार एवं विकास से मिलकर बना है। World Commission on Environment and Development की अध्यक्षता करते हुए ब्रंटलैण्ड ने अपने दस्तावेज ''हमारा साझा भविष्य'' में सतत् टिकाऊ विकास एक विकास है जिसमें वर्तमान पीढ़ी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति आने वाले पीढियों की आवश्यकताओं की पूर्ति को बिना नुकसान पहुँचाये करती है।'' यह विकास प्रकृति के साथ मानव का सहयोग, साहचर्य, उसके प्रति श्रद्धा व सम्मान की भावना पर आधारित है।

संपोषणीय विकास का अर्थ : संपोषणीय विकास का अर्थ है सतत् पोषणीय विकास अर्थात् ऐसा विकास जो मानव समाज की केवल तात्कालिक आवश्यकताओं की ही पूर्ति नहीं करे बल्कि वह स्थायी तौर पर भविष्य के लिये भी विकास का आधार प्रस्तुत करें। संपोषणीय विकास के लिए हिन्दी में कई समानार्थी शब्दों का प्रयोग मिलता है।

इसके लिए 'टिकाऊ विकास', 'सदृत विकास', स्थिर विकास, स्थायी विकास, सतत् विकास, सतत् पोषणीय विकास, संपोषणीय विकास आदि शब्दावलियों का प्रयोग विभिन्न लेखकों द्वारा किया गया है। संपोषणीय विकास संकल्पना मूलरूप से विकास की संकल्पना का संशोधित रूप है। वास्तव में संपोषणीयता (sustainability) विकास प्रयत्नों में गुणवत्ता के विस्तार पर अधिक बल देती है।

सतत् विकास की संकल्पना

यह संकल्पना केवल पर्यावरण तथा संसाधन संरक्षण पर ध्यान केन्द्रित नहीं करती है बल्कि संसाधनों के विकास एवं वृद्धि पर भी बल देती है। वास्तव में संपोषणीय विकास मानव और पर्यावरण के मध्य किसी स्थैतिक स्थिति को कायम रखने पर नहीं बल्कि ऐसी परिवर्तनशील प्रक्रिया पर बल देती है जो मानव समाज के वर्तमान तथा भावी आवश्यकताओं तथा संसाधनों, पूंजी एवं प्रौद्योगिकी में सांमजस्य स्थापित करें।

सतत् विकास के सम्मेलन

पृथ्वी तथा उसके पर्यावरण की सुरक्षा और पारिस्थितिकीय सन्तुलन को बनाये रखने के लिए जून 1992 में ब्राजील के रियो–डी–जेनेरा नगर में संयुक्त राष्ट के तत्वावधान में संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण एवं विकास सम्मेलन (UN Conference on Environment and Development) का आयोजन किया गया था जिसमें विकसित तथा विकासशील 178 देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इसे प्रथम पृथ्वी सम्मेलन या रियो सम्मेलन के नाम से जाना जाता है। इस सम्मेलन में कार्यक्रम–21 (Agenda-21) के नाम से जो रूपरेखा प्रस्तुत की गयी थी। उसमें संपोषणीय (टीकाऊ) विकास के लिए निर्देशक सिद्धान्त दिये गये हैं। इसका पहला सिद्धान्त कहता है कि ''प्रकृति के साथ सामजस्य में संपोषणीय विकास के केन्द्र में मानव वर्ग होते हैं।'' इससे आगे कहा गया है कि ''पर्यावरण सुरक्षा विकास की अभिन्न अंग श्रेणी''

और ''शान्ति विकास और पर्यावरणीय सुरक्षा अन्योन्याश्रित तथा अविभाज्य है।''

- कार्यक्रम–21 : यह एक विस्तृत दस्तावेज है जिसके अन्तर्गत इक्कीसवीं सदी तथा उसके पश्चात् पर्यावरण से सम्बन्धित विभिन्न पर्यावरणीय समस्याओं के साथ ही टिकाऊ विकास सम्बन्धी समस्याओं के निदान पर भी प्रकाश डाला गया है।
- द्वितीय पृथ्वी सम्मेलन (जून 1997) न्यूयार्क में आयोजित किया गया किन्तु इसमें किसी निश्चित मसौदे प्रस्ताव पर कोई ठोस समझौता नहीं हो पाया।
- तृतीय पृथ्वी सम्मेलन (अगस्त 2002) दक्षिण अफ्रीका की राजधानी जोहान्सबर्ग में आयोजित किया गया। इसका मुख्य विषय सतत् पोषणीय विकास था जिसके कारण इसे सतत् पोषणीय विकास विश्व शिखर सम्मेलन के नाम से भी जाना जाता है। इस सम्मेलन में भारत जैसे विकासशील देशों ने इस मुद्दे को उठाया कि अति उत्पादन और अति उपभोग पोषणीय नहीं है। विकसित देशों का उपभोग स्तर बहुत ऊँचा है। यदि संयुक्त राज्य अमेरिका के उपभोग स्तर के बराबर अन्य देशों में भी उपभोग होने लगे तो आवश्यक संसाधनों के लिए वर्तमान पृथ्वी के तुल्य कई अन्य पृथ्वियों को आवश्यकता पड़ेगी। विकासशील देशों ने सतत् पोषणीय विकास के उद्देश्य से विकसित देशों की जीवन शैली में परिवर्तन लाने पर जोर दिया किन्तु इसके लिए विकसित देश तैयार नहीं हुए। इस सम्मेलन में मात्र इस बात पर सहमति हो पायी कि उत्पादन तथा उपभोग को सतत् पोषणीय बनाने के लिए 10 वर्षीय कार्यक्रम बनाया जायेगा।

सतत् विकास के आधुनिक दृष्टिकोण

बढ़ती वैश्विक जनसंख्या और अपने जीवन स्तर के उन्नयन की मनुष्य की लगातार बढ़ती आकांक्षा के कारण सभी प्रकार के नए तकनीकी आविष्कार हुए है। इन आविष्कारों और नवाचारों ने जीवन को अधिक आरामदेह बना दिया है किन्तु इसके बदले भोजन, वायु, जल खनिज और ऊर्जा की मांग बढ़ रही है। पृथ्वी की नवीकरण की क्षमता सीमित होने के कारण से संसाधन भी सीमित है। हमारे चारों और प्राकृतिक संसाधनों के त्वरित क्षरण ने वैश्विक जलवायु में अभूतपूर्व परिवर्तन किए है जिनके परिणामस्वरूप पृथ्वी पर मानव और प्राणी जातियों के अस्तित्व पर गंभीर प्रभाव पड़े हैं। जलवायु परिवर्तन के प्रति अनुकूल नहीं हो पाने के कारण डायनोसोर के विलुप्त होने की बात सभी जानते हैं। डर है कि पृथ्वी की एक चौथाई प्रजातियाँ 2050 तक विलुप्त हो सकती है।

प्राकृतिक, मशीनी एवं नृवैज्ञानिक प्रक्रियाओं जैसे कार्बन डाई ऑक्साइड, मीथैन आदि ग्रीनहाउस गैसों के कारण पृथ्वी की जलवायु में हुए दीर्घकालिक परिवर्तनों को जलवायु परिवर्तन कहा जाता है। ये गैस वायुमण्डलीय क्षेत्र में जमा हो जाती है और गर्मी को वातावरण में ही रोके रखती है, जिससे ग्लोबल वार्मिंग होती है और जलवायु में परिवर्तन होता है। ऋतु परिवर्तन, वैश्विक तापमान में वृद्धि, समुद्र के स्तर में बढ़ोतरी, फसल चक्र में बदलाव के कारण न केवल हमारे बल्कि हमारे बच्चों और उनके बच्चों के लिए भी भूस्खलन, सुनामी, अकाल, महामारी, जन पलायन तथा स्वास्थ्य के लिए बड़ी आपदाएँ हैं।

इस समय ऐसे संपोषणीय समाधान विचारने की आवश्यकता है, जो अस्थाई न हो बल्कि उनमें भावी पीढ़ियों की आवश्यकताओं का ध्यान रखा गया हो। यह भी समझाना होगा कि प्राकृतिक संसाधन असीमित नहीं होते, इसीलिए उनका उपयोग तर्कसंगत होना चाहिए और उसकी योजना सतत् विकास सुनिश्चित करने के दृष्टिकोण से बनाई जानी चाहिए। बिजली बनाने के लिए विंड फार्म, पन बिजली, सौर ऊर्जा, भूतापीय तथा बायोमास जैसे प्रकृति के अनुकूल विकल्प तलाशे जाने तथा उन्हें समुचित रूप से क्रियान्वित किए जाने की आवश्यकता है।

मानवता को जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से बचाने की दिशा में कार्यकरने का दायित्व किसी एक राष्ट्र का नहीं बल्कि पूरे विश्व का है। रियो में 1992 में संयुक्त राष्ट्र प्रारूप संधि (यूएनएफसीसीसी) को औपचारिक रूप दिए जाने के साथ ही इस दिशा में गंभीर वैश्विक प्रयास आरम्भ हुए।

दिसम्बर 2015 में पेरिस में संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन सम्मेलन के 21वें सत्र में देश अपने वांछित राष्ट्रीय संकल्पित योगदान (आईएनडीसी) प्रस्तुत किये। भारत पहले ही अपना आईएनडीसी बता चुका है, जिसका लक्ष्य स्वच्छ एवं अक्षय ऊर्जा को प्रोत्साहित कर, गैर–जीवाश्म ईंधन स्रोतों को प्रयोग कर 2.5 से 3 अरब कार्बन डाईऑक्साइड के समतुल्य अतिरिक्त कार्बन सिंक तैयार करने के लिए वन का विस्तार बढ़ाकर, कार्बन कम उत्पन्न करने वाले एवं लचीले शहरी केन्द्र विकसित कर, कचरे का प्रयोग करने वाले, सुरक्षित, कुशल एवं टिकाऊ हरित परिवहन नेटवर्क को बढ़ावा देकर ग्रीन हाऊस गैस उत्सर्जन की तीव्रता में 33 से 35 प्रतिशत तक कमी करना है। उसने विकासशील देशों से अतिरिक्त धन एकत्र करने एवं अत्याधुनिक प्रौद्योगिकियों के प्रसार एवं उनसे सम्बन्धित सामूहिक अनुसंधान तथा विकास हेतु अंतर्राष्ट्रीय ढाँचा

तैयार करने का भी संकल्प व्यक्त किया है। इस आईएनडीसी के माध्यम से भारत ने जलवायु परिवर्तन से जूझने एवं ''समस्या का भाग नहीं होते हुए भी समाधान का भाग होने'' का अपना संकल्प प्रदर्शित किया है।

महात्मा गांधी ने कहा था ''धरती पर सभी की आवश्यकताओं के लिए पर्याप्त संसाधन है, उनके लालच के लिए नहीं'' भविष्य की रक्षा करने एवं हमारी भावी पीढ़ियों को पृथ्वी की विरासत सौंपने के लिए पूरा विश्व एक साथ आ रहा है, इसलिए हम ऐसी दुनिया बनाने की आशा कर सकते हैं, जहाँ हम किसी की आवश्यकता के लिए संसाधन तैयार कर सकें।

सतत् विकास के उपाय

विकास की वह सुनिश्चित पद्धति जिसमें संसाधनों का युक्ति युक्त और भावी पीढ़ी के लिए पर्याप्त संरचनात्मक उपाय अपनाते हुए, प्रयोग ही सतत् विकास कहलाता है। वर्तमान की महत्ती आवश्यकता सतत् विकास हेतु निम्न उपाय है।

(i) विकास एवं उत्पादन वृद्धि हेतु पर्यावरण मित्र प्रौद्योगिकी का विकास एवं प्रसार।

(ii) नवीन परियोजना की स्थापना से पूर्व पर्यावरण सुरक्षा, पारिस्थितिकीय सन्तुलन और आर्थिक दक्षता का उपयुक्त मापन कर लिया जाए।

(iii) पर्यावरण संरक्षण एवं उत्पादन वृद्धि का विकेन्द्रीकरण किया जाए।

(iv) पर्यावरण अवनयन रोकने हेतु कठोर कानून बने और उनका कड़ाई से पालन हो।

(v) जनसहभागिता को पर्यावरणीय कार्यक्रमों में प्राथमिकता दी जाए।

(vi) सरकार, नौकरशाही, मीडिया, गैर सरकारी संगठनों की प्रभावी एवं रचनात्मक भूमिका बढ़ाई जाए।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

1. गरीबी – प्रतिदिन 2300 कैलोरी से कम उपयोग वाले व्यक्ति को माना गया है।
2. पूँजी निर्माण, साधनों के सर्वोत्तम उपयोग, गरीबी एवं बेरोजगारी दूर करने, सन्तुलित विकास तथा सामाजिक आर्थिक संरचना के विकास के लिए आवश्यक है।
3. मनरेगा : प्रत्येक परिवार को ग्रामीण क्षेत्र प्रति वर्ष 150 दिनों की गारन्टी शुदा मजदूरी रोजगार उपलब्ध करते हुए आजीविका सुरक्षा बढ़ाना है। यह विश्व का पहला देश भारत है।
4. सतत् विकास : यह टिकाऊ विकास से है, जो वर्तमान पीढ़ी आने वाली भविष्य की पीढ़ियों की आवश्यकता की बिना नुकसान पहुँचाते हुए सुरक्षित रखना है। जिसने एजेण्डा–21 कार्यक्रम, पृथ्वी सम्मेलन, रियो सम्मेलन, विश्व पर्यावरण सम्मेलन, ओजोन परत संरक्षण सम्मेलन, संयुक्त राष्ट्र जलवायु सम्मेलनों से अनुकूल विकल्प तलाशे गये हैं।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक

1. नवीनतम अनुमानों के आधार पर भारत में सर्वाधिक निर्धनों की संख्या किस राज्य में है।

(अ) बिहार (ब) उड़ीसा

(स) उत्तर प्रदेश (द) असम

2. निर्धनता अनुपात में सबसे ऊपर आने वाला राज्य है–

(अ) बिहार (ब) उड़ीसा

(स) उत्तर प्रदेश (द) राजस्थान

3. भारत में बेरोजगारी का कारण है–

(अ) मानवीय संसाधनों की उचित नियोजन में कमी

(ब) प्राकृतिक साधनों के कमी

(स) राजनीतिक नेतृत्व की कमी

(द) उपर्युक्त सभी

4. भारत के किस राज्य में सर्वप्रथम रोजगार गारण्टी कार्यक्रम चलाया गया–

(अ) गुजरात (ब) महाराष्ट्र

(स) राजस्थान (द) मध्यप्रदेश

5. स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना के सम्बन्ध में कौन–कौनसे कथन सत्य है–

(अ) इसका उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में भारी संख्या में लघु उद्योगों की स्थाना करना है।

(ब) इस योजना में लक्षित समूह–ग्रामीण क्षेत्रों के बीपीएल परिवार है।

(स) योजना में दी जाने वाली धनराशि केन्द्र एवं राज्य सरकारें 75 : 25 के अनुपात में विभाजित करती है।

(द) उपर्युक्त सभी

6. वर्तमान में राज्यों में निर्धनों की सर्वाधिक जनसंख्या किस राज्य में है–

(अ) बिहार (ब) छत्तीसगढ़

(स) झारखण्ड (द) उत्तर प्रदेश

7. भारत में गरीबी निवारण कार्यक्रमों के क्रियान्वयन का मूल्यांकन निम्न में से किसके द्वारा किया जाता है–

(अ) राष्ट्रीय विकास परिषद्

(ब) कार्यक्रम क्रियान्वयन मंत्रालय

(स) वित्त मंत्रालय

(द) योजना आयोग

8. राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी योजना का शुभारंभ हुआ–

(अ) 2 फरवरी, 2006 (ब) 15 अगस्त, 2006

(स) 2 फरवरी, 2007 (द) 15 अगस्त, 2007

अतिलघूत्तरात्मक

9. सामुदायिक विकास कार्यक्रम की शुरूआत कब हुई।
10. ट्राइसेम का पूरा नाम लिखिए।
11. मनरेगा का पूरा नाम लिखिए।
12. आईआरडीपी का पूरा नाम बताइए।
13. 'गरीबी' क्या है?
14. प्रधानमंत्री जन–धन योजना क्या है?

लघूत्तरात्मक

15. कार्यक्रम 21 के बारे में लिखिए।
16. प्रधानमंत्री आवास योजना पर प्रकाश डालिए।
17. 'मनरेगा' योजना पर प्रकाश डालिए।
18. 'सतत् विकास' क्या है?बताइये।

निबन्धात्मक

19. गरीबी उन्मूलन हेतु संचालित विभिन्न कार्यक्रमों का संक्षिप्त में वर्णन कीजिए।
20. भारत में महानरेगा की भूमिका व लक्ष्यों का वर्णन कीजिए।
21. भारत में मनरेगा से प्रभावकारी परिवर्तन पर एक निबन्ध लिखिए।
22. सतत् विकास की संकल्पना व सम्मेलनों का वर्णन कीजिए।

पाठ 23
सिंचाई एवं पेयजल
(Irrigation and Driking Water)

जल के वे स्रोत जो मानव के लिए उपयोगी है या जिनके उपयोग की संभावना हो, उन्हें जल संसाधन कहते है। जल का उपयोग जीवन के हर क्षेत्र में होता है। भौगोलिक दृष्टि से राजस्थान देश का सबसे बड़ा राज्य है परन्तु सतही जल की उपलब्धता सम्पूर्ण भारत का मात्र 1.16 प्रतिशत है, एवं दोहन योग्य भू–जल मात्र 1.72 प्रतिशत है। राजस्थान देश का न्यूनतम वर्षा प्राप्त करने वाला राज्य है। राज्य में पिछले 61 वर्षों में 43 बार अकाल पड़े है। मरूस्थलीय क्षेत्रों में पेयजल उपलब्ध होने में अत्यधिक कठिनाई है। राजस्थान में जल संसाधन का अत्यधिक महत्त्व है। जल ही जीवन है। इस तथ्य को उद्घाटित करती राजस्थानी भाषा की निम्न पंक्तियाँ

घी ढूलै तो मारों कईणी बिगड़ें
पाणी ढूलै तो मारो जियो झल जायें
''पाणी सूं फसला पकै, फल–फूला रो ढेर।
पाणी जद रूठै, तो धरती पर अन्धेर।।''

राज्य के अधिकाँश जल संसाधन दक्षिणी–पूर्वी भाग तक सीमित है। वर्तमान में राज्य में प्रति व्यक्ति जल की वार्षिक उपलब्धता 780 घन मीटर है, जबकि कम से कम 1000 घन मीटर होनी चाहिए। यह उपलब्धता लगातार घट रही है। देश का 51 प्रतिशत फ्लोराइड तथा 42 प्रतिशत लवणता प्रभावित क्षेत्र राजस्थान में है।

राजस्थान के जल संसाधनों को दो भागों में बांटा जा सकता है –

(1) सतही जल संसाधन एवं (2) भूमिगत संसाधन

सतही जल संसाधन

नदियाँ, झीलें व तालाब प्रमुख सतही जल के स्रोत हैं। ये स्रोत प्राकृतिक हैं, किन्तु इनसे नहरें निकालकर इनके जल का व्यापक क्षेत्रों में उपयोग किया जाता है। चम्बल, बनास, लूनी, माही, बाणगंगा, बेड़च, गम्भीरी, सूकड़ी, कालीसिंध, परवन, मेज आदि राज्य की प्रमुख नदियाँ है। इन नदियों में उपलब्ध जल का प्रयोग सीधे नदियों से तथा इन पर बनाये गये बाँधों से निकाली गयी नहरों के माध्यम से किया जा रहा है। राज्य को सिंचाई व पेयजल की समस्या से निजात दिलाने के लिए नदियों को जोड़ने की महत्त्वाकांक्षी योजना भी प्रस्तावित है। नदियों को जोड़ने का कानून बनाने वाला राजस्थान देश का पहला राज्य बना है। झीलें भी राजस्थान में जलापूर्ति का महत्त्वपूर्ण माध्यम है। राज्य में खारे पानी व मीठे पानी की झीलें मौजूद है। इनमें से मीठे पानी की झीलें पेयजल व सिंचाई हेतु जल प्रदान करती है। राज्य की प्रमुख मीठे पानी की झीलें में – जयसमन्द, पिछोला व फतहसागर (उदयपुर), राजसमन्द (राजसमन्द), आनासागर, पुष्कर (अजमेर), सिलीसेढ (अलवर), कोलायत (बीकानेर), नवलखा झील (बूंदी), गेपसागर (डूँगरपुर), कायलाना, बालसमन्द (जोधपुर), बंध बारैठा (भरतपुर), रामगढ (जयपुर), नक्की झील (माउण्ट आबू, सिरोही) आदि।

तालाब भी सतही जल का एक अच्छा स्रोत है। राजस्थान में लगभग 450 बड़े तालाब हैं।

भू–जल संसाधन

यह संसाधन सदियों से जल प्राप्ति का स्रोत रहा है। वर्तमान में राज्य में कुएँ व नलकूप से कुल सिंचित क्षेत्र का 70 प्रतिशत भाग सिंचित होता है। राज्य की लगभग 70 प्रतिशत पेयजल स्रोतों का

आधार भी भू–जल ही है।

जल संरक्षण

संसाधनों का विवेकपूर्ण ढंग से रख–रखाव जिससे उस संसाधन की हानि न हो तथा व्यर्थता को रोका जा सके, यह प्रक्रिया संसाधन संरक्षण कहलाती है। जल संरक्षण में नागरिकों, समाज व सरकार की भागीदारी होना अत्यन्त आवश्यक है। जल संरक्षण के लिए हम जलाशयों में औद्योगिक अपशिष्ट न डालें। स्रोतों के पास कपड़े न धोए व स्नान न करें। जल में उत्पन्न खरपतवार को हटायें। खड़ीन, कुण्डी, कुँई, नाड़ी, जोहड़, तालाब आदि हमारी जल संचयन व संग्रहण की परम्परागत विधियाँ है। हमें परम्परागत जल संग्रह के इन साधनों की रक्षा करनी होगी। जल के तीव्र दोहन से विकट समस्या उत्पन्न हो गयी है। जल संरक्षण की निम्न विधियों को अपना कर जल को बचाया जा सकता है –

1. सिंचाई हेतु नवीन पद्धतियों को अपनाना।
2. भूमिगत जल का विवेकपूर्ण उपयोग।
3. वनस्पति विनाश पर नियंत्रण।
4. वर्षा जल का संचयन (रेन वाटर हार्वेस्टिंग)।
5. अपशिष्ट जल का शोधन कर उपयोग।
6. कृषि पद्धति व फसल प्रतिरूप में परिवर्तन।
7. छोटे तालाबों, बाँधों व एनिकट आदि का निर्माण।

राजस्थान पत्रिका का ''अमृतम् जलम्'' अभियान जल संरक्षण का एक सराहनीय प्रयास है।

सिंचाई

वर्षा के अभाव में भूमि या फसलों को कृत्रिम तरीके से जल प्रदान करने की क्रिया को सिंचाई कहा जाता है। सिंचाई फसल उत्पादन की आधारभूत संरचना का अंग है। राजस्थान में कुल सिंचित क्षेत्र का सबसे बड़ा भाग श्रीगंगानगर एवं सबसे कम भाग राजसमंद जिले में है। राजस्थान में कुएँ व नलकूप, नहरें, तालाब आदि सिंचाई के प्रमुख साधन हैं।

(1) कुएँ व नलकूप : राज्य का सबसे महत्त्वपूर्ण सिंचाई का साधन है। राज्य के कुल सींचित क्षेत्र के 66 प्रतिशत भाग में कुओं व नलकूपों से ही सिंचाई होती है। इस साधन से सबसे अधिक सिंचाई जयपुर व अलवर में होती है। जैसलमेर जिले के चाँदन नलकूप में मीठे पानी की उपलब्धता के कारण यह स्थान 'थार का घड़ा' कहलाता है।

(2) नहरें : राज्य के 33 प्रतिशत भाग में सिंचाई नहरों के द्वारा होती है। नहरी सिंचाई में गंगानगर जिले का प्रथम स्थान है।

(3) तालाब : इस साधन से राज्य की 0.7 प्रतिशत भाग पर सिंचाई होती है। राज्य के दक्षिणी व दक्षिणी–पूर्वी भाग में यह सिंचाई का प्रमुख साधन है। तालाब द्वारा सिंचाई में प्रथम स्थान भीलवाड़ा जिले का तथा द्वितीय स्थान उदयपुर जिले का है। अन्य साधनों से मात्र 0.3 प्रतिशत भाग पर सिंचाई होती है।

आरेख 23.1 : सिंचाई के साधन

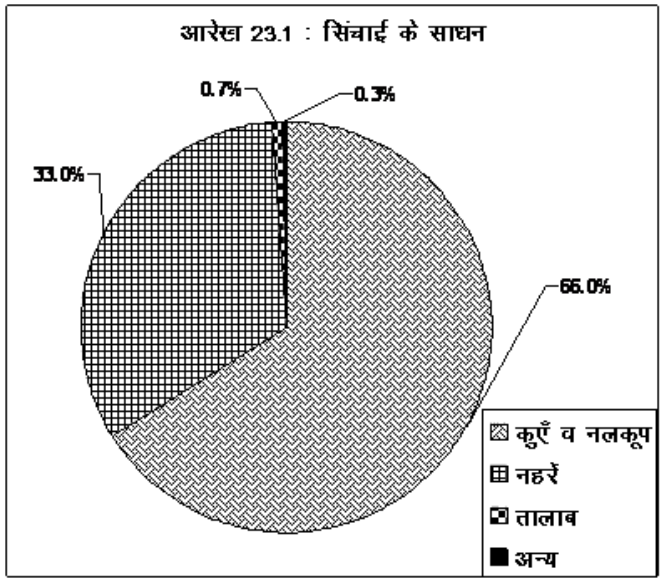

राजस्थान की प्रमुख बहुउद्देश्य परियोजनाएँ

(1) चम्बल परियोजना
(2) भाखड़ा–नाँगल परियोजना
(3) व्यास परियोजना
(4) माही–बजाज सागर परियोजना।

राजस्थान की वृहत परियोजनाएँ

(1) इन्दिरा गाँधी नहर परियोजना
(2) गंग नहर
(3) भरतपुर नहर
(4) गुड़गांव नहर
(5) भीखाभाई सागवाड़ा माही नहर
(6) जाखम परियोजना
(7) सिद्धमुख–नोहर परियोजना
(8) बीसलपुर परियोजना (राज्य की सबसे बड़ी पेयजल योजना)
(9) नर्मदा नहर परियोजना
(10) ईसरदा परियोजना।

अन्य परियोजनाएँ

(1) जवाई (2) मेजा (3) पांचना (4) मानसी वाकल (5) पार्वती (6) गम्भीरी (7) औराई।

यहाँ हम राज्य की कुछ प्रमुख सिंचाई परियोजनाओं का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

1. इन्दिरा गाँधी नहर परियोजना

यह परियोजना पूर्ण होने पर विश्व की सबसे बड़ी परियोजना होगी। इसे प्रदेश की जीवन रेखा मरूगंगा भी कहा जाता है। पहले इसका नाम राजस्थान नहर था। 2 नवम्बर 1984 को इसका नाम इन्दिरा गांधी नहर परियोजना कर दिया गया है।

यह राज्य की एक महत्त्वपूर्ण नदी घाटी परियोजना है। इस परियोजना का उद्धेश्य राजस्थान के पश्चिमी भाग में सिंचाई, पेयजल, पशुपालन, मत्स्य पालन व अन्य उपयोग हेतु जल उपलब्ध करवाना है। इसे बनाने का सुझाव सन् 1948 में बीकानेर के तत्कालीन सिंचाई इंजीनियर कँवरसेन ने दिया था। इस नहर के निर्माण का मुख्य उद्देश्य रावी व व्यास नदियों के जल में से राजस्थान को आवंटित 86 लाख एकड़ घन फीट जल को उपयोग में लेना था। इसे केन्द्र सरकार की स्वीकृति के बाद सन् 1952 में

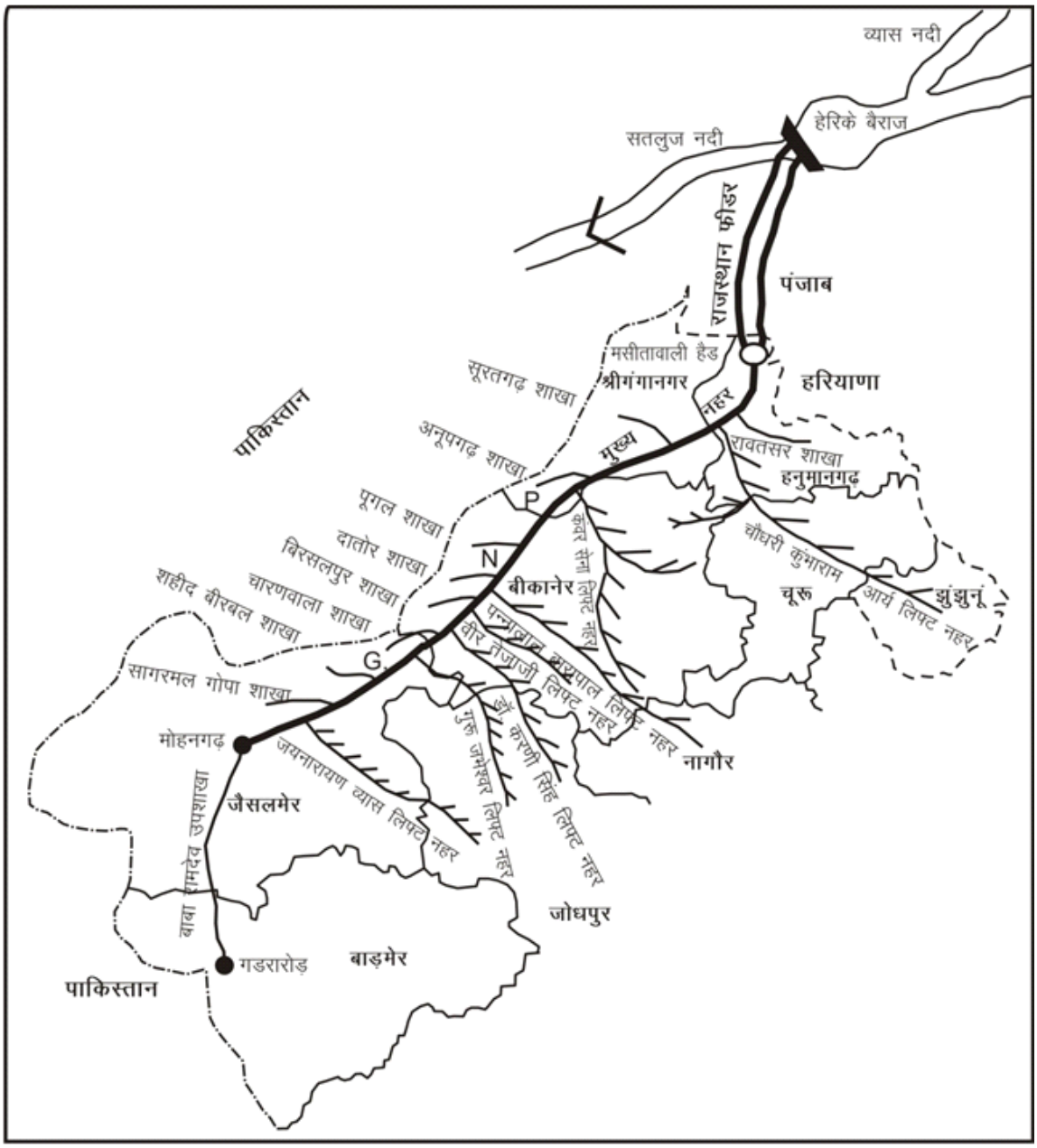

मानचित्र 23.1 : इन्दिरा गांधी नहर परियोजना



चित्र 23.1 : पश्चिमी राजस्थान में इन्दिरा गाँधी नहर

सतलुज व व्यास नदी के संगम पर हरीके बैराज का काम शुरू हुआ। हरीके बैराज से बाड़मेर में गडरा रोड तक नहर का लक्ष्य रखा गया। जिससे श्रीगंगानगर, हनुमानगढ, बीकानेर, जैसलमेर, बाड़मेर, जोधपुर, चूरू व नागौर को जलापूर्ति हो सके।

हरीके बैराज से हनुमानगढ के मसीतावाली तक 204 किमी (169 किमी पंजाब व हरियाणा + 35 किमी राजस्थान) फीडर नहर है। किसी नहर का ऐसा हिस्सा जहाँ से पानी का कोई उपयोग नहीं किया जाता है, उसे फीडर कहते है। फीडर सहित मुख्य नहर की लम्बाई 649 किमी है। वितरिकाओं की लम्बाई लगभग 9060 किमी है। इनसे लगभग 18.72 लाख हैक्टर क्षेत्र में सिंचाई होती है। नहर का अंतिम छोर वर्तमान में गडरारोड तक है। इसे आगे गुजरात में कांडला बन्दरगाह तक जोड़कर इसमें छोटे जहाजों व नावों का संचालन किया जाना प्रस्तावित है।

इस परियोजना को दो चरणों में लागू किया गया है–

प्रथम चरण : 345 किमी. लम्बी वितरिकाएं बनाना। 5.53 लाख हैक्टर में सिंचाई।

द्वितीय चरण : 256 किमी. मुख्य नहर 5780 किमी. वितरिकाओं का निर्माण तथा 6.97 लाख हैक्टर क्षेत्र में सिंचाई करना।

इन्दिरा गाँधी नहर परियोजना में कुल सिंचाई का 30 प्रतिशत भाग लिफ्ट नहरों से तथा 70 प्रतिशत वितरिकाओं के माध्यम से होता है।

थार मरूस्थल का ढाल पश्चिम में होने के कारण पूर्वी भाग में पानी लाने के लिए 8 उत्थापक (लिफ्ट) नहरें बनाई गयी है। ये नहरें निम्न है –

1. गंधेली (नोहर) साहवा/चौधरी कुँभाराम लिफ्ट नहर।
2. (बीकानेर–लूणकरणसर) कवरसेन लिफ्ट नहर।
3. (गजनेर) पन्नालाल बारूपाल लिफ्ट नहर।
4. (बांगड़सर) वीर तेजाजी लिफ्ट नहर।
5. (कोलायत) डॉ. करणी सिंह लिफ्ट नहर।
6. (फलौदी) गुरु जम्मेश्वर लिफ्ट नहर।
7. (पोकरण) जयनारायण व्यास लिफ्ट नहर।
8. (जोधपुर) राजीव गाँधी लिफ्ट नहर।

इन्दिरा गाँधी नहर से प्रमुख शाखा नहरें निकाली गई है, जो निम्न है –

1. रावतसर शाखा (हनुमानगढ)
2. सूरतगढ़ शाखा (श्री गंगानगर)
3. अनूपगढ़ शाखा (श्री गंगानगर)
4. पूंगल शाखा (बीकानेर)
5. चारणवाला शाखा (बीकानेर)
6. दात्तोर शाखा (बीकानेर)
7. बिरसलपुर शाखा (बीकानेर)
8. शहीद बीरबल शाखा (जैसलमेर)
9. सागरमल गोपा शाखा (जैसलमेर)

लाभ

1. सिंचाई के रूप में प्रत्यक्ष लाभ
2. व्यावसायिक फसलों की पैदावार
3. नये नगर, व्यापारिक मण्डियों की स्थापना
4. पशु पालन, मत्स्य पालन का विकास
5. वर्तमान ऊन व्यवसाय को लाभ
6. 9.5 लाख टन अतिरिक्त खाद्यान्न उत्पादन संभव
7. मरुस्थल पर नियन्त्रण
8. वन क्षेत्र, चरागाहों का विकास
9. बंजर भूमि का विकास संभव

सूरतगढ़ व अनूपगढ शाखाओं पर 3 लघु विद्युत गृह बनाये गये है। इस परियोजना से गंगानगर, बीकानेर, जैसलमेर, जिलों की 12.74 लाख हैक्टयर भूमि सिंचित हो रही है तथा पश्चिमी राजस्थान के आठ जिलों की लगभग 1.80 करोड़ जनसंख्या को पेयजल की सुविधा उपलब्ध हो सकी है। उद्योगों व उत्पादन केन्द्रों को भी पानी उपलब्ध हो रहा है। इस परियोजना से क्षेत्र में सिंचाई की सुविधा से कृषि उत्पादन बढ़ा है। अकाल पर रोक लगी है तथा क्षेत्र में मानव अधिवासों को प्रोत्साहन मिला है। विद्युत उत्पादन के साथ–साथ पशु पालन, खनिज उद्योग व मत्स्य उद्योग का भी विकास हुआ। लोगों की आय बढ़ने से जीवन स्तर में सुधार आया है।

2. चम्बल परियोजना

चम्बल परियोजना राजस्थान व मध्यप्रदेश की संयुक्त परियोजना है। इसमें दोनों राज्यों की हिस्सेदारी आधी–आधी है। चम्बल परियोजना का कार्य 1952–54 में प्रारम्भ हुआ। इस परियोजना का प्रारम्भिक उद्धेश्य चम्बल की विनाशकारी लीला को समाप्त कर 56 लाख हैक्टयर भूमि को सिंचाई सुविधा प्रदान करना तथा 230 मेगावाट विद्युत उत्पादन करना था। इस परियोजना के अन्तर्गत चार बाँध बनाये गये हैं –

(1) गांधी सागर बाँध : यह बाँध 1960 में मध्यप्रदेश की भानपुरा तहसील में बनाया गया है। यह बाँध चौरासीगढ़ से 8 किमी. पहले एक घाटी में बनाया गया है। इससे दो नहरें निकाली गई है– (1) बाईं नहर – बूँदी तक जाकर मेज नदी में मिलती है।

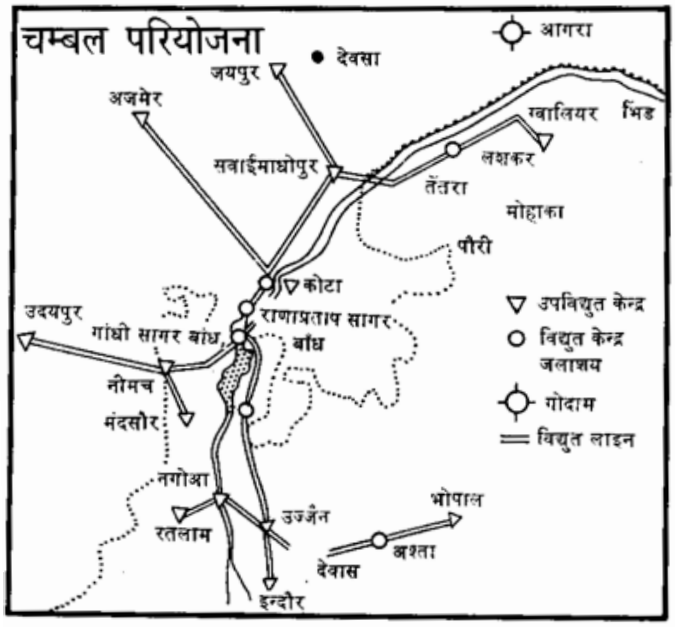



चित्र 23.2 : चम्बल बाँध परियोजना

(2) दाँयी नहर – पार्वती नदी को पार कर मध्य प्रदेश में चली गयी है। यहीं पर एक जल विद्युत स्टेशन भी है।

(2) राणा–प्रताप सागर बाँध : यह बाँध गांधी सागर से 48 किमी आगे चित्तौड़गढ़ में चुलिया जल प्रपात के समीप रावतभाटा नामक स्थान पर 1970 में बनाया गया है।

(3) जवाहर सागर बाँध : रावतभाटा से 38 किमी. आगे कोटा के समीप बोरावास गांव में बनाया गया है। यहाँ एक जल विद्युत शक्ति गृह भी बनाया गया है।

(4) कोटा बैराज – यह कोटा शहर के पास बनाया गया है। केवल सिंचाई की सुविधा के उद्धेश्य से बनाये गये बाँध को बैराज कहते है। इसमें से दो नहरें निकाली गयी है। दाँयीं नहर पार्वती व परवन नदी को पार करके मध्यप्रदेश में चली गयी है। जबकि बाँयीं नहर से राजस्थान के कोटा, बूँदी जिलों में सिंचाई एवं जलापूर्ति होती है।

चम्बल परियोजना के कारण ही कोटा एक प्रमुख औद्योगिक केन्द्र बन गया है। बाढ़ो पर नियंत्रण के साथ ही साथ 5.6 लाख हैक्टअर कृषि योग्य भूमि में सिंचाई की सुविधां बढ़ी है। क्षेत्र में कृषि का तेजी से विकास हुआ है। चम्बल क्षेत्र में पर्यटन को भी बढ़ावा मिला है।

3. माही बजाज सागर परियोजना

दक्षिणी राजस्थान की आदिवासी बहुल बाँसवाड़ा व डूँगरपुर जिलों की जनता की समृद्धि के लिए यह राजस्थान एवं गुजरात की संयुक्त परियोजना है। सन् 1966 में हुये समझौते के अनुसार राजस्थान का हिस्सा 45 प्रतिशत व गुजरात का हिस्सा 55 प्रतिशत है। इस परियोजना के अन्तर्गत बाँसवाड़ा के बोरखेड़ा गाँव में माही बजाज सागर बाँध बनाया गया है। इसके अलावा यहाँ दो नहरें, दो विद्युत गृह, दो लघु विद्युत गृह व कागदी पिकअप बाँध बनाया है। इस परियोजना का कार्य तीन चरणों में पूरा हुआ –

प्रथम चरण : प्रथम चरण में बाँसवाड़ा के समीप बोरखेड़ा गाँव में माही नदी पर माही बजाज सागर बाँध बनाया गया। इसका जल संग्रहण क्षेत्र 6240 वर्ग किमी. है। इस बाँध की भराव क्षमता 72.70 टी.एम.सी. है।

द्वितीय चरण : डूँगरपुर में सिंचाई सुविधा हेतु आनन्दपुरी व सागवाड़ा नामक दो नहरें निकाली गयी है। इन वितरिकाओं की कुल लम्बाई 854 किमी है। इस परियोजना द्वारा 1.23 लाख हैक्टयर क्षेत्र में सिंचाई सुविधा उपलब्ध कराना प्रस्तावित है।

तृतीय चरण : इस चरण में दो विद्युत गृहों का निर्माण किया गया। जिससे 140.95 मेगावाट विद्युत उत्पन्न की जा रही है।



चित्र 23.3 : माही बजाज सागर डेम

सिंचाई एवं विद्युत की सुविधा मिलने के कारण इस आदिवासी बाहुल्य क्षेत्र में आर्थिक व सामाजिक जीवन में बदलाव के साथ कृषि और औद्योगिक क्षेत्र में भी तेजी से बदलाव आया है। ये परियोजना इस आदिवासी बाहुल्य क्षेत्र के लिए वरदान साबित हुयी है।

राजस्थान में सिंचाई विकास हेतु सुझाव –

1. उपलब्ध जल का सर्वाधिक संरक्षण आवश्यक है।
2. भू–जल का उपयोग पूरी सतर्कता से होना चाहिये।
3. नदी–बेसिन आधार पर जल के सम्बन्ध में सघन नियोजन किया जाना चाहिये।
4. आधुनिक तकनीकी विधियों को प्रयुक्त कर जल रिसाव व वाष्पन से होने वाली जल क्षति को घटाना चाहिये।
5. फव्वारा–सिंचाई व बूँद–बूँद सिंचाई विधियों का उपयोग कर जल की बचत करनी चाहिये।
6. भू–जल एवं सतही जल का मिला जुला उपयोग होना चाहिये।
7. जल मार्गों व खेत की नालियों की लाइनिंग को प्राथमिकता से पूरा किया जाना चाहिये।
8. चालू परियोजनाओं पर अधिक ध्यान देना ताकि उनसे प्रतिफल प्राप्त होने लगे।
9. नई योजनाओं को चयनित आधार पर स्वीकार करना चाहिये।
10. परियोजना के रख–रखाव को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिये।

पेयजल

राजस्थान को अपनी भौगोलिक स्थिति एवं जलवायु दशा के कारण सीमित व न्यूनतम जल स्रोत विरासत में प्राप्त है। राज्य में पेयजल की आपूर्ति एक कठिन कार्य है। सूखा व अकाल की परिस्थितियाँ इसे ओर भी अधिक दुष्कर बना देती है। मानसून में वर्षा की अपर्याप्तता व राज्य की जलवायु में विविधता के कारण राजस्थान देश का सर्वाधिक सूखा प्रदेश है। प्रदेश में उपलब्ध जल स्रोत देश के कुल स्रोतों का लगभग एक प्रतिशत ही है। अनेक स्थानों पर उपलब्ध भू–जल में अत्यधिक घुलनशील लवणों के होने के कारण पेयजल गुणवत्ता के मानक मूल्यों से कम है। भू–जल में फ्लोराइड व खारेपन की समस्या प्रमुख है।

जल संकट के कारण कई बार साझा जल स्रोतों पर विवाद व सामुदायिक संघर्ष होने की स्थितियाँ बन जाती है। कृषि उपज के अस्वस्थ तौर तरीकों तथा प्रभावी पारम्परिक वर्षा जल संग्रहण तंत्र के बेजा इस्तेमाल के कारण जल के लिए संघर्ष तीव्रतर होता जा रहा है।

पानी के मामले में गरीब कहे जाने वाले राज्य राजस्थान में अब पारम्परिक और प्राचीन जल संरक्षण प्रणालियों के पुनरूद्धार की जरूरत है। पेयजल संकट को देखते हुए प्राचीन जल संरक्षण तकनीकों की हमें एक बार फिर सख्त आवश्यकता है। राजस्थान में विज्ञान व पर्यावरण केन्द्र (CSE) और थार सोशल डवलपमेंट सोसायटी आदि संस्थाएँ मिलकर राजस्थान की परम्परागत जल संरक्षण प्रणालियों को पुनर्जीवित करने के कार्य में जुटी है। परम्परा व विज्ञान के इस मिले जुले प्रभाव से पुराने तरीकों को फिर से लागू करने की पहल की गई है।

पेयजल की व्यवस्था राज्य की जनकल्याण योजनाओं का एक महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम है। पहले राजस्थान में शुद्ध पेयजल के लिए महिलाओं को सिर पर मटकी रखकर कई किलोमीटर दूर तक जाना पड़ता था, लेकिन सरकार की तमाम कल्याणकारी योजनाओं की बदौलत अब राजस्थान शुद्ध पेयजल उपलब्ध कराने की दिशा में अग्रणी राज्य बन गया है।

भू–जल की गुणवत्ता के बदलाव, भू–जल की आमद में कमी, गिरते जल–स्तर तथा शहरीकरण व बढ़ती जनसंख्या से पेयजल की माँग में वृद्धि के कारण आवश्यकतानुसार योजनाओं से पेयजल सुनिश्चित करने की व्यवस्था की जा रही है।

जनता जल योजना, जन स्वास्थ्य अभियांत्रिकी विभाग की एक पेयजल योजना है। इसे विभाग द्वारा तैयार करने के उपरांत संचालन हेतु स्वैच्छिक संगठनों, एन.जी.ओ. व ग्राम पंचायतों को सुपर्द की जाती है। वर्तमान में राज्य में बीकानेर व जैसलमेर को

छोड़कर शेष 31 जिलों में 6514 जनता जल योजनाएं संचालित है।

देश के सभी जिलों में शीघ्र एक 'जल ग्राम' बनाया जायेगा। इस हेतु चयनित ग्राम में जल से सम्बन्धित विभागों द्वारा पेयजल की उपलब्धता सुनिश्चित की जायेगी। लोगों को जल संरक्षण हेतु जागरूक बनाया जायेगा।

ग्रामीण क्षेत्रों में पेयजल योजना के कार्यों हेतु भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय ग्रामीण पेयजल कार्यक्रम के अन्तर्गत अनुदान दिया जाता है। ग्रामीणों को शुद्ध पेयजल मिले, इसीलिए हैण्डपम्पों की मरम्मत के लिए अभियान चलाया गया है। जर्मन सरकार के सहयोग से गंधेली साहवा लिफ्ट नहर से 'आपणी योजना' बनाई गयी है। इससे हनुमानगढ़, चूरू व झुन्झुनूं के गांवों में जलापूर्ति हो रही है।

राजस्थान के जन स्वास्थ्य अभियांत्रिकी विभाग द्वारा हाल के वर्षों में किये गये चौतरफा प्रयासों का ही परिणाम है कि रेगिस्तानी इलाकों में आमजन तक शुद्ध व स्वच्छ पेयजल उपलब्ध हो पा रहा है। यह विभाग क्षेत्रीय जल प्रदाय योजनाओं, हैण्डपम्पों, पम्पों, पनघट योजना व टैंक योजनाओं तथा डिग्गी योजनाओं से गांवों को पेयजल सुविधा से जोड़ता है।

ग्रामीण पेयजल योजनाएँ

राज्य में कुल 43264 आबाद ग्राम व 77869 ढाणियाँ है। इनमें से वर्ष 2014–15 तक विभिन्न योजनाओं द्वारा 42843 ग्राम व 66560 ढाणियों को पूर्णतः या आंशिक रूप से लाभान्वित किया जा चुका है।

शहरी पेयजल योजनाएँ

राज्य के सभी 222 शहरों/कस्बों को विभिन्न पेयजल योजनाओं से जल प्राप्ति हो रही है। इनमें से लगभग 20 प्रतिशत शहरों को सतही जल स्रोतों से एवं 60 प्रतिशत शहरों को भू–जल स्रोतों से पेयजल उपलब्ध कराया जा रहा है। शेष लगभग 20 प्रतिशत शहरों को पेयजल योजनाएं सतही व भू–जल के मिश्रित जल स्रोतों पर आधारित है।

वृहत पेयजल योजनाएं जो अभी शुरू की जानी है, निम्न है –

1. बाड़मेर लिफ्ट योजना
2. ईसरदा बाँध
3. जयपुर–बीसलपुर फेज द्वितीय
4. चम्बल–बीसलपुर लिंक योजना
5. चम्बल से अलवर को पेयजल उपलब्ध कराने की योजना
6. ग्रामीण जलप्रदाय योजना, भैंसरोड़गढ़, चित्तौड़गढ़

सिंचाई, पेयजल व जल प्रबंधन के अन्य प्रयास

1. राजस्थान जल संसाधन नियामक प्राधिकरण, 2013
2. राजस्थान जल क्षेत्र पुनः संरचना परियोजना (विश्व बैंक द्वारा पोषित)
3. राजस्थान लघु सिंचाई सुधारीकरण परियोजना (RAJAMIIP), 2005
4. वर्षा जल संचय योजना, 2004
5. यूरोपियन यूनियन राज्य सहभागिता कार्यक्रम, 2007
6. जलमणि कार्यक्रम– स्कूलों के बच्चों को प्लान्ट लगाकर स्वच्छ व जीवाणु रहित पेयजल उपलब्ध कराना।
7. राजीव गांधी जल विकास व संरक्षण मिशन, 2010
8. सिंचाई प्रबंधन व प्रशिक्षण संस्थान, कोटा 1984
9. राजस्थान राज्य जल विकास निगम लिमिटेड
10. स्वजल धारा योजना, 2002
11. त्वरित सिंचाई लाभ कार्यक्रम
12. राजस्थान फ्लोरोसिस नियंत्रण कार्यक्रम
13. इन्दिरा गाँधी की लिफ्ट नहरी परियोजनाएँ
14. मुख्यमंत्री जल स्वालम्बन अभियान

मुख्यमंत्री जल स्वालम्बन अभियान

इस अभियान का मूल उद्धेश्य ग्रामों को जल आवश्यकता की दृष्टि से आत्मनिर्भर बनाना है, ताकि पेयजल संकट, घरेलू उपयोग व पशुधन के लिए जल उपलब्धता तथा सूखे की समस्या का समाधान किया जा सके। परम्परागत रूप से मात्र एक सरकारी कार्यक्रम के स्थान पर इसे एक जन–अभियान का रूप दिया गया। इस अभियान में 9 राजकीय विभागों, सामाजिक–धार्मिक समूहों तथा आमजन की भागीदारी सुनिश्चित की गई। इसमें सरकारी प्रयासों के साथ–साथ भामाशाहों द्वारा अंशदान सी.एस.आर. गतिविधियाँ, स्वैच्छिक श्रमदान और मशीनरी व सामग्री में सामुदायिक योगदान के रूप में संसाधन प्रबंधन किया गया। अभियान के अन्तर्गत मध्य जुलाई, 2016 तक राज्य के 3529 गांवों में 91043 जल संरक्षण एवं संग्रहण कार्यों का निर्माण किया गया। इस अभियान के अन्तर्गत प्रस्तावित विस्तृत परियोजना प्रतिवेदनों के परीक्षण के पश्चात् समस्त प्रस्तावित कार्यों की जियोटैगिंग की गई है, ताकि अभियान के अन्तर्गत निर्मित जल संरक्षण व संग्रहण ढांचों की भौतिक स्थिति, प्रमाणिकता, गुणवत्ता एवं स्थायित्त्व को सुनिश्चित किया जा सके। अभियान के अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में स्टैगर्ड ट्रैंच, सतत समोच्च ट्रैंच, मिनी परकोलेशन टैंक, नाडी

खुदाई, खड़ीन निर्माण, तलाई निर्माण, छत के जल संग्रहण हेतु पुनर्भरण ढाँचे, सूखे हैण्डपम्पों पर रिचार्ज किट, फार्म पौण्ड इत्यादि जैसे जल संरक्षण व संग्रहण कार्यों का वृहत स्तर पर निर्माण किया गया है। इससे जल स्तर बढ़ेगा, मृदा अपरदन रूकेगा, आने वाले समय के शेष चरणों में सभी इलाकों में जल संरक्षण कार्य पूर्ण हो जाने के बाद राजस्थान जल संकट से हमेशा के लिए मुक्त हो जायेगा।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

1. भौगोलिक दृष्टि से राजस्थान देश का सबसे बड़ा राज्य है ।
2. नदियाँ, झीलें व तालाब प्रमुख सतही जल के स्रोत हैं।
3. नदियों को जोड़ने का कानून बनाने वाला राजस्थान देश का पहला राज्य बना है।
4. वर्तमान में राज्य में कुएँ व ट्यूबवेल से कुल सिंचित क्षेत्र का 70 प्रतिशत भाग सिंचित होता है।
5. संसाधनों का विवेकपूर्ण ढंग से रख–रखाव जिससे उस संसाधन की हानि न हो तथा अनावश्यक व्यर्थता को रोका जा सके, संसाधन संरक्षण कहलाता है।
6. खड़ीन, कुण्डी, कुई, नाड़ी, जोहड़, तालाब आदि राज्य के जल संचयन व संग्रहण की परम्परागत विधियाँ है।
7. वर्षा के अभाव में भूमि को कृत्रिम तरीके से जल पिलाने की क्रिया को सिंचाई कहा जाता है।
8. इन्दिरा गांधी नहर परियोजना परियोजना पूर्ण होने पर विश्व की सबसे बड़ी परियोजना होगी। इसे प्रदेश की जीवन रेखा/मरूगंगा भी कहा जाता है।
9. चम्बल परियोजना राजस्थान व मध्यप्रदेश की संयुक्त परियोजना है। इसमें दोनों राज्यों की हिस्सेदारी आधी–आधी है।
10. दक्षिणी राजस्थान की आदिवासी बहुल बांसवाड़ा व डूंगरपुर जिलों की जनता की समृद्धि के लिए यह राजस्थान एवं गुजरात की संयुक्त परियोजना है।
11. राज्य में पेयजल की आपूर्ति एक कठिन कार्य है। सूखा व अकाल की परिस्थितियाँ इसे ओर भी अधिक दुष्कर बना देती है।
12. पेयजल की व्यवस्था राज्य की योजना का एक महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम है।
13. जनता जल योजना, जन स्वास्थ्य अभियांत्रिकी विभाग की एक पेयजल योजना है।
14. ग्रामीण क्षेत्रों में पेयजल योजना के कार्यों हेतु भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय ग्रामीण पेयजल कार्यक्रम के अन्तर्गत अनुदान दिया जाता है।
15. मुख्यमंत्री जल स्वालम्बन अभियान का मूल उद्धेश्य ग्रामों को जल आवश्यकता की दृष्टि से आत्मनिर्भर बनाना है।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक

1. कुएँ एवं नलकूपों में सिंचाई करने की दृष्टि से सबसे प्रमुख जिला है–

   (अ) जयपुर (ब) भरतपुर

   (स) अलवर (द) धौलपुर

2. राज्य के किस भू–भाग में कुओं द्वारा 26 प्रतिशत से अधिक सिंचाई की जाती हैं?

   (अ) उत्तरी एवं उत्तरी पूर्व

   (ब) दक्षिणी एवं दक्षिणी पूर्व

   (स) दक्षिण एवं दक्षिणी पश्चिमी

   (द) पूर्वी भू–भाग

3. राजस्थान के कौनसे दो तालाब सिंचाई की दृष्टि से अधिक उपयोग हैं?

   (अ) जयसमन्द, राजसमन्द

   (ब) फतहसागर, उदयसागर

   (स) उम्मेदसागर, भोपालसागर

   (द) हेमावास, सरदारमन्द

4. राजस्थान के जल साधनों का भारत के कुल जल साधनों में कितने प्रतिशत हिस्सा है–

   (अ) 5 प्रतिशत (ब) 8 प्रतिशत

   (स) 1 प्रतिशत (द) नगण्य

5. गंगानगर को इन्दिरा गांधी नहर से जोड़ा गया है

   (अ) साधुवाली के निकट (ब) पोंग बांध के निकट

   (स) लोहागढ़ के निकट (द) गजनेर के निकट

6. थार का घड़ा कहलाता है?

   (अ) चांदन नलकूप (ब) मांदल नलकूप

(स) खारा नलकूप (द) मीठा नलकूप

7. इन्दिरा गाँधी नहर का राजस्थान में प्रवेश है
   (अ) सीमावाली हेड से (ब) सीतावाली हेड से
   (स) खरसान हेड से (द) बीकानेर हेड से
8. जवाहर सागर बाँध है–
   (अ) मोरवन नदी पर (ब) माही नदी पर
   (स) चम्बल नदी पर (द) बनास नदी पर

अतिलघूत्तरात्मक

9. भौगोलिक दृष्टि से देश का सबसे बडा राज्य कौनसा है?
10. उदयपुर की प्रमुख झीलों के नाम बताइये?
11. नक्की झील कहॉ स्थित है?
12. राजस्थान में सिंचाईं का प्रमुख साधन कौनसा है?
13. राजस्थान पत्रिका द्वारा चलाये जल संरक्षण अभियान का नाम बताइये?
14. इन्द्रा गॉधी नहर परियोजना द्वारा कितने प्रतिशत भाग पर वितरिकाओं द्वारा सिंचाई होती है?
15. चम्बल परियोजना के अर्न्तगत आने वाले बॉधों के नाम बताइये?
16. माही बजाज सागर परियोजना किस–किस राज्य की कितनी हिस्सेदारी है?
17. राजस्थान में भू– जल की दो प्रमुख समस्यायें बताइये?
18. जनता जल योजना किस विभाग की योजना है?
19. देश में किस स्तर पर जल ग्राम बनाये जायेगें?
20. आपणी योजना किस देश के सहयोग से चलायी जा रही है?

लघूत्तरात्मक

21. राजस्थान की प्रमुख नदियों के नाम बताइये?
22. हमारे राज्य के जल संचयन व संग्रहण की परम्परागत विधियों के नाम बताइये?
23. इन्द्रा गॉधी नहर की प्रमुख शाखाओं के नाम बताइये?
24. राजस्थान में सिंचाई के विकास हेतु सुझाव दीजिये?
25. अभी शुरू की जाने वाली परियोजनाओं के नाम बताइये?
26. मुख्यमंत्री जल स्वालम्बन अभियान पर प्रकाश डालिये?

निबंधात्मक प्रश्न –

27. इन्द्रा गांधी नहर परियोजना का वर्णन कीजिए?28. चम्बल सिंचाई परियोजना का विस्तार से वर्णन कीजिये?
29. राजस्थान में पेयजल विकास के लिए किये जा रहे प्रयासों पर प्रकाश डालिये?

आंकिक प्रश्न –

22. राजस्थान के मानचित्र में प्रमुख सिंचाई परियोजनाओं को दर्शाइये।
23. राजस्थान के मानचित्र में इन्द्रा गांधी नहर की प्रमुख शाखाओं को दर्शाइये।

पाठ 24
राजस्थान : खनिज व उद्योग
(Rajasthan : Mining and Industry)

खनिज

वर्तमान युग को जीवाश्म ईंधन युग या आणविक युग कहना उचित होगा। खनिजों की पर्याप्त मात्रा में उपलब्धता और आर्थिक दृष्टि से गुणवत्ता किसी भी क्षेत्र के औद्योगिक विकास के लिए आधार प्रस्तुत करते है।

खनिज प्राकृतिक रूप से उपलब्ध ऐसी वस्तुएँ है, जिनकी उपलब्धता पृथ्वी की सतह से नीचे होती है। ऐसी प्रक्रिया जिससे सतह के नीचे से हम इन खनिजों का दोहन करते है, खनन कहलाती है। प्रकृति में हमें खनिज अन्य तत्त्वों व अवयवों के साथ मिश्रित रूप में मिलते है। ऐसे मिश्रणों को अयस्क कहते है, जैसे हैमेटाईट व मेग्नेटाईट लौह धातु के अयस्क है। बॉक्साइट अयस्क से एल्युमिनियम प्राप्त किया जाता है।

पृथ्वी पर तीन हजार से भी अधिक प्रकार के खनिज विद्यमान है। खनिज जिनमें मूल रूप से धातु का अंश विद्यमान रहता है, धात्विक खनिज कहलाते है। वे खनिज जिनमें धातु का अंश बिल्कुल नहीं पाया जाता है, अधात्विक खनिज कहलाते है। ऐसे खनिज जिनसे हमें ऊर्जा प्राप्त होती है, वे ऊर्जा खनिज कहलाते हैं। खनिजों का विस्तृत विवरण पूर्व के अध्यायों में दिया गया है।

राजस्थान : खनिजों का अजायबघर

राजस्थान खनिजों की दृष्टि से एक सम्पन्न राज्य है। राजस्थान में विविध खनिजों की प्राप्ति के कारण 'खनिजों का अजायबघर' कहा जाता है। राजस्थान में लगभग 67 (44 प्रधान व 23 गौण) खनिजों का खनन होता है। देश के कुल खनिज उत्पादन में राजस्थान का योगदान 22 प्रतिशत है। खनिज भण्डारों की दृष्टि से झारखण्ड के बाद राज्य का द्वितीय स्थान है। खनिज उत्पादन की दृष्टि से झारखण्ड व मध्यप्रदेश के बाद राज्य का तृतीय स्थान है। खनिजों की दृष्टि से राज्य की अरावली पहाड़ियाँ तथा दक्षिणी–पूर्वी पठारी प्रदेश सम्पन्न है। विगत कुछ दशकों की खोज से राज्य के पश्चिमी भाग में शक्ति के संसाधनों जैसे पेट्रोलियम व प्राकृतिक गैस के विपुल भण्डार मिले हैं।

राजस्थान में खनिजों का क्षेत्रीय वितरण किसी एक प्राकृतिक विभाग में सकेन्द्रित न होकर छितरा हुआ है। वोलेस्टोनाइट, जास्पर, जस्ता, सीसा, फ्लोराइट, जिप्सम, संगमरमर, एस्बेस्टॉस, घीया पत्थर, रॉक फॉस्फेट आदि खनिजों के उत्पादन में राज्य का एकाधिकार है।

राजस्थान में खनिजों का वितरण

राजस्थान में प्रमुख खनिजों का वितरण निम्न प्रकार हैं –

(अ) धात्विक खनिज : इन खनिजों में अयस्कों से रासायनिक प्रक्रिया द्वारा मूल खनिज अलग किये जाते हैं। राजस्थान के मुख्य धात्विक खनिजों का वर्णन निम्न प्रकार से है।

(i) ताँबा : यह अलौह धातुओं में सबसे महत्त्वपूर्ण है। राजस्थान में इसका खनन प्राचीन काल से ही होता आ रहा है। यह अधिकतर आग्नेय व कायान्तरित चट्टानों की नसों में पाया जाता है। ताँबा बहुत लचीला व विद्युत का उत्तम सुचालक है। ताँबा उत्पादन की दृष्टि से राजस्थान का देश में द्वितीय स्थान है। सन् 1985 में कच्चे ताँबे का उत्पादन 14.36 लाख टन था जो 2012–13 में बढ़कर 98.05 लाख टन हो गया। राज्य में ताँबा शोधन का प्लान्ट हिन्दुस्तान कॉपर लिमिटेड, खेतड़ी में लगा

हुआ है।

ताँबे की खानें राजस्थान में कई स्थानों पर पायी जाती है, लेकिन झुन्झुनूँ जिले में खेतड़ी–सिंघाना, सीकर में नीम का थाना, अलवर जिले में खो–दरीबा खानें महत्त्वपूर्ण है। तांबे की अन्य खाने पुर–आगुँचा व गुलाबपुरा (भीलवाड़ा), देबारी, सलूम्बर, रेलमगरा (उदयपुर) व बीदासर (चूरू) महत्त्वपूर्ण हैं।

ताँबा उपयोग की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इसका प्रयोग विद्युत उपकरण व तार तथा रसायन उद्योग में किया जाता है। राजस्थान में ताँबे के 13 करोड़ टन से अधिक भण्डारों का अनुमान है। भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण विभाग के वैज्ञानिकों के सर्वे में राज्य के कई हिस्सों में सैकड़ों मिलियन टन भण्डार होने के संकेत मिले है। सीकर की 'बन्नो बालो की ढाणी' में ताँबे के अकूत भण्डार मिले है।

(2) सीसा–जस्ता : यह मिश्रित अयस्क गैलेना मे मिलता है। इसके अलावा कैलेमीन, जिंकाइट, विमेलाइट मुख्य अयस्क है। इसके उत्पादन में राजस्थान का एकाधिकार है। राजस्थान में सीसा–जस्ता के निक्षेप आर्कियन व प्रोटोजोइक काल की चट्टानों में मिलते है। उदयपुर में जावर, राजसमंद में राजपुरा–दरीबा तथा भीलवाड़ा में रामपुरा–आगुँचा, गुलाबपुरा प्रमुख क्षेत्र है। अन्य क्षेत्रों में सवाई माधोपुर में चौथ का बरवाड़ा व अलवर में गूढ़ा–किशोरीदास प्रमुख है। सर्वाधिक उत्पादन जावर क्षेत्र में होता है। उदयपुर से 10 किमी. दूर देबारी में निजी क्षेत्र में हिंदुस्तान जिंक लिमिटेड का कारखाना स्थापित है। चित्तौड़गढ़ के चंदेरिया में एशिया का सबसे बड़ा सुपर जिंक स्मेल्टर सयंत्र ब्रिटेन की सहायता से 2005 में स्थापित किया गया है। ये दोनों संयंत्र वेंदान्ता समूह के अन्तर्गत निजी क्षेत्र में है। जस्ते के शोधन से उप–उत्पाद के रूप में सुपर फॉस्फेट व कैडमियम प्राप्त होता है। सन् 1965 में सीसा–जस्ता का उत्पादन 17480 टन था जो 2012–13 में बढ़कर 86.32 लाख टन हो गया। देश के कुल संचित भण्डार का 89.2

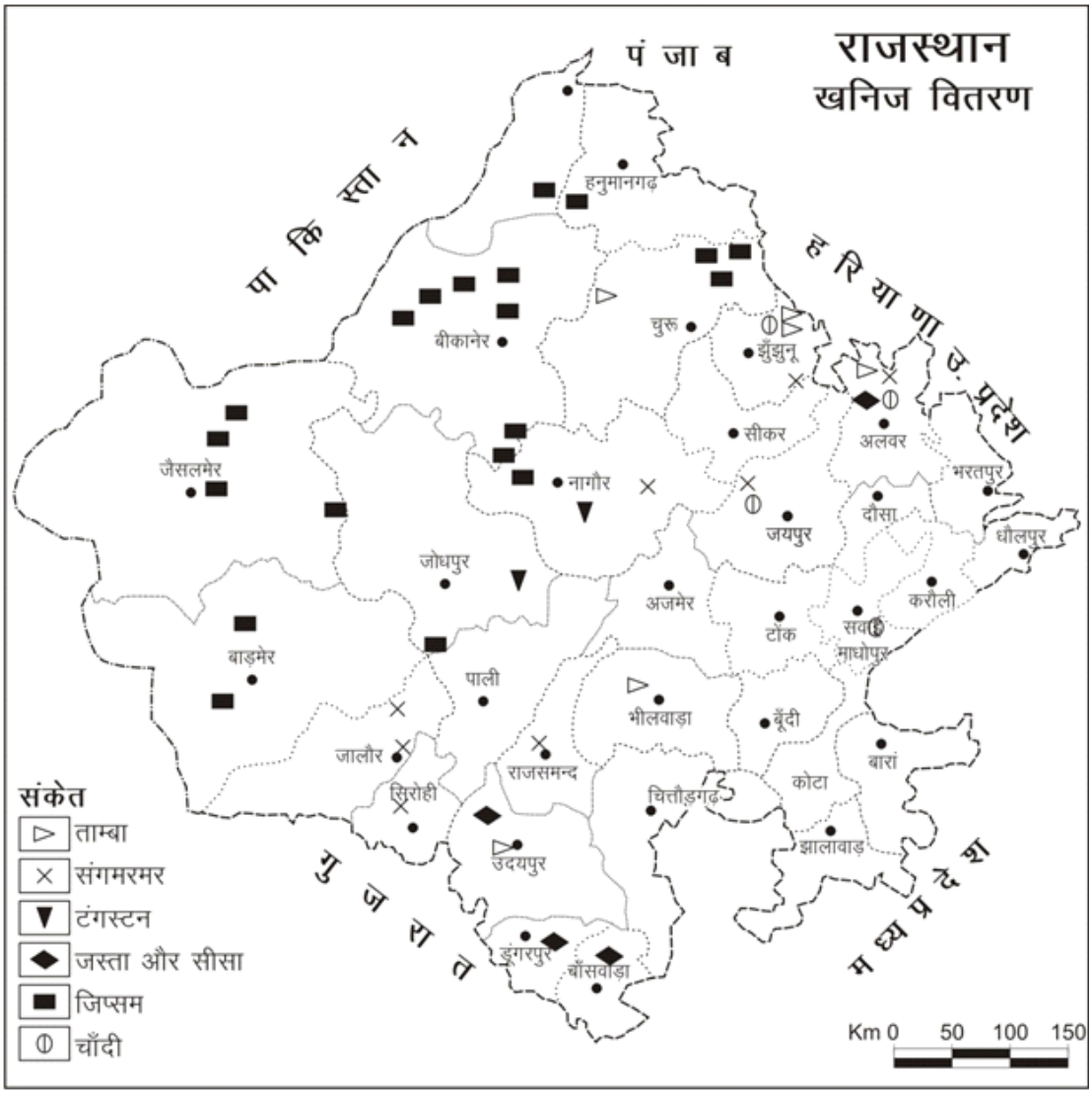

मानचित्र 24.1 : राजस्थान खनिज वितरण

प्रतिशत भाग राजस्थान में है। इस धातु का प्रयोग सेना के लिए बारूद निर्माण, जहाज निर्माण, काँसा बनाने में इसका उपयोग प्रमुखता से होता है। (iii) टंगस्टन : टंगस्टन वुलफ्रेमाइट अयस्क से प्राप्त होता है। यह मुख्यतः ग्रेनाइट एवं पेग्माइट चट्टानों के साथ पाये जाते है। यह भारी, कठोर तथा उच्च द्रवणांक वाली धातु है। यह अत्यधिक सामरिक महत्त्व का खनिज है। इसका उपयोग बिजली के बल्ब बनाने, इस्पात को मजबूत बनाने, धातुओं को काटने व सामरिक महत्त्व के हथियार बनाने में किया जाता है। इसके अतिरिक्त एक्सरे, रेडियो व टेलीविजन के उपकरण बनाने व रंगाई–छपाई उद्योगों में भी इसका उपयोग होता है।

राजस्थान में टंगस्टन का मुख्य जमाव नागौर जिले के डेगाना के रेवत व भाकरी व सिरोही जिले के बाल्दा क्षेत्र में पाया जाता है। सिरोही के बाल्दा में राजस्थान राज्य टंगस्टन विकास विभाग द्वारा खनन कार्य किया जाता है। इसके अतिरिक्त डूंगरपुर जिले के अमरतिया, उदयपुर जिले के कुण, पाली जिले के बराठिया व अजमेर जिले के लादेरा–साकुण क्षेत्रों में भी टंगस्टन के जमाव पाये जाते है। राज्य में देश के कुल उत्पादन का 75 प्रतिशत टंगस्टन प्राप्त होता है। वर्तमान में आयातित टंगस्टन सस्ती होने के कारण राज्य में इसका खनन कार्य बन्द है।

(iv) चाँदी : चाँदी का उत्पादन सीसा व जस्ता के साथ मिश्रित धातु के रूप में होता है। चाँदी भी सोने की भांति एक मूल्यवान सफेद चमकीली धातु है, जिसमें तन्यता तथा चोट सहने के गुण विद्यमान है। यह विद्युत की सुचालक है।



चित्र 24.1 : राजस्थान में अधात्विक खनन

राजस्थान में चाँदी उत्पादक क्षेत्र उदयपुर के पास की सीसा–जस्ता की जावर खाने व जावर माला की पहाड़ियाँ है। हिन्दुस्तान जिंक स्मैल्टर में सीसा–जस्ता के मिश्रण से चाँदी को निकाला जाता है। देश के चाँदी के 80.8 प्रतिशत सुरक्षित भंडार राजस्थान में है। 2009–10 में चाँदी का उत्पादन 47682 किलोग्राम था।

(ब) अधात्विक खनिज : इन खनिजों के अयस्कों से रासायनिक प्रक्रिया से परिष्कृत कर उनके मूल खनिज अलग नहीं किये जाते है। इसका उपयोग प्राकृतिक रूप में ही किया जाता है। यहाँ हम संगमरमर व जिप्सम का विस्तार से अध्ययन करेगें।

(i) संगमरमर : मानव जीवन में आदिकाल से पत्थरों का काफ़ी महत्त्व रहा है। आज भवन निर्माण उद्योग में कई प्रकार के ईमारती व सजावटी पत्थरों का प्रयोग किया जाता है। इनमें संगमरमर एक प्रमुख पत्थर है। संगमरमर के उत्पादन में राज्य का लगभग एकाधिकार है। राजस्थान के मकराना का संगमरमर विश्व प्रसिद्ध है। आगरा का किला, ताजमहल व विक्टोरिया पैलेस मकराना के मार्बल से ही बने हैं।



चित्र 24.2 : संगमरमर खनन

राज्य में विविध प्रकार के रंग–बिरंगे संगमरमर के पत्थर पाये जाते है। उदयपुर में हरे, भैंसलाना में काला, जालौर, बांसवाड़ा में गुलाबी, जैसलमेर में पीला, मकराना में सफेद व पाली में सतरंगा मार्बल मिलता है। राजस्थान में अच्छी किस्म के मार्बल का 1100 मिलीयन टन का अकूत भंडार है। संगमरमर के प्रमुख उत्पादक क्षेत्र मकराना (नागौर), राजसमंद, उदयपुर, किशनगढ़ (अजमेर) है। धौलपुर, अलवर, जयपुर, कोटा व सिरोही, बांसवाड़ा में भी मार्बल की खदाने है। राजस्थान में सन् 2012–13 में कुल उत्पादन 13876.89 हजार टन हुआ। राज्य में उदयपुर, राजसमन्द, किशनगढ़, इसके प्रमुख केन्द्र है। जहाँ से यह पत्थर विभिन्न राज्यों व विदेशों में भेजा जाता है।

(ii) जिप्सम : भारत में सबसे अधिक जिप्सम राजस्थान में मिलता है। यह परतदार खनिज है। राजस्थान में मुख्यतः चार क्षेत्रों में इसका खनन होता है –



चित्र 24.3 : राजस्थान में जिप्सम खनन

- नागौर क्षेत्र– गोठ–मांगलोद, भदवासी, मंगोल
- चुरू–बीकानेर क्षेत्र–जामसर, लूणकरणसर, तारानगर
- जैसलमेर–बाड़मेर क्षेत्र– मोहनगढ़, हमीरवाली
- पाली–जोधपुर क्षेत्र– फालसुन्द, मंगलोद

सन् 2012–13 में 27.18 लाख टन जिप्सम का उत्पादन हुआ। इस खनिज की राज्य में विकास की अपार संभावनाएँ है। इस खनिज का सर्वाधिक उपयोग उर्वरक बनाने में होता है। इसके अलावा यह प्लास्टर ऑफ पेरिस, सीमेन्ट, रंग–रोगन, गंधक का तेजाब तथा अमोनियम सल्फेट आदि बनाने में भी प्रयुक्त होता है।

(स) ईंधन खनिज : इसके अन्तर्गत कोयला, खनिज तेल व प्राकृतिक गैस आते हैं।

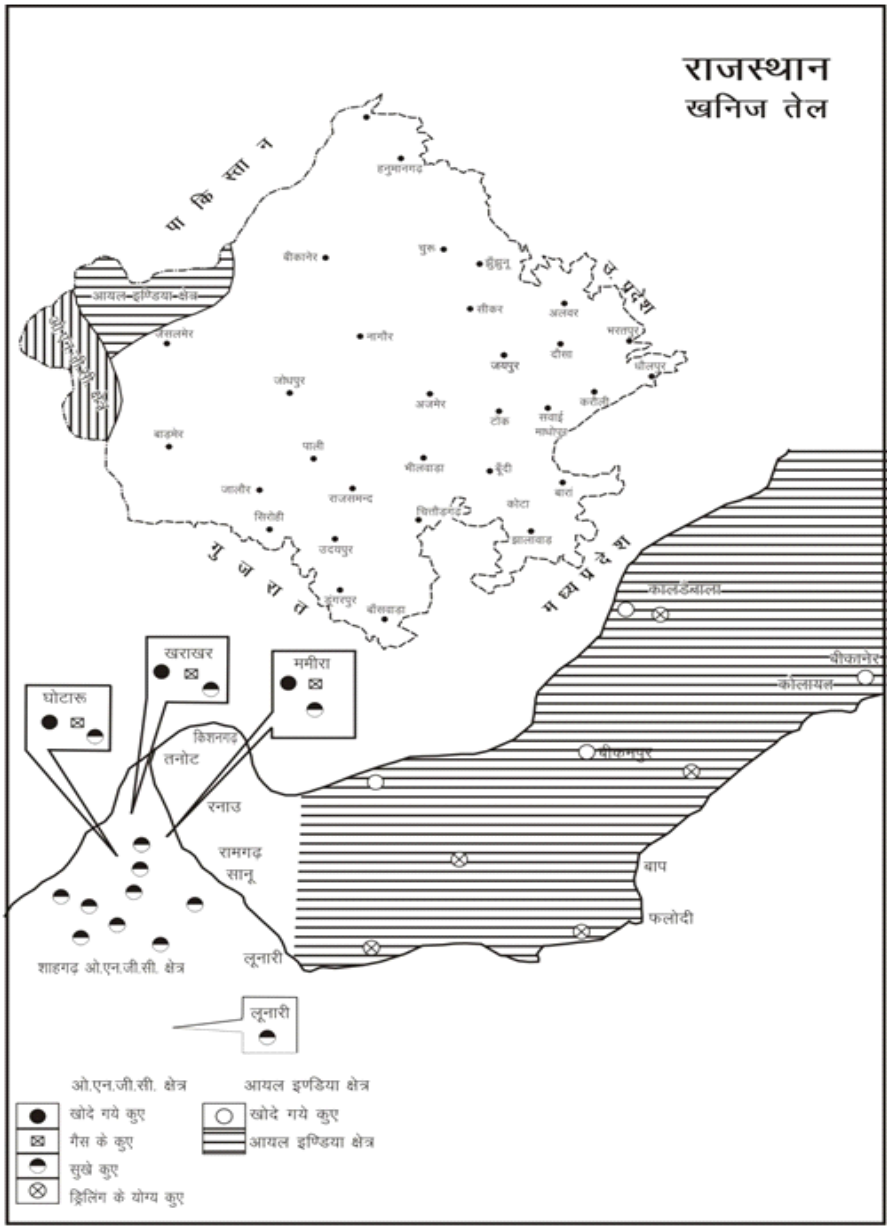

मानचित्र 24.2 : राजस्थान खनिज तेज

(i) पेट्रोलियम : पेट्रोलियम कोयला के बाद दूसरा महत्त्वपूर्ण शक्ति का संसाधन है। परिवहन के साधनों व ऊर्जा उत्पादन में पेट्रोलियम का उपयोग किया जाता है। पेट्रोलियम की उपस्थिति केवल अवसादी चट्टानों में ही सम्भव है। खनिज तेल हाइड्रो–कार्बन यौगिकों का मिश्रण होता है। भूगर्भिक काल में जैव पदार्थ अवसादी शैलो के बीच दबने से पेट्रोलियम का निर्माण हुआ।

राजस्थान में बीकानेर, जैसलमेर व पश्चिमी जोधपुर में अवसादी चट्टाने पायी जाती है। इन्हीं चट्टानों में पेट्रोलियम के भण्डार सुरक्षित है। बाड़मेर जिले का गुढ़ामलानी क्षेत्र खनिज तेल भण्डार का प्रमुख क्षेत्र है। बाड़मेर–सांचौर बेसिन में भी तेल खनिज के अपार भण्डार मिले है। गुढ़ामालानी तहसील के नगर गाँव व मामियों की ढाणी में ब्रिटेन की केयर्न एनर्जी इण्डिया लिमिटेड को खनिज खनन की अनुमति तेल मिला है। इस तेल के कुएँ का नाम रागेश्वरी रखा गया है। बाड़मेर–सांचौर बेसिन में मंगला कुएँ सहित 31 कुओं की खुदाई की गई है। जैसलमेर में तनोट, घोटारू, डांडेवाला, सादेवाला, मनिहारी टिब्बा व लोंगेवाला खनिज तेल के प्रमुख क्षेत्र है। पश्चिमी जोधपुर के मयाजलार क्षेत्र में भी इसके भण्डार मिले हैं।

राज्य में पेट्रोलियम अन्वेषण, उत्पादन, परिशोधन, वितरण, परिवहन हेतु राजस्थान स्टेट पेट्रोलियम कार्पोरेशन लिमिटेड का गठन किया गया है। राज्य में खनिज तेल के उत्पादन के बढ़ने की भारी संभावना है।

खनिज संरक्षण

राजस्थान में अनियंत्रित व अनियोजित तरीके से खनिजों का दोहन हो रहा है। इससे इनके समाप्त होने की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गयी है। खनिज एक प्राकृतिक सम्पदा है तथा लाखों वर्षों की प्रक्रिया से ये खनिज अस्तित्त्व में आये है। अतः खनिजों का संरक्षण अति आवश्यक है। खनिजों के संरक्षण हेतु उपयुक्त बीती, उचित प्रबन्धन की आवश्यकता है। विकास की परिभाषा पर पुर्नविचार की आवश्यकता है। वन विनाश, भूमि क्षरण, पर्यावरण प्रदूषण, मृदा विनाश, जैव–विविधता की समाप्ति के मूल्य पर खनिजों का खनन किस सीमा तक होना चाहिए यह विचारणीय बिन्दु है।

उद्योग

वर्तमान समय में उद्योग किसी क्षेत्र या प्रदेश के समग्र विकास व जीवन स्तर का सूचक है। प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता, ऊर्जा संसाधन, मानव संसाधन, तकनीकी विकास का स्तर तथा आधुनिक परिवहन व संचार के साधन औद्योगिकीकरण के आधारभूत तत्त्व है। विस्तृत क्षेत्रफल तथा प्राकृतिक संसाधनों में धनी होने के बावजूद भी राजस्थान में उद्योगों का पर्याप्त विकास नही हो पाया है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय राजस्थान में आधुनिक दृष्टि से बड़े उद्योग नगण्य थे। राजस्थान के गठन के समय मात्र 11 वृहद उद्योग तथा 207 पंजीकृत छोटे कारखाने ही थे। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद केन्द्रीय व राज्य सरकारों ने पंचवर्षीय योजनाओं में राज्य के औद्योगिक विकास हेतु प्रयास करना प्रारम्भ किया।

वर्तमान में औद्योगिक विकास हेतु राज्य में 36 जिला उद्योग केन्द्र व 7 उपकेन्द्र कार्यरत है। इन केन्द्रों के माध्यम से उद्यमियों को राज्य में उद्योग स्थापित करने हेतु मार्गदर्शन, सहायता व सुविधाएँ एक ही स्थान पर उपलब्ध कराई जाती है। औद्योगिक विकास हेतु 2015 में विशेष आर्थिक क्षेत्र (SEZ) विधेयक पारित किया गया तथा राज्य सरकार ने 'मेक इन राजस्थान' का नारा दिया। उद्योग के विकास हेतु सरकार ने कई योजनाएं आरम्भ की है।

औद्योगिक विकास हेतु राज्य सरकार द्वारा 1978, 1990, 1994 व 1998 में औद्योगिक नीतियां बनाई गयी। औद्योगिक क्षेत्रों व पार्कों के विकास पर जोर दिया गया। विभिन्न वित्तीय संस्थानों जैसे राजस्थान वित्त निगम, राजस्थान उद्योग व खनिज विकास निगम, राजस्थान लघु उद्योग निगम, राजस्थान गैर–कृषि विकास अभिकरण आदि की स्थापना की गई। राजस्थान के सूती वस्त्र एवं सीमेन्ट उद्योगों का विस्तार से वर्णन इस प्रकार है।

सूती वस्त्र उद्योग

यह उद्योग विश्व के प्राचीनतम उद्योगों में से एक है। प्राचीनकाल में भारत के हाथ की कताई व हाथ से बुने हुये सूती वस्त्रों का एक विस्तृत बाजार था। ढाका की मलमल, मूसलीपट्टनम् की छींट, कालीकट के केलिको तथा सूरत व बड़ोदरा के सुनहरी जरी के काम वाले सूती–वस्त्र गुणवत्ता व डिजायनों के लिए विश्व विख्यात थे।

सूती वस्त्र राजस्थान का परम्परागत एवं प्राचीनतम् उद्योग है। राज्य में ग्रामीण जनसंख्या को रोजगार उपलब्ध करवाने वाला यह प्रमुख निर्माण उद्योग है। राजस्थान में प्रथम सूती वस्त्र कारखाना दी कृष्णा मिल्स लिमिटेड, ब्यावर में सन् 1889 में सेठ दामोदर दास व्यास द्वारा निजी क्षेत्र में स्थापित की गई थी। ब्यावर में ही 1906 में एडवर्ड मिल्स लिमिटेड के नाम से दूसरी तथा 1925 में श्री महालक्ष्मी मिल्स लिमिटेड के नाम से तीसरी सूती वस्त्र मिल की स्थापना की गई। आजादी से पूर्व भीलवाड़ा में मेवाड़ टेक्सटाईल्स मिल्स 1938 में, पाली में 1942 में महाराजा उम्मेद सिंह मिल्स लिमिटेड तथा सन् 1946 में गंगानगर में सार्दुल टेक्सटाईल लिमिटेड स्थापित की गई थी। राजस्थान की सबसे बड़ी सूती वस्त्र मिल महाराजा उम्मेद मिल है। स्वतंत्रता की प्राप्ति के बाद सरकारी

प्रोत्साहन एवं अन्य आधारभूत सुविधाओं के कारण राज्य में किशनगढ़, विजयनगर, गुलाबपुरा, जयपुर, भवानी मण्डी, कोटा, उदयपुर, भीलवाड़ा, बांसवाड़ा आदि केन्द्रों पर सूती वस्त्र मिले स्थापित की गई। भीलवाड़ा को वस्त्र उत्पादन की दृष्टि से राजस्थान का मेनचेस्टर व वस्त्र नगरी कहा जाने लगा है। राज्य की प्रमुख सूती वस्त्र की मिले निम्न हैं– • राजस्थान स्पीनिंग एण्ड वीविंग मिल्स, गुलाबपुरा (भीलवाड़ा) • सार्दुल टेक्सटाईल लिमिटेड, श्रीगंगानगर, • कृष्णा मिल्स लिमिटेड, ब्यावर, • श्री महालक्ष्मी मिल्स, ब्यावर • एडवर्ड मिल्स, ब्यावर • आदित्य मिल्स लिमिटेड, किशनगढ़ (अजमेर) • मेवाड़ टेक्साटाईल्स मिल्स, भीलवाड़ा • महाराजा उम्मेद मिल्स, पाली • राजस्थान टेक्सटाईल मिल्स, भवानीमण्डी • राजस्थान कॉपरेटिव मिल्स, गुलाबपुरा • विजयनगर कॉटन मिल्स, विजयनगर (अजमेर), • बांसवाड़ा सिन्टेक्स, बांसवाड़ा, • मयूर मिल्स लिमिटेड, बांसवाड़ा, • राजस्थान स्पिनिंग एण्ड विविंग मिल्स लिमिटेड, ऋषभदेव आदि।

वर्तमान में अधिकांश नवीन सूती वस्त्र मिले राजस्थान राज्य औद्योगिक विकास व विनियोग निगम लिमिटेड की सहायता से शुरू की गई है। राज्य में सन् 1951 में 5 सूती वस्त्र मिले थी, जो लगभग 30 लाख मीटर कपड़े का उत्पादन करती थी। वर्तमान में 28 कपड़ा मिले है, जो 482.07 लाख मीटर कपड़े का उत्पादन करती है।

राजस्थान में सूती वस्त्रों के उत्पादन में लगातार वृद्धि व विकास के बावजूद कुछ समस्याएँ इसकी प्रगति में बाधक है, जो इस प्रकार है– कच्चे माल की आपूर्ति, शुष्क जलवायु, ऊर्जा की कमी, पुरानी व छोटे आकार की मशीनें, पूँजी की कमी, अप्रशिक्षित श्रमिक आदि।

राज्य में निर्मित कपड़े का अधिकाँश भाग का उपयोग घरेलू माँग में होता है। पूर्वोत्तर राज्यों नेपाल, बांग्लादेश व अफ्रीकी देशों में राज्य से कपड़े का निर्यात भी किया जाता है।

सीमेन्ट उद्योग

सीमेन्ट एक आधारभूत संरचनात्मक उद्योग है तथा इसका उपयोग भवन निर्माण, पुल, सड़क, रेल्वे कंकरीट स्लीपर आदि के निर्माण में होता है। आधुनिक युग में पोर्टलैण्ड सीमेन्ट के विकास से निर्माण कार्यों में गतिशीलता आ गयी है। राज्य में सीमेन्ट कारखानों की स्थापना कच्चे माल (लाईमस्टोन व जिप्सम) के प्राप्ति स्थलों के पास ही अधिक हुई है। सामान्यतः एक टन सीमेन्ट के निर्माण में 1.5 टन चूना पत्थर, 1.2 टन कोयला व 0.3 टन जिप्सम प्रयुक्त होता है। 3 टन कच्चे माल से 1 टन सीमेन्ट का



चित्र 24.4 : सीमेन्ट उद्योग

निर्माण होता है।

राजस्थान का सीमेन्ट उत्पादन में आन्ध्रप्रदेश के बाद देश में द्वितीय स्थान है। राज्य में 2.5 बिलियन टन चूना पत्थर के भण्डार है। इस उद्योग के स्थानीयकरण की दृष्टि से सर्वाधिक अनुकूल एवं उत्तम स्थिति चित्तोड़गढ़ व सवाईमाधोपुर जिलों की है। राज्य में सीमेन्ट उद्योग का प्रारम्भिक स्थानीयकरण पूर्वी और दक्षिणी–पूर्वी जिलों बूंदी, सवाई माधोपुर, कोटा, चित्तौड़गढ़ और उदयपुर में चूना–पत्थर की उपलब्धता वाले स्थानों पर हुआ है। विगत कुछ वर्षों में इस उद्योग का स्थानीयकरण दक्षिणी–पश्चिमी जिलों विशेषकर सिरोही, जोधपुर, नागौर, पाली व जैसलमेर में होने लगा है। राज्य के पश्चिमी जिलों में नहरी जल की उपलब्धता व वैकल्पिक ऊर्जा के स्रोतों से ऊर्जा की प्राप्ति के कारण इस उद्योग का तीव्र स्थानीयकरण हुआ है।

सीमेन्ट उद्योग का विकास

राजस्थान में सबसे पहले सीमेन्ट कारखाने की शुरूआत 1915 में ए.सी.सी. कम्पनी द्वारा लाखेरी (बूंदी) में स्थापना के साथ हुयी। वर्तमान में सन् 2012 के अनुसार राज्य में सीमेंट बनाने के 19 बड़े, 4 मध्यम और 104 लघु कारखाने (उत्पादन क्षमता 38.8 मिलियन टन है) स्थापित है।

चित्तौड़गढ़, डबोक (उदयपुर), चन्देरिया, निम्बाहेड़ा (चित्तौड़गढ़), मोडक (कोटा), ब्यावर (अजमेर), कोटा, रास (पाली), पिण्डवाड़ा (सिरोही), गोटन (नागौर), खारिया खंगार (जोधपुर) में प्रमुख सीमेंट उत्पादक बड़े व मध्यम सीमेंन्ट उत्पादक उद्योग है। गोटन (नागौर) में जे.के. व्हाइट सीमेंट तथा खारिया खंगार (भोपालगढ–जोधपुर) में बिरला व्हाइट सीमेन्ट के कारखाने हैं।

राज्य में बड़े व मध्यम सीमेन्ट कारखानों की तुलना में छोटे कारखानें अधिक स्थापित किये जा रहे है। इसके निम्न कारण (1) लागत कम आना, (2) राज्य में फैले चूना पत्थर के भण्डार का उपयोग तथा (3) बिजली की खपत कम।

राजस्थान में सीमेंट उद्योग के तीव्र विकास के मार्ग की कुछ महत्त्वपूर्ण बाधाएं – पुरानी उत्पादन तकनीक, कोयले की कमी, ब्रॉडगेज की कमी, विद्युत की अनियमित आपूर्ति व अपर्याप्त मांग आदि है।

इस उद्योग के विकास की विपुल संभावनाएँ है। राजस्थान में आधुनिक उत्पादन विधियों को अपनाकर सीमेंट का उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। राजस्थान में वर्तमान में श्री, बिरला, ग्रेसिम, अम्बुजा, एसीसी, बांगर, बिनानी, लक्ष्मी व वण्डर प्रमुख सीमेंट कम्पनियाँ अस्तित्व में है।

राजस्थान में ग्रामीण विकास

सन् 2011 की जनगणना के अनुसार राजस्थान में राज्य की 75.2 प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में निवास करती है। राजस्थान गाँवों का प्रदेश है। अंग्रेजों के आगमन से पूर्व प्रदेश के गाँव आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर थे। अंग्रेजों ने राज्य के रोजगार के ढाँचे को छिन्न–भिन्न कर दिया। स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही ग्रामीण राजस्थान की गरीबी व पिछड़ापन दूर करने के लिए कई योजनाएँ लागू की। ग्रामीण विकास हेतु अलग से ग्रामीण विकास मंत्रालय बनाया गया। गरीबी उन्मूलन, आर्थिक एवं ढाँचागत विकास, आय का समान वितरण एवं सामाजिक विषमता दूर करने, रोजगार सृजन के लिए ग्राम विकास के कई योजनाएँ बनायी गई।

आज़ादी के बाद प्रथम पंचवर्षीय योजना में सामुदायिक विकास कार्यक्रम तथा 1959 में विकास में ग्रामीण सहभागिता हेतु पंचायतराज व्यवस्था अपनाई गई। राजस्थान में ग्रामीण विकास हेतु केन्द्र व राज्य सरकार द्वारा विविध कार्यक्रम लागू किये गये।

मरू विकास कार्यक्रम (DDP), जीवनधारा योजना, एकीकृत ग्राम विकास कार्यक्रम, ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाओं व बच्चों का विकास कार्यक्रम (DWCRA), युवाओं के स्वरोजगार हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रम (TRYSEM), सूखा संभावित कार्यक्रम, ग्रामीण बच्चों को शिक्षित करने हेतु आँगनबाड़ी केन्द्र, देशी गोवंश नस्ल सुधार कार्यक्रम, ऑपरेशन फ्लड, हरित क्रांति, भेड़ नस्ल सुधार कार्यक्रम, भामाशाह योजना, प्रधानमंत्री सड़क योजना, स्वर्ण जयंति ग्राम स्वरोजगार योजना (SGSY), स्वजल धारा ग्राम पेयजल योजना, ग्रामीण स्वच्छता कार्यक्रम, प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना, ग्रामीण जल आपूर्ति कार्यक्रम व अन्नपूर्णा योजना आदि कार्यक्रम से ग्रामीण राजस्थान में विकास को गति मिली है। देश के चहुमुँखी विकास के लिए ग्रामीण क्षेत्र का विकास होना नितांत आवश्यक है। वर्तमान में ग्रामीण विकास विभाग का नाम ग्रामीण विकास व पंचायती राज विभाग है। यहाँ हम ग्राम विकास में सहायक कुछ उद्योगों का अध्ययन करेंगे।

डेयरी उद्योग

डेयरी फार्मिंग भारत में छोटे व बड़े दोनों स्तर पर सबसे ज्यादा विस्तार में फैला हुआ उद्योग है। दुग्ध उत्पादन ने हमारे राज्य की अर्थव्यवस्था में बड़े स्तर पर भागीदारी है। यह पर्यावरण के अनुकूल व्यवसाय है, जो वातावरण को कभी भी प्रदूषित नहीं करता है। इसे परिवार में कम पूँजी से छोटे स्तर पर भी आसानी से स्थापित किया जा सकता है। राजस्थान में डेयरी विकास कार्यक्रम को गति देने के लिए सन् 1973 में डेयरी विभाग की स्थापना की गई। वर्तमान में इसके लिए राजस्थान को–ऑपरेटिव डेयरी फेडरेशन लिमिटेड की स्थापना की गई।

राजस्थान में डेयरी विकास कार्यक्रम सहकारी समितियों के माध्यम से क्रियान्वित किया जा रहा है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत दिसम्बर 2012 तक 12631 प्राथमिक दुग्ध उत्पादक सहकारी संघों एवं राज्य स्तर पर शीर्षस्थ संस्थान सहकारी डेयरी फेडरेशन लिमिटेड, जयपुर से सम्बद्ध किया गया है। आर.सी.डी.एफ. की स्थापना सन् 1973 में की गई थी। वित्तीय वर्ष 2012–13 में दिसम्बर 2012 तक आर.सी.डी.एफ. से सम्बद्ध सभी दुग्ध संघों ने प्रतिदिन 18.01 लाख किलो दुग्ध संग्रहि किया था।

इस संस्था द्वारा पौष्टिक पशु आहार उपलब्ध कराया जा रहा है। डेयरी फैडरेशन द्वारा घी, मक्खन, पनीर, दुग्ध पाउडर, दही, आइसक्रीम आदि मूल्यवर्द्धित उत्पादों का उत्पादन भी किया जा रहा है।

दूध और दूध से मावा, पनीर, घी बनाने का कार्य पोकरण, फलौदी, जोधपुर, रानीवाड़ा, बज्जू, लूणकरणसर, सूरतगढ़, अलवर, जयपुर, अजमेर, फालना, भीलवाड़ा, उदयपुर इत्यादि केन्द्रों पर किया जाता है। गाँवों में दुग्ध संग्रह का कार्य सहकारी समितियों द्वारा किया जा रहा है। सहकारी समितियों के माध्यम से डेयरी उद्योग के द्वारा गाँव के अनेक लोगों को रोजगार मिल रहा है। सन् 1970 में देश के अन्य राज्यों के साथ राजस्थान में 'ऑपरेशन फ्लड' शुरू किया गया। राजस्थान सहकारी क्रय विक्रय संघ (राजफैड) द्वारा झोटवाड़ा, जयपुर में पशु आहार फैक्ट्री स्थापित की गयी है, जो पशुओं हेतु उत्तम प्रकार का पशु आहार उपलब्ध कराता है। डेयरी उद्योग राज्य में पशुओं की संख्या अधिक होने के कारण तेजी से बढ़ रहा है।

राजस्थान में डेयरी उद्योग विकास के प्रयास

सन् 1970 में राज्य में भी श्वेत क्रांति की शुरूआत हुयी जिसमें पशुधन संवर्द्धन व डेयरी विकास के अनेक कार्यक्रम हाथ में लिए गए। डेयरी विकास को आशातीत गति मिली। राजस्थान राज्य दुग्ध निगम ग्रामीण, जिला व राज्य स्तर पर पशु संवर्द्धन तथा

दुग्ध उत्पादन के सम्पूर्ण कार्यक्रम के निष्पादन के लिए जिम्मेदार है। राजस्थान राज्य दुग्ध सहकारी संघ समन्वय एवं परस्पर सहयोग का राज्य स्तरीय शीर्ष संगठन है।

राजस्थान में डेयरी विकास की भावी योजनाएँ

गौ–पालन

राजस्थान की अर्थव्यवस्था में पशुपालन की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। रेगिस्तानी प्रदेश में कृषि क्षेत्र की सीमित संभावनाओं के चलते पशुपालन प्रारम्भ से ही प्रदेश में जीवन–यापन का आधार रहा है।

नवीनतम 19वीं पशुगणना 15 सितम्बर से 15 अक्टूबर, 2012 तक आयोजित की गयी। वर्ष 2012 की गणना के अनुसार राज्य में कुल पशुधन 577.32 लाख था। यहाँ पशुधन घनत्त्व 169 प्रति वर्ग किमी है। वर्तमान में प्रदेश में प्रति हजार जनसंख्या पर पशुओं की संख्या 842 हो गई है। 20वीं पशुगणना 2017 में आयोजित की जायेगी। राजस्थान में गौवंश 121.19 लाख (2007) के मुकाबले वर्ष 2012 में 133.24 लाख हो गया। 5 वर्षों में 9.94 प्रतिशत वृद्धि हुई



चित्र 24.5 : राजस्थान में देशी नस्ल की गाय का पालन



चित्र 24.6 : पश्चिमी राजस्थान में देशी नस्ल की गाय का पालन

है। राज्य में सर्वाधिक गौवंश क्रमशः उदयपुर व चित्तौड़गढ़ में तथा न्यूनतम धौलपुर में है। लेकिन मरूस्थलीय जिलों बाड़मेर, नागौर, बीकानेर, श्रीगंगानगर, चूरू व हनुमानगढ में गौ पालन एक प्रमुख व्यवसाय है। आजिविका के अन्य साधनों की कमी, वर्षाकाल में चारागाहों की उपलब्धता, पौष्टिक सेवण घास, परम्परागत व्यवसाय का अनुभव, मौसम के अनुसार स्थानान्तरण तथा वर्तमान में इन्दिरा गांधी नहर परियोजना का पानी इस क्षेत्र में गौवंश पालन में सहायोगी तत्त्व है। भारत की समस्त गायों का 8 प्रतिशत भाग राजस्थान में पाया जाता है। राजस्थान में गौवंश की प्रमुख नस्लों का क्षेत्रीय वितरण निम्न प्रकार है–

(i) गीर – इस नस्ल की गायें अजमेर, भीलवाड़ा, पाली व चित्तौड़गढ जिलों में पायी जाती है। इसे गुजरात में गिर व राजस्थान में रैण्डा व अजमेरी के नाम से जाना जाता है। भारतीय नस्ल की ये गायें दूध (उत्पादन) के लिए प्रसिद्ध है।

(ii) थारपारकर – इस नस्ल की गायों का मूल स्थान जैसलमेर का मालाणी क्षेत्र है। पूर्णतया शुष्क परिस्थितियों में भी ये उचित मात्रा में दूध देती है। जैसलमेर, बाड़मेर, जोधपुर, बीकानेर व जालौर में यह नस्ल अधिक संख्या में पायी जाती है।

(iii) नागौरी – इस नस्ल की गायों का मूल स्थान नागौर जिले का सुहालक प्रदेश है। नागौरी बैल दौड़ने में तेज, मजबूत व भारवाहक होते है। इस नस्ल की गाये नागौर, जोधपुर के उत्तरी–पूर्वी भाग व नोखा (बीकानेर) में प्रमुखता से पायी जाती है।

(iv) राठी – यह लाल सिंधी व साहीवाल की मिश्रित नस्ल है। यह दूध देने में अग्रणी होने के कारण इसे राजस्थान की कामधेनु कहा जाता है। यह नस्ल बीकानेर, श्रीगंगानगर, जैसलमेर व चूरू के कुछ भागों में पाली जाती है।

(v) कांकरेज – इन गायों का मूल स्थान गुजरात का कच्छ का रन है। ये भार वाहन व दुग्ध उत्पादन के लिए प्रसिद्ध है। ये बाड़मेर सांचौर व नेहड़ क्षेत्र (जालौर) व जोधपुर के कुछ क्षेत्रों में पाली जाती है।

(vi) हरियाणवी – ये भी भारवाहन व दुग्ध उत्पादन के लिए प्रसिद्ध है। ये गाये सीकर, झुन्झुनूं, श्रीगंगानगर, हनुमानगढ, अलवर व भरतपुर जिलों में पायी जाती है।

(vii) मालवी – इस नस्ल का मूल स्थान मध्यप्रदेश का मालवा क्षेत्र है। यह मुख्यतः भारवाही नस्ल है। राजस्थान में झालावाड़, बाँरा, कोटा व चित्तौड़गढ़ इनका प्रमुख क्षेत्र है।

(viii) सांचौरी – जालौर जिले के सांचौर, सिरोही एवं उदयपुर जिलों में पाया जाने वाला गौवंश संख्या में अधिक किन्तु

दुग्ध उत्पादकता में सामान्य श्रेणी का है।

(ix) मेवाती (कोठी) – ये नस्ल हल जोतने व बोझा ढोने हेतु उपयुक्त है। ये अलवर व भरतपुर जिलों में अधिक पायी जाती है।

(x) विदेशी नस्ल – वर्तमान में राजस्थान में अधिक दूध देने वाली विदेशी नस्लों की जर्सी, हॉलिस्टिन व रेड डेन गाये भी पाली जाने लगी है।

राजस्थान में गौवंश संवर्द्धन के प्रयास

राजस्थान के सभी क्षेत्रों में गौधन के संरक्षण व संवर्द्धन के लिए केन्द्रीय व राज्य की योजनाओं में नियोजित विकास हेतु प्रयास किये गये है। देशी गौवंश नस्ल सुधार कार्यक्रम, गोपाल कार्यक्रम, कामधेनु योजना, केन्द्रीय व राज्य गाय प्रजनन फार्मों की स्थापना, स्वयंसेवी संगठनों के लिए गौशालाओं को अनुदान की योजनाओं के माध्यम से गौवंश संवर्द्धन के प्रयास हुये है।

कृत्रिम गर्भाधान से अच्छी नस्ल पैदा करना, संतुलित पशु आहार उत्पादक इकाईयों की स्थापना, आवश्यक चिकित्सा व्यवस्था, गौशालाओं के आधुनिकीकरण, उन्नत नस्ल के बछड़ों का वितरण, गौपालन को प्रोत्साहन देने हेतु रियायती दरों पर अनुदान, डेयरी उत्पादों का उत्पादन व विपणन की व्यवस्था, पशु मेलों का आयोजन आदि गौ–संसाधन विकास के प्रमुख कार्यक्रम है। वर्तमान में कृषि क्षेत्र में यंत्रीकरण व गाय के दूध की तुलना में भैंस के दूध के प्रचलन से गौवंश संकट में है। गाय से प्राप्त दूध, गोबर, चमड़ा आदि के उपयोगी व स्वास्थ्यवर्धक उत्पाद बना कर गौवंश का संवर्द्धन किया जा सकता है।

कुटीर उद्योग

कुटीर उद्योग उन उद्योगों का सम्मिलित नाम है, जिनके अन्तर्गत कुशल कारीगरों द्वारा कम पूंजी एवं अधिक कुशलता से अपने हाथों के माध्यम से वस्तुओं का निर्माण किया जाता है। कुटीर उद्योग वे उद्योग है, जिनका एक ही परिवार के सदस्यों द्वारा पूर्ण रूप से अथवा आंशिक रूप से संचालन किया जाता है।

कच्चे माल की दृष्टि से कुटीर उद्योगों को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है – (1) कृषि आधारित उद्योग (2) खनिजों पर आधारित उद्योग (3) पशु सम्पदा पर आधारित उद्योग (4) वनोपज पर आधारित उद्योग।

कुछ ऐसे भी कुटीर उद्योग है जिनका विकास ग्रामीण क्षेत्रों में कुशलतापूर्वक किया जा सकता है अथवा किया जा रहा है। ये उद्योग निम्नलिखित है –

(i) कृषि संबंधी एवं कृषि सहायक उद्योग : विभिन्न प्रकार

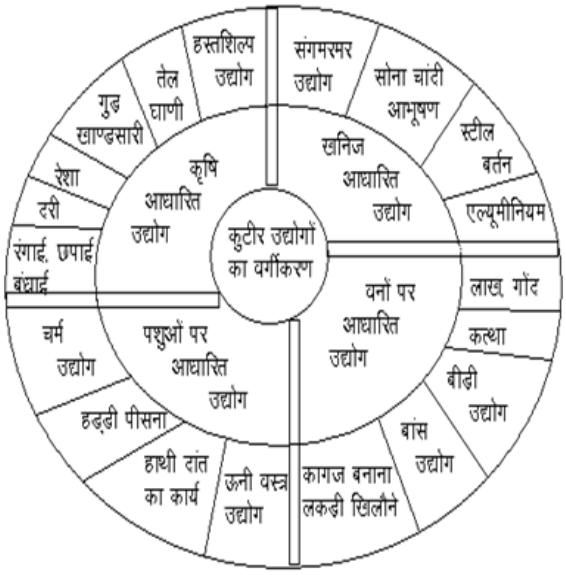

रेखाचित्र 24.1 : कुटीर उद्योगों का वर्गीकरण

की चटनियाँ, मुरब्बे, अचार बनाना, दाले बनाना, धान से चावल बनाना, गेंहूँ व अन्य अनाजों की पिसाई, गुड़–शक्कर व खाण्डसारी का निर्माण, विभिन्न प्रकार के तम्बाकू बनाना, दुग्धशालाओं का संचालन, मुर्गी व मधुमक्खी पालन आदि।

(ii) वस्त्र उद्योग : कपास के बीज (बिनौले) निकालना, रूई धुनना, सूत की कताई, कपड़े की बुनाई, रेशम के कीड़े पालना, भेड़ों एवं बकरियों से ऊन उतारना, ऊन काटना, कम्बल, दरियाँ, गलीचे आदि बनाना, कपड़ों की छपाई तथा कढ़ाई करना।

(iii) काष्ठ उद्योग : जैसे लकड़ी चीरना, फर्नीचर बनाना, खिलौने व कलात्मक वस्तुएँ बनाना उनकी रंगाई करना तथा छोटे औजारों का निर्माण करना।

(iv) धातु उद्योग : जैसे कच्ची धातु को पिघलाकर एवं अन्य विधियों से शुद्ध धातु प्राप्त करना, चाकू, छुरियाँ, कैंची, पीतल के बरतन, तांबे के बरतन आदि बनाना तथा धातुओं के तार बनाना।

(v) मिट्टी के काम : जैसे कुम्हारगिरी, ईंट, खपरैल का निर्माण करना, चीनी मिट्टी के बर्तन बनाना आदि।

(vi) चर्म शिल्प : जैसे मृत पशुओं का चमड़ा उतारना, उसको तैयार करना, चमड़े की रंगाई, जूते व बैग एवं अन्य वस्तुओं का निर्माण करना, सींगों से कंघे बनाना, हड्डियों से खाद बनाना आदि।

(vii) अन्य काम : जैसे लाख से चूड़ियाँ एवं अन्य सामान बनाना, साबुन, रंग एवं वार्निश बनाना आदि।

राज्य के कुछ महत्त्वपूर्ण कुटीर उद्योगों का संक्षिप्त विवरण

इस प्रकार है।

• तेल एवं वनस्पति घी उद्योग का विकास राज्य के जयपुर, भरतपुर, सवाई माधोपुर, गंगानगर, कोटा, बूंदी व अजमेर जिलों में तिलहन का अधिक उत्पादन होने के कारण हो रहा है। घाणी व मशीनों के द्वारा तेल निकालने का कार्य कुटीर व लघु उद्योग के रूप में किया जाता है। भरतपुर का ईंजन छाप सरसों तेल, जयपुर का वीर बालक छाप तेल प्रसिद्ध ब्राण्ड है। जयपुर, निवाई, भीलवाड़ा व चित्तौड़गढ वनस्पति घी के लिए प्रसिद्ध प्रमुख केन्द्र है। चना, मूंग, उड़द, चवलें आदि की दाल से संबंधित उद्योग राजस्थान के विभिन्न जिलों में पाये जाते हैं। दलहन, आटा बनाने के लघु उद्योग प्रायः प्रत्येक जिले में हैं।

• राज्य का बंधाई, छपाई और रंगाई उद्योग देश भर में प्रसिद्ध है। लकड़ी के ठप्पों से वानस्पतिक व रासायनिक रंगों से कच्ची–पक्की रंगाई–छपाई का कार्य बाड़मेर, बालोतरा, बगरू, साँगानेर, अकोला, सवाईमाधोपुर, नाथद्वारा, पाली, पीपाड़ व उदयपुर में होता है। बाड़मेर की अजरख प्रिंट व चित्तौड़गढ की जाजम छपाई प्रसिद्ध है। जोधपुर में बंधेज एवं जयपुर में लहंगा–चुन्नी का कार्य अधिक होता है।

• खादी उद्योग राज्य का परम्परागत उद्योग है। राज्य में जयपुर, जोधपुर, दौसा, भरतपुर, कोटा आदि जिलों में आंशिक व पूर्णकालिक रूप से यह उद्योग चालू है। राज्य में खादी उद्योग को बढ़ावा देने के लिए खादी ग्रामोद्योग बोर्ड कार्यरत है। इसके अतिरिक्त कृषि आधारित अन्य कुटीर उद्योग गोटा उद्योग (अजमेर व जयपुर), बेकरी (जयपुर, उदयपुर, कोटा, अलवर), दाल (गंगानगर, हनुमानगढ़), मसाला (अलवर) आदि प्रमुख उद्योग है।

• राज्य में चमड़ा उद्योग, ऊनी उद्योग, दुग्ध उद्योग, हड्डी पाउडर उद्योग आदि पशु आधारित प्रमुख उद्योग है। राज्य में ऊनी धागा बनाने की मिले बीकानेर, चूरू, लाडनूं व कोटा में संचालित है। ऊनी खादी में जैसलमेर की बरड़ी, बीकानेर के ऊनी कम्बल, चौमूं के खेस प्रसिद्ध है। मृत पशुओं से प्राप्त चमड़े से कई उपभोक्ता वस्तुएं बनाई जाती है। चमड़े की मोजड़ी एवं जूतियां बनाने का कार्य नागौर, सिरोही, भीनमाल, टोंक, जोधपुर व जयपुर में किया जाता है।

• वनोपज पर आधारित उद्योगों में बीड़ी उद्योग (टोंक, भीलवाड़ा, अजमेर, ब्यावर), माचिस उद्योग (अजमेर, अलवर), बाँस उद्योग (जयपुर, अजमेर), कत्था, गौंद व लाख उद्योग (कोटा, बूंदी, झालावाड़, उदयपुर व चित्तौड़गढ), कागज उद्योग (घोसुण्डा, साँगानेर) आदि प्रमुख है।

• खनिज आधारित उद्योगों में 9 हजार से अधिक रजिस्टर्ड लघु औद्योगिक इकाईयां राज्य में कार्यरत है। इनमें संगमरमर, ग्रेनाइट टाइल्स निर्माण एवं पोलिशिंग, ईंट निर्माण, पत्थर से गिट्टी निर्माण, सीमेन्ट जाली निर्माण, सेनेट्री बेयर्स, टाइल्स उद्योग, हीरा व जवाहरात कटिंग व पोलिशिंग, सोप स्टोन आदि आते है। संगमरमर के खिलौने व मूर्तियां निर्माण का कार्य जयपुर, सिरोही, जैसलमेर, मकराना, किशनगढ, अजमेर, राजसमंद आदि जिलों में किया जाता है।

सारणी 24.1 : हस्त शिल्प उद्योग

क्र.सं.	हस्त शिल्प उद्योग	प्रसिद्ध स्थान
1.	डोरिया व मसूरिया साड़ियां	कोटा
2.	खेसला, टुकड़ी	बालोतरा, फालना
3.	बंधेज साड़ियाँ	जोधपुर
4.	चूनरियाँ व लहरिया	जयपुर
5.	मिट्टी की मूर्तियाँ	मोलेला गाँव राजसमंद
6.	संगमरमर की मूर्तिया	जयपुर
7.	लकड़ी के खिलौने	उदयपुर, सवाई माधोपुर
8.	फड़ चित्रण	शाहपुरा
9.	कठपुतलियाँ	उदयपुर

• राज्य सरकार अपने बजट में कुटीर उद्योगों के विकास के लिए विशेष क्लस्टर्स (जोन) बनाकर उनको बढ़ावा दे रही है।

• राजस्थान में हथकरघा उद्योग समृद्ध स्थिति में है। राज्य में हथकरघा उद्योग द्वारा निर्मित विशिष्ट प्रकार के वस्त्र उत्पादन में कुछ क्षेत्र प्रसिद्ध है। प्रायः बुनकर इस कार्य को राजस्थान के अनेक जिलों में करते है। ऊनी शॉल, कोटा की डोरिया साड़ियाँ, खेस, दरियाँ, निवार आदि का निर्माण हथकरघा से किया जाता है। स्वतंत्रता आन्दोलन के समय से ही खादी व ग्रामोद्योग को विशेष महत्त्व प्राप्त है।

कृत्रिम रेशम (टसर) का विकास कोटा, उदयपुर, बाँसवाड़ा जिलों में किया जा रहा है। इसके लिए इन जिलों में अर्जुन के पेड़ लगाये गये है। इन वृक्षों पर तथा शहतून के वृक्षों पर रेशम कीट पालन किया जाता है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

1. खनिज प्राकृतिक रूप से उपलब्ध ऐसी वस्तुएं है जिसकी एक निश्चित आंतरिक व रासायनिक संरचना होती है।
2. राजस्थान में विविध खनिजों की प्राप्ति के कारण 'खनिजों

का अजायबघर' कहा जाता है।

3. राज्य में ताम्बा शोधन का प्लांट हिन्दुस्तान कॉपर लिमिटेड, खेतड़ी में लगा है।
4. सीसा–जस्ता मिश्रित अयस्क गैलेना में मिलता है।
5. राजस्थान में टंगस्टन का मुख्य जमाव नागौर जिले के डेगाना व भाकरी तथा सिरोही के वाल्दा क्षेत्र में पाया जाता है।
6. राजस्थान के मकराना का संगमरमर विश्व प्रसिद्ध है। ताजमहल व विक्टोरिया पैलेस मकराना के मार्बल से ही बने है।
7. जिप्सम का सर्वाधिक उपयोग उर्वरक बनाने में होता है।
8. पेट्रोलियम की उपस्थिति केवल अवसादी चट्टानों में ही सम्भव है।
9. विस्तृत क्षेत्रफल तथा प्राकृतिक संसाधनों में धनी होने के बावजूद राजस्थान में उद्योगों का पर्याप्त विकास नही हो पाया है।
10. राज्य में अधिकांश सीमेन्ट कारखानों की स्थापना कच्चे माल के प्राप्ति स्थलों के पास ही अधिक हुई है।
11. राजस्थान में वर्तमान में श्री, बिरला, ग्रेसिम, अम्बुजा, एसीसी, बांगर, बिनानी, लक्ष्मी व वण्डर प्रमुख सीमेन्ट कम्पनियां अस्तित्त्व में है।
12. गरीबी उन्मूलन, आर्थिक एवं ढाँचागत विकास, आय का समान वितरण, सामाजिक विषमता दूर करने, रोजगार सृजन के लिए ग्राम के कई कार्यक्रम बनाये गये है।
13. कुल दुग्ध उत्पादन ने हमारे राज्य की अर्थव्यवस्था में बड़े स्तर पर भागीदारी की है।
14. सहकारी समितियों के माध्यम से डेयरी उद्योग के द्वारा गाँव के अनेक लोगों को रोजगार मिल रहा है।
15. राजस्थान में गौवंश 121.19 लाख वर्ष 2007 के मुकाबले वर्ष 2012 में 133.24 लाख हो गया।
16. कुछ ऐसे भी कुटीर उद्योग है जिनका विकास ग्रामीण क्षेत्रों में कुशलतापूर्वक किया जा रहा है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुचयनात्मक

1. राजस्थान में देश की कुल पशुधन शक्ति का भाग उपलब्ध है।
   (अ) 10 प्रतिशत (ब) 30 प्रतिशत
   (स) 35 प्रतिशत (द) 40 प्रतिशत
2. कॉकरेज नस्ल पाई जाती है।
   (अ) जालौर (ब) सिरोही
   (स) पाली (द) उपर्युक्त सभी
3. 'गोपाल कार्यक्रम' उन्नयन हेतु बनाया गया है
   (अ) ऊँट (ब) घोड़े
   (स) गोवंश (द) भेड़ें
4. सर्वाधिक भेड़े पाई जाती है–
   (अ) पाली (ब) नागौर
   (स) बीकानेर (द) जोधपुर
5. राजस्थान में कितने प्रकार के खनिज मिलते हैं–
   (अ) 44 प्रकार के (ब) 67 प्रकार के
   (स) 23 प्रकार के (द) कोई नहीं
6. सीसा–जस्ता उत्पादन की सबसे बड़ी खान है–
   (अ) देबारी (ब) अलवर
   (स) खो–दरीबा (द) उपर्युक्त सभी
7. टंगस्टन का जिले से उत्पादन होता है–
   (अ) अजमेर (ब) नागौर
   (स) भीलवाड़ा (द) सिरोही
8. निम्न में से कौनसे जिले औद्योगिक दृष्टि से विकसित है–
   (अ) जयपुर (ब) कोटा
   (स) श्रीगंगानगर (द) उपर्युक्त सभी
9. राजस्थान की सर्वप्रथम मिल स्थापित हुई–
   (अ) ब्यावर (ब) किशनगढ़
   (स) भीलवाड़ा (द) पाली
10. कृष्णा मिल्स स्थित है–
    (अ) अजमेर (ब) जयपुर
    (स) ब्यावर (द) भीलवाड़ा

अतिलघूत्तरात्मक

11. टंगस्टन किस अयस्क से प्राप्त होता है?
12. राजस्थान में कुल कितने प्रकार के खनिजों का दोहन होता है?
13. चंदेरिया किसके लिए प्रसिद्ध है?
14. राजस्थान में सतरंगा मार्बल कहाँ मिलता है?

15. राजस्थान का खनिज भण्डार की दृष्टि से भारत में कौनसा स्थान है?
16. राजस्थान में कपास के मुख्य उत्पादक जिलों के नाम बताईये?
17. राजस्थान में सर्वप्रथम सूती वस्त्र उद्योग की स्थापना किस शहर में हुई थी?
18. सीमेन्ट निर्माण का मुख्य कच्चा माल कौनसा है?
19. गीर नस्ल की गाय किन जिलों में प्रमुखता से पायी जाती है?
20. राजस्थान में डेयरी क्षेत्र में श्वेत क्रांति की शुरूआत कब हुयी?
21. गोटा उद्योग के लिए राजस्थान के कौनसे जिले प्रसिद्ध है?

लघूत्तरात्मक

22. राजस्थान को खनिजों का अजायबघर क्यों कहा जाता है?
23. भारत के कुल उत्पादन में 75 प्रतिशत से अधिक उत्पादन वाले राज्य के खनिजों के नाम बताइये।
24. राज्य में ताम्बा के प्रमुख उत्पादक जिलों का नाम बताईये।
25. राज्य में पेट्रोलियम का वर्णन कीजिए।
26. राजस्थान में औद्योगिक विकास के बाधक कारण बताइये।
27. राजस्थान में सीमेन्ट के मुख्य उत्पादक केन्द्रों के नाम बताइये।
28. राज्य में डेयरी विकास के कार्यक्रम का नाम बताइये।

निबंधात्मक

30. राजस्थान के प्रमुख धात्विक खनिजों का वर्णन कीजिए।
31. राजस्थान में सूती वस्त्र उद्योग का वर्णन कीजिए।
32. राजस्थान गौपालन पर एक भौगोलिक लेख लिखिए।
33. राजस्थान में कुटीर उद्योग पर टिप्पणी लिखिए।

आंकिक

34. राजस्थान के मानचित्र में प्रमुख खनिज व उद्योगों को दर्शाइये।
35. राजस्थान के मानचित्र में गौ नस्लों को दर्शाइये।

पाठ 25
राजस्थान : जनसंख्या व जनजातियाँ
(Rajasthan : Population and Tribes)

एक निश्चित समय में राज्य में रहने वाले समस्त मनुष्यों को वहाँ की जनसंख्या कहते हैं। मानव पृथ्वी के संसाधनों तथा सेवाओं का उत्पादक होने के साथ–साथ उनका उपभोक्ता भी होता है। उत्पादक व उपभोक्ता के रूप में वह सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के केन्द्र में रहता है। जनसंख्या के अध्ययन द्वारा राज्य में उत्पादन के लिए कुल मानव शक्ति तथा उनके लिए आवश्यक वस्तुओं तथा सेवाओं की कुल मात्रा का अनुमान लगा सकते हैं। जनांकिकीय विशेषताओं जैसे साक्षरता, लिंगानुपात आदि के आधार पर जनसंख्या के गुणात्मक स्तर का ज्ञान होता है। हमारे देश व राज्य में जनगणना हर दस वर्ष के अन्तराल पर की जाती है। भारत में जनगणना संघ सूची का विषय है। इसके द्वारा यहाँ रहने वाले लोगों के विविध पक्षों से सम्बन्धित सूचनाओं का संग्रहण, संकलन व प्रकाशन जनसंख्या निदेशालय द्वारा किया जाता है। नवीनतम जनगणना–2011 इक्कीसवीं सदी की दूसरी तथा स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की सातवीं जनगणना है।

राजस्थान की जनसंख्या की विशेषताएँ

1. भारत में राजस्थान का क्षेत्रफल की दृष्टि से पहला व जनसंख्या की दृष्टि से आठवाँ स्थान है।
2. राजस्थान में भारत के कुल क्षेत्रफल का 10.41 प्रतिशत भाग और कुल जनसंख्या का 5.66 प्रतिशत भाग पाया जाता है।
3. राजस्थान की जनसंख्या का घनत्व 2011 की जनगणना के अनुसार 200 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है।
4. सन् 2001 से सन् 2011 तक जनसंख्या में दशाब्दी वृद्धि दर 21.31 प्रतिशत रही, जो भारत के औसत (17.70) से काफी अधिक है।
5. राज्य में सर्वाधिक जनसंख्या वृद्धि दर बाड़मेर जिले में (32.50 प्रतिशत) रही। न्यूनतम जनसंख्या वृद्धि दर श्री गंगानगर जिले में (10.00 प्रतिशत) रही।
6. राजस्थान में जनसंख्या के वितरण में अत्यधिक असमानता पायी जाती है।
7. राज्य में लिंगानुपात प्रति हजार पुरूषों के पीछे 928 स्त्रियाँ है, जो देश के लिंगानुपात 943 से 15 कम है।
8. राजस्थान में 20वीं सदी में जनसंख्या तेजी से बढ़ी है। इस शताब्दी के पहले 50 वर्षों में डेढ़ गुना तथा बाद के 50 वर्षों में लगभग तीन गुना वृद्धि हुई है।
9. राजस्थान में साक्षरता का प्रतिशत 66.10 है। सबसे अधिक साक्षरता का प्रतिशत कोटा जिले में (76.60 प्रतिशत) व सबसे कम जालौर जिले में (54.90 प्रतिशत) है।

जनसंख्या का वितरण

जनसंख्या वितरण व उसके घनत्व के प्रतिरूपों का विश्लेषण किसी क्षेत्र की जनांकिकीय विशेषताओं के अध्ययन का आधार होता है। जनसंख्या का वितरण क्षेत्रीय प्रारूप की ओर संकेत करता है जबकि जनसंख्या घनत्व द्वारा मनुष्य व क्षेत्रफल के आनुपातिक संबंध को दर्शाया जाता है। जनसंख्या वितरण से आशय है कि विभिन्न क्षेत्रों में लोग कितनी संख्या में निवास करते हैं।

राजस्थान में जनसंख्या के वितरण में अत्यधिक असमानता पाई जाती है। राज्य में कहीं पर बहुत ज्यादा जनसंख्या है, तो कहीं पर बहुत कम जनसंख्या पाई जाती है। सामान्यतः अरावली पर्वत

श्रेणी के पश्चिमी व उत्तरी–पश्चिमी भागों में विरल व छितरी हुयी जनसंख्या पायी जाती है जबकि इसके पूर्वी व उत्तरी–पूर्वी मैदानों में सघन जनसंख्या पायी जाती है।

अरावली प्रदेश के कुछ उपजाऊ क्षेत्रों व खनन क्षेत्रों में छितरे रूप में जनसंख्या का अधिक केन्द्रीयकरण पाया जाता है। पश्चिमी मरुस्थलीय प्रदेशों में जनसंख्या बिखरे जल स्रोतों के चारों तरफ केन्द्रित है। इस प्रकार राजस्थान में जनसंख्या वितरण वर्षा की मात्रा, जल की उपलब्धता, उपजाऊ मृदा तथा आर्थिक विकास से प्रभावित व नियंत्रित है। जनसंख्या के वितरण को प्रभावित करने वाले कारक निम्न प्रकार है –

(i) भौतिक कारण : जनसंख्या के वितरण को प्रभावित करने वाले प्रमुख भौतिक कारक इस प्रकार है– धरातल, जलवायु, मृदा, वनस्पति तथा सिंचाई सुविधा।

(ii) आर्थिक कारक : जनसंख्या के वितरण को प्रभावित करने वाले प्रमुख आर्थिक कारण इस प्रकार है– खनिज, नगरीयकरण, औद्योगिक विकास तथा परिवहन।

(iii) सामाजिक व सांस्कृतिक कारक– जनसंख्या के वितरण को प्रभावित करने वाले प्रमुख सामाजिक व सांस्कृतिक कारक इस प्रकार है– विस्थापन तथा श्रम का प्रवास।

(iv) राजनैतिक कारक।

जनसंख्या वृद्धि

किसी क्षेत्र विशेष के निवासियों की संख्या में एक निश्चित अवधि में हुई वृद्धि को जनसंख्या वृद्धि कहते हैं। यदि किसी क्षेत्र में मानव जीवन के लिए दशाएँ अनुकूल हो, खाद्य पदार्थों की आपूर्ति बनी रहे व प्राकृतिक प्रकोप न हो तो वहाँ समय के साथ जनसंख्या बढ़ती जाती है। इसके विपरीत खाद्य पदार्थों की आपूर्ति कम हो तथा प्राकृतिक आपदाएं आ जाये तो जनसंख्या घटती जाती है।

जनसंख्या वृद्धि तीन कारकों पर निर्भर है – जन्म, मृत्यु तथा प्रवास।

$$\text{जनसंख्या वृद्धि} = \text{कुल जन्म} - (\text{कुल मृत्यु} \pm \text{प्रवास})$$

इन तीनों कारकों के समीकरण से जनसंख्या में परिवर्तन होता है। पहले दो कारकों को जैविक कारक कहते हैं। जन्म व मृत्यु की संख्या में अंतर से जनसंख्या बढ़ने पर प्राकृतिक वृद्धि तथा जनसंख्या घटने पर प्राकृतिक कमी कहते हैं। प्रवासी आगमन और निर्गमन के अंतर को जब प्राकृतिक वृद्धि/कमी में जोड़ते हैं तब जनसंख्या वृद्धि का सही आंकलन होता है।

प्रवास का अर्थ किसी व्यक्ति द्वारा अपने निवास स्थान को बदल देना है। प्रवास के लिए कई प्राकृतिक, सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक कारण उत्तरदायी है। एक स्थान से किसी व्यक्ति के जाने को उत्प्रवास तथा आने को आप्रवास कहा जाता है। सारणी 25.1 में राज्य की जनसंख्या के सभी महत्त्वपूर्ण पहलुओं को दर्शाया गया है।

सारणी 25.1 : राजस्थान : जनसंख्या

जनगणना वर्ष	जनसंख्या (करोड़ों में)	घनत्व (प्रति वर्ग किमी)	दस वर्षीय वृद्धि दर	साक्षरता दर प्रतिशत में	लिंगानुपात (प्रति हजार)
1901	1.03	30	–	–	905
1911	1.10	32	+6.7	3.41	908
1921	1.03	30	–6.3	3.25	876
1931	1.17	34	+14.1	3.96	907
1941	1.39	41	+18.0	5.46	906
1951	1.60	47	+15.2	8.02	911
1961	2.02	59	+26.4	15.21	908
1971	2.58	75	+27.8	19.07	911
1981	3.43	100	+32.4	24.38	919
1991	4.40	129	+28.4	38.55	910
2001	5.64	165	+28.3	61.03	922
2011	6.85	200	+21.3	66.10	928

स्पष्ट है कि राजस्थान में 20वीं सदी में 1911–21 के दशक में ही राज्य की जनसंख्या में कमी आयी थी, जिसके मुख्य कारण 1918 में पड़ा त्रिकाल (अन्न–जल–तृण) एवं महामारी रहे। 1991 के बाद के तीन दशकों की वृद्धि दर में कमी परिवार कल्याण कार्यक्रम की सफलता व राज्य के आर्थिक विकास का सूचक है।

राजस्थान में जनसंख्या वृद्धि को आरेख 25.1 में दर्शाया गया है। राजस्थान की जनसंख्या में हुयी वृद्धि को तीन कालों में बाँटा जा सकता है –

1. धीमा जनसंख्या वृद्धि काल (1901–1941) – इस अवधि में अकाल, महामारी, स्वास्थ्य सुविधाओं के अभाव के कारण जनसंख्या में धीमी गति से वृद्धि हुई।
2. मध्यम जनसंख्या वृद्धि काल (1941–1971) – इस अवधि में सींचित क्षेत्र के विस्तार, योजनाबद्ध आर्थिक विकास, स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार आदि के कारण मध्यम गति से जनसंख्या में वृद्धि हुई। इस काल में जन्म दर की तुलना में मृत्यु दर ज्यादा घटी। अतः इस काल में जनसंख्या वृद्धि दर मध्यम रही।

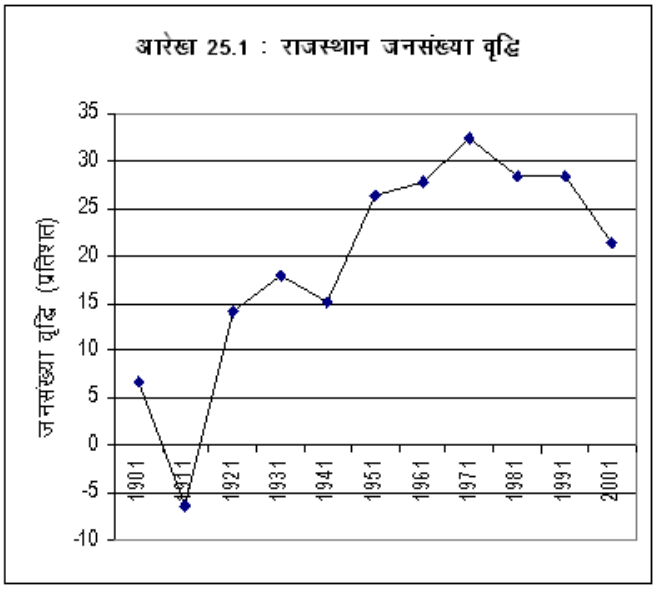

3. तीव्र जनसंख्या वृद्धि काल (1971 के बाद) – इस अवधि में स्वास्थ्य सुविधाओं की गांवों तक पहुँच व आर्थिक विकास के कारण मृत्यु दर तो तेजी से घट गई पर बाल विवाह, सामाजिक पिछड़ेपन, अंधविश्वास आदि कारणों से जन्म दर उतनी तेजी से नहीं घटी। अतः इस अवधि में जनसंख्या तेजी से बढ़ी। वर्ष 2013 में जहाँ जन्म दर 25.6 प्रति हजार थी, वहाँ मृत्यु दर घटकर मात्र 6.5 प्रति हजार ही रह गई। इस काल में मृत्यु दर की तुलना में जन्मदर अपेक्षाकृत अधिक होने के कारण जनसंख्या तेजी से बढ़ी।

बीसवीं सदी के आरम्भ में राजस्थान की जनसंख्या एक करोड़ थी, जिसे दो करोड़ होने में तिरेसठ वर्षों का समय लगा। लेकिन उसके बाद राज्य की जनसंख्या को तीन करोड़ होने में लगभग 16 वर्ष, चार करोड़ होने में 11 वर्ष, पाँच करोड़ होने में 8 वर्ष तथा 6 करोड़ होने में मात्र 7 वर्ष लगे।

राजस्थान में हुई दसवर्षीय वृद्धि (2001–2011) के आँकड़ों के अनुसार 26 प्रतिशत से अधिक वृद्धि दर बाड़मेर, जैसलमेर, जोधपुर, बांसवाड़ा, जयपुर तथा जालोर में रही जबकि 16 प्रतिशत से कम वृद्धि दर गंगानगर, झुन्झुनू, पाली व बूंदी जिलों में दर्ज की गई है। शेष राजस्थान के जिलों में 16 से 26 प्रतिशत के बीच की दर से वृद्धि हुयी है। दशाब्दि वृद्धि दर (2001–2011) में 7 प्रतिशत की कमी आई है जो इस बात की परिचायक है कि 21वीं सदी में जनसंख्या वृद्धि की दर में कमी आयेगी। राज्य का आर्थिक विकास होगा।

जनसंख्या घनत्व

प्रति वर्ग किलोमीटर क्षेत्र पर निवास करने वाले व्यक्तियों की संख्या को जनसंख्या घनत्त्व कहते हैं। इसे निम्न सूत्र के द्वारा ज्ञात किया जाता है –

$$\text{जनसंख्या का घनत्व} = \frac{\text{कुल जनसंख्या}}{\text{कुल क्षेत्रफल}}$$

राजस्थान का जनसंख्या 2011 की जनगणना के अनुसार घनत्व 200 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है। सारणी 25.2 व मानचित्र 25.1 में राजस्थान के जनसंख्या घनत्व को पांच वर्गों में बांट कर दर्शाया गया है।

सारणी 25.2 : राजस्थान : जिलेवार जनसंख्या घनत्व

घनत्त्व (व्यक्ति/ वर्ग किमी)	जिलों की संख्या	जिले
सर्वाधिक (400 से अधिक)	4	जयपुर, भरतपुर, दौसा व अलवर
अधिक (300 से 400)	7	धौलपुर, बांसवाड़ा, कोटा, डूंगरपुर, झुन्झुनू, सीकर, अजमेर
मध्यम (200 से 300)	7	सवाईमाधोपुर, सिरोही, भीलवाड़ा, करौली, उदयपुर, राजसमंद, झालावाड़
न्यून (100 से 200)	12	टोंक, चित्तौड़गढ, प्रतापगढ़, बूंदी, नागौर, हनुमानगढ़, गंगानगर, बांरा, जालौर, पाली, जोधपुर, चुरू
न्यूनतम	3	बीकानेर, बाड़मेर, जैसलमेर

सारणी 25.2 एवं मानचित्र 25.1 से स्पष्ट है कि राजस्थान के पूर्वी मैदानी जिलों में जनसंख्या घनत्व अधिक पाया जाता है जबकि पश्चिमी मरूस्थलीय जिलों का जनसंख्या घनत्व काफी कम है। राज्य के 18 जिले ऐसे है जिनका घनत्व राज्य के औसत घनत्त्व (200) से अधिक है। जयपुर जिले में राजस्थान का सर्वाधिक जनसंख्या घनत्व 595 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी है, जबकि जैसलमेर जिले का मात्र 17 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी है।

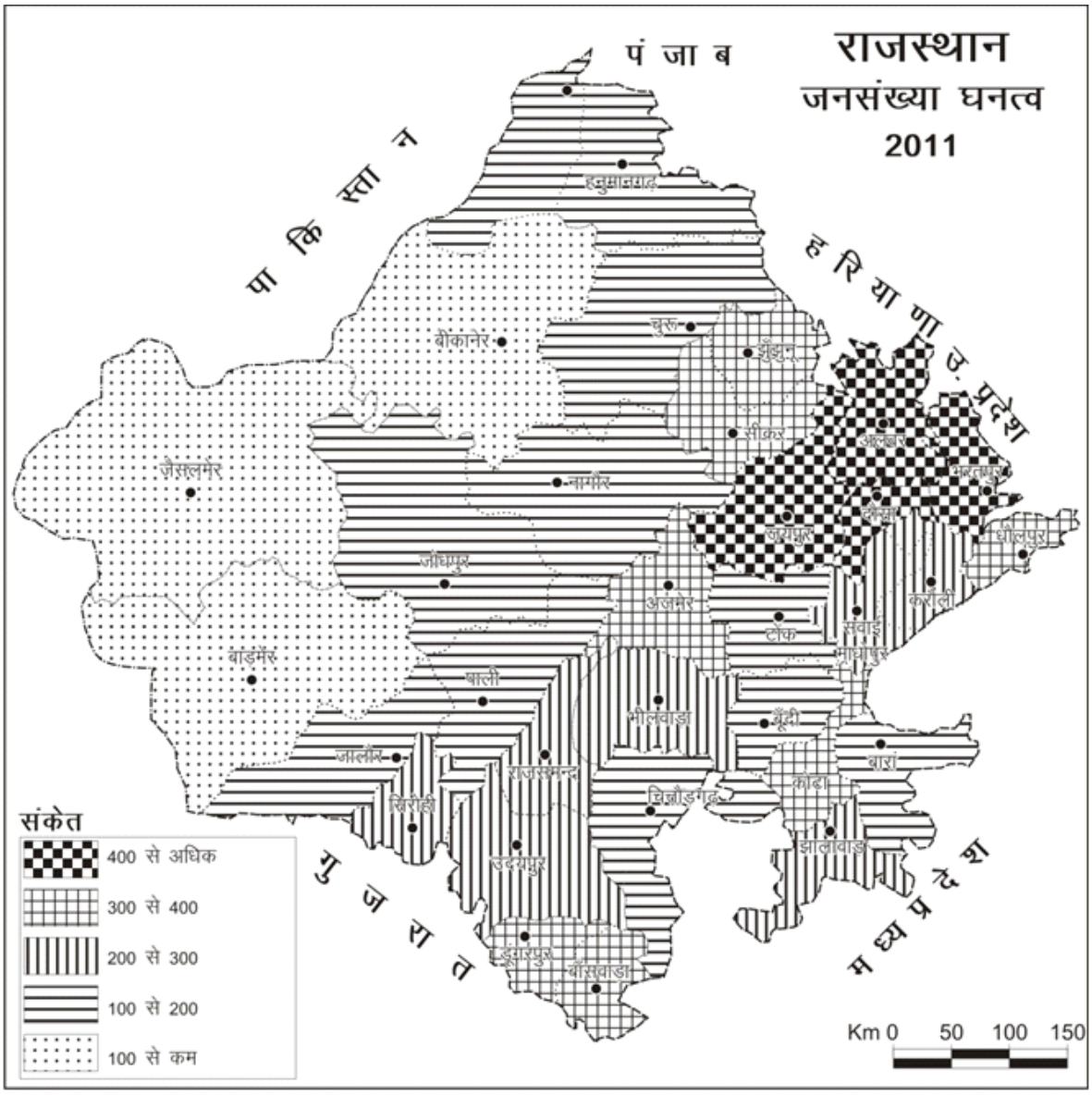

मानचित्र 25.1 : राजस्थान : जनसंख्या घनत्व

लिंगानुपात

किसी दी हुई जनसंख्या में लिंगानुपात पुरूष व स्त्रियों के मध्य अनुपात का एक सूचक है। यह प्रति हजार पुरूषों पर स्त्रियों की संख्या के रूप में अभिव्यक्त किया जाता है।

$$\text{लिंगानुपात} = \frac{\text{स्त्रियों की जनसंख्या}}{\text{पुरूषों की जनसंख्या}} \times 1000$$

समुदाय की सामाजिक आवश्यकताओं, उपभोग प्रारूप, रोजगार आदि को समझने के लिए लिंगानुपात का ज्ञान आवश्यक है। लिंगानुपात का दूसरे जनांकिकीय लक्षणों जैसे जनसंख्या वृद्धि, निर्वाह दर, व्यावसायिक संरचना, प्रवास आदि पर व्यापक प्रभाव पड़ता है।

राजस्थान में लिंगानुपात पिछली शताब्दी में 900 से 922 के बीच रहा है। 2001 की तुलना में 2011 में लिंगानुपात में 6 की वृद्धि हुई है। राजस्थान की कुल जनसंख्या में लगभग 3.56 करोड़ पुरूष तथा 3.30 करोड़ स्त्रियां है। राज्य में एक हजार पुरूषों के पीछे 928 स्त्रियां है। यह अनुपात राष्ट्रीय अनुपात 940 से 12 कम है। भारत के संदर्भ में लिंगानुपात में राजस्थान 21 वें स्थान पर है।

भारत में केरल राज्य को छोड़कर सभी राज्यों में स्त्रियों, पुरूषों के अनुपात में कम है। राजस्थान के पश्चिमी, पूर्वी एवं उत्तरी जिलों में लिंगानुपात राज्य के औसत से कम है तथा मध्य राजस्थान व दक्षिणी राजस्थान में लिंगानुपात राज्य के औसत से अधिक है। जनगणना 2011 के अनुसार राज्य में कोई भी जिला ऐसा नहीं है जिसमें लिंगानुपात 1000 या इससे अधिक हो।

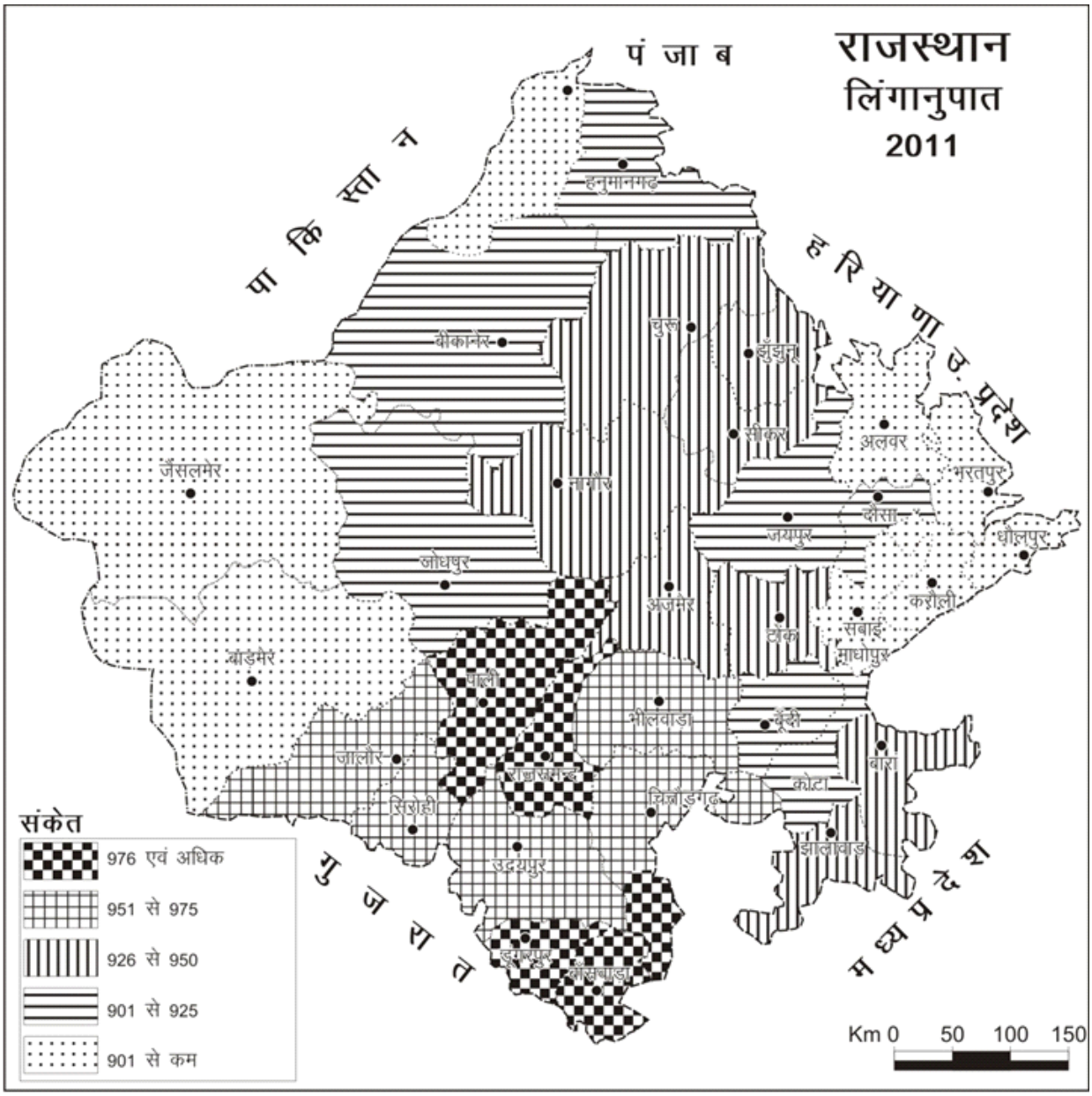

मानचित्र 25.2 : राजस्थान : लिंगानुपात 2011

सन् 2011 में राज्य में शिशु लिंगानुपात (0–6 वर्ष) 888 रह गया है। यह राजस्थान के औसत लिंगानुपात (928) से काफी कम है। इसमें अत्यधिक गिरावट का एक प्रमुख कारण कन्या भ्रूण हत्या होना है। हमें इस दिशा में गंभीरता से प्रयास करने होगें अन्यथा आने वाले समय में स्त्रियों की संख्या बहुत कम हो जायेगी जो हमारे सामाजिक ढांचे को अव्यवस्थित कर सकती है। राजस्थान में लिंगानुपात कम होने के लिए निम्न कारक उत्तरदायी है–

- पितृसत्तात्मक परिवार होने के कारण पुत्रों को प्राथमिकता दी जाती है, परिणामस्वरूप लड़कियों को खान–पान, स्वास्थ्य व शिक्षा की सुविधाएँ कम मिल पाती है।
- बाल विवाह के कारण लड़कियों को छोटी आयु में ही मातृत्व का बोझ उठाना पड़ता है जिससे प्रसूति काल में उनकी मृत्यु की संभावना बढ़ जाती है।
- वंश चलाए रखने के झूठे अहम के कारण लड़कों को वरीयता दी जाती है।
- दहेज हत्या भी घटते लिंगानुपात का कारण है।

लिंग परीक्षण की सुविधा के कारण कन्या भ्रूण का गर्भपात करवा दिया जाता है।

साक्षरता

साक्षरता जनसंख्या की गुणात्मकता का सूचक है जो किसी क्षेत्र विशेष के सामाजिक–आर्थिक विकास का एक यथार्थ व विश्वसनीय सूचक होता है। साक्षरता दर निम्न सूत्र से ज्ञात की जाती है –

$$\text{साक्षरता दर} = \frac{\text{साक्षर जनसंख्या}}{\text{7 वर्ष या उससे अधिक आयु की जनसंख्या}} \times 100$$

इस दर को प्रभावित करने वाले कारकों में आर्थिक विकास का स्तर, नगरीयकरण, जीवन स्तर, महिलाओं की सामाजिक स्थिति, विभिन्न शैक्षिक सुविधाओं की उपलब्धता तथा सरकारी नीतियां प्रमुख है।

भारत के संदर्भ में राजस्थान साक्षरता की दृष्टि से पिछड़ा हुआ है। वर्ष 2011 में भारत की साक्षरता का औसत 73.00 प्रतिशत था जबकि राजस्थान का औसत 67.06 प्रतिशत ही था। देश के केवल दो राज्यों अरूणाचल प्रदेश एवं बिहार में साक्षरता दर राजस्थान से कम है। राज्य में पुरूषों की तुलना में महिलाओं की साक्षरता दर कम है। 2011 में पुरूष साक्षरता 79.2 प्रतिशत तथा महिला साक्षरता 52.1 प्रतिशत है। विगत 100 वर्षों में साक्षरता दर 3.41 प्रतिशत से बढ़कर के सन् 1991 में 38.55 प्रतिशत तथा 2011 में 67.06 प्रतिशत हो गई है। स्वतंत्रता के बाद साक्षरता में तेजी से बढ़ोतरी हुई है। प्रथम पचास वर्षों की अवधि में वृद्वि केवल 4.61 प्रतिशत ही रिकार्ड हुयी। आजादी के बाद 1951 से 2011 के बीच की अवधि में यह वृद्वि 59.04 प्रतिशत हो गई। राज्य में कोटा सर्वाधिक साक्षर जिला है, जहां 76.60 प्रतिशत लोग साक्षर है। सबसे कम साक्षरता जालोर जिले (54.90 प्रतिशत) की है। वर्ष 2001 से 2011 के दौरान साक्षरता दर में सर्वाधिक वृद्वि डूँगरपुर जिले में 10.90 प्रतिशत की हुयी।

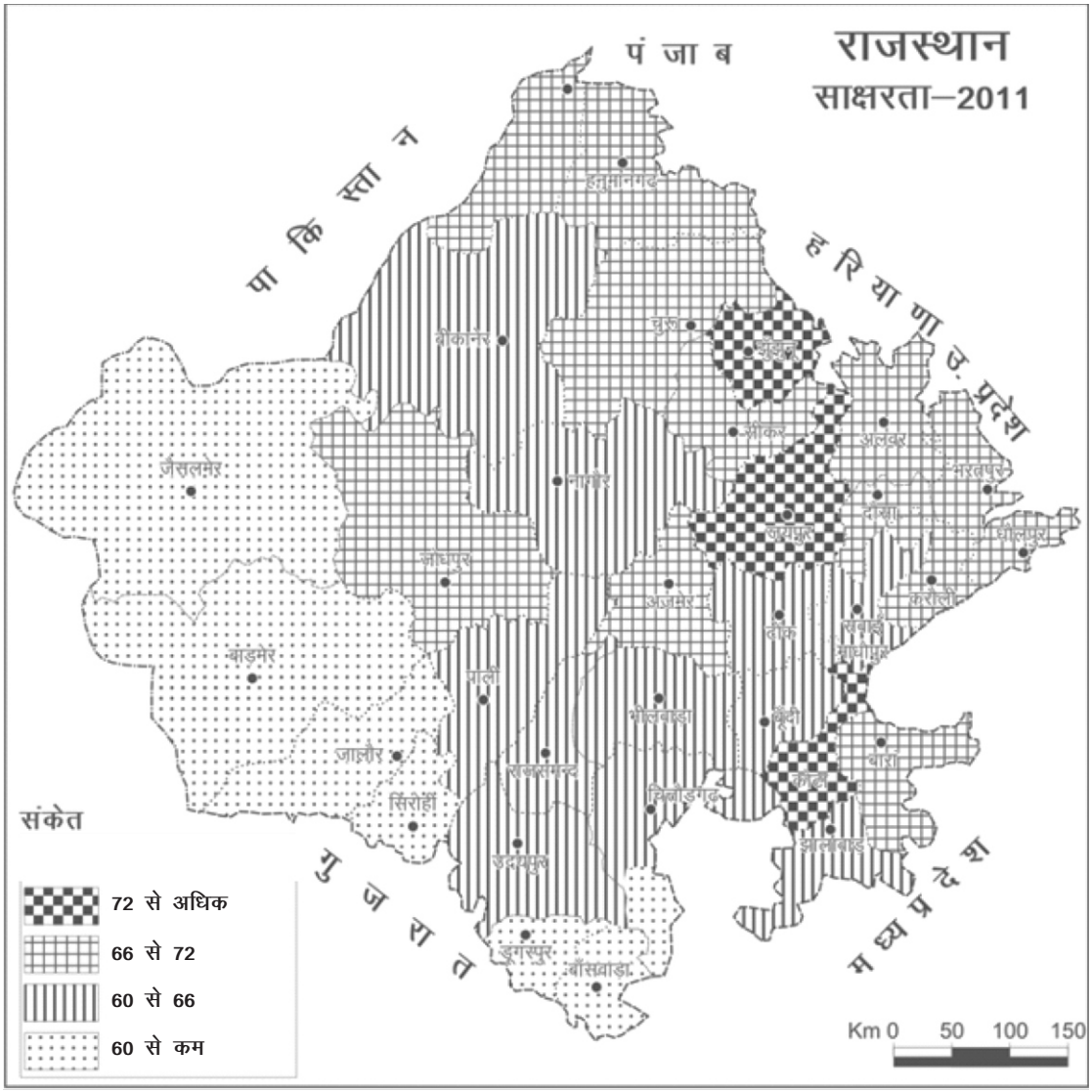

मानचित्र 25.3 : राजस्थान : साक्षरता 2011

जनजातियाँ

राजस्थान के सतरंगी सांस्कृतिक वातावरण को राज्य की जनजातियां और भी आकर्षक बनाती है। जनजाति को वनवासी या गिरिजन के नाम से भी जाना जाता है। प्रत्येक जनजाति की अपनी विशिष्ट पहचान, सामाजिक व्यवस्था एवं संस्कृति होती है। जिससे हमें राजस्थान की प्राचीन सांस्कृतिक धरोहर का ज्ञान होता है। जनजातियां मुख्यतः पहाड़ों, पठारों व जंगलों वन क्षेत्रों में निवास करती है। वनोत्पाद व आखेट तथा आदिम प्रकार की कृषि व पशुपालन जनजातियों की आजिविका के साधन है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार राजस्थान में जनजातिय जनसंख्या 92.39 लाख है। जो कुल जनसंख्या का 13.48 प्रतिशत है। राजस्थान का जनजाति के लोगों की संख्या की दृष्टि से भारत में छठा स्थान है। राज्य की सर्वाधिक जनजाति जनसंख्या उदयपुर जिले में 15.25 लाख है। राजस्थान की जनजातियों का 95 प्रतिशत भाग ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करता है। मीणा, भील, गरासिया, सहरिया, डामोर कथौड़ी, कंजर, सॉसी आदि राज्य की प्रमुख जनजातियाँ है। राज्य की अन्य जनजातियों में धानका, कोकना, नायका, पटेलिया आदि अन्य छोटे समुदाय की जनजातियाँ भी राज्य में निवास करती हैं। राज्य के पूर्वी मैदानी व पठारी क्षेत्र में मीणा जनजाती का बाहुल्य है जबकि दक्षिणी अरावली क्षेत्र में भील जनजाती का बाहुल्य है। सिरोही, पाली व उदयपुर जिलों में गरासिया, बाँरा की शाहबाद व किशनगंज तहसील में सहरिया, बाँसवाड़ा व डूँगरपुर में डामोर जनजातियाँ पाई जाती है। राजस्थान में पाई जाने वाली जनजातियों का वितरण मानचित्र 25.3 में दर्शाया गया है।

सभी जनजातियों में प्रायः निम्न विशेषताएँ पाई जाती है।

(1) ये मानव समूह प्रायः शहरी समाज से दूर जंगलों, दुर्गम पर्वतीय व पठारी क्षेत्रों में निवास करते हैं।

(2) इनकी जीवन शैली कृत्रिमता से दूर प्रकृति के निकट होती है।

(3) इनकी अपनी विशिष्ट बोली, संस्कृति, आवास, आर्थिक क्रियाकलाप एवं सामाजिक ढाँचा होता है जो इन्हें अन्य समाजों से अलग करता है।

(4) ये पुराने ढंग की आर्थिक क्रियाओं यथा – वनों से कंदमूल फल (संग्रहण), नदियों से मछलियां पकड़ना, घने वनों से पशुओं का शिकार करना, स्थानान्तरित कृषि, मजदूरी आदि से जीवन यापन करते हैं।

आजादी के बाद सरकारी प्रयासों व बाह्य समाज के सम्पर्क से राजस्थान की जनजातियों के हर पहलुओं में बदलाव आ गया है तथा ये विकास की मुख्य धारा से जुड़ने लगी है। राजस्थान की जनजातियों का संक्षेप में विवरण इस प्रकार है–

(अ) मीणा

राजस्थान में आदिवासी जनसंख्या की दृष्टि से मीणा जाति का प्रथम स्थान है। यह राजस्थान के सभी क्षेत्रों में पाई जाती है। ये मुख्यतया जयपुर, दौसा, सवाई माधोपुर, करौली, अलवर, टोंक, भरतपुर और उदयपुर जिलों में निवास करती है। राज्य की जनजातियों में सबसे संपन्न तथा शिक्षित मीणा जनजाती ही है। मीणा समुदाय का मानना है कि इनकी उत्पत्ति मत्स्यावतार जो भगवान विष्णु के प्रथम अवतार है, से हुई है। वर्तमान का प्रचलित शब्द मीना, मीणा, मूलतः संस्कृत भाषा के मीन शब्द का अपभ्रंश है। मीन का अर्थ मछली से है। ऐतिहासिक तथ्य है कि वर्तमान अलवर, भरतपुर व जयपुर जिलों के भू–भाग में मीणाओं की अधिकता प्राचीन काल से होने के कारण इस क्षेत्र को मत्स्य प्रदेश के नाम से जाना जाता था। मीणा जनजाति की सर्वाधिक आबादी जयपुर जिलें में है। मीणाओं के प्रमुख रूप से दो वर्ग पाए जाते हैं – (1) जमींदार मीणा तथा (2) चौकीदार मीणा। इसके अलावा आदिया मीणा, रावत मीणा, चमरिया मीणा, चौथिया मीणा व भील मीणा भी मीणाओं के अन्य समूह है। इनमें आपस में विवाह संबंध नहीं होता है। मुनि मगन सागर द्वारा रचित मीणा पुराण में 5200 गौत्र, 32 तड़ो व 13 पालों का उल्लेख है। स्पष्ट है इस समुदाय का पूर्वोत्तर राजस्थान में आधिक्य लम्बे समय से रहा है।

सामाजिक जीवन– मीणा जनजाति में विवाह सम्बन्धों, नातेदारी तथा रक्त संबंधों को महत्त्वपूर्ण माना जाता है। प्राचीनकाल में मीणा जनजाति में ब्रह्म व गन्धर्व विवाह का प्रचलन था। वर्तमान में अन्य समाजों की भांति रीति–रिवाज के अनुसार विवाह संपन्न होते हैं। मीणा जाति में पुत्रियों का विवाह प्रायः कम उम्र में कर देते हैं परन्तु गौना विवाह योग्य आयु में ही किया जाता है। मीणा जाति में संयुक्त परिवार प्रथा प्रचलित है तथा परिवार पितृसत्तात्मक होते हैं। निःसन्तान दम्पत्ति को गोद लेने का अधिकार है।

मीणाओं में सामाजिक नियंत्रण में पंचायत का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। मीणाओं की परम्परागत पंचायत के चार स्तर होते हैं– ग्राम पंचायत, गौत्र पचायत, क्षेत्रीय पंचायत व चौरासी पंचायत। इनमें सामाजिक झगड़ों, नाता विवाह, तलाक, मौसर, चरित्रहीनता, ऋण आदि झगड़ों को पंचायत ही निपटाती है। सबसे बड़ी पंचायत चौरासी पंचायत होती है।

मीणा जनजाति के लोग धार्मिक, मेले तथा त्योहारों में दृढ़ धार्मिक आस्था रखते हैं। महावीरजी, सवाईमाधोपुर के गणेशजी तथा सीकर में रेवासा की जीण माता के मंदिरों पर मीणाओं के मेले लगते हैं। मीणा जनजाति के लोग विभिन्न उत्सवों के समय नृत्य करते हैं और गीत गाते हैं। स्त्रियां प्रायः देवी–देवताओं के गीत गाती है। होली के तीसरे दिन खेरवाड़ और डूँगरपुर में नेजा

नृत्य किया जाता है। मीणा पुरुष धोती व कमीज पहनते हैं तथा सिर पर साफा बांधते हैं। स्त्रियां घाघरा, कांचली व ओढ़नी का प्रयोग करती है। शिक्षा के प्रसार के साथ–साथ शहरी क्षेत्र में निवास करने वाले व्यक्ति आधुनिक पहनावे पेन्ट, शर्ट आदि वस्त्रों का प्रयोग करने लगे हैं। मीणा स्त्री व पुरूष गोदना गुदवाना पसन्द करते हैं। ये लोग शगुन को गंभीरता से लेते हैं।

मीणा जनजाति का समाज के अन्य वर्गों से घनिष्ठ सम्पर्क है। मीणा समाज में शिक्षा का प्रसार तेजी से हुआ है। इन लोगों ने अन्य जनजातियों की तुलना में आरक्षण सुविधा का अधिक लाभ उठाया है। आज पूर्वोत्तर राजस्थान के इस जातिय समाज ने शिक्षा के आधार पर सभी राजकीय सेवाओं में अपना विशिष्ट स्थान बनाया है। प्रशासनिक वर्ग, शिक्षक वर्ग, पुलिस, सेना में हजारों मीणा लोग पदस्थापित है।

अर्थव्यवस्था : मीणा प्रधानतः कृषक वर्ग है जो कृषि के साथ–साथ पशुपालन भी करते हैं। मीणा जनजाति में बंटाईदारी कृषि व्यवस्था का भी प्रचलन है। शिक्षा के प्रसार के साथ–साथ इन लोगों में सरकारी सेवाओं व अन्य व्यवसायों के प्रति भी रूझान बढ़ा है। सरकारी सेवाओं में आरक्षण के कारण वर्तमान में इनकी सामाजिक–आर्थिक स्थिति अन्य समुदायों से तुलनात्मक रूप में बहुत सुदृढ़ हो गई है।

(ब) भील

*भील जनजाति का वर्णन पाठ संख्या–02 में किया गया है।

(स) गरासिया

राजस्थान की तीसरी बड़ी जनजाति गरासिया है। सिरोही की आबूरोड़ एवं पिंडवाड़ा तहसील, पाली जिलें की बाली तथा उदयपुर की गोगुन्दा व कोटड़ा तहसीलें गरासिया जनजाति बाहुल्य क्षेत्र है। आबूरोड़ का भाँखर क्षेत्र गरासियों का मूल प्रदेश माना जाता है। राजपूतों के आगमन से पूर्व गरासिया सिरोही, पिण्डवाड़ा व आबूरोड़ के पहाड़ी क्षेत्रों में राज्य करते थे। गरासिया जनजाति के लोग स्वयं को चौहान राजपूतों के वंशज मानते हैं। भीलों व इनके घरों, जीवन जीने के तरीकों, बोली, तीर–कमान आदि में काफी समानताएँ है। गरासियों के गाँव पहाड़ियों पर दूर–दूर छितरे हुये पाये जाते हैं। इनके घर 'घेर' तथा गाँव 'फालिया' कहलाते हैं। ये लोग अपने मकान प्रायः पहाड़ों की ढ़लानों पर बनाते हैं। एक गाँव में प्रायः एक ही गौत्र के परिवार निवास करते हैं।

सामाजिक जीवन : गरासियों में तीन प्रकार के विवाह प्रचलित है। मोर बॉधियॉ जिसमें फेरे होते हैं। पहरावना विवाह में नाममात्र के फेरे होते हैं। ताणना विवाह में वर पक्ष कन्या पक्ष को कन्या का मूल्य चुकाता है। इनमें विधवा विवाह का भी प्रचलन है।

गरासिया समाज के लोग एकांकी परिवार के रूप में रहते हैं। पिता परिवार का मुखिया होता है। समाज में पुत्र गोद लेने की प्रथा भी प्रचलित है। सामाजिक परिवेश की दृष्टि से गरासिया तीन वर्गों में बँटे हुये है– मोटी नियात, नेनकी नियात तथा निचली नियात।

गरासिया समाज में जाति पंचायत का भी विशेष महत्त्व है। गाँव व भाखर स्तर पर जाति पंचायत होती है जिसके द्वारा आर्थिक व शारीरिक दोनों प्रकार के दण्ड़ दिये जातें है। पंचायत का मुखिया सहलोत कहलाता है।

इस जनजाति क्षेत्र में प्रतिवर्ष कई स्थानीय, संभागीय व बड़े मेले भरते हैं। बड़े मेले 'मनखारो मेलो' के नाम से विख्यात है। अम्बाजी के पास कोटेश्वर का मेला, देवला के पास कोटड़ा–कोसीना रोड़ पर चेतर विचितर मेला तथा बैसाख कृष्णा पंचमी को गोगुन्दा का गणगौर मेला इनके प्रमुख मेले है। गरासिया युवक मेलों में अपने जीवन साथी का भी चयन करते हैं। वालर, गरबा, गैर, मोरिया व गौर गरासियों के मुख्य नृत्य हैं। ये नृत्य करते समय लय व आनन्द में डूब जाते हैं इनकी बोली में गुजराती, भीली, मेवाड़ी तथा मारवाड़ी का मिश्रण है।

रहन–सहन व वेशभूषा की दृष्टि से गरासिया जनजाति की अपनी अलग पहचान है। गरासिया पुरूष धोती, कमीज पहनते हैं और सिर पर तौलिया बाँधते हैं। गरासिया स्त्रियॉ गहरे रंग के तड़क–भड़क वाले कपड़े पहनती हैं। वह अपने तन को पूर्णरूप से ढ़कती है। भीलों की भॉति गरासियों में भी गोदना गुदवाने की प्रथा है। गरासिया महिलाएँ प्रायः ललाट व ठोड़ी पर गोदने गुदवाती है। गरासिया लोग शिव, भैरव व दुर्गा के उपासक है।

अर्थव्यवस्था : गरासिया जनजाति की अर्थव्यवस्था कृषि, पशुपालन, शिकार, लकड़ी काटने व वनोंत्पादों के एकत्रीकरण पर आधारित है। अब ये लोग मजदूरी के लिए कस्बों व शहरों में भी जाने लगे है। हरी भावरी गरासियों द्वारा की जाने वाली सामूहिक कृषि का एक रूप है। ये लोग अनाज का संग्रहण सोहरी (कोठी) में करते हैं।

(द) सहरिया

राजस्थान की एक मात्र सबसे पिछड़ी जनजाति जिसे भारत सरकार नें आदिम जनजाति में शामिल किया है। राज्य के 98 प्रतिशत सहरिया बाँरा जिलें की किशनगंज व शाहबाद तहसिलों में निवास करते हैं। सहरिया फारसी भाषा के शब्द सहर से बना है जिसका अर्थ जंगल होता है। सहरिया जनजाति के घरों को टापरी व टोपा कहते हैं। टापरी मिट्टी, पत्थर, लकड़ी और घासफूस की बनी होती है। टोपा घनें जंगलों में पेड़ो पर या बल्लियों पर बने मचान को कहते हैं। इनकी छोटी बस्तियां सहराना व गाँव सहरोल कहलाते हैं।

सहरिया जनजाति में एकांकी परिवार पाये जाते हैं। इनमें बहुपत्नी प्रथा का रिवाज है। नाता प्रथा भी इनमें प्रचलित है। सहरिया जनजाति में लड़की के जन्म को शुभ माना जाता है। बाँरा जिले में केलवाड़ा के पास सीताबाड़ी में लगने वाला मेला इनका पवित्र स्थान है। ये वाल्मिकी ऋषि को अपना कुल देवता मानते हैं।

ये लोग धोती, कमीज व साफा पहनते हैं। स्त्रियॉ घाघरा, लूँगड़ी और लम्बी बॉह का कमीज पहनती है। स्त्रियाँ शरीर पर गोदने गुदवाती है। सहरियों की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार वनोत्पाद व स्थानान्तरित कृषि है। इस जनजाति में साक्षरता का प्रतिशत बहुत ही कम है।

(य) डामोर

यह जनजाति मुख्यतः डूँगरपुर, बाँसवाड़ा, व उदयपुर जिलों में बसी हुयी है। सर्वाधिक डामोर डूँगरपुर जिलें की सीमलवाड़ा पंचायत में निवास करते हैं। डामोर लोगों को डामरिया भी कहते हैं। डामोर अपनी उत्पत्ति राजपूतों से मानते हैं। डामोर जनजाति में भी एकांकी परिवार का प्रचलन है। परिवार का मुखिया पिता होता है। डामोर समुदाय में पंचायत के मुख्या को मुखी कहते हैं। इस जनजाति में विवाह का मुख्य आधार वधू मूल्य होता है। वर पक्ष को कन्या के पिता को वधू मूल्य देना पड़ता है। इनमें बहु विवाह का भी प्रचलन है। छेला बावजी तथा ग्यारस की रैवाड़ी डामोरों के दो प्रमुख मेले है।

ये लोग प्रधानतः कृषक है तथा मक्का व चावल की खेती करते हैं। आखेट व संग्रहण भी इनकी आजिविका के साधन है।

कथौड़ी, कंजर वा साँसी राजस्थान की अन्य प्रमुख जनजातियाँ है। कथौड़ी उदयपुर की कोटड़ा झाड़ोल व सराड़ा पंचायत समिति में बसे है। खैर के वृक्ष से कत्था तैयार करने में दक्ष होने के कारण ये कथौड़ी कहलाते हैं।

कँजर मुख्यतः कोटा, बूँदी, बाँरा, झालावाड़, चित्तौड़गढ़, सवाई माद्योपुर, अलवर, भीलवाड़ा व अजमेर जिलों में पाये जाते हैं। कंजर शब्द की उत्पत्ति 'काननचार' से हुयी है जिसका अर्थ जंगल में विचरण करने वाला है। ये चोरी व अपराध के लिए कुख्यात है पर ये लोग हाकम राजा का प्याला पीकर कभी झूठ नहीं बोलते हैं। इन लोगों के घरों में भागने के लिए पीछे की तरफ खिड़की होती है परन्तु दरवाजे नहीं होते हैं। कंजर जनजाति की कुलदेवी चौथ माता है। कँजर महिलाएँ नाचने गाने में प्रवीण होती है।

साँसी जनजाति मुख्यतः भरतपुर व अजमेर जिले में निवास करती है। यह लोग खानाबदोश जीवन जीते हैं। जंगली जानवरों के शिकार के साथ छोटे–छोटे हस्तशिल्प इनकी आजिविका का मुख्य आधार है।

जनजातियों पर आधुनिकता का प्रभाव

(1) वनों की अन्धाधुन्ध कटाई व शेष बचे अधिकाँश वनों को सरकार द्वारा सुरक्षित व संरक्षित कर देने के कारण वन क्षेत्रों में कमी आई है जिसका इनके जीवन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है।

(2) वनोंपजों व वन्य जीवों की कमी एवं भू–क्षरण के कारण घटती कृषि उत्पादकता से इनकी अर्थव्यवस्था चरमरा गई है। कई क्षेत्रों में इनके जीवन निर्वाह के साधन इतने सीमित हो गये है कि ये लूटपाट व चोरी व अपराध करने लगे है।

(3) सीमित कृषि भूमि, बढ़ती जनसंख्या व स्थानीय संसाधनों के संकुचित हो जाने के कारण इन्हें मजबूरी में कस्बों व शहरों में मजदूरी करने जाना पड़ता है जहाँ इनका घोर आर्थिक शोषण होता है।

(4) शहरी सम्पर्क के कारण इनके खानपान, पहनावे व आवास में भारी बदलाव आया है।

(5) नशे की बढ़ती प्रवृत्ति के कारण इनकी आर्थिक दशा ठीक नहीं हो पा रही है।

(6) वर्तमान में शिक्षा के प्रसार की वजह से इनमें जागरूकता बढ़ी है। ये लोग सरकारी सेवाओं में भी आने लगे हैं।

आज़ादी के बाद सरकार द्वारा जनजाति क्षेत्रों के विकास हेतु कईं योजनाएँ व कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। जनजाति उपयोजना क्षेत्र (टाडा), परिवर्तित क्षेत्र विकास कार्यक्रम (माडा), सहरिया विकास कार्यक्रम, माडा क्लस्टर योजना, बिखरी जनजाति विकास कार्यक्रम, स्वच्छ परियोजना, जनजाति क्षेत्र रेशम कीट पालन कार्यक्रम, एकलव्य योजना, रूख भायला कार्यक्रम, रोजगार कार्यक्रम आदि चलाये जा रहे हं जिससे जनजातियों के विकास में आशातीत प्रगति हुयी है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

1. 20वीं सदी के उत्तरार्द्ध में राजस्थान की जनसंख्या तेजी से बढ़ी है।
2. 2011 की जनगणना के अनुसार राजस्थान की कुल जनसंख्या 6.85 करोड़ है।
3. राजस्थान में जनसंख्या के वितरण में अत्यधिक असमानता पायी जाती है।
4. राजस्थान का 2011 की जनगणना के अनुसार जनसंख्या घनत्त्व 200 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है।
5. साक्षरता व लिंगाानुपात जनसंख्या के गुणात्मक स्तर को परखने के मापदण्ड हैं।
6. राज्य की कुल जनसंख्या में अनुसूचित जनजातियों की संख्या का प्रतिशत 13.18 है।
7. राजस्थान की साक्षरता 67.07 प्रतिशत है। कोटा राज्य का सर्वाधिक साक्षर जिला (76.60 प्रतिशत) है।
8. राज्य में लिंगानुपात 928 है जो देश के अनुपात 940 से 12 कम है।
9. मीणा, भील, गरासिया, सहरिया, डामोर, कथौड़ी, कंजर व सॉसी राज्य की प्रमुख जनजातियाँ हैं।
10. सरकार के प्रयासों से जनजातियों की सामाजिक व आर्थिक दशाओं में तेजी से सुधार हुआ है।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक

1. सन् 2011 की जनगणना के अनुसार राजस्थान की जनसंख्या है।
   (अ) 6.85 करोड़ (ब) 6.54 करोड़
   (स) 5.85 करोड़ (द) 5.54 करोड़
2. राजस्थान के किस जिले की साक्षरता सबसे कम है–
   (अ) जैसलमेर (ब) बाड़मेर
   (स) जालोर (द) बाँसवाड़ा
3. निम्न में से जो जनजाति नहीं है, वह है–
   (अ) भील (ब) खटीक
   (स) मीणा (द) डामोर
4. मीणा समुदाय की उत्पत्ति मानी जाती है?
   (अ) वराह अवतार से (ब) कुर्म अवतार से
   (स) मत्स्य अवतार से (द) कृष्णा वतार से
5. मीणा जनजाति के कितने उपवर्ग है–
   (अ) 2 (स) 3
   (द) 4 (द) 6
6. नेजा नृत्य किया जाता है–
   (अ) बांसवाड़ा के भीलों द्वारा
   (ब) खैरवाड़ा के मीणा द्वारा
   (स) भीलवाड़ा के भीलों द्वारा
   (द) भरतपुर के मीणा द्वारा
7. सहरीया जनजाती को केन्द्र है–
   (अ) माण्डलगढ़ तहसील में
   (ब) घरियावद तहसील में
   (स) शाहबाद तहसील में
   (द) बूंदी तहसील में
8. बेणेश्वर मेला लगता है–
   (अ) जेष्ठ शुक्ला पूर्णिता पर
   (ब) माघ शुक्ला पूर्णिमा पर
   (स) आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा पर
   (द) पौष शुक्ला पूर्णिमा पर

अतिलघूत्तरात्मक

9. हमारे राज्य में जनगणना कितने वर्षों के अन्तराल पर होती है?
10. जनसंख्या की दृष्टि से देश के राज्यों में राजस्थान का कौनसा स्थान है?
11. राज्य के किस जनगणना वर्ष में जनसंख्या घटी थी?
12. राजस्थान के किस जिलें का लिंगानुपात सर्वाधिक है?
13. राजस्थान की कोई तीन जनजातियों के नाम बताइये?
14. किसी एक खानाबदोश जनजाति का नाम बताइये?
15. डामोर जनजाति के मेलों के नाम बताइये?

लघूत्तरात्मक

16. राजस्थान की जनसंख्या की कोई तीन विशेषताएँ बताइये।
17. जनसंख्या के वितरण को प्रभावित करने वाले कारक बताइये।
18. राजस्थान की जनसंख्या का वितरण बताइये।
19. अपने राज्य की साक्षरता पर टिप्पणी लिखिये।
20. राजस्थान की सहरिया जनजाति का वर्णन कीजिये।

21. जनजातियों के कल्याण के लिए सरकार द्वारा चलाये जा रहे कार्यक्रमों के नाम बताइये।

निबन्धात्मक

22. राजस्थान के जनसंख्या वितरण व घनत्त्व का वर्णन कीजिए।

23. राजस्थान की भील या मीणा जनजाति के सामाजिक व्यवस्था व आर्थिक दशाओं का वर्णन कीजिये?

24. राजस्थान की गरासिया या सहरिया जनजाति के सामाजिक व्यवस्था व आर्थिक दशाओं का वर्णन कीजिये?

आंकिक

25. राजस्थान के मानचित्र में जनसंख्या के वितरण को दर्शाइये।

26. राज्य के मानचित्र पर प्रमुख जनजातियों के निवास क्षेत्र को दर्शाइये।

परिशिष्ट

सारणी 1 : एशियाई जनसमूह के देशों की जनसंख्या (2001 एवं 2013)

क्र. सं.	देश	वर्ष 2001		वर्ष 2013	
		जनसंख्या (करोड़ में)	विश्व का प्रतिशत	जनसंख्या (करोड़ में)	विश्व का प्रतिशत
1	चीन	127.3	20.74	135.7	19.0
2	भारत	102.7	16.87	127.7	17.9
3	इण्डोनेशिया	20.6	3.35	24.8	3.5
4	पाकिस्तान	14.5	2.36	19.1	2.7
5	बांग्लादेश	13.4	2.18	15.7	2.2
6	जापान	12.7	2.06	12.7	2.0
7	वियतनाम	7.9	1.28	9.0	1.1
8	फिलीपिन्स	7.7	1.25	9.6	1.3
9	थाईलैण्ड	6.2	1.01	6.6	0.9
10	कोरियागणराज्य	4.8	0.70	5.0	0.7
11	म्यांमार	4.7	0.77	5.3	0.7
12	मलेशिया	2.2	0.36	3.0	0.4
13	श्रीलंका	1.9	0.32	2.1	0.3

Source : Population Reference Bureau, Washington, D.C. 2013

सारणी 2 : अफ्रीकी जनसमूह के प्रमुख देशों की जनसंख्या (2013)

क्र.सं.	देश	जनसंख्या (मिलियन में)	विश्व का प्रतिशत
1	नाइजीरिया	174	2.4
2	इथोपिया	89	1.2
3	मिश्र	85	1.2
4	द. अफ्रीका	53	0.7
5	तंजानिया	49	0.7
6	सूडान	34	0.5
7	कीनिया	44	0.6
8	अल्जीरिया	38	0.5
9	मौरक्को	33	0.5
10	यूगाण्डा	37	0.5

Source : Population Reference Bureau, Washington, D.C. 2013

सारणी 3 : यूरोपीय जनसमूह के प्रमुख देशों की जनसंख्या (2001 एवं 2013)

क्र. सं.	देश	वर्ष 2001		वर्ष 2013	
		जनसंख्या (करोड़ में)	विश्व का प्रतिशत	जनसंख्या (करोड़ में)	विश्व का प्रतिशत
1	रूस	14.04	2.00	14.44	2.00
2	जर्मनी	8.00	1.00	8.20	1.10
3	ग्रेट ब्रिटेन	6.0	0.90	6.40	0.90
4	फ्रांस	5.90	0.90	6.40	0.90
5	इटली	5.78	0.90	6.00	0.90
6	स्पेन	3.98	0.60	4.70	0.60
7	नीदरलैण्ड	1.60	0.20	1.70	0.20
8	पौलेण्ड	3.86	0.50	3.90	0.50
9	बेल्जियम	1.03	0.16	1.10	0.20
10	चेकोस्लाविकया	1.03	0.16	1.10	0.10
11	हंगरी	1.08	0.10	1.10	0.10

Source : Population Reference Bureau, Washington, D.C. 2013

सारणी 4 : विश्व में जनसंख्या वृद्धि

वर्ष	जनसंख्या
10,.000 वर्ष ईसा पूर्व (B.C.)	50 लाख
1 ई. (A.C.)	2000 लाख
1000 ई.	3000 लाख
1750 ई.	8000 लाख
1850 ई.	100 करोड़
1930 ई.	200 करोड़
1962 ई.	300 करोड़
1975 ई.	406 करोड़
1987 ई.	500 करोड़
1999 ई.	600 करोड़
2000 ई.	610 करोड़
2010 ई.	710 करोड़
2013 ई.	714 करोड़
2015 ई.	720 करोड़
2025 ई.	781 करोड़
2050 ई.	903 कराड़

Source : According to UN Bstination Source : World Development Reports 2000 and Population Reference Burea, USA 2013.

सारणी 5 : विश्व साक्षरता – 2008

प्रदेश	15 वर्ष और उससे अधिक जनसंख्या का %	15 से 24 वर्ष तक के लोगों का %
विकासशील देश	76.6	85.2
अल्प विकसित देश	54.2	64.2
अरब राष्ट्र	64.1	81.3
पू. एशिया	90.4	98.0
लेटिन अमेरिका	89.6	95.9
द. एशिया	58.9	72.2
उप सहारा अफ्रीका	61.3	73.7
मध्य व पूर्वी यूरोप	99.2	99.5

स्रोत : मानव विकास रिपोर्ट, 2008, ऑक्सफोर्ड यूनिवरसिटी प्रेस

सारणी 7 : विश्व के प्रमुख देशों में कृषिगत आय, 2015

देश	आय (बिलियन अमेरिकी डॉलर मे)
चीन	1088
भारत	413
यूरोपीयन संगठन	333
संयुक्त राज्य अमेरिका	290
इण्डोनेशिया	127
ब्राजील	110
नाइजीरिया	106

स्रोत : IMF व CIA वर्ल्ड फेक्ट बुक के अनुसार)

सारणी 9 : विश्व के प्रमुख देशों में औद्योगिक उत्पादन आय, 2015

देश	आय (बिलियन अमेरिकन डॉलर में)
चीन	4922
संयुक्त राज्य अमेरिका	3752
जापान	1164
जर्मनी	1016
ग्रेट ब्रिटेन	588
भारत	559
दक्षिणी कोरिया	555

स्रोत : IMF व CIA वर्ल्ड फेक्ट बुक के अनुसार)

सारणी 6 : मानव के तृतीयक व्यवसाय

तृतीयक व्यवसाय			
परिवहन	व्यापार व वाणिज्य	संचार	सेवाएँ
• सड़क • रेल • जल • वायु	• थोक • फुटकर	• दूर संचार • दृश्य श्रव्य	• बैंकिंग • बीमा • व्यक्तिगत • व्यावसायिक

सारणी 8 : विभिन्न व्यवसायों में श्रमिकों का (प्रतिशत में स्थानान्तरण)

	प्राचीन सभ्यता	संक्रमण अवधि	तृतीयक सभ्यता
प्राथमिक व्यवसाय	65	40	10
द्वितीयक व्यवसाय	20	40	20
तृतीयक व्यवसाय	15	20	70

सारणी 10 : विश्वः प्रमुख देशों में खनिजों का उत्पादन

देश का नाम	खनिजों का उत्पादन विश्व के कुल उत्पादन के प्रतिशत
संयुक्त राज्य अमेरिका	34.10
रूस	10.50
इंगलैंड	10.50
जर्मनी	5.22
वेनेजुएला	5.00
कनाडा	2.93
फ्रॉस	2.61
कुवैत	2.31
सउदी अरब	2.27
पोलैंड	2.06
भारत	1.03
अन्य	22.43
कुल	100.00

सारणी 11 : विश्व में ऊनी वस्त्र का वार्षिक उत्पादन 2013 (प्रतिशत में)

क्र.सं.	देश	विश्व का प्रतिशत
1	चीन	28.8
2	इटली	24.9
3	जापान	6.2
4	टर्की	5.7
5	जर्मनी	5.0
6	रूस	4.2
7	संयुक्त राज्य अमेरिका	3.6
8	यूनाइटेड किंगडम	2.4
9	फ्रांस	2.3
10	पोलैण्ड	2.2
11	मैक्सिको	1.1
12	लिथुआनिया	0.9
13	आस्ट्रिया	0.9
14	स्पेन	0.9
15	चेक गणराज्य	0.9
16	रोमानिया	0.8
17	पूर्तगाल	0.7
18	बेलारूस	0.6
19	स्लोवाक गणराज्य	0.6
20	बाल्गेरिया	0.5
21	द. अफ्रीका	0.4
22	द. कोरिया	0.4
23	मिश्र	0.4
	विश्व	100.0

सारणी 12 : भारत में दशकीय जनसंख्या वृद्धि

क्र. सं.	राज्य एवं केन्द्र शासित प्रदेश	दशकीय वृद्धि (प्रतिशत)		
		1991–2001	2001–2011	दशकीय परिवर्तन (प्रतिशत)
1	आन्ध्रप्रदेश	14.59	11.1	.3.49
2	अरुणाचल प्रदेश	27.00	25.92	.1.08
3	असम	18.92	16.93	.1.99
4	बिहार	28.62	25.07	.3.55
5	छत्तीसगढ़	18.27	22.59	4.32
6	गोआ	15.21	8.17	.7.04
7	गूजरात	22.66	19.17	.3.49
8	हरिया.ा	28.43	19.90	.8.53
9	हिमाचल प्रदेश	17.54	12.81	.4.23
10	जम्मू–कश्मीर	29.43	23.70	.5.73
11	झारख.ड	23.36	22.34	.1.02
12	कर्नाटक	17.51	15.67	.1.84
13	केरल	9.43	4.86	.4.57
14	मध्यप्रदेश	24.26	20.30	.3.96
15	महाराष्ट्र	22.73	15.99	.6.74
16	मा.ापूर	24.86	18.65	.6.21
17	मेधालय	30.65	27.82	.2.83
18	मिजोरम	28.82	22.78	.6.04
19	नागालैण्ड	64.53	.0.47	.65.00
20	उड़ीसा	16.25	13.97	.2.28
21	पंजाब	20.1	13.73	.6.37
22	राजस्थान	28.41	21.44	.6.97
23	सिक्किम	33.06	12.36	.20.70
24	तमिलनाड्	11.72	15.06	3.34
25	त्रिपूरा	16.03	14.70	.1.33
26	उत्तर प्रदेश	25.85	20.09	.5.76
27	उत्तराखण्ड	20.41	19.17	.1.24
28	पश्चिम बंगाल	17.77	13.93	.3.84
केन्द्रशासित प्रदेश				
1	अण्डमान–निकोबार द्वीप समूह	26.9	6.68	.20.22
2	चण्डीगढ़	40.28	17.10	.23.18
3	दादरा–नगर हवेली	59.22	55.50	.3.72
4	दमन–दीव	55.73	53.54	.2.19
5	रा.रा. क्षेत्र दिल्ली	47.02	20.96	.26.06
6	लक्ष्यद्वीप	17.3	6.23	.11.07
7	पाण्डिचेरी	20.62	27.72	7.10
	भारत	21.54	17.64	.3.90

सारणी 13 : भारत में जनसंख्या का वितरण एवं घनत्व 2011

क्र.सं.	राज्य एवं केन्द्र शासित प्रदेश	जनसंख्या					
		कुल	पुरुष	महिलाएं	दशकीय वृद्धि (2001–11) (%)	कुल जनसंख्या का प्रतिशत	घनत्व
1	आन्ध्रप्रदेश	84665533	42509881	42155652	11.10	7.00	308
2	अरुणाचल प्रदेश	1382611	720232	662379	25.92	0.11	17
3	असम	31169272	15954927	15214345	16.93	2.58	397
4	बिहार	103804637	54185347	49619290	25.07	8.58	1102
5	छत्तीसगढ़	25540196	12827915	12712281	22.59	2.11	189
6	गोआ	1457723	740711	717012	8.17	0.12	394
7	गुजरात	60383628	31482282	28901346	19.17	4.99	308
8	हरियाणा	25353081	13505130	11847951	19.90	2.09	573
9	हिमाचल प्रदेश	6856509	3473892	3382617	12.81	0.57	123
10	जम्मू–कश्मीर	12548926	6665561	5883365	23.71	1.04	124
11	झारखण्ड	32966238	16931688	16034550	22.34	2.72	414
12	कर्नाटक	61130704	31057742	30072962	15.67	5.05	319
13	केरल	33387677	16021290	17366387	4.86	2.76	859
14	मध्यप्रदेश	72597565	37612920	34984645	20.30	6.00	236
15	महाराष्ट्र	112372972	58361397	54011575	15.99	9.29	365
16	मणिपुर	2721756	1369764	1351992	18.65	0.22	122
17	मेधालय	2964007	1492668	1471339	27.82	0.24	132
18	मिजोरम	1091014	552339	538675	22.78	0.09	52
19	नागालैण्ड	1980602	1025707	954895	0.47	0.16	119
20	उड़ीसा	41947358	21201678	20745680	13.97	3.47	269
21	पंजाब	27704236	14634819	13069417	13.73	2.29	550
22	राजस्थान	68621012	35620086	33000926	21.44	5.67	201
23	सिक्किम	607688	321661	286027	12.36	0.05	86
24	तमिलनाडु	72138958	36158871	35980087	15.60	5.96	555
25	त्रिपुरा	3671032	1871867	1799165	14.75	0.30	350
26	उत्तर प्रदेश	199581477	104596415	94985062	20.09	16.49	828
27	उत्तराखण्ड	10116752	5154178	4962574	19.17	0.84	189
28	पश्चिम बंगाल	91347736	46927389	44420347	13.93	7.55	1029
	केन्द्रशासित प्रदेश						
1	अण्डमान–निकोबार द्वीप समूह	379944	202330	177614	6.68	0.03	46
2	चण्डीगढ़	1054686	580282	474404	17.10	0.09	9252
3	दादरा–नगर हवेली	342853	193178	149675	55.50	0.03	698
4	दमन–दीव	242911	150100	92811	53.54	0.02	2169
5	रा.रा. क्षेत्र दिल्ली	16753235	8976410	7776825	20.96	1.38	11297
6	लक्ष्यद्वीप	64429	33106	31323	6.23	0.01	2013
7	पाण्डिचेरी	1244464	610485	633979	27.72	0.10	2598
	भारत	**1210193422**	**623724248**	**586469174**	**17.64**	**100.0**	**382**

सारणी 14 : ग्रामीण और नगरीय जनसंख्या, 2011

क्र. सं.	राज्य एवं केन्द्र शासित प्रदेश	जनसंख्या	
		ग्रामीण	नगरीय
1	आन्ध्रप्रदेश	56311788	28353745
2	अरुणाचल प्रदेश	1069165	313446
3	असम	26780516	4388756
4	बिहार	92075028	11729609
5	छत्तीसगढ़	19603658	5936538
6	गोआ	551414	906309
7	गुजरात	34670817	25712811
8	हरियाणा	16531493	8821588
9	हिमाचल प्रदेश	6167805	688704
10	जम्मू–कश्मीर	9134820	3414106
11	झारखण्ड	25036946	7929292
12	कर्नाटक	37552529	23578175
13	केरल	17455506	15932171
14	मध्यप्रदेश	52537899	20059666
15	महाराष्ट्र	61545441	50827531
16	मणिपुर	1899624	822132
17	मेधालय	2368971	595036
18	मिजोरम	529037	561977
19	नागालैण्ड	1406861	573741
20	उड़ीसा	34951234	6996124
21	पंजाब	17316800	10387436
22	राजस्थान	51540236	17080776
23	सिक्किम	455962	151726
24	तमिलनाड्	37189229	34949729
25	त्रिपुरा	2710051	960981
26	उत्तर प्रदेश	155111022	44470455
27	उत्तराखण्ड	7025583	3091169
28	पश्चिम बंगाल	62213676	29134060
केन्द्रशासित प्रदेश			
1	अण्डमान–निकोबार	244411	135533
2	चण्डीगढ़	29004	1025682
3	दादरा–नगर हवेली	183024	159829
4	दमन–दीव	60331	182580
5	रा.रा. क्षेत्र दिल्ली	419319	16333916
6	लक्ष्यद्वीप	14121	50308
7	पाण्डिचेरी	394341	850123
	योग	833087662	377105760

सारणी 15 : राज्यवार लिंगानुपात

क्र. सं.	राज्य एवं केन्द्र शासित प्रदेश	जनसंख्या (2011)		
		2001	2011	अन्तर (2001–11)
1	आन्ध्रप्रदेश	978	992	+ 14
2	अरुणाचल प्रदेश	893	920	- 27
3	असम	935	954	+ 19
4	बिहार	919	916	- .3
5	छत्तीसगढ़	989	991	+ 2
6	गोआ	961	968	+ 7
7	गुजरात	920	918	- .2
8	हरियाणा	861	877	+ 16
9	हिमाचल प्रदेश	968	974	+ 6
10	जम्मू–कश्मीर	892	883	- .9
11	झारखण्ड	941	947	+ 6
12	कर्नाटक	965	968	+ 3
13	केरल	1058	1084	+ 26
14	मध्यप्रदेश	919	934	+ 15
15	महाराष्ट्र	922	925	+ 3
16	मणिपूर	974	987	+ 13
17	मेधालय	972	986	+ 14
18	मिजोरम	935	975	+ 40
19	नागालैण्ड	900	931	+ 31
20	उड़ीसा	972	978	+ 6
21	पंजाब	876	893	+ 17
22	राजस्थान	921	926	+ 5
23	सिक्किम	875	889	+ 14
24	तमिलनाडु	987	995	+ 8
25	त्रिप्रा	948	961	+ 13
26	उत्तर प्रदेश	898	908	+ 10
27	उत्तराखण्ड	962	963	+ 1
28	पश्चिम बंगाल	934	947	+ 13
केन्द्रशासित प्रदेश				
1	अण्डमान–निकोबार	846	878	+ 32
2	चण्डीगढ़	777	818	+ 41
3	दादरा–नगर हवेली	812	775	- .37
4	दमन–दीव	710	618	- .92
5	रा.रा. क्षेत्र दिल्ली	821	866	+ 45
6	लक्ष्यद्वीप	948	946	- .2
7	पाण्डिचेरी	1001	1038	+ 37
	योग	933	940	+ 07

सारणी 16 भारत की जनसंख्या का आयु संघटन
(जनसंख्या का प्रतिशत)

जनगणना वर्ष	आयु वर्ग		
	0–14	15–59	60 से अधिक
1901	38.1	56.8	5.1
1911	37.8	56.9	5.2
1921	38.6	56.0	5.4
1931	38.5	56.4	5.1
1941	39.1	55.2	5.7
1951	37.5	56.9	5.6
1961	41.0	53.3	5.6
1971	42.0	52.0	6.0
1981	39.7	54.1	6.2
1991	36.5	57.1	6.4
2001	35.6	58.1	6.3
2011	29.5	62.5	8.0

सारणी 17 : भारत–साक्षरता (प्रतिशत) : 2011

क्र. सं.	राज्य एवं केन्द्र शासित प्रदेश	साक्षरता (2011)		
		कुल	पुरुष	महिला
1	आन्ध्रप्रदेश	67.70	75.60	59.70
2	अरुणाचल प्रदेश	67.00	73.69	59.57
3	असम	73.18	78.81	67.27
4	बिहार	63.82	73.50	53.30
5	छत्तीसगढ़	86.40	90.50	81.40
6	गोआ	87.40	92.80	81.80
7	गुजरात	79.31	87.20	70.70
8	हरियाणा	76.64	85.40	66.80
9	हिमाचल प्रदेश	83.78	90.80	76.60
10	जम्मू–कश्मीर	68.74	78.30	58.00
11	झारखण्ड	67.63	78.50	56.20
12	कर्नाटक	75.60	82.80	68.10
13	केरल	93.91	96.00	92.00
14	मध्यप्रदेश	70.63	80.50	60.00
15	महाराष्ट्र	82.91	89.80	75.50
16	मणिपूर	79.85	86.49	73.17
17	मेधालय	75.48	77.17	73.78
18	मिजोरम	91.58	93.72	89.40
19	नागालैण्ड	80.11	83.29	76.69
20	उड़ीसा	73.45	82.40	64.90
21	पंजाब	76.68	81.50	71.30
22	राजस्थान	67.06	80.50	52.70
23	सिक्किम	82.28	87.29	76.43
24	तमिलनाडु	80.33	86.80	73.90
25	त्रिपुरा	87.75	92.18	83.15
26	उत्तर प्रदेश	69.72	79.20	59.30
27	उत्तराखण्ड	79.63	88.30	70.70
28	पश्चिम बंगाल	77.08	82.70	71.20
	केन्द्रशासित प्रदेश			
1	अण्डमान–निकोबार	86.27	90.10	81.80
2	चण्डीगढ़	86.43	90.50	81.40
3	दादरा–नगर हवेली	77.65	86.50	65.90
4	दमन–दीव	87.07	91.50	79.50
5	रा.रा. क्षेत्र दिल्ली	86.34	91.00	80.90
6	लक्ष्यद्वीप	92.28	86.10	88.20
7	पाण्डिचेरी	86.55	92.10	81.20
	योग	74.04	82.24	65.46

सारणी 18 : भारत में कोयला भण्डार व उत्पादन 2012–13

क्र.सं.	राज्य	प्रमाणित भण्डार (%)	कुल भण्डार (%)	उत्पादन (%)	प्रमुख क्षेत्र
1	मध्यप्रदेश	6.35	7.77	13.80	शहडोल, छिंदवाड़ा, सीधी, नरसिंहपुरा, बेंतुल
2	छत्तीसगढ़	11.48	16.31	17.03	सरगुजा, बिलासपुर, रामगढ़, कोरबा, विश्रामपुर, बस्तर
3	झारखण्ड	36.85	28.08	22.03	झरिया उत्तरी व दक्षिणी करणपुरा, पश्चिम व पूर्वी बोकारो, राजमहल, रामगढ़, देवगढ़, हुतार, औरंगा, डाल्टनगंज
4	आन्ध्रप्रदेश–तैलंगाना	8.74	6.75	9.37	खन्मान, आदिलाबाद, वारंगल, तन्दूर, सिंगरेनी, कलापल्ली, सस्सी
5	महाराष्ट्र	4.84	3.57	9.11	चन्द्रपुर (वर्धा घाटी), कन्वटी (नागपुर), यवतमाल (बल्लाखूर)
6	पश्चिम बंगाल	11.84	10.94	6.00	रानीगंज, वर्धमान, बाकुण्डा, पुरूलिया, वीरभूम, दार्जिलिंग, न्यूजलपाईगुड़ी
7	उड़ीसा	17.59	24.39	16.63	ढेंकानल, सन्बलपुर, तालचर, सुन्दरगढ़, इब नदी घाटी, ब्राह्मणी नदी घाटी
8	उत्तर प्रदेश	0.80	0.42	0.15	सोनभ्रद
9	पूर्वी राज्य	0.15	0.23	0.10	मेघालय, अरूणाचल प्रदेश, नागौलण्ड
10	अन्य राज्य	1.36	1.54	5.78	
	गोंडवाना कोयला	99.73	99.68	93.56	उपरोक्त सभी राज्य
	टरशियरी कोयला	0.27	0.34	6.87	असोम (माकूम, नजीरा), पलाना (राजस्थान), नवेली (तमिलनाडु)

Source : Statistical Abstract India, 2014

सारणी 19 : भारत में खनिज तेल का उत्पादन (1950 से 2013)

क्र.सं.	वर्ष	उत्पादन (लाख टन)	खपत (लाख टन)	आयात (करोड़ रू.)
1	1951	2.69	33.0	58.00
2	1961	5.13	77.0	69.00
3	1971	71.85	179.0	136.00
4	1981	149.25	309.0	5,284.00
5	1991	330.21	550.0	10,316.00
6	2001	324.00	1107.6	71,604.00
7	2011	35,039	138,275	614,387.12
8	2012	38,086	134,305	743,074.38
9	2013	41.235	137,378	920,455.65

Source : Statistical Abstract India, 2014

सारणी 20 : सीमेन्ट उद्योग की प्रगति

वर्ष	स्थापित क्षमता (लाख टन)	उत्पादन (लाख टन)
1950–51	33	27
1970–71	180	143
1990–91	600	488
2000–01	2938	2097
2013–14	3245	2500
2014–15	3245	2700

सारणी 21 : उद्योग के प्रमुख क्षेत्रों में वार्षिक विकास दर
आधार 2004–05 = 100

समयावधि	खनन	विनिर्माण	विद्युत	सामान्य
	14.16	75.53	10.32	100
	2.60	2.50	2.70	2.50
	7.90	4.80	6.10	5.30
	5.20	9.00	5.50	8.20
	–2.00	3.00	8.20	2.90
	–2.30	1.30	4.00	1.10
	–0.80	–0.80	6.10	–0.10
	1.40	2.30	8.40	2.80
	2.10	2.50	4.70	2.70

सारणी 22 : भारत में सूती वस्त्र उत्पादन

क्र. सं.	राज्य	उत्पादन का प्रतिशत
1	महाराष्ट्र	38.39
2	गुजरात	35.54
3	तमिलनाडु	6.40
4	पंजाब	5.53
5	मध्य प्रदेश	4.70
6	उत्तर प्रदेश	3.20
7	राजस्थान	2.8.
8	पांडिचेरी	2.45
9	कर्नाटक	0.32
10	केरल	0.67
	योग	100.0

भारत में सूती वस्त्र उत्पादन	
उत्पादित वर्ष	सूती वस्त्र करोड वर्ग मी.
1950–51	421.5
1960–61	637.8
1970–71	759.6
1980–81	836.8
1990–91	2292.8
2000–01	4023.3
2007–08	5606.05
2008–09	5496.6
2011–12	3057.0
2012–13	6195.0
2013–14	4738.0

सारणी 23 : भारत में रेल मार्गों का विकास
(1950–51 से 2012–13)

वर्ष	रेल मार्गों की लम्बाई (किमी.)
1950–51	53,596
1960–61	56,247
1970–71	59,787
1980–81	61,240
1990–91	62,367
2000–01	63,028
2010–11	64,015
2011–12	64,415
2012–13	64,600

सारणी 24 : **भारत : विभिन्न पंचवर्षीय योजनाएँ एवं कार्यक्रम**

क्र.सं.	योजना एवं योजनार्थ		लक्षित विकास दर	प्राप्त विकास दर	वास्तविक निवेश (करोड़ रू.)	प्राथमिकता के क्षेत्र	कार्यक्रम
1	पहली योजना	(1951–56)	2.1	3.7	1,960	कृषि, सिंचाई, विद्युत	
2	दूसरी योजना	(1956–61)	4.5	4.2	4,672	भारी उद्योग, चिकित्सा एवं स्वास्थ्य	राउरकेला, भिलाई, दुर्गापुर, इस्पात कारखानें
3	तृतीय योजना	(1961–66)	5.6	2.8	8,577	खाद्यान्न, उद्योग	
4	वार्षिक योजनाएँ	(1966–67 से 1968–69)	–	–	6,625	–	हरित क्रान्ति
5	चौथी योजना	(1969–74)	5.7	3.4	15,799	कृषि, सिंचाई	–
6	पांचवी योजना	(1974–78)	4.4	4.9	39,426	जन स्वास्थ्य, समाज कल्याण	गरीबी हटाना, डीडीपी, डीएनएपी
7	छठी योजना	(1980–85)	5.2	5.4	1,09,292	कृषि, उद्योग, ऊर्जा	प्रोग्राम/आरडीपी
8	सातवीं योजना	(1985–90)	5.0	5.6	2,18,730	ऊर्जा, खाद्यान्न	जे.आर.वाइ (MNP)
9	वार्षिक योजनाएँ	(1990–92)	–	–	1,21,121	–	–
10	आठवी योजनाएँ	(1992–97)	5.6	6.6	4,95,670	मानव संसाधन, शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार विकास	–
11	नौंवी योजना	(1997–2002)	6.5	5.7	9,41,041	सामाजिक न्याय, ग्राम विकास रोजगार	एसजीएसवाई
12	दसवीं योजना	(2002–2007)	7.7	7.6	15,92,300	रोजगार, ऊर्जा, सामाजिक अ------ विकास	खाद्य सुरक्षा, मनरेगा
13	ग्यारवी योजना	(2007–2012)	9.0	7.8	36,44,718	विकास की सर्वकित कारी बनाना, तीव्रतर विकास के साथ अधिक समृद्धि	सबको शिक्षा, निर्धनता में कमी, ग्रामीण विकास
14	बाहरवीं योजना	(2012–2017)	8.0		76,69,807	त्वरित, सम्पोषनीय विकास एवं समावेशी सवृद्धि	नीति आयोग, आवास योजना, आदर्श ग्राम, ग्रामीण विकास

सारणी 25 **विश्व पर्यावरण सम्मेलन**

क्र.सं.	स्थान का नाम	राष्ट्र	वर्ष	सम्मेलन का प्रमुख विषय जिन पर वार्ता हुए
1	स्टॉक होम सम्मेलन	स्वीडन	1972	पर्यावरण बचाने हेतु 25 सूत्रीय घोषणा पत्र तैयार किया गया।
2	कोकोयोग घोषणा	मेक्सिको	1974	विकास के उद्देश्यों को पुनः परिभाषित करने पर बल दिया।
3	मरूस्थलीय सम्मेलन नेरोबी	केन्या	1977	
4	वियना सम्मेलन	आस्ट्रिया	1985	ओजोन परत क्षरण पर चिन्ता।
5	मांट्रियल समझौता		1987	ओजोन परत क्षरण को रोकने हेतु गैसों के उत्सर्जन में कमी की जायें।
6	टोरन्टो वर्ल्ड कॉन्फ्रेंस	कनाडा	1988	हरित गृह प्रभाव को कम कर जलवायु परिवर्तन से विश्व को बचाया जाए।
7	हेग घोषणा	नीदरलेण्ड	1989	पर्यावरण की गुणवत्ता बनाये रखने पर चर्चा
8	पृथ्वी शिखर सम्मेलन (रियो डे जेनिरो)	ब्राजील	जून 1992	178 देशों के प्रतिनिधियों ने हिस्सा लिया, वैश्विक पर्यावरण को बनाया गया।
9	न्यूयार्क सम्मेलन	यू.एस.ए.		द्वितीय पृथ्वी शिखर सम्मेलन
10	क्योटो सम्मेलन	जापान	1997	159 देशों ने भाग लिया जिसे क्योटो प्रोटोकोल भी कहते हैं।
11	बॉन कन्वेंशन	जर्मन	1998	क्योटो सम्मेलन की क्रियान्विति पर जोर ग्लोबल वार्मिंग पर विशेष कार्य किया जाए।
12	जोहान्सबर्ग	द. अफ्रीका	2002	+10 सम्मेलन भी कहते हैं। सतत् पोषणीय विकास पर विशेष बल दिया गया।
13	डरबर पृथ्वी सम्मेलन	द. अफ्रीका	2003	विश्व संरक्षित तथा जैव विविधता की रक्षा पर बल दिया जाय।
14	स्टॉक होम सम्मेलन		2004	औद्योगिक प्रदूषण को कम करने पर जोर दिया गया।
15	मांट्रियल सम्मेलन		2005	विकसित देशों द्वारा 2012 तक ग्रीन हाऊस गैसों के उत्सर्जन को 1990 के स्तर तक लाना।
16	नाशा दुआ	इण्डोनेशिया बाली द्वीप	2007	IPCC की IV रिपोर्ट पेश की ई एवं 193 देशों में से 189 मत प्राप्त कर राजेन्द्र पचोरी, IPCC के अध्यक्ष निर्वाचित हुए।
17	पोजनोन सम्मेलन / वरसा पोलेण्ड की राजधानी	पोलेण्ड		
18	कोपेन हेगन सम्मेलन	डेनमार्क	2009	सम्मेलन की अध्यक्षता राजेन्द्र पंचोरी ने की थी। सम्मेलन में 2009 को सबसे गम वर्ष 2001–10 के देशक को घोषित किया गया।
19	कानकून	मेक्सिको	2010	16वां संयुक्त राष्ट्र जलवायु सम्मेलन हरित कोण हेतु 100 अरब डालर के निवेश पर सहमति।
20	नागोया प्रोटोकॉल	जापान	2010	भारत ने जैव विविधता एवं सतत् विकास हेतु प्रोटोकाल संधी पर हस्ताक्षर किये।
21	डरबन सम्मेलन	द. अफ्रीका	2011	17वां जलवायु सम्मेलन
22	दोहा सम्मेलन		2012	संयुक्त राष्ट्र हरित जलवायु कोष को सम्मेलन
23	मिनिमाटा सम्मेलन कुआमोटीशहर	जापान	2012	पारे पर प्रतिबंध को लेकर प्रथम सम्मेलन
24	वरसा सम्मेलन	पोलेण्ड	2013	हरित जलवायु कोष निर्माण एवं जलवायु परिवर्तन सम्बन्धी समझौते पर बल दिया गया।
25	लीमा सम्मेलन (G-20 शिखर सम्मेलन)	पेरू	2015	जलवायु परिवर्तन एवं आतंकवाद मुख्य मुद्दे।
26	संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन सम्मेलन, पेरिस	फ्रांस	12 दिस. 2015	जल वायु परिवहन, कृषि का सतत् विकास
27	विश्व पृथ्वी सम्मेलन, न्यूयार्क	यू.एस.ए.	22 अप्रेल 2016	जलवायु परिवर्तन पर दिसम्बर 2015 पेरिस सम्मेलन पर हस्ताक्षर किये।